प्रकाशक
बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना ३

संशोधित मूल्य 45.00 (पैंतालीस रुपये)

वक्तव्य

भारतवर्ष केवल कृषि-प्रधान ही नहीं, तीर्थ-प्रधान देश भी है। यहाँ असंख्य तीर्थ-स्थान हैं। अनेक पर्वत, नदी, जलकुण्ड, तपोवन, सिद्धाश्रम, पुण्यक्षेत्र, ज्ञानपीठ, मुक्तिधाम आदि तीर्थस्थल इस महादेश के विभिन्न भागों में स्थित हैं। उन तीर्थ-स्थलो में प्रायः समय-समय पर समस्त देश के रमता योगी साधु-सन्तों का समागम और समारोह होता रहा है तथा अब भी होता रहता है। ऐसे अवसरों पर महात्माओं के सत्सग से श्रद्धालु जनसमाज का तो उपकार होता ही है, साहित्य को भी बहुत लाभ होता है। शताब्दियों से यह काम होता आ रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा।

आज भी यह देखने मे आता है कि पुण्यकाल में सरित्-सगमों और पुण्य तीर्थों मे ... धार्मिक मेले होते हैं, उनमे प्रत्येक दिशा से सत-महात्मा एकत्रित होकर ज्ञान और भक्ति की चर्चा करते हैं। इस प्रकार सतों के पारस्परिक मिलन, परिचय और विचार- ... साहित्य की ... वृद्धि हुई है। हमारे तीर्थों और संतों ... को उद्बुद्ध करने में योग-दान किया है, वैसे ही भारतीय ...षाओं में परस्पर आदान-प्रदान का क्रम भी जारी रखने में सहयोग दिया है। हिन्दी सत-साहित्य के कई ग्रंथों के विषय मे आज भी सुना जाता है कि अमुक तीर्थ मे समवेत ... सत महात्माओं के सत्संग से उनके प्रणयन की प्रेरणा मिली। प्रस्तुत ग्रथ के ... स्थलों का अवलोकन करने से इस धारणा की स्पष्ट पुष्टि होती है। साथ ही, ...षा-विज्ञान की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन की सामग्री भी इसमे मिलती है।

संसार को संतों की देन का लेखा-जोखा करना असम्भव है। संत शिरोमणि महा-...त्मा तुलसीदास ने अपनी 'विनय-पत्रिका' के एक पद में लिखा है कि 'सत मे और भगवान् मे कभी कोई अन्तर[1] नहीं होता'। श्रीमद्भगवद्गीता के नवम अध्याय[2] मे भी स्वय भगवान् ने कहा है कि 'मैं सभी प्राणियों में समान भाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय, परन्तु जो मुझे भक्ति-सहित भजते हैं, वे मुझमें बसते है और मैं उनमे बसता हूँ।' इस प्रकार सत साक्षात् भगवान् ही होते हैं। अतः उनकी देन अनन्त अपार है।

... ...ों में पाये जाते हैं। ऐसे सतों की देन से ससार की अनेक भाषाओं ... उपकार हुआ है। संतों की

---

१. 'सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहीं'—(तुलसी)

२ समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये यजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

अमर वाणियों से जो लोक-कल्याण हुआ है, वह वर्णनातीत है। जगत के जीवों के मंगल के लिए सन्त सदा जंगम तीर्थ के समान भूभाग पर विचरण करते रहते हैं। संतों के जीवन-वृत्तान्त में देशाटन और सत्संग के अनेक प्रसंग मिलते हैं। गुरु नानक को हम भारत की सीमा के बाहर भी रमते हुए पाते हैं। सारी दुनिया ही संत और फकीर की जागीर है। महाराष्ट्र के संत हिन्दी-प्रधान क्षेत्रों में पर्यटन करते थे और हिन्दी-क्षेत्र के संत भी दक्षिण भारत की ओर जाते थे। हमारे 'चारों धाम' भी संतों के समागम में सहायक होते थे और आज भी होते हैं। ऐसी स्थिति में यह अनुमान असंगत न होगा कि दक्षिण के संत भी उत्तर के संतों से प्रभावित हुए होंगे। प्रकारान्तर से यह अनुमान इस ग्रंथ द्वारा सत्य प्रतीत होगा।

यहाँ एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। वह यह है कि देश-भर की राष्ट्र-भाषा हिन्दी की व्यापकता देखकर हिन्दीतर भाषाओं के विद्वान् और महात्मा भी उसके माध्यम से अपने सिद्धान्त और सन्देश का अधिकाधिक प्रचार करना चाहते थे। आखिर उनकी रचना का उद्देश्य भी यही होता था कि वह यदि गेय पद अथवा श्रव्य-काव्य के रूप में हो तो अधिक-से-अधिक लोगों के कण्ठ में बसे—अधिक-से-अधिक लोगों के कर्ण-पुट को पवित्र करे। इसलिए भी संतों ने अपनी वाणी का अमृत हिन्दी को पिलाया कि वह उस दिव्य प्रसाद का वितरण आसेतुहिमाचल कर देगी। भारतीय भाषाओं में विशेषतः हिन्दी को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसके साहित्य को अन्य भाषा-भाषियों की देन सदैव समृद्ध करती आई है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अ- भाषा-भाषी साहित्यकारों की सेवाएँ आज भी सादर स्मरणीय हैं। इससे उसके राष्ट्रभाषा-पद का औचित्य ही सिद्ध होता है। पाठक देखेंगे कि ये बातें बहुलांश में इस ग्रंथ से भी प्रमाणित होती हैं।

इस ग्रंथ में परिषद् के पाँचवें वर्ष की दूसरी भाषणमाला प्रकाशित है। इस भाषणमाला का आयोजन 'बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के सभा-भवन में सन् १९५५ ई० के २२-२३ मार्च को हुआ था। हमारी समझ में इस ग्रंथ से यह लाभ होने की सम्भावना है कि इसी तरह के अन्य विषयों में खोज करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी और क्रमशः यह तथ्य प्रकट होता चलेगा कि हिन्दी को कहाँ, कब, किससे, कौन-सी देन नसीब हुई। ऐसा होने से हिन्दी के साहित्य-भाण्डार का वैभव ही बढ़ेगा।

ग्रंथकार आचार्य विनयमोहन शर्मा हिन्दी संसार के एक लब्धकीर्त्ति साहित्य-सेवी एवं समीक्षक हैं। पहले आपका असली नाम श्री शुकदेव प्रसाद तिवारी था। आप मध्यप्रदेश के निवासी हैं। आपका शुभ जन्म सन् १९०५ ई० में हुआ था। काशी के हिन्दू-विश्व-विद्यालय में आपने शिक्षा पाई थी—एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०। सन् १९२८ से १९३० ई० तक खण्डवा (मध्यप्रदेश) के प्रसिद्ध हिन्दी-साप्ताहिक 'कर्मवीर' के सहायक सम्पादक थे। उसके बाद सन् १९४० ई० तक खण्डवा में ही वकालत

करते हुए साप्ताहिक 'स्वराज्य' के साहित्य-विभाग के सम्पादक भी रहे। सन् १६४० से १६४६ ई० तक नागपुर के सिटी कॉलेज मे हिन्दी के प्राध्यापक। सन् १६४६ से १६५६ ई० तक नागपुर-विश्वविद्यालय मे हिन्दी-विभागाध्यक्ष। नये मध्यप्रदेश के निर्माण के पश्चात्, नवम्बर १६५६ से, शासकीय महाकोसल-महाविद्यालय (जबलपुर) में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष। प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ—साहित्य-कला, कवि 'प्रसाद'—'आँसू' तथा अन्य कृतियाँ, दृष्टिकोण, साहित्यावलोकन, भूले गीत, गीतगोविन्द (खड़ी बोली-गीति-शैली मे रूपान्तर)।

ग्रंथकर्त्ता ने इस गवेषणापूर्ण ग्रथ के निर्माण में अनेक वर्षों तक अनवरत परिश्रम किया है और आज भी आप इस विषय के अनुसधान-अनुशीलन मे सलग्न हैं। वास्तव मे यह ग्रथ भी हिन्दी-संसार को आपकी एक अमूल्य देन है। आशा है कि परिषद् की भाषणमालाओं के अन्य ग्रथों की भाँति हिन्दी-संसार में यह ग्रथ भी समादृत होगा।

चैत्र-पूर्णिमा, विक्रमाब्द २०१४
शकाब्द १८७६; सन् १६५७ ई०

शिवपूजन सहाय
(संचालक)

विषय-सूची

प्रथम खण्ड —

द्वितीय खण्ड—

भूमिका

मराठी सन्तों की हिन्दी के प्रति सहज ममता रही है। मध्य-युग से लेकर आजतक लगातार मराठी सन्त कीर्त्तन-भजन के अवसर पर मराठी अभंगों और पदों के साथ एक-दो हिन्दी-पद गाते आ रहे हैं। जो मराठी सन्त कवि-प्रतिभा-सम्पन्न रहे हैं, उन्होंने मराठी के साथ हिन्दी-पदों की स्वय रचना की है और जो केवल कीर्त्तनकार रहे हैं, उनकी मराठी अभगों आदि के साथ किसी प्रसिद्ध हिन्दी सन्त के पद गाने की परिपाटी रही है। सन्तों ने प्रान्त या भाषा-भेद को कभी स्वीकार नहीं किया। महाराष्ट्र के सन्त महिपति बोआ ने ईसा की १८ वीं शताब्दी मे 'भक्त-विजय' नामक सन्त-चरित्र-ग्रन्थ लिखा है जिसमे मराठी के ही नहीं, हिन्दी के सन्तों का भी उल्लास-पूर्ण गुणगान है। लोक-कल्याण की व्यापक भावना से अभिभूत इन सन्तों की हिन्दी-वाणी का अध्ययन करने का अवसर लेखक को नागपुर आने पर प्राप्त हुआ। सन् १९४६ ई० में, नागपुर में जब अखिल भारतीय प्राच्यविद्या-परिषद् का वार्षिक अधिवेशन हुआ, तब उसने नामदेव की हिन्दी-कविता पर एक शोध-निबन्ध पढ़ा जो 'अखिल भारतीय प्राच्य-विद्या-परिषद्' के विवरण-ग्रन्थ तथा शान्ति-निकेतन की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्व-भारती' में प्रकाशित हुआ। उस समय उसके सम्पादक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी थे। उन्होंने तथा प्राच्य-विद्या-परिषद् के स्थानीय मत्री डा० हीरालाल जैन ने इस दिशा में कार्य करने की प्रेरणा दी। तभी से वह मराठी सन्तों और उनकी हिन्दी-रचना पर सामग्री संचित कर उसपर मनन-चिंतन करता आया है। लेखक को अपनी सामग्री जुटाने के लिए साम्प्रदायिक क्षेत्रों, साहित्य-सस्थाओं और शोध-कार्यप्रेमियों का आश्रय लेना पड़ा। धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता-मदिर में सबसे अधिक सन्त-वाङ्मय की निधि रक्षित है। वहाँ लगभग दो सहस्र हस्तलिखित पोथियों के विवरण तैयार हो चुके हैं और शेष के हो रहे हैं। इसी प्रकार मराठवाड़ा-क्षेत्र की सामग्री मराठवाड़ा-साहित्य-परिषद् हैदराबाद के ग्रथागार में सुरक्षित है। परन्तु वहाँ सामग्री का पूर्ण रूप से वर्गीकरण नहीं हो पाया है। अनेक प्रमुख सन्तों की वाणियाँ 'गाथाओं' के रूप मे प्रकाशित हो चुकी हैं। परन्तु, अनेक 'गाथाओं' मे केवल मराठी के अभग, पद आदि संकलित हैं। ऐसी दशा मे लेखक को अप्रकाशित सामग्री का अधिक सहारा लेना पड़ा है। ग्वालियर मे श्री भा० रा० भालेराव के निजी ग्रथागार मे भी सामग्री है, पर

मुझे वहाँ जाने का अवसर नहीं मिल पाया। भालेरावजी ने दो-तीन सन्तों पर टिप्पणियाँ भेजने की कृपा की थी, पर विलम्ब से प्राप्त होने के कारण उनका उपयोग नहीं हो पाया। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' (भाग १०, सं० १९८६, पृष्ठ ८७—११०) में उन्होंने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अप्रकाशित परिच्छेद' शीर्षक निबन्ध में मराठी के कतिपय हिन्दी-पद-गायक सन्तों का संक्षिप्त परिचय प्रकाशित करा कर इस दिशा में शोध का मार्ग निर्दिष्ट किया है। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। हिन्दी-साहित्य के कतिपय इतिहासों में मराठी-सन्तों में नामदेव का उल्लेख मिलता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी-साहित्य' में नामदेव के अतिरिक्त अन्य मराठी हिन्दी-पदकर्त्ता सन्तों का श्री भालेराव जी के उक्त लेख के आधार पर उल्लेख किया है। उनके अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे मराठी सन्त हैं, जिन्होंने हिन्दी में पद-रचना की है। परन्तु, उनका क्रमबद्ध परिचय प्राप्त नहीं था। लेखक इस कमी का अनुभव कर रहा था। गत तीन-चार वर्ष पूर्व बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) में भाषण प्रस्तुत करने के लिए श्री रामवृक्ष जी शर्मा 'बेनीपुरी' और बाबू शिवपूजन सहाय जी ने बार-बार प्रेरित कर उससे यह कार्य सम्पन्न करा लिया। लेखक इन सम्माननीय बन्धुओं का आभारी है!

परिषद् में भाषण हो जाने के पश्चात् भी लेखक का इस दिशा में अनुसधान-कार्य जारी रहा। परिणाम-स्वरूप उसे अनेक नये सत-कवियों का पता लगा, जिनका संक्षिप्त परिचय देने का लोभ सवरण नहीं हो रहा है। अतः भूमिका में ही उनका समावेश किया जा रहा है।

जयराम स्वामी

समर्थ रामदास के संत-मण्डल में जो अनेक सत हो गये है, उनमे जयराम स्वामी का भी स्थान है। इनकी जन्मतिथि गोकुल अष्टमी शक-संवत् १५२१ और समाधि-तिथि भाद्रपद वदी ११, शक-सवत् १५९४ है। ये अत्यन्त गरीब होने से मधुकरी माँग कर अपना जीवन-यापन करते थे। स्वामीजी के चरित्र का एक 'वृत्त' प्राप्त हुआ है, जिसमे लिखा है कि इनके पास एक लँगोटी, शरीर पर एक 'बडी', नीचे बैठने को एक श्वेत कम्बल और पानी पीने को एक तुम्बा था। (देखिए—भावे—तुलपुले—'महाराष्ट्र' सारस्वत पृष्ठ २७) बड़गाँव मे कृष्णप्पा स्वामी से इन्होंने दीक्षा ली और वहीं रहकर ग्रन्थ-रचना की।

इनके ग्रन्थों में 'दशम स्कध टीका, रुक्मिणी-स्वयंवर, सीता-स्वयवर, अपरोक्षानुभव अधिक प्रसिद्ध हैं। ये सब मराठी मे हैं। हिन्दी मे इनके स्फुट भजन मिलते हैं। भगवान की 'बराई' (बड़ाई) करते-करते स्वामीजी थक जाते हैं। कहते हैं—

ज्याके भेद पायवे कु वेद गुग हो रहे
ऐसे कोई हय गुणी वाके नीव नीव है।
च्यार मुख पच्चमुख, सेषमुख असेषमुख।
वाके गुणन की माला बरने सो कोन है।

नारदादि सिद्ध साध व्यास वाल्मीक शुक
च्युक च्युक के गय सो मोह के नदी बहे।
ज्याहि आदि, मध्य नहीं अंत कहत जयराम पत
कहा लों बराई करों मोहे येक जीभ है।

जयरामस्वामी का उपर्युक्त कवित्त कवित्वमय है। उसमे 'मराठी' हिन्दी का व्रजरूप है।

शिवराम

ये भी रामदासी थे और इनका मठ तेलगाना मे था। ये मौजी साधु थे। निजामशाही की कल्याणी मे इनका मठ था। इनका जन्म-शक-सवत, १६२५ कहा जाता है। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—
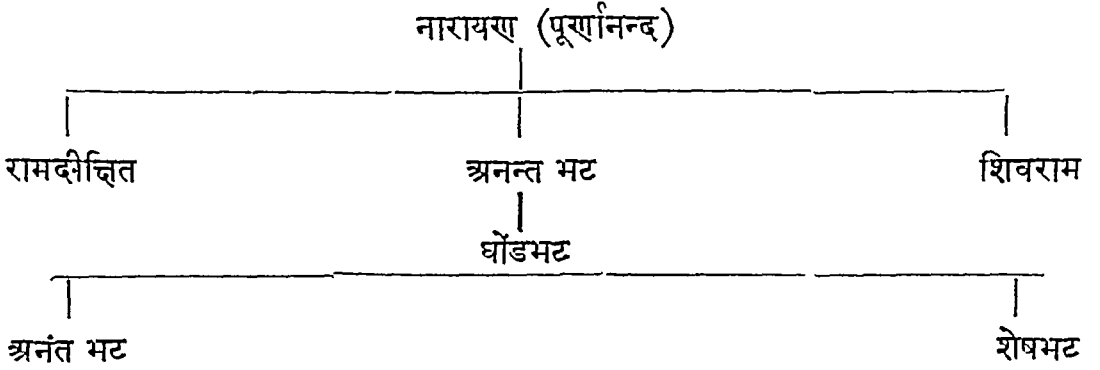
ये पूर्णानंद के शिष्य हैं। इनके हिन्दी-पद, दोहरे आदि लेखक को मराठवाड़ा-साहित्य-परिषद् (हैदराबाद) के हस्तलिखित ग्रंथागार से उपलब्ध हुए हैं। निजामशाही में रहने से इनकी भाषा में प्रवाह है। भावों में मस्ती है।

इनके नाम पर प्रचलित दोहरे आदि नीचे दिये जाते हैं, जो स्थानीय लोक-प्रचलित खड़ीबोली में हैं और नीतिपरक हैं।

साधू हमारे आत्मा, हम साधू के जीव।
साधू दुनिया यों बसे कि ज्यों गोरस मे घीव ॥

× ×

रामेभक्ति बड़ी कठीण हय खाडे जैसी धार।
डगमगावे तो गिर पडे न तो उतरे पार ॥

× ×

सबमन ऐसी प्रीत कर ज्यों चुना हर्दि का हेत।
हर्दि ने जर्दी त्यजी, चूना रहे न श्वेत ॥
साह का घर उच्च्य हय, जैसी बड़ी खजूर।
चढे तो चाखे प्रेमरस, गिरे तो चकना चूर ॥
तेड़ी पगड़ी बाद कर उपर लगावे फूल!
तलब आइ जब साईं की, गई चोकड़ी भूल ॥

× × × ×

राम नाम की लूट है, लुट सके तो लूट
घड़ी गई पस्तायगा प्राण ज्यायगा छूट ॥

× × × ×

लेना गुरु का ग्यान
देना धन तन मान
करना अमिरत पान
होना अमर निदान

× ×

वेश्या सू यारी न करणा
उस यारी मूं दोजख जाणा।
वेश्या सालिम (जालिम) नगावणाहारी (नगा बनानेवाली)
वो जीन्ने मानी अपनी प्यारी।
दुनिया दारकू करे भिकारी
सालिम बुरी वो सोबत
माल सरे[1] न बैठे सात[2]
माल सरे तो मू ना देखे
माल सरे तो यारि ना राखे
'ज्या मुये घर'—मू पर थूके ॥

शिवराम के उपर्युक्त कुछ दोहे प्राचीन हिंदी-संतों की अनुकृति प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि उनका भाषा-प्रवाह उनकी अन्य रचनाओं की अपेक्षा अच्छा है।

देवदास

ये रामदासी शिष्य-मण्डल के अन्तर्गत हैं और अपने धर्म के प्रति अत्यधिक निष्ठावान् हैं। उसपर प्रहार करनेवालों की तीखी भर्त्सना करते हैं। ये दादेगाँव के रामदासी मठ के अधिपति थे।

इनके स्फुट मराठी पद और चौबीस श्लोकों का 'गजेन्द्र मोक्ष' कथाकाव्य प्राप्य है। हिन्दी मे भी इनकी स्फुट रचनाएँ मिली हैं। एक पद है जिसमे कृष्ण-गोपी-प्रेमभाव की व्यंजना है—

देख्यो रे भाई बहुरूपी का ख्याल ॥ ध्रु० ॥
नव नागर (अमीन) नवरस लीला
अजेब बने नंदलाल।
दस अवतार राम कृष्ण बन्यो है
सब गोपी खुशाल।

---

१. समाप्त होने पर। २. साथ।

ईत गोकुल ईत मथुरा नगरी
सबे भई नीहाल ।
दास केसव गोपी ग्वालन
तन मन धन बेहाल ।

दूसरी रचना 'गारुड़ी' (सँपेरा) शीर्षक है। मराठी सतों ने सँपेरे के रूपक का बहुत प्रयोग किया है और उसमे आध्यात्मिक भाव भरने का यत्न किया है।

देवदास की 'गारुड़ी' की कुछ पक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

अवल (अव्वल) याद कर वस्ताद की
पीर पैगबर नबी की।
साधुसन्त महतों की
जीन्ने ये मडान पयदा कीया।
अरे मैं देवदास गारोडी
खेलने की बाजी करु खड़ी
ईस खेलमो आडी तीडी
उस लंडीका काम नहीं ॥
अरे मैं गारोडी देवदास
खेलने कु आया तुमारे पास
अवल दील ते पकडो वीसवास ॥
वज्यात पाशा देखते रहो
लाया हु गयब (गैब) का पेटारा
कोई गाव गुंडा होगा पूरा।
भाई का नाम चारा। बोलो मेरे सो यारो।
हो यारो ममता नागीन नाचती है।
अब तुजकु बतला।
वो वस्ताद के हाथ का येक मोहरा
हमारे हात च्येढ़ा दीन रख।
नागिन का तुटे थारा
के आवने न पावे।

ईसा की सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में निजामशाही में सामान्य जनता हिन्दी को जिस रूप में बोलती थी, देवदास की 'गारुड़ी'—रचना उसका एक उदाहरण है।

मुकुन्दानन्द

मराठी सत-कवियों मे मुकुन्द नामधारी छह व्यक्ति हो गये हैं। एक एकनाथ चरित्र-कार हैं। दूसरे सारिपाट-रचयिता हैं, तीसरे प्रबन्धकार हैं, चौथे देवभक्तानुवाद, रामकृष्ण विलास आदि के कर्त्ता, पाँचवें मराठी आदिकवि विवेकसिंधु, परमामृत आदि के लेखक

और छठे वेदान्त, अंकुशपुराण, रामायण, सुन्दरकाण्ड आदि के निर्माता हैं। अतः इन्हीं छठे मुकुन्द के कृतित्व पर विचार किया जाता है। इनके सम्बन्ध में भारत-इतिहास-संशोधन-मण्डल (पूना) के शके १८३४ के वृत्त में थोड़ी चर्चा की गई है। इनका जन्मस्थान खण्डवा है। इसे इन्होंने अपने आत्मचरित में लिखा है—'नीमाड़देशात ख्यांडोनवाशी असे जन्म माझा तया पौरदेशीं'—पिता का नाम नारायण है। सात वर्ष की आयु में ही इनका विवाह हो गया था। उसके बाद ही पिता का देहान्त हो गया। दारिद्र्य से उत्पीड़ित हो ये खानदेश में 'जैनापुर' जाकर पितामह के पास रहने लगे। इन्होंने शके १६२३ में स्वप्न में गुरुमन्त्र ग्रहण किया। कुछ समय तक इन्होंने औरंगजेब के ज्येष्ठ पुत्र मोअज्जिम के यहां नौकरी की तथा देश का विस्तृत भ्रमण किया और तीर्थस्थलों की यात्राएँ कीं। इससे इन्हें ब्रज निमाड़ी, आभारी, बागलाणी, खानदेशी, गुर्जरी, धारवाड़ी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया था। इनकी समाधि-तिथि अज्ञात है।

इन्होंने मराठी में रामायण सुन्दरकाण्ड, रेणुका-सत्य-दर्शन, दानलीला, गुरु-स्तुति, अगद-शिष्टाई, सुदामा-चरित्र, छन्दोरत्नाकर आदि ग्रंथों की रचना की और हिन्दी में फुटकल कवित्त, पद आदि लिखे। लेखक को इनका एक कवित्त मिला है जिसमें काव्य-छटा है और भाषा की दृष्टि से भी अधिक स्वच्छता है। उसे पढ़ने पर ज्ञात हो जाता है कि इनका ब्रजभाषा से अवश्य परिचय रहा है। इतना ही नहीं, हिन्दी-काव्य परम्परा से भी ये अवगत रहे हैं। कवित्त इस प्रकार है—

च्याहे जलकमल रे कोकिल वसंत हित
च्याहे मोर मेघ रे चकोर इक चद को।
च्याहे चक्रवाक परकाश परभात भई
च्याहे मेह सरवर सिंपी स्वाति बुंद को।
नादन कु स्वाद च्याहे कुरंगी कुलह मोहे
भुजंग च्याहे च्यंदन (औ) भृंगी मकरद को
च्याहत चरनारविंद विलोकि मुकुन्दानन्द
वसुदेव सुत्तानंद नंदन क नंद को॥

राम

इनका शोध स्वर्गीय राजवाडे ने लगाया था। ये शक-संवत् १५६७ मे जीवित थे। पैठण के किसी नारायणस्वामी के शिष्य थे। इनके पिता का नाम नृसिंह और पितामह का गोपीनाथ था। इनका मराठी मे साढ़े तीन हजार ओवियों का ग्रथ है जो काव्य की दृष्टि से उत्तम कहा जाता है। लेखक को इनका हिन्दी मे निम्नाकित पद उपलब्ध हुआ है—

ताल लिये वरुण कुवेर करताल लिये
झांज लिये पवन मृदंग अमरेस है।
बीन लिये नारद पितामह सारंगी लिये
मरुत सीतार मुहचंग लिये सेस है।

गावें गुरु सनक सनदन ज्यम (थम) अनल
गणेश उच्चार करे चन्द्रमा दिनेस है।
राम कहे गोकुल मे नंदन मुकुन्द भये
सभा मधे नाचत महेस है।

नरहरि-रामदासी

महाराष्ट्रीय सन्तो मे नरहरि, नरहरि सोनार, नरहरि माली, नरहरि मोरेश्वर, नरहरि और नरहरि-रामदासी नामक छह सत हो चुके हैं। दो नरहरि तो ऐसे हैं कि जिनके आगे जाति, ग्राम, गुरु किसी का पृथक् नाम भी जुड़ा हुआ नही है। ऐसी दशा मे हिंदी-पदकार कौन नरहरि है, इसका निर्णय करना कठिन है। इनका अप्रकाशित हिन्दी-पद रामदासी मठ से प्राप्त हुआ है। इसलिए, इन्हे रामदासी ही मानना अधिक उचित जान पड़ता है। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

भीमस्वामी-नरहरि—समर्थ रामदास। इनका समय सन् १६५० से १७०० माना जाता है। इनके मराठी-ग्रंथ 'आर्य टीका', 'रामजन्म', 'महाभारत', 'शतमुख रावणवध', और 'अभग' आदि हैं। इनकी जो हिन्दी-रचना लेखक को उपलब्ध हुई है, वह इस प्रकार है—

नद के नंदन कौंस (कस) निकदन
त्रिभुवन वदन आवतु है।
वेद पुराण बखानत भारत
व्यास गुणी ज्यन गावतु है।
इन्द्र फणीन्द्र दिवाकर चन्द्र
चतुर्मुख रुद्र मनावतु है।
सूरत देखत मन को बूझत
नरहरि के मन भावतु है।

इसमें यत्र-तत्र शब्द-योजना को आनुप्रासिक बनाकर नाद-माधुर्य बढ़ाने का यत्न दिखाई देता है। पद मे प्रवाह है।

मानपुरी

इनकी देवगिरि (दौलताबाद) मे समाधि है। समाधि-तिथि ज्येष्ठ शुक्ल ५ रविवार, शक-सवत, १६५२ है। इनके जीवन-व्यापार के सम्बन्ध मे विशेष ज्ञात नही है। इनके फुटकल पद उपलब्ध हैं। इनका मराठी के अतिरिक्त हिन्दी पर भी अधिकार जान पड़ता है। इनके हिन्दी में कई अप्रकाशित पद लेखक को प्राप्त हुए हैं जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने उत्तर भारत की यात्रा ही नहीं की, वहाँ कहीं काफी समय तक ये रहे भी हैं।

'गगा' पर इनका पद है—

तेरो हि निर्मल नीर गगा जु तेरो हि निर्मल नीर
तेरांजु न्हाइये पाप कटतु है पावन होत सरीर।
देस देस के यात्रा आवे देखन तेरो तीर
मानपुरी प्रभु तुम गुन-सागर, जाहा ताहा देखत भीर ॥

प्रतीत होता है कि गंगा के पवित्र जल में स्नान करने मे शारीरिक और आत्मिक शीतलता का अनुभव कवि को हो चुका है।

'अपने राम' के प्रति इनमें भी नामदेव के समान ही 'तालावेली' (तड़प) है—

तुम वीन और न कोई मेरो
तुम वीन जीय को दरद न ज्याने।
भर भर अखीयो रोट ॥

इसीलिए ये निशिदिन 'उनका' ध्यान करते हैं—

'निसिदिन लागो रे तेरो ध्यान गोपाला
सुन्दर रूप देख मन मोहे भव-भ्रम भागो रे
मुरलि की धुन सुन भई रे बावरि
सब सुख त्यागो रे।
मानपुरी हरखि छब निरखत
आनन्द ज्यागो रे।

अपने 'घट' मे ही 'राम' का निवास है, परन्तु इस भेद को गुरु ही बता सकता है—

'मृगनाम सुगंध भरे भटके बनमु (में) मुगध चित्र उदासी
घट में नट आप विराजतु हैं सुद (सुध) न लेत मुरख बुद्ध वीनासी
देही के देव को भेद न जाणत कैसी कटेगी तेरी जमफासी
कहे मानपुरी गुरु गुमान विना नित मीन मरे परे जल माहि पियासी ॥

अद्वैत भाव व्यक्त कर कहते हैं—

प्रभुजी तुम तरुवर हम पछी
सहज्यामृत फल वछी।
तुम च्यंदा हम चेकोर भयेजी
तुम सरवर हम मच्छी।

मानपुरी को किसी देवता से विरक्ति नहीं है। वे सभी मे अपने निर्गुण 'राम' को देखते हैं—

भज मन शकर भोलानाथ
येकहि लोटा भर ज्यल चाहत चावल वेल की पात
वैल बघवर सॉप फिरे घर कावडी खोपर हात।
मानपुरी प्रभु नीर्गुण गावे वासदपरो की बात ॥

घर के भीतर ही 'उसका' आवास है, इसकी अनुभूति कवि को सहसा एक दिन हो जाती है और वह अचरज में डूब जाता है—

आज अचरज देखे सखी री
सुन सखि, कानदेव रहत नगोडी।
न्हाय धोय अग्य अग्य सोलह सिनगार किये
ले दर्पण मुख जोये।
तिलक मीटो नेनन के पानी।
आज अचरज देखे सखी री।

उसे दर्पण मे अपना नहीं, परम प्रिय परमात्मा का रूप दिखा। परिणामतः आँखे प्रेमाश्रु बहाने लगीं जिससे शृंगार-सामग्री (तिलक) मिटने लगी। बड़ी गहन अनुभूति है।

कबीर के समान ये भी अपने 'लाल' के चारों ओर 'लाली' देखते है—

जग गुलज्यारी रे
जीते देखो तीत लाली।
तीनो भुवण फुलवाड़ी फूली फूले तीनों अग।
चंद सुरज नव लाख तारागण पच फूले पचरग।
बलिहारी उन फुलन को जे सूगत (सूँघत) सतमहत
मन भोवरा (भँवरा) त्रिपत भये जी चरण कमल की आस
मानपुरी सतगुरु परसादे निसिदिन लेत सुवास॥

मानपुरी सत ही नहीं, कवि भी अच्छे हैं। उनमे भावुकता है—हृदय को स्पर्श करने का गुण है। उनकी हिन्दी-रचनाएँ श्री समर्थवाग्देवता-मदिर (धूलिया) की अनेक हस्त-लिखित मराठी-पोथियों में यत्र-तत्र लिखी मिलती हैं। लिपिकार के भाषा-ज्ञान के अभाव में उनकी भाषा की एकरूपता नहीं पाई जाती। छद-भग-दोष तो सतों की रचनाओ में प्रायः मिलता है।

गोस्वावी नन्दन

इनका मूल नाम वासुदेव था। ये तजोर के गोस्वामी के पुत्र हैं। इनके गुरु का नाम निरंजन स्वामी है। इनका समय सन् १५८० से १६५० तक माना जाता है। इनके ग्रथ 'त्रिबक रायाची आरती' शम्भुपचक, रेणुकाष्टक, सीतास्वयवर, ज्ञानमोदक, गगाष्टक, गणपति-श्लोक और सुदामाचरित्र हैं। इनके अतिरिक्त मराठी और हिन्दी मे फुटकल पद भी इन्होने लिखे हैं—

नीचे इनका एक हिन्दी-पद दिया जाता है जिसमे आडम्बरधारी ब्राह्मणों पर कशाघात है। भाषा खड़ीबोली-मिश्रित मराठी हिन्दी है। काव्य तो है ही नहीं—

बाबा भगती बामन रे
जिसका मन हे कसाब पापी पकडे गुमान तागा
उसकी कछु नहिं अघुल (स्नान) सन्ध्या पूजा तर्पन झूठा
वेद पुरान सबहि पढ कर औरन कु सिकलावे

आप हमेशा बिरिया रख मो पैसे मुफ्त गमावे
ऐसा मन उनका देखा पाया और खुदाई
कहते हैं गोसावीनंदन दुर कर उसकू भाई।

अन्य सन्तों की भाँति इन्होंने भी गुरु-माहात्म्य का बखान किया है —

याद वहा साई रे सबा तुही रे
गुरु साहेब ने दवलत दिया तख्त निरंजन पाया।
त्रीभुवन का सब खेल हमारा गनीम गुमान उड़ाया
बड़े-बड़े मतवाले गुड़े काम क्रोध सब छाती काटे
गुरु का नाम का बजा टंका जम की छ्याती फाटे।
जनम मरन का डर नहीं यारो क्या कहुँ अजब तमासा।

निपट निरंजन

मराठी सतों में 'निरजन' नाम के सात संतों की सूची उपलब्ध है। उनके नाम हैं—निरंजन, निरंजन रघुनाथ, निरंजनदास, निरजन बुआ, निरजन माधव और निरंजन स्वामी। सातवें निरंजन अपनी हिंदी वाणियों में सदा निपट निरंजन की छाप लगाते हैं। इनके जन्म-समाधि-काल-स्थान आदि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। एक निरजन रामदास के शिष्य भी हो गये हैं। हो सकता है, ये वही निरंजन हों; क्योंकि रामनाम के माहात्म्य का एक पद में प्रचुर गान है। यथा—

न पढ़ो ओंनामासी न पढ़ो क ख ग
पढ़ो जो वेदन को सार है।
राम नाम ज्यानो तब ही कछु पछ्यानो
भले से भलाई ना बुरे सो बीगार है।
निपट निरंजन नीके के न्याहार देख
बात परमारथ की जो बातन की सार है।
वेद पाट, पोथी पाट पै समज के—
पाट एक राम नाम अपार है।

बात की महिमा का भी इन्होंने खूब अनुभव किया है। ये कहते है—

बातन के कहे ते गोरख तत्त्व ज्ञान पाये
बातन के कहे ते महेसु पुजातु है।
बात्या के कहे ते भुत प्रेत मुख लेते
बात के कहे ते काला नाग उतरतु है।
बात कहे ते जीव कु संतोक होतु है
बई बात पातशाहा सो मीलातु है।
निपट निरजन विना बात करामात कैसी
बात कह आवे तो बात करामात है।

प्रतीत होता है कि निपट निरजन ने उत्तर भारत की पर्याप्त यात्रा की है। इनकी भाषा मे बहुत-कुछ स्वच्छता है। मराठी हिन्दी की यत्र तत्र मिठास तो है ही।

लीला विश्वंभर

ये राम विश्वभर, पूर्ण विश्वभर और विश्वभरनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। इनका समय ईसा की सोलहवीं शताब्दी का मध्य जान पड़ता है। महाराष्ट्र संत-कवि सूचीकार ने 'विश्वभरनाथ' के आगे (१५३४) लिखा है। यह शक-सवत् है अथवा ईसा-सन् है, इसका कहीं निर्देश नहीं है। इनके गुरु का नाम 'निरजन' था। इसका अनुमान इनके 'गोपीचद-आख्यान' की प्रारम्भिक वदना से होता है। उसमें लिखा है—

"अलख निरजन जनम वसतु है
च्यरण कमल मन ध्याये।"

संत-कवि सूचीकार का भी यही अनुमान है।

रचना

इनका मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी 'गोपीचद आख्यान' प्राप्त हुआ है। कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं —

रानी मैनावती चंद्र वदिनि बाला नहि गुरु उपदेश जु।
बेटा गोपीचंदा धीर विर नागर मदन मुरत महाराज जु।
बारा सो रानिया सोरा सो खानिया (?) सखि सब समाधान जु।
नाथ ज्यालंधरी रहत नगर मों जोग जुगुत ज्योगी जोग जु।
गरे बनी कंथा वीभुत विराजे ज्योगी अलख ज्यगावे दिनरात जु।
कुवरी, कुमंडल, गले मृगछाल, कोंगेरी बजावे नाना भात जु।
ज्यंगल में से ल्यावे लकरीया माथे कछु तहि सिरभार जु।
आपणो महल पर से देखे मैनावती माथे लकरी निराधार जु॥

महाराष्ट्र में नाथ-पंथी संतों में 'गोपीचंद-आख्यान' गाने की प्रथा है। भाषा मराठी हिन्दी है—लोक-प्रचलित है।

जमाल शा

इनके जन्म-निधन आदि के सम्बन्ध में जानकारी नहीं है। महाराष्ट्रीय सत-कवि-काव्य-सूची में इतना ही लिखा है कि "इनका मूल नाम 'विश्वनाथ' है"। कहा जाता है कि मन में समाधान न होने से गगा में प्राण देते समय दत्त भगवान ने मलगवेश में इन्हे दर्शन दिये। तभी से इन्होंने फकीरी वेश और नाम 'जमाल शा' धारण कर लिया। इनके फुटकल पद मिलते हैं। एक हिन्दी-पद नीचे दिया जाता है—

दो दिन की गुजरान रे
सग्गा साती कौन हमारा

टिका मकान का न बिस्तारा
बस्ती के बैरागन रे ।
कौन किसीका कुटं कबीला
कौन किसी का गुरु व चेला
नाहक को हैरान रे ।
नगा होकर आना जाना
घडि घडि पल पल दिन को खोना
आखर कु धुलधान रे

जमाल के निवृत्तिपरक भाव हैं। भाषा अत्यन्त सरल, खड़ीबोली है। श्रीसमर्थ वाग्देवता-मंदिर के हस्त-लिखित ग्रंथागार की पोथियों में इनके पद मिलते हैं। अतएव सभव है, ये समर्थ के अनुयायी हों।

विभिन्न हस्तलिखित पोथियों में निम्नाकित सन्तों की भी हिन्दी-वाणियाँ उपलब्ध हुई हैं, पर विशेष परिचय के अभाव में उनपर विस्तृत चर्चा नहीं हो सकी। उदाहरण-स्वरूप उनकी वाणी मात्र दी जा रही है। इनका प्रादुर्भाव १६ वीं और १७ वीं शताब्दी के मध्य हुआ होगा।

१. अग्रदास

कब सुमिरोगे राम भुले मन!
बालक भयो त परवस होई
जोबन भयो तब काम भुले मन
कब सुमिरोगे राम भुले मन!
बिरदे भये तब कापन लागे
निकस गयो अरमान
कब सुमिरोगे राम, भुले मन!

२. अमरदास

बिलख बिलख रोवे माता कौसल्या रानी हमारे सुत दो वनकू गये हो।
ना कछु कहे कछु कहेन न पाई सो पिता के वचन सुन वनकू गये हो।
भोजपत्र तन बस्तर पहेने दंड कमंडल हात लीये हो।
राम चले छतिया भर आई सो नैनन नीर जाय बहे हो।
चित्रकोट के घाट उपर नर नारी सब रुदन करे हो।
अमरदास कहे कर जोरे या सुन दसरथ प्राण त्यजे हो॥

३. आत्मगोपाल

हम बासी उस देस के ज्याहाँ रूप ना रेख।
कोउ घड़ी काया पड़ी पंथ हमारा लेख।
हम वासी उस देस के हरि रस माटी चीवे।
आत्मगुपाल दास हरि को झूमत झूमत पीवे॥

४. उद्धव

दाता सो बंधन पढे।
भीकारी दवलत चढ़े।
चोर की मुराद बढे।
शान परमार है।
मतलब के घर निधी
पापी कु मोक्ष सिद्धी
शेवक के तन चिद्धी
नगा (कु) घरवार है।
पतिव्रता की पत पड़े।
छिनाल सो सर्गे चढ़े।
ऊधो शाम (श्याम) तेरी क्या करें बड़ाई
अंधाधुध दरबार है।

५. गोविन्द[1]

इस संत-कवि ने 'गुरुनाथ मछीन्द्र' पर एक आख्यानक काव्य लिखा है। इसकी कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कनीपा धुडते[2] ज्यलधर, कहु लगे न खबर
देखे किले अवर शहर। कहु नजर न आये।
उसे मीला गोरखनाथ। पूछे ज्यलधर की मात।
कहु देखा तुम्ने नाथ। कहो बात सिद्ध की।

..

गोरखनाथ कहे सिद्ध, तुम किसके मुरीद,
कोन ग्यान कोन ध्यान, कौन बीध कौन सीध कहाते?

... ..

मेरा पीर ज्यलधर। धुंडे शहर दर बदर
कहु नजर न आये।

.... . .

गोरखनाथ कहे बात, तेरा पीर हुआ बाज,
गया रंख्या मो माज, स्त्रीराज मो पड़ा।

....

---

१ ये नाथ-पंथी संत प्रतीत होते हैं और निजामशाही में किसी स्थान के रहनेवाले जान पड़ते हैं। भाषा में दक्खिनी हिन्दी की छटा है।

२. ढूँढते।

छोड़ा ग्यान ध्यान जोग. करे रंडया मुं भोग.
नहीं दील मो[1] भी[2] रोग. विषय सुख किया
. ... ..
येक येक की सुन बात, भरे चेहरे पर हात[3]
नीकले गोरखनाथ. मछींदरनाथ धुंडने
वेश्या मग चले गोरख. वो क्या जाने मुरख[4]
स्त्रीया राज तलख[5] उसी मुलक मो गये।
गोरख ज्याहा[6] नाज, हात लिया पखवाज,
तरे तरे[7] के अवाज. मदल बाजे नीकाले।
नाथ बैठा था तख्त, नहाते होकर खुशवक्त
पात्रा लेके उसी वख्त, गोरख सक्तदील[8] गया
पात्रा बिजली का तवोर. नाचे थै थै घनघोर.
पखावज में टकोर. और और बज्यावे।
पात्रा[9] नाचे हल हल, मदल बोले चल चल,
गोरख गावे तलमल, सकल सभा खुश हुई।

अंत की पक्तियाँ हैं—

गोरखनाथ तु सुज्यान, तेर उपर वारूँ ज्यान,
तेरा गावे जो ध्यान, उसे ग्यान बहुत दे।

६. गुलाबदास

बंसी कहाँ है री माई,
जदुपति कौन दिन आई।
जदुपति मीत है मेरा
निसदिन पथ है हेरा
...
बेरण ! सबद सुन तेरा
हिवड़ा फाटे मेरा।
कलीजा छेदिया फेरण !
करवते दिल में फिरण !
करवत दिल को काटे।
वचन सुन छतिया फाटे।
..
बसीधर हिरदे राखे
दास गुलाब यू भाखे।

१. में। २. भी। ३. हाथ। ४. मूर्ख। ५. तक। ६. जहाँ। ७. तरह। ८. कड़े दिल का। ९. वेश्या।

७. त्र्यम्बक

बड़े चोखे पापी और अधर्मी
जिन्ने नाम से तारे हैं अधर्मी
कहे त्र्यम्बक पाप उसका दहो रे।
कहो जानकीनाथ की जय कहो रे।

अजामील चाण्डाल गणीका वी[1] जाती
जीन्ने नाम से तारीले बुद्धघाती।
हरामो ही मारो कहे तुरक तारो
लियो तव ही वैकुंठ दियो नगारो
कहे त्र्यम्बक अजब-क्या कहुं रे।
कहे त्र्यम्बक पाप उसका दहो रे

८. मुरारनाथ

प्याला पीया जी, लाल पाया जी।
निसदिन लागी लगन हमारी,
अवर कछू नहिं ज्यानो।
रामनाम के छूयाये लीनो,
सदगुरु नाथ पछ्यानो।
देखो माया भई दिवानी पाछे पाछे आती।
मेरे गुरु ने किरपा कीनी, जाती पाती खाती।
नहिं नारी नहिं कचन वावा।
नहीं मान सो अग।
सदगुरु के वचन सुन के, तामो दियो संग॥
गई काया गई माया विदेही मो रहते।
तीनो लोक अचंबा हुआ, मुरारनाथ कहते।

९ सैद हुसेन

कमजात बचा इल्म को सीका[2] तो क्या हुआ।
घोड़े चढ़ा हाकिम हुवा तो क्या हुवा?
नामी हुवा तो क्या हुवा?
हिकमत सीखा लुकमानीसा ज्ञाता हुवा तो क्या हुवा?
वेदा जु पढ़ता फर्द है, साहब सखी मुख जर्द है,
गलता नहीं दिलसर्द है, फाजल हुवा तो क्या हुवा?

---

१. भी। २. सीखा।

कातिब हुवा या खुश कलम
इनसान के दया न तन
रहता नहीं साबूत मन
मुंशी हुवा तो क्या हुवा ?
आखिर कु पसतायगा[1] ।
गैबी तमाचे खायगा
रूस्त हुवा तो क्या हुवा ?
बस कर हुसैनी बात कु
मत ले उसे भी सात तु
लानत खुदा उस जात कु
आया मिला तो क्या हुवा ?

---

१०. बालगोपाल

बड़ी खूब जागाह बा सीर[2] भाई ।
मठों की दिवालें गगन मो चढ़ाई ।
तहाँ भीसा[3] सायोज्य ठाले लगाई ।
तहाँ बाल गोपाल ने मौज पाई ।
अदब से अच्छी भात से जाय मिलना
गरूरी गुमानी कभों ही न करना ।

११. माधव दास

माई री प्रकट प्रेम के फद फीरे है ।
दवरत दवरत दवरे देखन देव सकल पाडव के
हाकत हरि घोरे ।
ज्या भुज शख चक्र गद शोभत
आयुध मंडित जोरे
ते कर पानिप नोथा लीनो, अर्जुन के रथ जोरे ।
ज्या मुख निगम निरंतर निकसत,
त्या मुख हो हो हो रे ।
येह विध सारथि होत जगत गुरु,
मानत नहीं हमको रे ।
मैं बलि जाउं कृष्ण कृपानिधि
भक्त बछल तहँ भोरे ।
माधवदास दासन के सुमरे संकट तहा दौरे ।
माई री प्रकट प्रेम के फद फीरे हैं ।

---

१. पछतावगा । २. मस्तक । ३. बहिश्त ।

१२. रामराय

याके मृगछाला वाके मोतन की माला रे
याके सींगनार वाके मुरली अधर रे
याके नील कंठ, वाके पीतपट,
याके जटा जुगट, वाके माथे मुगट
याके सीस गग वाके चरण नित्त
कहत राम राय वाके पग परिये।
याके सीवलोक वाके बैकुठ लोक
हरीहर हरीहर दोऊ नाम ले रे।

१३. विद्यादास

जनम पदारथ बाद ज्यात रे
माता पिता सुत काम न आवे
ज्यों तरवर के झरत पात रे।
काल कराल रहे सर साधे
आय अच्यानक करत घात रे।
तब कैसे हरिनाम निकस है—
(यहाँ से पोथी का भाग खंडित हो गया है।)

१४. लतीफ

रामनाम नौवत बज्याई,
पहली नौबत नारद तुंबर
दुसरी नामा कबीर सुनाई,
तिसरी नौबत सुदामा को
पहलाद की जिन्ने राखी बड़ाई,
चौथी नौबत जन जसवत
धना जाट औ मीरावाई
कहे लतीफ सुन औ साधु,
उनके ये कछु तनक बज्याई।

१५. हावाजी (१)

मन मरे तो मारिये।
साधुसंगत पड़े तो पाड़िये
कामिनि कलक टरे, तो टारिये।
माला लीनी हात करतनी काख मों।
आग बुझी मत जान दबी है राख मो।

क्या हुवा दो बात बनी है पीर की
आयाची उमर की बात न चलेगी जोर की ।

१६. माघव राय*

जीवन राम बसे घर मो सब जीवन के समझे शिव सोई
जीव अनेक मैं जीवन येक बिना गुरु देख्य सके नहीं कोई,
साधु सु सेव न प्रेम दया मन जीवन से मति निर्मल धोई ।
श्री गुरुपद के सरनी नर जीवन राय कहीयत सोई ।

१७. लछमन गिर फकीर

देही को देहरा देख ले भाई
आत्माराम कु पूज ले ;भाई
.. ...

प्रेम का फूल चढ़ाव प्यारे
अवघट की तालियों लग गई
अनुहत घटा बजाव प्यारे
कहे लछमन गिर फकीर—
जीव जीव सु जोत मिलाव प्यारे

१८. शाहुसेन फकीर

कोई भिच्छा फकीरी लावणा ।
हाजर होकर भेजणा ।
तेरे कारण जोगण होऊँगी—
घर घर अलख जगावणा,
शाहुसेन फकीरी आल्हडा
आखर जंगल वसावणा ॥

१९. बुरहरूशा

दुनिया त्यज कर खाक लगा के ज्या बैठा वन मो ।
खेचरि मुद्रा भद्रा सुन के ध्यान धरत है मन मो ।
सोही कच्चा रे सोही कच्चा रे नहीं गुरू का बच्चा ।
कुडलिनी कुं खूब चढ़ावे ब्रह्म रंध्र मो जावे ।
चलता है पानी के ऊपर बोले सो बी होवे ।

---

* इनके संबंध में यह ज्ञात हुआ है कि ये 'चंद्रिका परिणय गमव.' संस्कृत नाटक के कर्त्ता और तेलंगी ब्राह्मण हैं ।

शास्त्रों मो तो कछु नहिं रहिया पूरा हगन कमाया ।
मारग वेद विधी का पाया तन कु लकड़ा किया ।
गुपत होके प्रकट ज्यावे गोकुल मथुरा कासी ।
सिधजन होके प्राण निकाले सप्तलोक का वासी ।

(पाडुलिपि मे आगे की पक्तियाँ खंडित हैं और अस्पष्ट है । इस पद की प्रारम्भिक पक्तियाँ ज्ञानेश्वर, शिवदिन केसरी आदि संतों के पदों मे भी मिलती हैं । इनका वास्तविक रचयिता कौन है, यह कहना कठिन है ।)

संतों की देन

मराठी संतों की हिन्दी-वाणियों का अध्ययन करने के उपरान्त उनकी देन के सबंध में निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—

उत्तर भारत के ज्ञानाश्रयी हिन्दी-सन्तों ने जिस निर्गुण-धारा से देश के जन-मन को आप्लावित किया, उसका स्रोत वास्तव में मराठी संत नामदेव के हिन्दी-पदों मे है । यद्यपि नामदेव के पूर्व उत्तराखण्ड और दक्षिणापथ में सिद्धों और नाथों ने निर्गुण मत का प्रचार कर दिया था तो भी उसमे हृदय को मुग्ध करनेवाला रागरस नहीं था । वह शुष्क ज्ञान मात्र था । नामदेव, जो पहले विठोवा की मूर्त्ति के उपासक (भक्त) थे, ज्ञानेश्वर और उनकी बहन मुक्ताबाई की प्रेरणा से नाथपंथी विसोवा खेचर के शिष्य हो 'निर्गुनिया' बन गये; परन्तु उनके हृदय पर अंकित विट्ठल की प्रतिमा ज्ञान से आच्छादित नहीं हो पाई । उनमें इतना ही परिवर्त्तन हुआ कि जो विठ्ठल पहले केवल चंद्रभागा नदी-स्थित पंढरपुर के मंदिर में उन्हें दिखाई देता था, वह अब 'ईभै ऊभै' (यहाँ-वहाँ) सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा और उन्हें अनुभव हो गया कि 'विठ्ठल विनु संसारु नहीं' ।

उनकी इस ज्ञान-समन्वित राग-भावना को निर्गुण भक्ति कह सकते हैं जिसका उन्होंने हिन्दी-पदों द्वारा उत्तर भारत में सचार कर अपने परवर्त्ती निर्गुणी सन्तों का मार्ग प्रशस्त किया । आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों मे 'कबीर मे जो सूफियों का भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों का साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल है', वह सब नामदेव में विद्यमान है । जिस वारकरी-सम्प्रदाय के नामदेव प्रमुख संत माने जाते है, उसमें ज्ञान और भक्ति का समन्वय है । भक्ति और केवलाद्वैत में विरोध नहीं है । इसे मराठी सन्तों ने अपनी वाणियों से सिद्ध कर दिया है । उनके वारकरी, रामदासी, दत्त आदि मत सिद्धान्त से अद्वैतवादी होते हुए भी आचार में भक्ति को मान्यता देते हैं । मराठी सन्त निर्गुण-सगुण, अद्वैत-द्वैत से परे हैं । यही कारण है कि मराठी वाङ्मय के इतिहासों में हिन्दी-साहित्य के इतिहासों के समान निर्गुणवादी को संत और सगुणवादी को भक्त कहकर उनमे विभेदक रेखा नहीं खींची गई । उनमें ब्रह्म सत्य के सभी पथों के साधकों को संत कहा गया है ।

निर्गुण-भक्त मराठी सन्तों ने 'नद के नदन कंस निकदन' कृष्ण का लीलागान भी किया है, पर उसमे 'यमुना तीरे वानीर निकुंजे' गोपीजन के साथ मधुयामिनी में उनकी

रास-क्रीड़ा का मादक कल्लोल नहीं है। राधा को परकीया मानने के कारण उन्होंने उसे महत्त्व न देकर रुक्मिणी को गौरवान्वित किया है और इस प्रकार समाज के मर्यादा-धर्म की रक्षा की है। फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर में होनेवाले संत दयालनाथ और देवनाथ आदि सन्तों के पदों में राधा और कृष्ण के लीलावर्णनों में हिन्दी के कृष्णकाव्य-परम्परा की झलक आ ही गई है।

मुसलमान-कालीन कतिपय संतों ने सूफियों के समान अपने आराध्य को 'माशूक' से सम्बोधित कर प्रेमाभिलाष व्यक्त किया है। उनपर सूफियों का प्रभाव स्पष्ट है। मुसलमान शासन-काल सूफी फकीरों का दक्षिण में प्रवेश हो गया था और वे प्रतिष्ठान के क्षेत्र में अपने मत का प्रचार प्रेम-गाथा-काव्य-कृतियों के माध्यम से कर रहे थे। हैदराबाद फारसी-लिपि में उनके कई हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य उपलब्ध हुए हैं।

मराठी संतों की भाषा

जहाँ उत्तर-भारत मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों मे 'विक्रम संवत् १९०० (सन् १८४३ ई०) तक परम्परागत साहित्य की भाषा व्रजभाषा रही है और खड़ीबोली वैसे ही एक कोने में पड़ी रही' ''साहित्य या काव्य मे उसका व्यवहार नहीं हुआ,' वहाँ महाराष्ट्र मे संतों ने खड़ी बोली को प्रधानता दी। ईसा की तेरहवीं शताब्दी मे यादव-कालीन संतों से लेकर आलोच्यकाल तक के संतों ने खड़ी बोली को अपनाया है। इसका कारण यह है कि उनकी वृत्ति लोकाभिमुख थी और खड़ी बोली लोकसामान्य भाषा के रूप मे प्रचलित हो रही थी। यह सत्य है कि उनकी खड़ी बोली विशुद्ध नहीं है, संतों की मिली-जुली बोली है, जिसमें व्रज, मराठी, गुजराती आदि प्रादेशिक भाषाओं का पुट भी मिलता है। जब सोलहवीं शताब्दी से व्रजभाषा का काव्य व्यापक रूप मे प्रचलित हुआ तब महाराष्ट्र के संतों ने खड़ी बोली के साथ व्रजभाषा में भी अपने पद रचे।

महाराष्ट्र में हिन्दी के दो रूप विकसित हुए, एक वह जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का थोड़ा-बहुत मिश्रण और स्थानीय भाषाओं की छाया दिखाई देती है। इस रूप को दक्खिनी हिन्दवी अथवा उर्दू अथवा रेखता कहा गया है और दूसरा वह जिसमें खड़ी बोली, व्रजभाषा आदि के मिश्रण के साथ मराठी का पुट परिलक्षित हुआ। इसे 'मराठी हिन्दी' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस ग्रंथ मे तुकाराम की 'अस्सल गाथा' की भाषा के रूप को 'मराठी हिन्दी' का उदाहरण समझा जा सकता है। इस भाषा मे वर्णों के विशिष्ट उच्चारण तथा आगम, लोप आदि पाये जाते हैं। बिगडे रूप में ही क्यों न हो, पर खड़ी बोली को उत्तर-भारत के कवियों से पूर्व ही पद्य-भाषा मे व्यवहृत करने का श्रेय मराठी-संतों को है। हिन्दी को उनकी यह एक महत्त्वपूर्ण देन है।

पद-प्रकार

हिन्दी में जब काव्य-रचना की कोई विशिष्ट परम्परा स्थापित नहीं हो पाई थी तब महानुभावीय संतों ने विशेषकर दामोदर पंडित ने और उनके पश्चात् वारकरी संत नामदेव ने

राग-रागनियों में पद-रचना कर हिन्दी में गीत-शैली को प्रारम्भ किया। मराठी संतों के पदों में छन्दों का निर्वाह भली-भाँति नहीं हो पाया। फिर भी उन्होंने अपने भजन 'ध्रुपद' मे लिखे हैं।

नामदेव के पुत्र गोंदा महाराज ने खड़ी बोली में कथा-गुम्फन का प्रयास कर हिन्दी मे कथा अथवा चरित्र-काव्य की दिशा निर्दिष्ट की। रामदासकालीन सतों ने भी खड़ीबोली में पौराणिक आख्यान-काव्य लिखने का प्रयत्न किया है। रुक्मिणी-स्वयवर और गोपी-चंद आख्यान कई संतों के प्राप्त हुए हैं। कहीं-कहीं पोथियों मे गोरख-मछन्दर-आख्यान भी मिलता है।

एकनाथ, और तुकाराम ने भारुड़, गारुड़ आदि के अन्तर्गत सामाजिक तथा धार्मिक व्यंग्य-रूपकों की चुटीली रचनाएँ की हैं। इस प्रकार जब उत्तर मे खड़ीबोली साहित्य में समादृत भी नहीं हो पाई थी, दक्षिण मे मराठी सत उसे प्रयुक्त कर क्रमशः माँज रहे थे और उससे विविध पद्यप्रकारों और साहित्य-विधाओं को सज्जित कर रहे थे।

एकनाथ के व्यंग्य-रूपक जो 'स्वोक्ति रूपक'-से प्रतीत होते हैं, ईसा की सोलहवीं शताब्दी में खड़ी बोली गद्य का भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। एक व्यंग्य-रूपक नीचे दिया जाता है—

"सुनो संत सज्जन भाई। हम तो निराकार के गारुड़ी आया है।
हमारे ऊपर संत की नवाई। हम कलयुग में पैदा हुवे।
ये देखो खेल खेलते रस्ते में। सब आलम दुनिया देखत है।
अब चल ऊहाँ हाड़ीबाग। जरा प्रेम का ढोल बजाव।
लग लग लग। पहले तो छे साँप निकालु मैदान मे।
बडे बडे अजगर, उनके नाम बताऊँ? काम, क्रोध, मद, मत्सर दभ अहकार।
अब चल चल रे साँप ने बडे बड़े कु डंक मारा
भस्मासुर तो भसम कर दिया। पराशर तो ढीवरन
के पीछे लगा। इद्र की तो भगाकित
हो गई काया। महादेव तो भिल्लिन के पीछे लगा।
विष्णु तो वृन्दा देख घबराया। ब्रह्मदेव तो सरस्वती पर
ख्याल किया। ऐसे साँप कठिन है। अ ब ब ब ब।
अज्ञान के पेटी में भरे हैं। निकालू? सँवाल वे, डक मारेगा।
ये हात डाला। डक मारा वे मारा। हाय, हाय बड़ी वेदना होती है।
आबी (अभी) जान जाती है। तुज कु क्या बताऊँ?
आबी उतारनेवाला कोण बुलाउ? सुनो मेरे पास सद्गुरु का मोहरा है।'

नाटकीय छटा को प्रदर्शित करनेवाले खड़ीबोली के इस गद्य-रूप का भी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

मराठी संतों की हिन्दी-वाणियों के अध्ययन की ये ही मुख्य उपलब्धियाँ हैं, जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्थान पाने योग्य हैं।

अन्त में लेखक डा० तुलपुले, डा० कोलते, डा० हीरालाल जैन, डा० देशमुख, डा० वा. ना. पंडित डा० रामनिरंजन पाण्डेय, प्रा० माणिक बेतुले, प्रा० गोपाल गुप्त, प्रा० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, श्री विनयकिरण जैन, प्रा० सुदर्शन सिंह मजीठिया, श्री अय्यर, 'परिज्ञान' श्रीसमर्थ वाग्देवता मंदिर, धूलिया तथा मराठवाड़ा साहित्य-परिषद् के हस्तलिखित ग्रंथागार एवं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का आभार मानता है, जिन्होंने इस ग्रंथ को प्रस्तुत करने में विभिन्न रूपों में उसे सहायता प्रदान की है।

जबलपुर (मध्यप्रदेश)
श्रीरामनवमी ; शकाब्द १८७९   —विनयमोहन शर्मा
विक्रमाब्द २०१४ ; खीष्टाब्द १९५७

हिन्दी को मराठी संतों की देन

मराठी भाषी क्षेत्र
बम्बई राज्य के अंतर्गत
प्राचीन मध्य प्रदेश, परन्तु अब बम्बई राज्य के अंतर्गत
पुराने हैदराबाद राज्य के अंतर्गत
निमाड
बड़वानी
खंडवा
छिंदवाड़ा
सिवनी
बालाघाट
पश्चिम खानदेश
जलगाँव
भुसावल
धुले
पूर्व खानदेश
भंडारा
नागपुर
अमरावती
वर्धा
बुलढाना
अकोला
यवतमाल
चाँदा
दमण
नाशिक
औरंगाबाद
परभणी
आदिलाबाद
ठाणा
अहमदनगर
बम्बई
नांदेड़
बीर
पुणे
जजीरा
उस्मानाबाद
बेदर
सोलापुर
सातारा
रत्नागिरी
जत
देवगढ़
कोल्हापुर
बेलगाँव
बेंगुल
पंजीम
किशोर

पहला अध्याय

हिन्दी और मराठी का संबंध

समस्त भारतवर्ष मे महाराष्ट्र ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ अनेक संतों की मराठी के साथ-साथ हिन्दी-रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। उत्तर के मुसलमानों के दक्षिणापथ-प्रवेश के पूर्व से ही, वहाँ के सत जब हाथ में करताल लेकर कीर्तन-भजन करने लगते, तब बीच-बीच में, एक-दो पद हिन्दी के गा कर श्रोताओं मे अभिनव हिलोर पैदा कर देते थे। मराठी-भाषी कंठ से हिन्दी का स्वर क्यों सहज भाव से मुखरित हो उठता है, इसे समझने के लिए हमें भाषा-विज्ञान का आश्रय लेना होगा।

हिन्दी और मराठी दोनों आर्य-परिवार की भाषाएँ हैं। भारतवर्ष में इस परिवार की भाषा का प्रारम्भ ई० स० १५०० पूर्व से माना गया है और उसे प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाकाल के नाम से अभिहित किया है। यह काल ईसा सन् से लगभग ५०० वर्ष पूर्व तक चलता रहा, जहाँ से मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाकाल का उदय होता है। जो लगभग एक हजार ईसवी तक जारी रहता है। (अपभ्रश काल लगभग ईसा सन् ५०० से १००० तक अनुमाना जाता है।) इसके पश्चात् से अर्थात् लगभग १००० ई० से हिन्दी, मराठी, बँगला, गुजराती आदि के रूप में आधुनिक आर्य-भाषाकाल के दर्शन होते हैं।

आर्यों ने उत्तर-पश्चिम से लेकर भारत के पश्चिम, पूर्व-दक्षिण-भाग तक क्रमशः अपना विस्तार किया तथा अपने राज्य स्थापित किये। इनके साथ जानेवाली आर्य-भाषा स्वभावतः स्थानिक भाषा और बोलियों से प्रभावित होती गई। इस प्रकार मध्यकाल मे ही आर्य-भाषा के कई प्रादेशिक भेद हो गये। शूरसेन मे बोलीजानेवाली प्राकृत शौरसेनी, शूरसेन और मगध देशों के मध्य बोली जानेवाली प्राकृत अर्ध मागधी अथवा कोसली, मगध में बोली जानेवाली प्राकृत मागधी तथा महाराष्ट्र में बोली जानेवाली प्राकृत महाराष्ट्री कहलाईं। इनके अतिरिक्त, पैशाची, आवन्त्य आदि प्राकृत भाषाएँ अपभ्रंश मे रूपान्तरित हो गई। 'प्राकृत चन्द्रिका' में अपभ्रंशों के सत्ताईस उपभेद दिये गये हैं।[1] परन्तु उनमें शौरसेनी, अर्ध मागधी, मागधी और महाराष्ट्री की ही प्रमुखता है।

---

१. (१) व्राचड, (२) लाट, (३) वैदर्भ, (४) उपनागर, (५) नागर, (६) ?, (७) बर्बर (८) आवन्त्य, (९) पांचाल, (१०) टक्क, (११) मालव (१२) कैकय, (१३) गौड़, (१४) औढ्र, (१५) पाश्चात्य, (१६) पांड्य (१७) कौंतल, (१८) सैंहल, (१९) कालिंग, (२०) प्राच्य, (२१) कार्णाट, (२२) कांच्य, (२३) द्राविड़, (२४) गौर्जर, (२५) आभीर, (२६) मध्यदेशीय, (२७) वैताल।

मराठी का जन्म

मराठी का जन्म किस प्राचीन आर्य-भाषा से हुआ है ? क्या वह आर्येतर भाषा है जो अपने ही क्षेत्र में अंकुरित होकर बाद में आर्य-भाषाओं से प्रभावित हो विकसित हुई है ? आदि प्रश्न मराठी भाषा और साहित्य के इतिहासकार उठाया करते हैं।

जैन अपभ्रंश-ग्रंथों का शोध होने के पूर्व तक मराठी का जन्म सीधे महाराष्ट्री प्राकृत से माना जाता रहा है और महाराष्ट्री को स्वतंत्र प्राकृत मानकर भी उसे शौरसेनी प्राकृत का ही उत्तर-रूप समझने की आज भी परिपाटी है[1]। ग्रियर्सन महाराष्ट्री को शौरसेनी से पृथक् मानते हैं। वे लिखते हैं कि शौरसेनी और महाराष्ट्री कतिपय, क्रियारूप, शब्दकोष तथा अन्य सामान्य बातों में परस्पर एक दूसरे से भिन्न हैं[2]। हरिनारायण आपटे भी ग्रियर्सन का समर्थन करते हैं। वे लिखते हैं—

"वास्तव में यह विश्वास करने के कारण हैं कि महाराष्ट्र[3] शौरसेनी मागधी, अर्ध मागधी और द्राविड़ बोलियों की सीमाओं से घिरा हुआ देश था। इन सभी भाषाओं का महाराष्ट्री के निर्माण में योगदान रहा है। महाराष्ट्री की भी अपनी विशेषताएँ रही हैं। महाराष्ट्री और शौरसेनी में बहुत महत्त्व के साम्य और वैषम्य हैं। इसी प्रकार महाराष्ट्री और मागधी तथा अर्धमागधी में भी साम्य तथा वैषम्य है। अतएव वह एक विशिष्ट स्वतंत्र भाषा है[4]।" परन्तु डा० मनमोहन घोष ने अपने एक लेख में प्रतिपादित किया है कि महाराष्ट्री शौरसेनी का ही पश्च रूप है[5]। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी डा० मनमोहन घोष के निष्कर्ष का समर्थन किया है—"डा० घोष के मतानुसार महाराष्ट्री अपनी आद्यावस्था में शौरसेनी का ही एक पश्च रूप थी, जो दक्षिण में ले जाई गई और वहाँ उसमें स्थानीय प्राकृत के शब्द तथा रूप आ जाने पर उसका वहाँ के साहित्य में उपयोग किया गया। महाराष्ट्र से इस भाषा को काव्य के एक श्रेष्ठ माध्यम के रूप में, उत्तरी भारत में, पुनः लाया गया। उत्तरदेशियों ने प्राचीन शौरसेनी का ही व्यवहार चालू रखा था जब कि उसका यह नव्य रूप दक्षिण में प्राचीन साहित्य-परम्परा के व्याघातों से बद्ध न रहने के कारण स्वभावतः विकसित होकर साहित्य के लिए व्यवहृत होने लगा। इस प्रकार इस प्रादेशिक बोली को

---

१. देखिए डा० सुनीतिकुमार चटर्जी की भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी (पृष्ठ ६२।)

२. देखिए 'लिंग्विस्टिक सर्वे' भाग ७…।

३. महाराष्ट्र का कोई 'महार' जाति का राष्ट्र और कोई 'रट्ट' जाति का राष्ट्र कह कर उसकी उत्पत्ति सिद्ध करते हैं। सातवीं शताब्दी में यात्री ह्वुएनसांग ने उसका एक हजार मील का क्षेत्र बताया था और सीमा के संबंध में कहा था कि उसके उत्तर में मालवा, पूर्व में कोसल और आंध्र, दक्षिण में कोंकण और पश्चिम में समुद्र है। महाभारत में मल्लराष्ट्र का उल्लेख है। हरिनारायण आपटे उसीको महाराष्ट्र कहते हैं।

४. विल्सन—फिलालाजिकल लेक्चर्स ऑन फिलालाजी—मराठी पृ० ४४-४६।

५. इंट्रोडक्सन टू कर्पूरमंजरी, युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, १९४८ संस्करण, पृष्ठ ७६।

अपने गुणों की अभिव्यक्ति का अवसर मिला जिसको सबने स्वीकार किया और कालान्तर में वह साहित्यिक प्राकृतों के समूह में गण्यमान्य स्थान पर प्रतिष्ठित हो गई। उपर्युक्त दृष्टि से महाराष्ट्री प्राकृत एक प्रकार से शौरसेनी प्राकृत तथा शौरसेनी अपभ्रंश के बीच की एक अवस्था का ही नाम है[१]।"

महाराष्ट्री अपभ्रंश अथवा जैन-अपभ्रश मे, लिखित जैन-ग्रंथों के प्रकाश मे आ जाने के पश्चात्, मराठी की उत्पत्ति सीधे महाराष्ट्री प्राकृत से मानने की चर्चा समाप्तप्राय हो गई है। डा० तुलपुले 'यादवकालीन मराठी' में लिखते हैं—"उच्चारण-प्रक्रिया, प्रत्यय-प्रक्रिया और शब्द-सिद्धि भाषा के इन तीन प्राणभूत अंगों को मराठी ने साक्षात् अपभ्रंश से ग्रहण किया और उनके साथ कुछ नवीन प्रकार रूढ करके भाषा की विकास-क्रिया अग्रसर की[२]।" वे महाराष्ट्री का अन्य प्रदेशों के समान महाराष्ट्र में अपभ्रश काल लगभग ५०० ई० सन् मानते हैं और अपभ्रश से मराठी का उत्पत्ति-काल आठवीं शताब्दी निश्चित करते है। मराठी के प्रथम चिह्न मैसूर के श्रवणबेल गोला के शके २०५ के शिलालेख मे मिलते हैं। वहाँ गोमटेश्वर की प्रस्तर-मूर्ति के चरणों पर उत्कीर्ण दो पक्तियाँ हैं—

"श्री चावुण्डराजे करवियले
श्री गगराजे सुत्ताले करिवियले।"

तथा मराठी का आदिग्रंथ मुकुंदराज का 'विवेकसिंधु' माना जाता है, जिसकी रचना शके १११० में हुई है। देवगिरि के यादव राजाओं के काल में बारहवीं शताब्दी में मराठी में साहित्य-स्रोतस्विनी प्रवाहित होने लगी थी। उस समय मराठी के सबध में महानुभावी कवि संतोषमुनि कहते हैं—

"तैशी छप्पन भाषाचिया मुकुटी
शोभे सहावी सुन्दर मराठी।"

मराठी में परुषता क्यों है ?

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि 'सुन्दर मराठी' के वर्तमान रूप मे मार्दव क्यों नही है ? क्योंकि मराठी जिस महाराष्ट्री प्राकृत-परम्परा को लेकर उत्पन्न हुई है, उसके श्रेष्ठत्व और मार्दव की भी ख्याति है। दंडी का कथन है[३] —

"महाराष्ट्राश्रया भाषा प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नाना सेतुबन्धादिमन्मयम्॥"

(महाराष्ट्र में आश्रित भाषा को प्राकृतों मे श्रेष्ठ मानते हैं। उसमे सेतुबन्ध आदि काव्य हैं जो सूक्ति-रत्नों के सागर हैं।)

---

१ भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृष्ठ ६३।
२. यादवकालीन मराठी भाषा (पृष्ठ १८-१६)।
३. काव्यादर्श (पूना-संस्करण १६२४)।

संस्कृत नाटकों में भी गीत गाते समय उच्च और मध्यवर्गीय महिलाओं को महाराष्ट्री में गाने का निर्देश था।[१] पर आज स्थिति बदल गई है। आज महाराष्ट्र प्रान्त मे भी मधुर सगीत के लिए शौरसेनी की उत्तराधिकारिणी ब्रजभाषा से बोल उधार लिये जाते है और जब सगीत का मराठीकरण किया जाता है तब संगीतज्ञ उसका विरोध करते है। विष्णुनारायण भातखडे अपनी 'हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमाला सहावें पुस्तक' मे लिखते हैं—"हिन्दुस्तानी संगीत और मराठी भाषा, इन दोनों की भिन्न-भिन्न प्रकृति हैं, उस सगीत के स्वभाव मे एक प्रकार का धीमापन, दरबारी ऐंठ, वेफिक्री, लचीलापन और मस्ती है। यही गुण हिन्दुस्तानी भाषा मे भी है। मराठी की गंभीरता, शिस्त और आलोचक वृत्ति आदि गुण हिन्दुस्तानी संगीत के विरुद्ध पड़ते हैं। हिन्दुस्तानी में चन्द्र को चन्दा, संध्या को साँझ, निष्ठुर को निठुर आदि सहज ही बनाकर भाषा में कोमलता लाई जा सकती है; पर मराठी में संभव नहीं है।"[२]

यहाँ एक बात और विचारणीय है कि साहित्यदर्पणकार ने शौरसेनी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं और बोलियों का भी निर्देश किया है। वे हैं—महाराष्ट्री, मागधी, अर्ध मागधी, प्राच्या, अवन्तिजा, दाक्षिणात्या, शावरी, वाह्लीक, आभीरी, चाण्डाली और पैशाची। दाक्षिणात्या को ही वैदर्भी कहा गया है। क्या यह अन्य प्राकृतों से अधिक परुष रही है जो साहित्यदर्पण मे सैनिक नटों को इसमे बोलने का निर्देश है?[३]

मराठी मे परुषता वढने का कारण संभवतः उसका ट वर्ग प्रधान द्राविड़ भाषाओं का संसर्ग जान पड़ता है। इनके अतिरिक्त यह भी अनुमान है कि जब मराठी वैदिक धर्ममत को रूपान्तरित करने का साधन बनी, तब उसमें पडितों के कारण संस्कृत की बहुलता

---

१. पुरुषाणामनीचानां संस्कृतं स्यात्कृतात्मनाम्
शौरसेनी प्रयोक्तव्या तादृशानां च योषिताम्।
आसामेव तु गाथासु महाराष्ट्रीं प्रयोजयेत्॥

(उत्तम और मध्यम श्रेणी के पुरुषों की भाषा संस्कृत होनी चाहिए और इसी श्रेणी की स्त्रियों की भाषा शौरसेनी होनी चाहिए; किन्तु गाथा में महाराष्ट्री का प्रयोग किया जाना चाहिए।)—साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद (शालिग्राम शास्त्री-द्वितीयसंस्करण) पृष्ठ १५८-१५९।

२. हिन्दुस्थानी संगीत व मराठी भाषा हीं दोन अगदी वेगवेगळया प्रकृतीचीं आहेत। त्या संगीताच्या स्वाभावांत एक प्रकारचा धीमेपणा, दरबारी ऐट, बेफिकरी, लवचीकपणा, षोखीनपणा आहे। हेच गुण त्या हिन्दुस्तानी भाषेतहि आहेत। मराठीच्या गांभीर्याला, सडेतोडपणाला, शिस्तीला व चिकित्सकत्वाला हे गुण अगदी विरुद्ध पडतात। (पृष्ठ १४)

३. योधनागरिकादीनां दाक्षिणात्या हि दिव्यताम्। (साहित्य-दर्पण; षष्ठः परिच्छेद—१६१)

आजाने से भी उसका महाराष्ट्री प्राकृत और अपभ्रंश से प्राप्त मार्दव क्षीण हो गया। हिन्दी मे संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग नवीं-दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो जाता है और चौदहवी शताब्दी से तो निश्चित रूप से वे अधिक मात्रा में व्यवहृत होने लगे।[1] इसका कारण शाक्तमत की दृढ़ प्रतिष्ठा कहा जाता है।

मराठी भाषा मे द्राविड भाषाओं के प्रभाव को देखकर महाराष्ट्र मे एक मत यह भी चल पड़ा था कि मराठी का बीज महाराष्ट्र मे ही है। वह सस्कृतोद्भूत नहीं है। उसमे आईबाप, दोरीदोरा, फुक्का, अक्का, थेंब, गवत, बार, हाड, पोट, डोके आदि शब्द ऐसे हैं जिनका सबध संस्कृत से जोड़ना कठिन है। परन्तु भाषा का मूल केवल उसकी शब्दनिधि से ही निर्धारित नहीं होता। ध्वनिप्रणाली, वाक्यरचना आदि पर भी अवलबित रहता है। मराठी को आर्येतर भाषा मानने के सबध मे एक तर्क यह भी दिया गया कि उसमे दिन्डी, ओवी जैसे सर्वथा देशी (स्थानीय) छन्द पाये जाते हैं। पर यह कारण भी लचर है। क्या आज हिन्दी और मराठी मे अग्रेजी के सॉनेट, मुक्त छन्द (Blank Verse) आदि पाये जाने से हम उनका मूल आर्येतर भाषा मान सकते हैं? आज भी लोकगीतों के छन्दों मे कविता लिखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। मराठी में दिन्डी तथा ओवी छन्द प्राचीन लोकगीतों की ही देन है। स्पष्टतः मराठी भाषा की प्रकृति आर्यभाषोन्मुख है और वह हिन्दी के समान ही उसी परिवार की है।

बीम्स ने मराठी की शब्द-निधि को हिन्दी से अधिक संस्कृत तत्सम-बहुल कहा है। पर स्थिति ऐसी नहीं है। वर्तमान हिन्दी (खड़ी बोली) की प्रवृत्ति तत्समता की ओर मराठी से अधिक लक्षित होती है। उसमें सस्कृत के अतिरिक्त अरबी-फारसी के विदेशी शब्दों को भी तत्सम रूप मे लिखने का अधिक चलन है। एक जमाना था जब उनको तद्भव रूप मे लिखनेवाले गॉवदी (गॅवार) समझे जाते थे। मराठी मे स्थिति दूसरी है। उसमे सस्कृत और अन्य भाषाओं के शब्द तो है, पर उनके अधिकाश का मराठीकरण कर दिया गया है। मराठी की विशेषता यह है कि वह उधार लिये हुए शब्दों को तत्सम रूप मे न रखकर अपने ही रंग में रॅग लेती है। उदाहरणार्थ कुछ विदेशी शब्दों की मराठी-कपालक्रिया देखिए—

मजमून	(अरबी)	मजकूर (मराठी)
गजब	(अरबी)	गजहब (,,)
मजहब	(अरबी)	महजब (,,)
मशहूर	(अरबी)	महशूर (,,)
तैयारी	(अरबी)	तयारी (,,)
बराबर	(फारसी)	बरोबर (,,)
सिवा	(अरबी)	शिवाय (,,)
फिक्र	(अरबी)	फिकीर (,,)
स्टेशन	(अंग्रेजी) ...	ठेमन (,,)

---

१. देखिए 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' (पृष्ठ १७-१८)।

मराठी की बोलियाँ

ग्रियर्सन ने मराठी की पन्द्रह बोलियों का उल्लेख किया है। वे हैं—

(१) पूनाई मराठी, (२) बीजापुरी मराठी, (३) धारवाड़ी, (४) कोली, (५) कुणवी (बम्बई), (६) कुणवी (थाना), (७) कुणवी (पुर्णे जिला), (८) परभी (थाना), (९) धनगरी (थाना जिला), (१०) सावन्तवाड़ी (कोंकणी), (११) कुडाली (कोंकणी), (१२) चितपावनी (रत्नागिरि), (१३) वरहाड़ी (वर्णी), (१४) नागपुरी, (१५) कारवारी। परन्तु Comparative Philology of Indo Aryan Languages में श्री जहागीरदार ने केवल चार बोलियों को प्रधानता दी है। वे हैं—

(१) कोंकणी (उत्तर में मालवन से लेकर दक्षिण में कारवार तक)।

(२) कोंकणी (रत्नागिरि से दमन तक)।

(३) देशी (पूना के आसपास)

(४) नागपुरी (मध्य प्रदेश—बरार और निजाम (हैदराबाद) राज्य के कुछ भाग में)

डा० स्टेन कोनो मराठी के बोली-भेदों को नगण्य मानकर उसकी एक ही बोली 'कोंकणी' को महत्व देते हैं।[१]

नागपुरी मराठी की अपेक्षा वरहाड़ी (वैदर्भी) मराठी का विशेष महत्व है। इसका उल्लेख जहागीरदार ने पृथक से नहीं किया। वास्तव मे विदर्भ मराठी भाषा की जन्मभूमि है।[२] इधर कुछ समय से बस्तर कांकेर के भाग मे बोली जानेवाली हलबी को भी मराठी के अन्तर्गत कहा जाने लगा है। पर थोड़ी छानबीन से ऐसा प्रतीत होगा कि वह हिन्दी की भी उपबोली हो सकती है। हिन्दी क्षेत्र की निकटवर्ती मराठी मे हिन्दी और हिन्दी मे मराठी की छाया स्वभावतः आ जाती है और वे दोनों एक-सी जान पड़ती हैं। हिन्दी-मराठी भ्राति के ऐसे उदाहरण हम आगे दे रहे हैं। पर हलबी इसका अच्छा उदाहरण है। अतः हम उस पर तनिक विस्तार से विचार करेंगे।

हलबी या हल्बी को हलबा जाति की बोली कहा जाता है। यह जाति[३] छत्तीसगढ़ के अतिरिक्त चाँदा, विदर्भ और दक्षिण में जयपुरी जमींदारी तक फैली हुई है। यह जाति जहाँ-जहाँ गई, वहाँ-वहाँ की स्थानीय बोलियों का अपनी बोली मे समावेश करती गई। इस

---

१. The dialectic differences within the Marathi area are comparatively small, and there is only one real dialect that is 'Konkani'.

—(महाराष्ट्र परिचय पृष्ठ ३२२)

२. विदर्भ संशोधनाचा इतिहास पृष्ठ ४० ।

३. प्राचीन आर्य उड्र देश में आकर उड्र संज्ञा से परिचित होने लगे। ....कलिंग देशीय आदिम निवासी अनार्यों से तथा दक्षिण द्राविड़ लोगों से मिल जाने से आर्यों की दृष्टि से पतित हो गए। इसीसे मनुसंहिता में उड्र लोगों को पतित क्षत्रिय लिखा है। जब नूतन आर्य कलिंग में आकर बसने लगे तब उन्होंने उड्र जाति को वहाँ से निकाल बाहर किया। तब ये उड्र लोग विसाखापटना की मालभूमि जयपुर, बस्तर तथा अन्यान्य, पहाड़ी

तरह इसके कई रूप हो गये। परन्तु इस बोली को केवल हलवा ही नहीं, बस्तर काकेर में अन्य व्यक्ति भी बोलते हैं। सन् १९५१ की 'सैंसस-रिपोर्ट' (जनगणना-प्रतिवेदन) के अनुसार हलवी बोलनेवालो की सख्या २६२,८६४ है। इसका आशय यह है कि मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या मे इस 'बोली' को १·२४ प्रतिशत व्यक्ति बोलते हैं। गत सन् १९३१ की जनगणना के समय इसका अनुपात ०·९५ और सन् १९२१ की जनगणना के समय ०·९६ प्रतिशत था। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार केवल बस्तर मे २११४ व्यक्ति चाँदा जिले मे १७९० और बैतूल, दुर्ग, भंडारा, वर्धा एवं यवतमाल में ३२४ व्यक्ति इसे बोलते हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार जो व्यक्ति हलवी को अपनी मातृ-भाषा के रूप मे बोलते हैं, वे उसी के साथ हिन्दी, गोंडी और छत्तीसगढी भी (सैंसस-रिपोर्ट-लेखक ने छत्तीसगढ़ी को हिन्दी से पृथक् बतलाने मे भूल की है) बोलते हैं। हलवी बोलनेवालो में ९९·२० प्रतिशत व्यक्ति दुभाषिए (Bilingual) हैं। (देखिए सैंसस ऑफ इण्डिया रिपोर्ट जिल्द ७, पार्ट १ ए पृष्ठ २७४ से २७९) ग्रियर्सन को भारतीय भाषाओं का अध्ययन करते समय हलवी के जो नमूने प्राप्त हुए हैं, वे अधिकतर विदर्भ मे बसनेवाले हलवाओं के हैं, इसलिए उनमे मराठीपन अधिक है। उन्हें छत्तीसगढ़ की काकेर रियासत से जो उदाहरण प्राप्त हुए हैं, उनमे पूर्वी हिन्दीपन की छाप स्पष्ट है। यह देख-कर ग्रियर्सन स्वय असमंजस मे पड़ गये। वे न उसे छत्तीसगढ़ी की उपबोली मानने को तैयार हुए और न मराठी की ही। ग्रियर्सन के यह लिखने के बावजूद हिन्दी की कतिपय भाषाविज्ञान की पुस्तकों मे इस बोली के संबध मे भ्रात कथन मिलते हैं। हाल ही प्रकाशित 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' में डा० उदयनारायण तिवारी लिखते हैं— 'बस्तर की भाषा वस्तुतः हलवी है। डा० ग्रियर्सन के अनुसार यह *मराठी की ही एक उपभाषा है*' (पृष्ठ १६३)। परन्तु ग्रियर्सन ने तो उल्टी ही बात कही है : वे लिखते है, उसे मराठी की सच्ची बोली नहीं कह सकते (It can not be considered as a true Marathi dialect—Linguistic Survey of India Part VII page 336)। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, कि वह उड़िया, छत्तीसगढ़ी मराठी आदि की एक विशिष्ट मिश्रित भाषा है। वे उसे न मराठी की उपभाषा मानते और न छत्तीसगढ़ी (हिन्दी) की ही उपबोली कहते हैं।[1] वे उसे छत्तीसगढ़ी की उपभाषा मानने को इसलिए तैयार नही हैं कि उसमे 'ल' प्रत्यय और संबधवाचक 'च' पाया जाता है जो मराठी की विशेषता है। इस संवध मे निवेदन

स्थानों में निवास करने लगे। ......उड़ लोग पतित होने पर भी क्षत्रिय थे। शुद्ध विद्या सीखना इनकी परम्परा-वृत्ति थी तथा कृषि-कार्य में ये अत्यन्त निपुण थे। ......उड़ लोग शांतिमय समय में पार्वतीय अंचलों में निवास कर कृषि द्वारा भरण-पोषण करते थे। हल द्वारा कृषि करने से इनका परिचय कालक्रम से हलवा (हलवाहक) हुआ होगा।

हलवी भाषा बोध (पृष्ठ ४)

(ग्रियर्सन हल्वाओं को आदिवासी मानते हैं। उनका कहना है कि उन्होंने हिन्दू धर्म और आर्य भाषा को अपना लिया है (Linguistic Survey of India Part VII. page 331)

1. देखिए Linguistic Survey of India Vol. VII. page 335-336।

है कि 'ल' प्रत्यय मराठी की ही विशेषता नहीं है। पूर्वी हिन्दी और बिहारी में भूतकालीन क्रिया रूप में ल पाया जाता है, यथा—मराठी—गेला, पूर्वी हिन्दी—गइल। अब रहा च प्रत्यय। यह मराठी में ही नहीं, पुरानी गुजराती में भी नरसी मेहता के पदों में बहुत प्रयुक्त हुआ है। इसकी उत्पत्ति के विषय में भाषाविदों में मतभेद है। एक मत है कि संस्कृत त्यत्—प्राकृत 'च' से मराठी 'च' बना है।[1] दूसरे मत के अनुसार इसकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई है, ईय—इज्ज—ज्ज—च। हलवी में च प्रत्यय ही षष्ठी का चिह्न नहीं है, उसके लिए 'के' भी लगता है। ग्रियर्सन के उदाहरण को आगे उद्धृत किया गया है। उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी। यहां केवल उसके दो वाक्य दिये जाते हैं। यथा—

(१) बाघ उठलो आउर हुनके (उसका) डावला (पंजा) मुसा पर एकदम पड़ला।

(२) हुनके (उनके) ढोर को कन्तु कन्तु मारते रेलो।

मराठी में सबंधवाचक में 'के' का प्रयोग नहीं होता। यह हिन्दी का प्रत्यय है।

ग्रियर्सन ने यह भी माना है कि उच्चारण-प्रक्रिया, शब्द-भाडार, वचन और सर्वनाम रूपों में हलवी पूर्वी हिन्दी—छत्तीसगढ़ी के समान है। फिर यह बात समझ में नहीं आती कि ल और च के प्रवेश से ही वे उसे हिन्दी की उपबोली मानने से क्यों झिझके और उसे 'विशिष्ट मिश्रबोली' कह कर रह गये। वस्तरी हलवी की कतिपय विशेषताएँ ये हैं—

(१) उसमे केवल दो ही लिंग—पुल्लिग और स्त्रीलिंग होते हैं। यहाँ भी यह मराठी का अनुकरण नहीं करती। मराठी में उपर्युक्त दो लिंगों के अतिरिक्त तीसरा नपुंसक लिग भी होता है।

(२) उसमे बहुवचन का कोई चिह्न नहीं लगता। पद मे 'मन' जोड़ने से बहुवचन बन जाता है। जैसे, एकवचन—बाबा—बहुवचन—बाबामन। बहुवाचक शब्द को जोड़ कर भी बहुवचन बना लिया जाता है। यथा—खुबझन मुसा (बहुत से चूहे)। मराठी मे ऐसा नहीं पाया जाता। उसमें बहुवचन के चिह्न होते हैं। छत्तीसगढ़ी में 'मन' जोड़ने से बहुवचन बन जाता है।

(३) कारक चिह्न—

कर्ता—ने
सम्प्रदान—के, को
अपादान—ले, से
सबध—चो, के
अधिकरण—मे, उपरे और ने[2]

कारक-चिह्नों मे 'चो' को छोड़कर शेष सब हिन्दी के है। 'ले' छत्तीसगढी मे अपादान का चिन्ह है।

---

१. देखिए यादवकालीन मराठी—पृष्ठ १८३।

२. डा० पूरनसिंह ने हल्बीभाषाबोध (An Introduction to the Halbi Language) में अधिकरण की ने और ऊपरे विभक्तियाँ दी है। देखिए—पृष्ठ ४५।

भूतकालीन ल प्रत्यय की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। अब ग्रियर्सन की 'लिंग्वि-स्टिक सर्वे' भाग ७, पृष्ठ ३४८ से कॉंकेरी हलबी का उदाहरण दिया जाता है—

"एकटुन बाघ कोनी बन में पडे सोउ रली। एकदम खुबझन मुसा हुनके पास अपलो बिलले निकरलो। हुनके आरोसे बाघ उठलो, आउर हुनके डावला (पंजा) एकटुन (एक) मुसा पर एकदम पड़ला। (बाघ) रीस मे इलो। बाघ ने हुन मुसा को मारेबर तैयार हो रहिलो। मुसा अर्जी करलो। तुम चो आपनबाट (अपनी ओर) देखो। मोचो बोर (मेरी ओर) देख। मोचो मारले से तुचो का बड़ाई मीलेते। इतनो सुन बाघ ने मुसा को छोडेन थाती। मुसाने अर्जी करलो। वो कहलो, कोनी दिन मे आपलो येचे दाया का बदला दीहो। हुनके सुन बाघ हँसलो आउर बनबाट गैलो। थोडे दिन पाछे हुन बन के पास के रहिलो। बीतामन फादा लगावलो। बाघ को फसावलो। क्योंकि हुन हुन के ढोर को कन्तु कन्तु मारते रेलो (रहा)। बाघ ने फादी से निकलन रहलो। फेर निकल नहीं सकलो। आखिर हुन (वह) दुख के मारे नरिआवलो (चिल्लाया)। हुनी (उस) मुसा मे जिनके बाघ छो डाउन दिले रहलो हुन नरिआलो सुन लो। हुन आपलो उप-कार करिया के बोली जानलो आउर खोजत उथा उपर तो हुता बाघ फसा पड़ला रहलो। हुन आपलो तेज चो दाँता से फाँदा को कतरलो आउर बाघ को छुडावलो।" यह पुराना उदाहरण है।

कॉंकेर और बस्तर की हलबी के वर्तमान रूप का उदाहरण नीचे दिया जाता है—

हिन्दी-अंशः—नागपुर मे अखिल भारतीय प्रजा समाजवादी पार्टी का जो अधिवेशन हुआ, उसकी तुलना यदि समुद्रमथन से करें तो अनुपयुक्त न होगा। पहिले विष ही ऊपर आया और उसके मथनेवाले भयग्रस्त हुए। सदस्यों के साथ दर्शकों को भी दुःख हुआ। परन्तु आचार्य कृपलानी ने हँसते, विनोद करते हुए उसका पान कर लिया। एक बार ही दोनों गुटों के वोट गिने गये। जिसके परिणामस्वरूप कृपलानीजी तथा उनकी कार्यकारिणी मे बहुमत से विश्वास प्रकट हुआ। इससे कृपलानीजी ने कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं उठाया। वे विषपान कर अध्यक्ष-पद से अलग हुए।

हलबी मे रूपान्तरः—"नागपुर ठाने प्रजासमाजवादी पार्टी चो, जोन सभा होली, हुनचो बरोबरी समदमथनो सग करतोने, काई वले अड़बग नी होय। बीख पहिले ऊपर इलो अउर हुनचो मतथो बीता मन डरला। मेबर बीता मन के सगे, दखतो बीता मन के खूबे दुःख लागलो। आचार्य कृपलानी हसुन हसुन, ठठोली करून, हुन गोंठ मनके पीउन दीला दूनो वाट चो वोट, गोटक दोंय गिनला। हुनचो काजे कृपलानी अउर हुनचो कमेटी ने भारी वोट पड्डन, विश्वास दखा पड़ लो। मातर कृपलानी आपलो काई फायदानी उठालो। बीख के पीऊन सभापति पद के छोंडला।"

उपर्युक्त उदाहरण जगदलपुर के वकील श्री रविशंकर वाजपेयी ने हमें प्रेषित किया है। इसके कुछ पद आदि रूपों की विवेचना नीचे की जाती है—

ठाने—संस्कृत→स्थान, प्राकृत→ठान और थान, हिन्दी→ठान।

संयुक्त शब्द के प्रारम्भ में बोलियों में प्रायः स का लोप हो जाता है। प्राकृत में ठान और थान दोनों रूप मिलते हैं। ठान में संस्कृत की सप्तमी का 'ए' लग जाने से ठाने हो गया। सप्तमी का 'ए' रूप पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी और मागधी प्राकृतोद्भूत भाषाओं में मिलता है।

चो—यह षष्ठी-रूप है। इसकी उत्पत्ति विवादास्पद है। इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जाती है

सं०→त्यत्, प्राकृत→च्च, मराठी→च। प्राकृत में भी षष्ठी का चान्त रूप मिलता है।

संस्कृत→अस्माकम्, प्राकृत→अम्हेच्चयं[1]।

कृष्णशास्त्री चिपलूणकर संस्कृत ईय से इसकी उत्पत्ति बतलाते हैं[2]। पर डा० गुणे ईय से च की उत्पत्ति निकालने में कठिनाई अनुभव करते हैं—ईय→इज्ज→ज्ज[3] (?)

पर यह प्रत्यय मराठी में बहुतायत से प्रयुक्त होता है। गुजराती में नरसी मेहता के पदों में भी यह पाया जाता है। "नरसैंयाचा स्वामिणु मुखडु करि करि[4] जसोद..रे।" नरसिंह बाललीला[5]।

जोन—पूर्वी हिन्दी जवन, जोन→जोन।

होली—भूतकालिक ल प्रत्यय, मराठी के अतिरिक्त पूर्वी हिन्दी, विहारी, उड़िया, बँगला और असमिया में भी पाया जाता है। होली में खड़ी बोली हिन्दी धातु 'होना' से भूतकालिक रूप 'हुई' न बनाकर मराठी और पूर्वीय भाषाओं का 'ल' जोड़कर गंगाजमुनी रूप 'होली' बना लिया गया है। शुद्ध मराठी-रूप होता 'झाली'।

हलबी की इसी विभिन्नता को देखकर ही तो ग्रियर्सन इसे उड़िया, छत्तीसगढ़ी (पूर्वी हिन्दी) और मराठी की खिचड़ी (Admixture) कह कर रह गये।

अउर—(संयोजक पद) स्पष्टतः पूर्वी हिन्दी का रूप है।

(अ) हसुन हंसुन (हँस हँसकर)
(ब) करुन (करके)
(स) पढ़ुन (पढ़कर)
} ये अव्ययी भूतकालिक कृदन्त मराठी के हैं।

मराठी में ऊन महाराष्ट्री प्राकृत ऊण से आया है।
इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जाती है[6]

---

१. देखिए—**यादवकालीन मराठी भाषा, पृष्ठ १८३।**
२. देखिए—**मराठी व्याकरणरील निबंध, पृष्ठ ६२।**
३. देखिए—Comparative Philology, पृष्ठ ३०।
४. देखिए—**यादवकालीन मराठी भाषा, पृष्ठ १८४।**
५. देखिए—**वही, पृष्ठ १८४।**
६. देखिए—**वही, पृष्ठ २४१।**

स०→त्वानम्→त्वीनम्, प्रा०→त्ताण, तूण और ऊण, अपभ्रंश→ऊण→एविणु एप्पिणु, मराठी→ऊनि, ऊन, ऊनिया ।

मराठी में उन का उ दीर्घ (ऊ) है ।

कांई—यह राजस्थानी, निमाड़ी, मालवी मे क्या के अर्थ मे व्यवहृत होता है । यहाँ कुछ के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है । मराठी में काही का 'कुछ' अर्थ होता है । सभवतः यह कॉई मराठी काही से 'ह' के लोप और 'का' पर अनुस्वार के आगम से बन गया है ।

नी—यह निमाड़ी और मालवी (पश्चिमी हिन्दी) मे न के अर्थ मे बहुत प्रचलित है । खड़ी बोली नहीं से ह का लोप हो जाने से नी बन जाता है । इसकी उत्पत्ति इस प्रकार भी लगाई जा सकती है—

सस्कृत→नहि, पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी→नाहीं→नाहिं→नही, बुन्देली – नइं, वस्तरी हलवी, निमाड़ी, मालवी→नीं ।

कोष्टी हलबी

छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले के अतिरिक्त नागपुर की कोष्टी जाति मे भी हलबी बोली जाती है । उपर्युक्त हिन्दी-अंश का नागपुरी कोष्टी हलबी मे रूपान्तर दिया जाता है जिसे हलबीभाषी श्री अनिलकुमार ने किया है—

" नागपुर मा प्रजा समाजवादी पार्टी को जो अधिवेशन भयो वोको बरोबरी समुद्र मथन सग करनेमा काही हरकत नहीं होणार । (पहले जहर बरया बरत्या) आयो अन मथन (घुसलन) करनेवाला डरान्या । सभासद बरोबरच देखनेवाला लोकसुद्धा दुखी भया । पर आचार्य कृपलानीन हसता हसता मजाक करता करता, वो जहर पीय लेइस । आखरी दुयही पार्टी का मत भोज्या गया । परिणाम अस्यो भयो की कृपलानी अन उकी कार्यकारिणी मा बहुमत न विश्वास देखाइस । एकऽ पासलऽ कृपलानी जी न आपलो काही फायदा नहीं करीस । वो जहर पीईस अन अध्यक्षपद ल अलग भयो ।"

अब उपर्युक्त हलबी-अंश के कतिपय शब्दों पर टिप्पणी कर भाषा की परीक्षा करने का यत्न किया जाता है—

मां—यह अधिकरण का चिह्न खड़ी बोली के 'मे' अर्थ मे अवधी मे प्रचलित है ।
इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है—
संस्कृत→मध्य, प्राकृत→मज्झहि, पश्चिमी हिंदी→माहि, अवधी→मा, हलबी→मा ।

भयो—भूतकालिक क्रियापद । पश्चिमी हिंदी ब्रजभाषा के कन्नौजी रूप में अत्यधिक प्रयुक्त है । इसकी उत्पत्ति इस प्रकार लगाई गई है—
सस्कृत→भवति, प्राकृत→भविओ, ब्रज→भयो, हलबी→भयो ।

नहीं—खड़ी बोली का रूप है । इसे केलॉग न+आहि का सयुक्त रूप बताते हैं ।[1]

---

१. हिन्दी भाषा का इतिहास (धीरेन्द्र वर्मा) पृष्ठ ३११ ।

वोकी—सबंधवाचक सर्वनाम है। अवधी-रूप→वहिकर, वहिकी, बुन्देली→ओकी-वाकी, हलवी→वोकी।

होणार—यह मराठी का भविष्यकालिक क्रियारूप है।

डरान्या—पश्चिमी हिन्दी (खड़ी बोली) डरना का भूतकालिक एक वचन डरा, ब्रजभाषा 'डरानो' का बहुवचन डराने होता है, इसीसे हलवी में *डरान्या* बन गया।

लेइस—छत्तीसगढ़ी भूतकालिक क्रियारूप है। अवधी लिहिस, छत्तीसगढ़ी लेइस।

बरोबरच—यह 'बराबर' का मराठीकृत रूप है। इसके साथ वाक्य मे 'च' प्रत्यय खड़ी बोली 'ही' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जो दक्खिनी और नागपुरी हिन्दी मे भी प्रचलित है।

अस्यो—खड़ी बोली 'ऐसे' के अर्थ मे प्रयुक्त है। इसका पश्चिमी हिन्दी में 'ऐसो' रूप होता है। यह मराठी 'असा' से अस्यो बना प्रतीत होता है।

ल—यह सम्प्रदान प्रत्यय है जो छत्तीसगढ़ी मे खूब प्रचलित है। इसकी उत्पत्ति प्राकृत 'ले' प्रत्यय से लगायी जा सकती है।

भाषा के व्याकरण-रूप की परीक्षा से निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं—

(१) क्रियापदों के सभी भूतकालिक रूप भयो, आयो, डरान्या, लेइस आदि पूर्वी या पश्चिमी हिन्दी के हैं।

(२) क्रियापद का भविष्यकालिक रूप—होणार—मराठी का है।

(३) बल देने के लिए 'ही' के अर्थ मे 'च' का प्रयोग मराठी का है जिसने नागपुरी और दक्खिनी हिंदी मे प्रवेश पा लिया है।

(४) 'भी' के अर्थ मे सुद्धा का प्रयोग मराठी का है।

(५) सर्वनामरूप अस्यो, उंको और 'वो' प्रयुक्त हुए हैं। अस्यो मे मराठीपन है और उंकी तथा वो क्रमशः खड़ी बोली के 'उनकी' और वह के बोलचाल के उच्चरित रूप है।

(६) विभक्तियाँ प्रायः सभी पश्चिमी हिन्दी की है। अपादान की 'ल' विभक्ति छत्तीसगढ़ी की है।

(७) कोष्टी हलवी के उदाहरण के अंश मे चौहत्तर शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उनमें हरकत शब्द मराठी का है जो आपत्ति के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। शेष सभी शब्द हिन्दी के है अर्थात् संस्कृत के तत्सम या तद्भव हैं। पार्टी जतर और मजाक शब्द यद्यपि विदेशी हैं तो भी वे हिन्दी मे इतने अधिक प्रचलित हो चुके हैं कि उसीके अंग बन गये हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों और टिप्पणियों आदि से यह निष्कर्ष निकलता है कि बस्तरी और नागपुरी कोष्टी हलवी मे हिन्दी और मराठीपन दोनों हैं, परन्तु मराठीपन इतना कम है कि ग्रियर्सन स्पष्ट शब्दों मे इसे मराठी की उपबोली नहीं कह सके। परन्तु बस्तर कांकेर के बाहर (नागपुर को छोड़कर) जो हलवी बोली जाती है, उसमे हिन्दीपन बहुत

कम है। सन् १९५१ की जनगणना-रिपोर्ट के अनुसार बस्तर के बाहर चाँदा जिले के हलवी बोलनेवालों की सख्या अधिक है। चाँदा मे तेलुगु और मराठी भी बोली जाती है। अतएव चाँदा की हलवी पर मराठी का प्रभाव अधिक हो सकता है। बस्तर-कांकेर के क्षेत्र मे उसकी सभावना नहीं दीख पड़ती। वहाँ के हलवी भाषा-भाषी तो मराठी को वैकल्पिक अथवा दूसरी भाषा के रूप मे बोलते भी नहीं है। बस्तर-कांकेर में कभी मराठी भाषा का व्यापक प्रचलन रहा हो, ऐसा उदाहरण भी नहीं मिलता। इसके विपरीत, हिन्दी या हिन्दुस्तानी के व्यापक प्रचार के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते है। सन् १७६६ में बगाल के गवर्नर के निर्देश से टी मोट्टे (T. Motte) ने मध्यप्रदेश के बस्तर-कांकेर होते हुए यात्रा की थी। उसका वर्णन 'अर्ली यूरोपियन ट्रेवलर्स इन नागपुर' मे मुद्रित हुआ है। उसमे वह लिखता है—"अप्रैल ७। आज प्रातःकाल लगभग ८ बजे मुझसे कहा गया कि कांकेर का राजा रामसिंह आ रहा है। अभिवादन के पश्चात् मैंने उससे उत्तरीय सरकार (Northern Sirkar) के मार्गों मे पड़नेवाले भू-भाग के सबध मे प्रश्न किये। राजा ने स्वयं अनेक विविध प्रश्नों के उत्तर दिये। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि राजा हिन्दुस्तानी भाषा बड़ी धारा-प्रवाह-गति से बोल रहा था[१]।" कांकेर और बस्तर हलवी भाषाप्रधान क्षेत्र है। और वहाँ का राजा १८वीं शताब्दी मे हिन्दुस्तानी सहज गति से बोल सकता था। हो सकता है कि वह अपनी मातृभाषा हलवी बोल रहा हो जिसे मोट्टे ने हिन्दुस्तानी समझा हो। हो सकता है, वह हलवी के अतिरिक्त हिन्दुस्तानी भी जानता हो। जो हो, हिन्दुस्तानी उस समय भी अन्तरप्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी। सन् १७९५ मे बगाल-सरकार ने केप्टन ब्लंट को कुछ सिपाहियों के साथ बरार, उड़ीसा और उत्तरी सरकार के बीच मार्ग खोजने के लिए रवाना किया था। वह कोरिया, कांकेर, खैरागढ़ सिरोंचा (चाँदा) होते हुए निजाम राज्य की ओर बढ़ गया था। जब वह चाँदा जिले मे पहुँचा तो मालेवाड़ा के गोंड राजा से उसकी खटपट हो गई। ब्लट के पास मराठों का परवाना था, जिसकी राजा ने ज़रा भी परवाह नहीं की। अतः ब्लट उसे वस्तुस्थिति समझाना चाहता था। वह लिखता है—
"A man called his diwan, who spoke a *little bad Hindi* was the interpreter between us"[२]

(एक आदमी जो उसका दीवान कहलाता था और जो तनिक गलत हिन्दी बोलता था, हमारे बीच दुभाषिए का काम करता था) इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि छत्तीसगढ़ के बस्तर तथा चाँदा के क्षेत्र में हिन्दी दूसरी भाषा के रूप मे प्रचलित रही है। ग्रियर्सन के

---

१ 'I was surprised to find him speak the Hindustany language with great fluency' (Early European travellers in Nagpur Territories—page 132)

२. देखिए, British Relation with the Nagpur State in the 18th Century—पृष्ठ १२६।

पूर्व छत्तीसगढ रियासतों के पॉलिटिकल एजेन्ट ई. ए. ब्रेट, आई. सी. एस. ने 'छत्तीसगढ़ी फ्यूडेटरी स्टेट्स' नामक ग्रथ में बस्तर की भाषाओं के संबंध में लिखा है—

("रियासत में जो प्रमुख भाषाएँ बोली जाती हैं, उनमें हिन्दी, हलबी, तेलुगु और गोंडी की विभिन्न बोलियाँ मुख्य हैं। हलबी छत्तीसगढी हिन्दी का विकृत रूप है और उत्तर भाग के एक लाख से ऊपर व्यक्ति उसे बोलते हैं जहाँ हिन्दी बोलनेवालों की संख्या भी इक्कीस हजार है।" ब्रेट ने ग्रियर्सन के भाषा सर्वे के पूर्व बस्तर-कांकेर की हलबी पर अपने विचार प्रकट किये थे।)

सन् १७६६ में यूरोपियन यात्री मोट्टे और सन् १९०९ में प्रकाशित छत्तीसगढ़ के पोलिटिकल एजेंट ब्रेट के 'छत्तीसगढ़ी फ्यूडेटरी स्टेटस्' ग्रंथ में हलबी को हिन्दी के अन्तर्गत ही माना है। संभव है, उन्होंने लोगों की बोली सुनकर ही अपनी धारणा बनाई हो। पर ग्रियर्सन ने कांकेर की हलबी के लिखित नमूने की छानबीन की और यह निष्कर्ष निकाला कि यह मराठी की उपभाषा तो नहीं है, पर इसे हिन्दी के अन्तर्गत भी नहीं रखा जा सकता क्योंकि इसमें संबंधकारक 'च' और भूतकालिक 'ल' प्रत्यय पाये जाते हैं, जो मराठी भाषा की विशेषता है। हम पहले बतला चुके हैं कि भूतकालिक 'ल' प्रत्यय पूर्वी हिन्दी मे भी विद्यमान है। अब रह जाता है सबंधकारक 'च' प्रत्यय। हलबी में संबंधकारक चो प्रत्यय ही नहीं, 'के' प्रत्यय भी प्रचलित है, जो निश्चय हिन्दी का है। यह 'च' या 'चो' प्रत्यय बस्तर-कांकेर में कैसे और कब से प्रविष्ट हुआ, इस पर भी तनिक विचार करना उचित होगा। यदि हलबी लिखित भाषा होती तो उसके प्रवेश का समय साहित्य के अध्ययन से निश्चित हो सकता था। अतः हमें ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अनुमान लगाना होगा।

बस्तर-कांकेर में मराठी के 'च'-'चो'-प्रवेश का ऐतिहासिक कारण

बस्तर और कांकेर राज्य यों तो बहुत समय तक स्वतंत्र रहे हैं; पर जब अठारहवीं शताब्दी में मराठों का उत्कर्ष हुआ और उन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया तब ये रियासतें नागपुर-शासन के अन्तर्गत आ गईं। छत्तीसगढ़ में रायपुर और रतनपुर में तो मराठों का सीधा शासन रहा था। पर बस्तर और कांकेर राजाओं से उनकी वार्षिक कर और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता की शर्त थी।

सन् १८३० में बस्तर के राजा ने वार्षिक कर के बदले में अपने राज्य का सिहावा परगना नागपुर के शासन को दे दिया था। ऐसी स्थिति में सिहावा में मराठों की सेना के रहने से मराठी भाषा का 'च' यदि हलबा भाषियों में 'चो' होकर पहुँच गया तो कौन-सा आश्चर्य है? बस्तर से अधिक संबंध मराठों का कांकेर से रहा है। ब्रेट लिखता है—

"मराठों के शासन-काल में कांकेर आवश्यकता पड़ने पर ५०० सबल सैनिक देने की शर्त में बँधा हुआ था।"[1] सेना में उत्तर और पश्चिमी भारत के सैनिक भर्ती होते थे, जो

---

१. छत्तीसगढ़ी फ्युडेटरी स्टेटस्, पृष्ठ ८।

पुरबिया और मराठे कहलाते थे। छत्तीसगढ़ मे मराठा के समय मे सैनिक क्या व्यवस्था करते थे, इसका वर्णन सन् १७९५ मे ब्लट नामक अंग्रेज ने किया है—

"मराठों की फौजे, जिनमे उत्तरी और पश्चिमी हिन्दुस्तान के जवान थे (जो सभवतः पूरबिया और मराठे होंगे—लेखक), किसानो के बीच रहकर उनसे लगान वसूल करतीं और कराती थी।"[1] कृपक और सैनिको की भाषाएँ स्वभावतः एक दूसरे से प्रभावित होती रही होंगी।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि बस्तर और काकेर की हलवी मे 'च' अथवा 'चो' प्रत्यय मराठी के हैं। परन्तु उसमे सबंधकारक का केवल मराठी का 'च' प्रत्यय ही नहीं है, हिन्दी का के प्रत्यय भी विद्यमान है। ऐसा जान पड़ता है कि उसमे 'च' अथवा 'चो' प्रत्यय मराठों के सम्पर्क से प्रविष्ट हो गया है।

छत्तीसगढ़ी में सम्प्रदान का 'ल'[2] प्रत्यय भी मराठी भाषी संपर्क का परिणाम जान पड़ता है। छत्तीसगढ़ी का यही 'ल' प्रत्यय हलवी में प्रविष्ट हो गया है।

हलवी के सबंध मे मनोरजक बात यह है कि उच्चारण, प्रत्यय-प्रक्रिया, शब्द-निधि और वाक्य-रचना मे वह भले ही मराठी से अधिक मेल न खाती हो, पर मराठी-भाषियों को वह अपनी ही बोली लगती है। हिन्दी-भाषी तो उसे अपनी मानते ही हैं। इसे भी हिन्दी और मराठी भाषाओं की परस्पर निकटता का ही प्रमाण कहा जा सकता है।

हिन्दी-मराठी की निकटता

डा० ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे, भाग १ खण्ड १ पृष्ठ १२० मे वर्तमान आर्य-भाषाओं का बाहरी, मध्य और भीतरी उपशाखाओं में विभाजन किया है। बाहरी उपशाखा में उत्तर की ओर लहदों, सिंधी, दक्षिण मे मराठी और पूर्व में उड़िया, बिहारी, बगाली, असमिया, मध्य उपशाखा में पूर्वी हिन्दी तथा भीतरी उपशाखा (केन्द्रीय) मे पश्चिमी हिन्दी, पजाबी, गुजराती, भीली, खानदेशी और राजस्थानी को रखा गया है।

उच्चारण, व्याकरण आदि की भिन्नता के कारण डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने उपर्युक्त वर्गीकरण को उचित नहीं माना। उन्होंने ग्रियर्सन के अनेक निष्कर्षों का सप्रमाण खडन कर भारतीय आर्यभाषाओं का उदीच्य (उत्तरी) प्रतीच्य (पश्चिमी) मध्यदेशीय प्राच्य (पूर्वी) और दक्षिणी के नाम से वर्गीकरण किया है। उन्होंने उदीच्य मे सिन्धी, लहदा, पूर्वी पजाबी, प्रतीच्य में गुजराती, राजस्थानी, मध्यदेशीय में पश्चिमी हिन्दी, प्राच्य में कोशली अथवा पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, बगला, असमिया तथा दक्षिणी मे मराठी का समावेश किया है।

भाषाओं को भीतरी-बाहरी समुदायो मे बाँटने की अपेक्षा उनका परस्पर साम्य और विभेद दिखाना अधिक समीचीन होता है। यो भाषा मे साम्य और विभेद के नियम भी शाश्वत नहीं होते। वे तो विशेष काल की स्थिति के द्योतकमात्र होते हैं। ग्रियर्सन ने

---

१. 'ब्रिटिश रिलेशन विथ नागपुर स्टेट इन एटीन्थ सेन्चुरी', पृष्ट १२२-१२३।

२. (बाम्हन) रोटा उलटाये पुलटाये लागिस (छत्तीसगढी)।

वर्षों पहिले जो निरीक्षण के परिणाम लेखबद्ध किये थे, उनमे आज परिस्थितियों के परिवर्तन से अन्तर आ गया है। भाषा बोलनेवाले लोग जब ग्रामों से नगरों मे जाते है, तो वहाँ अनेक भाषाओं के सम्पर्क में आकर अपनी भाषा या बोली मे अनजाने अन्य भाषाओं की प्रवृत्तियों को ग्रहण करने लगते है। देश में राजनीतिक आन्दोलनो का प्रभाव भाषा पर पड़ता है। तमिलनाडु मे आर्यभाषाओं के विरोध की लहर चल पड़ने से उससे सस्कृत शब्द चुन-चुन कर निकाले जा रहे हैं और स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के बाद से भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार की प्रवृत्ति के कारण हिन्दी-क्षेत्रों की साहित्यिक भाषा मे आज सस्कृत शब्द तत्सम रूप में भरे जा रहे हैं। महाराष्ट्र मे भी एक समय मराठी से अरबी-फारसी शब्दो को निकालने का यत्न किया गया था। उसमे कई शब्द ऐसे है जिन्हे सानुस्वार लिखा तो जाता है पर बोला नही जाता। अतः एक आन्दोलन ऐसा भी उठाया जा रहा है कि अनुचरित अनुस्वारों को शब्दों से निकाल कर ही छापा जाये। क्योंकि पुस्तकों से भाषा सीखनेवाले व्यक्ति अनुस्वारसहित मुद्रिव शब्दो मे अनुस्वार को प्रचलित ध्वनि समझकर उनका गलत उच्चारण करेंगे। इसी सिद्धान्त पर अमेरिकन अग्रेजी भाषा के शब्दों के हिज्जे (वर्तनी) उनके वर्तमान उच्चारण-रूप पर निर्धारित कर रहे हैं। भाषा के क्षेत्र मे जाने-अनजाने अनेक प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं। एक परिवार की एक ही समुदाय की भाषाओं मे परस्पर भेद दिखलाई पड़ता है। पूर्वी हिन्दी की अवधी मे जहाँ क्रिया के स्त्रीलिंग और पुँल्लिग दोनों रूप होते है, वहाँ उसीकी उपभाषा छत्तीसगढी मे क्रिया के ऐसे कोई रूप नहीं होते।

इसी प्रकार पुणे की मराठी मे जहाँ कर्ता के साथ कोई विभक्ति नहीं लगती, वहाँ वर्‍हाड़ी मराठी मे खड़ी बोली के समान 'ने' विभक्ति लगती है। कुछ वर्णों के उच्चारण-भेद डा० कोलते ने मुझे बतलाये। पूनाई मराठी 'ल' का उच्चारण 'य' और कभी-कभी 'ड़' का उच्चारण 'ल' के समान होता है। यथा—पूनाई मराठी—बालापुर चा बालाजी झमझम झमकतो।—वर्‍हाड़ी मराठी—बायापुर चा बायाजी झमझम झमकते। पूना म० का द्वितीय चतुर्थी का 'ला' प्रत्यय वर्‍हाड़ी मे 'ले' हो जाता है। यथा पूनाई—तुला मारतो वर्‍हाड़ी तुले मारतो। वर्‍हाड़ी मे क्रियापदों मे स्त्री और पुँल्लिग रूप समान होते हैं। पूनाई मराठी मे पुरुष कहेगा 'मी जाते' स्त्री कहेगी, 'मी जातो 'वर्‍हाड़ी' मराठी मे पुरुष कहेगा 'मी जातो' और स्त्री भी कहेगी, 'मी जातो।'

वर्‍हाड़ी का शब्द-भाण्डार खड़ी बोली उर्दू, तेलुगु, आदि से प्रभावित होते हुए भी संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों से काफी भरा हुआ है। वह प्राचीन मराठी के अधिक निकट है और यह स्वाभाविक भी है। आर्यों का उत्तर से दक्षिण मे प्रथम प्रवेश विदर्भ मे हुआ जान पड़ता है। इस तरह हम देखते है कि भाषा के रूप-भेद व्यापक और स्थायी नहीं होते और इसीलिए उनसे संबध रखनेवाले नियम भी स्थायी नहीं होते। भाषाओं के सबध मे किसी नियम को आग्रह के साथ शाश्वत कहकर प्रतिपादित करना व्यर्थ प्रतीत होता है। वास्तविकता यह है कि परिवर्तित प्रवृत्तियों की समय-समय पर छानबीन होती रहनी चाहिए।

अब हम सक्षेप मे यह देखने का प्रयत्न करेगे कि मराठी का पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी की ओर कितना झुकाव है।

मराठी और हिन्दी की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं की लिपि देवनागरी अथवा बालबोध है। वर्णमाला मे समानता है। व्यजनों मे 'ल' के साथ 'ळ' व्यजनध्वनि मराठी मे अधिक कही जाती है। परन्तु यह कथन पूर्वी हिन्दी मे लागू होता है, पश्चिमी हिन्दी की राजस्थानी मालवी और निमाड़ी में यह (ळ) ध्वनि है[1]।

कर्ता कारक एक वचन अकारान्त संज्ञा-शब्द प्राचीन मराठी मे 'उ' और ओकारान्त होते है। जब 'उ' कारान्त होते हैं तब पूर्वी हिन्दी का अनुसरण करते हैं और जब 'ओ' कारान्त तब पश्चिमी हिन्दी का। पश्चिमी हिन्दी मे भी कहीं-कहीं अकारान्त सज्ञा-शब्दों का कर्ता, एकवचन मे उकारान्त रूप मिलता है।

मराठी और पश्चिमी भाषाओं (गुजराती, राजस्थानी आदि) के वर्ण-उच्चारणों मे प्रायः समानता रहती है। 'अ' का उच्चारण ह्रस्व 'अ' ही होता है, बगला के समान 'ओ' नहीं।

'व' और 'ब' का भेद मराठी मे पश्चिमी हिन्दी विशेषकर खड़ी बोली, राजस्थानी आदि के समान स्पष्ट दिखाई देता है।

मराठी मे च, ज, झ का जिस प्रकार उच्चारण होता है उस प्रकार पूर्वी भाषाओं मे नहीं होता। मराठी में इनके शुद्ध तालव्य और दन्त्य तालव्य उच्चारण मिलते है। मराठी में दन्त्य, मूर्धन्य और तालव्य—स, ष और श वर्ण विद्यमान हैं। पश्चिमी हिन्दी मे ये तीनों वर्ण हैं पर मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण 'ख' होता है। पूर्वी हिन्दी (अवधी) में तत्सम शब्द-रूपों में 'श' आता है पर तद्भव शब्दों में 'स' ही प्रयुक्त होता है। बिहारी और सुदूर पूर्व की बगला आदि में 'स' के स्थान पर 'श' का साम्राज्य है। पूर्वी हिन्दी अवधी के ग्रंथों मे 'ष' मिलता है, पर उसका उच्चारण पश्चिमी हिन्दी के समान 'ख' होता है।

'ऋ' का उच्चारण पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी मे 'रि' और मराठी मे 'रु' होता है।

मराठी में तीन'' (पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुसक) लिंग होते हैं,

पश्चिमी हिन्दी की कतिपय बोलियों मे भी ये तीन लिंग होते हें।

डिंगल के प्राचीन ग्रथों में स्त्रीलिंग और पुल्लिग के अतिरिक्त नपुसक लिंग के उदाहरण मिलते हैं।

ऊपर कहे अनुसार आकारान्त मराठी सज्ञापद का रूप एकवचन मे भोजपुरी के समान, पर बहुवचन में पश्चिमी हिन्दी के समान होता है।

यथाः एकवचन

घोड़ा (मराठी) भोजपुरी—घोड़ा, खड़ीबोली—घोड़ा

---

१. यह ध्वनि उड़िया, पंजाबी और गुजराती में भी पाई जाती है।

वहुवचन

घोडे (मराठी) ''भोजपुरी—घोड़न, खड़ी बोली—घोड़े और पूर्वी हिन्दी—घोड़न्ह

मराठी सम्बधवाचक सर्वनामों का पश्चिमी हिन्दी के समान एकवचन में ओ से अन्त होता है, पर वहुवचन मे वे पूर्वी हिन्दी का भोजपुरी का अनुकरण करते हैं। यथा—

एकवचन

मराठी—*जो*'''पश्चिमी हिन्दी—*जो* ' पूर्वी हिन्दी—जे '' भोजपुरी—जवन

वहुवचन

मराठी—जे '''पश्चिमी हिन्दी—*जो* ''पूर्वी हिन्दी—जे '''भोजपुरी—जवन

मराठी में मागधी से उद्‌धृत विहारी, बंगला आदि भाषाओं का भूतकालीन 'ल' प्रत्यय पाया जाता है।

मराठी (भूतकाल)	भोजपुरी (भूतकाल)
गेला	गइल

मराठी मे कैसा, ऐसा, जैसे, तैसे पश्चिमी हिन्दी (खड़ी बोली) के समान ही प्रयुक्त होते हैं।

जेष्ठ कनिष्ठ दोन्ही भार्या। आणि ससार ही आवरी तुक्या
ऐसी स्थिति देखोनिया, माता पिता संतोष्र। (महाराष्ट्र सारस्वत पृ० ३६५)
सावकार, पिशुन आणि खल। गुहासी पातले जैसे काळ (वही, ३६५)
जैसा का जागृतीचा पोला।
स्वप्नहि *तैसेच* दिले गेला। (वही, पृष्ठ ३७०)
देखिले रूप *जैसे* तेच्चि पाविजे *तैसे* (वही, पृष्ठ ३८५)
आमची प्रतिज्ञा *ऐसी*, काही न मागावे शिष्यासी (वही, पृष्ठ ४१६)

पूर्व में बोली जानेवाली आधुनिक खड़ी बोली की प्रवृत्ति के अनुसार मराठी में 'खावे जावे' का प्रयोग मिलता है।

मराठी में प्रश्नवाचक सर्वनाम काय (क्या, क्यों) पश्चिमी हिन्दी की बुन्देली बोली के समान काय ही है। यथा—

मराठी	बुन्देली
काय रे, कसा बसला आहे ?	काय रे, कैसो बैठो है।
	खड़ी बोली
	क्यों रे, कैसा बैठा है ?

इसी प्रकार मराठी ***आपण*** पश्चिमी हिन्दी बुन्देली के ***अपन*** सदृश है।

यथा—मराठी—चला आपण चलू।
बुन्देली—चलो अपन चलें।

मराठी मे राजस्थानी के न के स्थान में ण की वहुलता है। राजस्थानी मे मराठी की ळ ध्वनि के होने की चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

खड़ी बोली की एकवचन भूतकालिक *था* क्रिया मराठी मे—होता और बुन्देली मे—हतो हो जाती है। और बहुवचन में क्रमशः थे, होते और हते रूप धारण कर लेती है। यथा—

एकवचन

राम *जात होता* (मराठी) .. राम जात *हतो* (बुन्देली)

बहुवचन

मुलगे *जात होते* (मराठी) मोड़ा *जात हते* (बुन्देली)

इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि एक ही परिवार की भाषाएँ विस्तृत नदियों, उच्च पहाड़ों, और दुर्गम बनों को लाँघती हुई किस प्रकार उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम की बहनों से निकटतर सबध स्थापित करती रहती हैं। भाषाशास्त्री जब उनका कुल, धर्म, स्थान आदि खोजने लगते हैं, तब यह कठिनता से निर्णय कर पाते हैं कि अमुक भाषा कहाँ से आई है—उत्तर से आई है, पूर्व से आई है, पश्चिम से आई है या दक्षिण से आई है? इसका एक और उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। इसमें हिन्दी और मराठी की निकटता का एक और प्रमाण मिल जाता है।

'हिन्दी साहित्य के आदिकाल' में पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने चौदहवीं शताब्दी में कवि नयचन्द सूरि लिखित महाराष्ट्रीय प्राकृत की नाटिका 'रम्भा मजरी' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

जरि पेखिला मस्तकावरि केश कलायु।[1]
तरि परिख्खता मयूराचे पिच्छ प्रतापु।
जरी नयन विदायु केला वेणी दण्डु।
तरी साक्षाज्जाला भ्रमर श्रेणी दण्डु।
जरी दृग्गोचरी आला विशाल भालु।
तरी अर्द्धचन्द्र मण्डल भइल उर्णायु जालु।
भ्रूजुगलु जाणू द्वैधीकृत कदर्प चापु।
नयन निर्जित सुजला खंजन निःप्रतापु।
मुखमण्डलु जाणू शशाक देवताचे मण्डलु।
सर्वांग सुन्दर मूर्तिमन्त कामु।
कल्पद्रुम जैसे सुन्दर सर्वलोक आशा विश्रामु॥[2]

द्विवेदीजी लिखते है, 'यह पंक्ति शुद्ध मराठी नहीं है। बल्कि तत्काल प्रचलित काशी की भोजपुरी का मराठी कवि द्वारा सुना हुआ रूप है।[3]' परन्तु मेरे मत से सारी पंक्तियों में मराठी छायी हुई है। प्रत्येक पंक्ति पर विचार करने से यह सिद्ध

१. संभवतः यहाँ कलापु होगा।
२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृष्ठ २८।
३. वही—पृष्ठ २८।

किया जा सकता है। प्रथम पंक्ति में *जरि* शब्द मराठी है जो 'भी' अर्थवाचक है। पेखिला मराठी है। मस्तकावरि शुद्ध मराठी है, जिसका अर्थ है मस्तक पर। दूसरी पंक्ति मे *तरि* (शुद्ध मराठी है 'तो भी' अर्थवाचक है)। परिखलता के स्थान पर परिखलला होना चाहिए। यह भी शुद्ध मराठी है। मयूराचे तो मराठी है ही, तीसरी पंक्ति में जरी (यदि) और केला (किया), चौथी मे तरी (तो भी) और साक्षाज्जाला (साक्षात हुआ) शुद्ध मराठी है। साक्षाज्जाला में *जाला* आधुनिक मराठी *झाला* शब्द का ही पुराना रूप है। यथा—

> प्राणीमात्र *जाले* दुःखी
> पाहता कोन्ही नोहीं सुखी।[1]
> महाराजे चक्रवर्ती। *जाले* आहेत पुढे होती।[2]

पाँचवी पंक्ति में *जरी* और आला शुद्ध मराठी हैं, इसी प्रकार छठी मे *तरी*, सातवीं मे *जाणू* मराठी शब्द हैं। आठवीं मे सभी संस्कृतपद हैं। नवीं मे *देवताचे* तथा *जाल* और ग्यारहवी मे *जैसे* शुद्ध मराठी रूप है। तात्पर्य यह कि सारी पंक्तियों में संस्कृत शब्दावली के साथ मराठी का व्याकरणिक ढाँचा है। जिन पदों के उकारान्त रूप हैं, वे भी प्राचीन मराठी की प्रवृत्ति के अनुरूप ही है। पूर्वी हिन्दी और कभी-कभी व्रजभाषा के समान ही प्राचीन मराठी में पदो को लघ्वन्त और उकारान्त करने की प्रवृत्ति प्रबल थी। डा० तुलपुले लिखते है "या उ चें प्राबल्य इतके झाले की तो इतर लिंगाना, क्रियापदाना, कृदन्ताना व क्वचित् क्रिया विशेषणानाहि लागूं लागला। करितु, जानु, नावेकु, आशु, फलु अशी उकारान्त रूपे विपुल आढलतात।[3]" (इस उ का प्राबल्य इतना हुआ कि वह इतर लिंग, क्रियापद, कृदन्त और क्वचित् क्रियाविशेषणों मे भी लगने लगा) यादवकालीन मराठी इ० स० ११०० से १३५० के लगभग तक प्रचलित रही है। नीचे प्राचीन मराठी से उ प्रवृत्ति द्योतक कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

> तुझा *स्वरूपानंदु* नाहीं ओलखिला
> जाहलीं (झाली के अर्थ में) विठ्ठल हानि थोर
> लोहाचा *कवलु* लागल्या परिसातें।
> (नामदेव महाराजाचे अभंग सकल संत गाथा पृ० ८०)

और भी—

> भूताचा ठाई *कासु*
> तो भी म्हणे *रामु* (राजवाड़े की ज्ञानेश्वरी ७, ८, ९)

मराठी मे जैसा, जैसे के प्रयोग का एक उदाहरण दिया जा रहा है—

> रज्जुवरी *जैसा* भासे काल
> अधिजानी *तैसे* मायाजाल। (मध्यमुनीश्वराची कविता पृ० १०२)

---

१. श्री समर्थ रामदास (जोगलेकर) पृष्ठ ९६।

२. देखिए—वही, पृष्ठ १०९।

३. यादवकालीन मराठी, पृष्ठ ७६।

द्विवेदीजी को मराठी की उपर्युक्त पक्तियों मे भोजपुरी का भ्रम होगया। यहाँ मैं ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी से दो पक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

बीज मोडे झाड होये, झाड मोठे बीजीं सामाये।
एसेनि कल्प कोडी जाये। परी जाती न नाशे॥

(ज्ञानेश्वरी अध्याय १७)

(बीज नष्ट होकर वृक्ष होता है और वृक्ष नष्ट होकर बीज मे समा जाता है। इसी प्रकार क्रम चलता रहता है, पर जाति का नाश नहीं होता।)

उपर्युक्त पक्तियों को पढ़कर किसी मराठी-भाषी का खड़ीबोली में लिखने का प्रयास भी कहा जा सकता है। पर वास्तव में भोजपुरी और हिन्दी की भ्रान्ति पैदा करानेवाले उपर्युक्त दोनों पद्य मराठी के है। 'रम्भामजरी' के एक पद्य को लेकर अभी दो हिंन्दी भाषियों के दो मत आपके सम्मुख प्रस्तुत हुए। एक उसे भोजपुरी कहता है, दूसरा मराठी। अब मैं दूसरा रोचक उदाहरण दो मराठी साहित्यिकों का प्रस्तुत कर रहा हूँ। संत नामदेव ने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी मे भी पद-रचना की है। उनमे से अधिकाश सिक्खो के गुरु गोविंदसाहब के 'आदि ग्रंथ' में संकलित हैं। उनकी भाषा के सबध में मराठी के प्रसिद्ध विद्वान श्री प्रियोलकर का कहना है कि वह पजाबी मिश्रित हिन्दी है। उसमें मराठी का अश नहीं है। इसी आधार पर उनका मत है कि 'आदि ग्रथ' के नामदेव महाराष्ट्रीय नामदेव से भिन्न कोई हिन्दी भाषी पंजाबी हैं। इसके विपरीत दूसरे मराठी के विद्वान श्री म० गो० वारटके का कहना है कि आदिग्रंथ के नामदेव और महाराष्ट्रीय नामदेव एक ही हैं—अभिन्न हैं, क्योंकि उनके हिन्दी पदो में पर्याप्त मराठी भाषा है। अपने पक्ष-समर्थन में श्री वारटके ने नामदेव के हिन्दी-पदों से उन शब्दों और वाक्यों को उद्धृत किया है, जिन्हें वे मराठी के समझते हैं। परन्तु हम प्रियोलकर के समान ही उन्हे हिन्दी का भी समझते हैं। श्री वारटके अपने पक्ष-समर्थन में जो मुद्दे दे रहे हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) उ का बाहुल्य

इसे वे नामदेवकालीन मराठी का लक्षण समझते हैं और उदाहरणस्वरूप अजामलु, अबरीकु, अधमु, अभयपदु, अजानु, जनु, अरजनु, अटलु, हकु, एकु, इसनानु, कवनु, कपटु कलकु, कोटपालु, कालु, कुठारु, खलगु, खेतु, खेदु, गिआनु, चितु, जलु, जसु, पतालु, पदारथु आदि शब्द प्रस्तुत करते है।

(२) क्रियापदों के कालों के मराठी-रूप

इसके उदाहरण में तारीले, तारीआले, आनीले, भराइले, केला, (केला) रींधाइले, लाहिले, चेतीअले, दैला, मेटल, मेटुला, मेटिले, पूछिले, आला, होइला, लागीले, भरमीअले, रोखीअले, बेधीअले, माडीअले, पउढ़ीअले, उधरीअले, उवारीअले, आइडैले, आइला, सेवीले, राचीले, भाखीले, बजाइला, तरसि, पूजसि, उचरसि, समाइलो, डीठला,

गावउ, राखउ, समझाउ, राखु, तजहु, चालती, हाकती, होती, होता, भजते, लागति, चोखता, कीजै, दीजै, पूजै, पीजै, गहि, गहु गरजित, विराजित, आदि दिये गये हैं।

(३) कुछ मराठी शब्द और उनके विभक्ति-प्रत्यय

(कोष्टक में वारटक्के जी ने मराठी-रूप दिये हैं।)

इनके उदाहरण में निम्नलिखित शब्द दिये गये हैं—

"मारवाड़ि (मारवाडीं), नादि (नादीं), घरि (घरीं), दरि (दारीं), दुआरा (द्वारा) गागरि (घागरीं), सीसू, अकासी (सीस आकाशीं) सतामधे, आकासमधे, जलभीतरि, भवरला (भ्रमरला), हंसुला (हसाला), कोइला (कोणाला) ताची आणि (त्याची आण), ताचे अंसा (त्याचे अश), तुमचे पारसु (परिस), हमचे लोहा, जोचै घरि (ज्यों चे घरीं), नामचे सुआमी, सिंघच भोजन, सारिखा (सारखा), सगले (सगले), तोसिउ (तुशीं), मोसिउ (मशीं), हरिसिउ (हरीशीं), दुरवासासिउ (दुर्वासाशीं), जगजीवनसिउ (जगज्जीवनाशीं), परनारीसिउ (परनारीशीं), पंचजनासिउ (पंचजनाशीं), काहुसिउ (कोणाशीं), तोपहि (त्यापाशीं), कायहि (कोणापाशीं), कीमही (कुणापाशीं), नामेंपदि, मोपे, जु (जो), जगने (यागाने), सनाने (स्नानें) तरवर (तरुवर) निरमल (निर्मल), निरमल (निर्मले), तापते (तापातें, तप्ततेस), अजहून (अझून), दीबडा (दीवटा), सीलि (शीलीं), सरवर (भाडण), अधिकाई (आधिक्य), कै (किंवा), बिडाणि (विंदाणि), सौहै (शोभे), वालहा (वालम, वाल्हे), बीठुलाइ (विठुराया), गोपालराइ (गोपालराया), मुखि (मुखें), वागटा (वागड़), जलमाझै (जलमाजीं), पसूआरा (पासिकर), बुधि (बुद्धी), पैसड़ (पैसूं, प्रवेश परुं) सिहजा (सेज), केतक (कित्येक), नाही, नातरु (नाहींतर), तुरे, तुरा (मगलतुरा वाद्य), सुभाइ (स्वभाव)" इत्यादि।

मूलवाक्य जिनमें मराठी भाषा की छाया बतलाई गई है

(१) रे नाहिं समाइलो, सतिगुरु देवा भेटले।
(२) झिलिमिलि कारुदिसंता
(३) काहे रे नर गरबु करत हइ
(४) सरब लका सोइन की होती
(५) जो जनु इतुकरि भगति करहि
(६) सतामधे गोविंद आछै
(७) कुजा, मेरवी द्वारिका नगरी रासि बुगोइ ?
(८) रे आलसीआ मन! अपुने रामहि भजु
(९) तउ न पूँजहि हरि कीरतिनामा
(१०) मन! सिवा सकति सवादं सगलभेदं छोडि-छोडि
(११) सिमरि सिमरि गोविंदु नामा भजु, भवसिंधु तरसि
(१२) मोहि तालावेली लागती

(१३) जैसे गाइका बाछा छुटला थन मा खून घुटला चोखता
(१४) जैसे द्यामा तापते निरमल
(१५) मीता गुरमति रामनाम गहु
(१६) रावन सेती सरबर होई
(१७) जैसे तरवर बसेरा पाख किसही कोइ न ऐसा राम केला
(१८) तउ राम नाम सरि न पूजै
(१९) मेरो बापु माधव ! के कैसी सावलिए विठुलाइ तू घन
(२०) रे जिह्वा जा स्री गोविंद न उचरसि (ता) सत खड करइ
(२१) असंख्या कोटी अनपूरा करी एक हरी नामै न पूजसि
(२२) बाद बिवादु काहुसिउ न कीजै
(२३) पाइ पनहिओ न पावै
(२४) नाकहि बिना बतीस लखना ना सोहै
(२५) भूमीपै आऊ न पावै
(२६) एक समै मोकउ गहिबाधै तउपुनि मो पै जवाबु न होई
(२७) जो इहु भ्रमु आलावती मुझ ऊपर सभ कोपिला है
(२८) रामराइ ऐसो अतरजामी
दरपन माहि बदन परवानी
(२९) नामा कहै जगजीवनु पाइआ हिरदै अलख विठाणी
(३०) बोखे बावन बीखू बासु बसु वावै ते सुख लागिला
सखे आदि कासर परमलादि चदन भइला
(३१) तुमचे पारसु संगे हमचे लोह कंचनु भइला
(३२) भूखि चतुरवेद पडता बनारसि बसता असि
(३३) तू दइयालु रतनु लालुनामा साचि समाइला
(३४) साधिक सिध सगल मुनि चाहहि, बिरले काहु डीठला।

उपर्युक्त वाक्यों के मराठी-वाक्य

(१) अरे। नादीं समाविलों, सद्गुरुदेव भेटले
(२) चमचम करणारा प्रकाश दिसतो
(३) काय रे नरा। गर्व करीत आहेस ?
(४) सर्व लका सोन्याची होती
(५) जो जन इतुकली भक्ति करील
(६) सतामध्यें गोविंद असे
(७) कोठे जातोस ? द्वारका नगरीं राख (क्रीड़ो) बघाद ?
(८) अरे आलशी मना। आपल्या रामाला भज

(९) तव हरिनाम कीर्तीची सरी न पाविजे
(१०) मना ! शिवशक्ति संवाद (इत्यादि) सगले भेद सोड़-माड़
(११) स्मरुन स्मरुन गोविंदनाम भजु, भवसिंधु तरशील
(१२) मला तलमल लागते
(१३) जसे गाइचे वासरु सुटले ह्मणजे थान माखून चुटका चोखते
(१४) जसे उन्हावे तप्ततसे निर्मिले
(१५) मित्रा । गुरुमर्ताने रामनाम ये
(१६) रावणाशी ती लडाई झाली
(१७) जसे तरुवर बसलेले पत्ती कोणहि कोणाचे नव्हेत, असें रामाने केलें
(१८) तव रामनाम सरि न पाविजे ।
(१९) माझ्या बापा माधवा । रे केशवा । सावलया विठुराया तूं धन्य ।
(२०) अगेजिव्हे । जर गोविंदनाम तुच्चरसी तर मी तुझे शत खंड करीन
(२१) असंख्या कोटि आन पूजा एका हरिनामाची पावणार नाहींत
(२२) वादविवाद कोणाशीं न कीजे
(२३) पायी उपानह (वाहाणा) न पावे
(२४) नाकाविना बत्तीस लक्षणें न शोभती
(२५) भूमिवर अंग न पावे, ह्मणजे जमीनीवर अंग टाकता येत नाहीं
(२६) एवे समयीं भला बाधून ये तेथून मजकडून प्रत्युत्तर न होई
(२७) जे हे आलवती ते मज वर सर्व कोपले आहेत
(२८) राम राम अंतर्यामी ऐसे (दिसतात कीं) जैसे
'दर्पणाचिया जवलिका । दुजेपण ये मुखा ।' (ज्ञानेश्वरी)
(२९) नामदेव म्हणतो जगज्जीवनप्राप्त झाला म्हणजे हृदयात
अलक्ष्याचे (विंदाणीं) लक्षण येते
(३०) वृक्षाला बावन (चंदन) वृक्षाचें वास्तव्य बापताच त्याला
सुख लागले । मूलचे सर्व काष्ठ परिमलयुक्त चंदन झाले
(३१) तुमच्या परिसासंगे आमचे लोह काचन झाले
(३२) मुखे चार वेद पडत वाराणसीं वसत असशील
(३३) तू दयालु रतलाल आहेस, नामा साचीं (साचत्वात) समाविला
(३४) साधक, सिद्ध सगले मुनि (ज्याची) इच्छा करितात
(परंतु विरलयाला दिसला ।)

श्री वारटक्के ने नामदेव की हिन्दी-भाषा के मराठी रूप के जो उदाहरण उपस्थित किये हैं, उन्हें देखकर हिंदी-साहित्य-प्रेमियों को केवल कुतूहल ही होगा, क्योंकि उन्हे उनमें कहीं भी अहिंदीपन नहीं जान पड़ेगा । श्री वारटक्के के समान हिन्दी-भाषा की प्रवृत्ति से अनभिज्ञ व्यक्तियों के लिए ही उन पर नीचे विचार किया जा रहा है—

१. उकार-बाहुल्य

यह प्राचीन मराठी की ही विशेषता नहीं है। यह पूर्वी हिन्दी (अवधी तथा पश्चिमी हिन्दी) की भी प्रवृत्ति है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में आविर्भूत होनेवाले जायसी की पूर्वी हिन्दी की कृति पद्मावत से एक दोहा उद्धृत करना पर्याप्त होगा—

अवधी :

तस रोवै जस जिउ जरै गिरै रकत और मासु।
रोवं रोवं सब रोवहिं सूत सूत भरि आँसु ॥[1]

पश्चिमी हिन्दी से बिहारी का दोहा उद्धृत किया जाता है—

ब्रजभाषा :

मानहु मुंह दिखरावन के दुलहिहि करि अनुराग।
सासु सदनु मनलखन हुं सौतिन दियो सुभागु ॥[2]

२. क्रियापदों के कालों का मराठी रूप

इस के अंतर्गत (अ) भूतकालिक क्रिया के 'ल' प्रत्यय को देखकर वारटक्केजी को मराठीपन का भ्रम हो गया है। इस संबंध मे पर्याप्त चर्चा की जा चुकी है। यहाँ केवल कबीर की निम्नलिखित प्रसिद्ध पक्तियाँ दी जाती हैं, जिनमे इस प्रत्यय का प्रयोग हुआ है—

कनवा फड़ाय जोगी जटवा *बढ़ौलै*
दाढ़ी बढाई जोगी *होइगैलैं* बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया *रमौलै*।
काम जराय जोगी कपड़ा *रंगौलै*
गीता बाचिकै होई *गैलै* लवरा।

(आ) क्रियापदों में 'सि' प्रत्यय को भी मराठी कहा गया है और उसके लिए 'उत्तरसि' 'तरसि' आदि उदाहरण दिये गये हैं। यद्यपि अवधी से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें यह प्रत्यय लगता है। तो भी हम केलॉग की Grammar of Hindi Languages के पृष्ठ ३१३ पर निर्दिष्ट नियम को देना पर्याप्त समझते हैं ' क्रिया के भविष्य सभावनार्थ रूप में 'ही' के लिए हम प्रायः पुराना रूप 'सि' भी पाते हैं। जैसे—

जोतै *चहसि* तेहिन *भजसि* मति मंद।

---

१. इंडियन प्रेस संस्करण, पृष्ठ ४० ।
२. इंडियन प्रेस संस्करण, पृष्ठ १०४ ।

(इ) क्रियापदो में 'उ' प्रत्यय के उदाहरणों में भी श्री वारटके ने मराठीपन देखा है और उसके लिए 'समझाउ' 'राखु' 'गहु' 'गावउ'

नामदेव के पदो के बहुत-से रूपों को जो मराठीमात्र की प्रवृत्ति कही गई है, वह ठीक नहीं है। नीचे विवादास्पद कतिपय रूपों की चर्चा की जाती है—इस संबंध में भी जायसी से दो उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) क्रिया के विधि-रूप मे उदाहरण।

(अ) की तप करै न *पारिउ*, की रे न साधेहु जोग।
जियत जिउ कस *काढउ*, कहहु सो मोहिं वियोग॥

(ब) अब *तजु* जरन मरन तम लोगू।
मो सौ *मानु*, जनमभरि भोगू॥

(२) क्रियापदों मे 'ता' 'ति' प्रत्यय मराठी के बतलाये गये है और उदाहरण के लिए चीखता, होता, लागति आदि रूप दिये गये हैं। यहाँ भी केलॉग की उपर्युक्त व्याकरण का नियम उद्धृत किया जाता है—

The Imperfect participle is formed by adding to the root the syllable ता

(धातु में 'ता' जोड़ने से अपूर्ण कृदत बन जाता है।)

'ति' प्रत्यय के लिए बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा प्रस्तुत करना पर्याप्त होगा—

सखि *सोहति* गोपाल कै उर गुंजन की माल
बाहिर *लसति* मनो पियौ दावानल की ज्वाल।

(३) कुछ शब्दों और प्रत्ययों को देकर उन्हे मराठी कहा गया है और कोष्ठक में मराठी अर्थ दिया गया है। जहाँतक संज्ञा-शब्दों का संबध है, वे हिंदी के भी हैं। हिन्दी और मराठी आर्यभाषा संस्कृत की परपरा से प्रसूत होने के कारण दोनों की शब्दनिधि मे बहुत-कुछ समानता पाया जाना सभाव्य है। शब्दों मे जहाँ 'सिउ' प्रत्यय खड़ी बोली 'से' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, वहाँ वह हिंदी का ही रूप है। मारवाड़ी (राजस्थानी) मे करणकारक मे 'सूं' प्रत्यय लगता है। नामदेव की मारवाड़-यात्रा प्रसिद्ध है। सभवतः यह वहीं से ग्रहण कर लिया गया हो। 'सूं' का 'सिउ' हो जाना सहज ही है।

(४) नामदेव के पदों के जिन वाक्यों को उद्धृत कर उनमें मराठी छाया देखी गई, वे वास्तव मे हिन्दी की प्रकृति के इतने अनुरूप हैं कि उनपर विस्तृत विवेचन अनावश्यक है।

मराठी का जन्म महाराष्ट्री प्राकृत अथवा महाराष्ट्री अपभ्रंश से बतलाया जाता है और महाराष्ट्र प्राकृत को शौरसेनी प्राकृत का ही उत्तर रूप भी कहा जाता है।[1] भाषा की प्रवृत्तियाँ सूर्य चन्द्र, और प्रकृति की गति-विधि के समान अटल न होने के कारण यह भी हो सकता है कि महाराष्ट्री, शौरसेनी से निकलकर दक्षिणप्रवास के पश्चात् स्वतंत्र हो गई हो। यही कारण है कि मराठी में शौरसेनी और मागधी दोनों भाषाओं से उत्पन्न वर्तमान भाषाओं की प्रवृत्तियों के बावजूद उसका शौरसेनी से उद्भूत हिन्दी भाषा और बोलियों की ओर कुछ अधिक झुकाव लक्षित होता है। मराठी और हिन्दी की उत्पत्ति का निम्नलिखित क्रम है—

संलग्न नक्शे में मराठी का क्षेत्र दर्शाया गया है। उससे ज्ञात होगा कि वह उत्तर और पूर्व में, गुजराती और हिन्दी से घिरी हुई है और दक्षिण में तेलुगु, कन्नड़ और दक्खिनी हिन्दी से जो हैदराबाद राज्य में आज से छः-सात सौ वर्ष पूर्व बोई और सींची गई। अतः उसका अपनी पड़ोसी भाषाओं से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

हिन्दी पर मराठी का प्रभाव

परन्तु मराठी ही अन्य पड़ोसी भाषाओं से प्रभावित नहीं है, पड़ोसी भाषाओं पर भी उसका प्रभाव पड़ा है। मध्यप्रदेश दो प्रधान भाषाओं—हिन्दी और मराठी—का मिलनक्षेत्र है। मराठी ने इस क्षेत्र की हिन्दी पर निश्चयरूप से प्रभाव डाला है। यह प्रभाव नागपुर और विदर्भ भाग मे स्पष्ट परिलक्षित होता है। मराठीप्रभावी मध्यप्रदेशीय हिन्दी को हम 'नागपुरी हिन्दी' के नाम से अभिहित करना चाहते हैं।

---

१. देखिए, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी 'आर्यभाषा और हिन्दी'।

नागपुरी हिन्दी

क्षेत्र और बोलनेवालों की संख्या—डा० ग्रियर्सन ने अपनी लिंग्विस्टिक सर्वे जिल्द ६ में इसका उल्लेख किया है और इसका क्षेत्र नागपुर जिला बतलाया है और इसके बोलनेवालों में केवल वे ही व्यक्ति सम्मिलित किये हैं, जिनकी मातृभाषा हिन्दी का कोई-न-कोई रूप है और उन्होंने जो नागपुरी हिन्दी का उदाहरण दिया है वह ऐसे परिवार का है जिसकी मातृभाषा बुन्देली है। ग्रियर्सन ने यहीं भूल की है। नागपुरी हिन्दी का क्षेत्र नागपुर ही नहीं है, वह नागपुर के निकटवर्ती जिलों तक, जिनमें प्राचीन विदर्भ[1] के जिले भी सम्मिलित हैं, फैला हुआ है और इसे बोलनेवाले हिन्दी-भाषाभाषी ही नहीं, अहिन्दी-भाषाभाषी भी हैं। वास्तव में यह विभिन्नभाषाभाषियों के बीच विचारों के आदान-प्रदान की बोली है। ग्रियर्सन ने अपने उपर्युक्त 'सर्वे' में इसके बोलनेवालों की सख्या १०५६०० लिखी है, जो आज कईगुना बढ़ गई है। इसे नागपुर और विदर्भप्रान्तवासी दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं। यह किसीकी मातृभाषा नहीं है। इसके क्षेत्र में बसा हुआ मारवाड़ी अपनी मातृभाषा मारवाड़ी के साथ-साथ दूसरी भाषाओं के रूप में नागपुरी हिन्दी और मराठी भाषाएँ बोलता है। इसी प्रकार तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाभाषियों की भी दूसरी बोली नागपुरी हिन्दी है।

नागपुरी हिन्दी की विशेषताएँ

शब्दावली—चूँकि नागपुरी हिन्दी मातृभाषा के नहीं, दूसरी भाषा के रूप में बोली जाती है, इसलिए इसमें खड़ी बोली के शब्दों के साथ-साथ वक्ता की मातृभाषा के कुछ व्यावहारिक शब्द भी सम्मिलित हो जाते है। इस प्रकार नागपुरी हिन्दी की शब्दावली मे (१) संस्कृत के कुछ तत्सम और बहुत से तद्भव शब्द जो हिन्दी मे साहित्यिक भाषा तथा अन्य प्रादेशिक भाषा और बोलियों में प्रचलित है।

(२) फारसी—अरबी मिश्रित उर्दू के सामान्य शब्द।

(३) मराठी के कुछ व्यावहारिक शब्द।

(४) वक्ता की मातृभाषा के कुछ व्यावहारिक शब्द सम्मिलित हैं।

ध्वनियाँ

नागपुरी हिन्दी में प्रायः वे सभी ध्वनियाँ है जो खड़ी बोली मे हैं। अतिरिक्त मराठी की च (त्स) और ळ ध्वनि भी आ गई है। फारसी-अरबी की ध्वनियाँ इसमे नहीं आ सकीं। ऋ का उच्चारण उसमे मराठी के समान रु हो गया है। खड़ी बोली की कतिपय दीर्घ ध्वनियाँ ह्रस्व और ह्रस्व ध्वनियाँ दीर्घ हो गई हैं। उदाहरणार्थ—

और ओर

फिर फीर

---

[1] यद्यपि महाकोसल और विदर्भ शासकीय दृष्टि से एक ही मध्यप्रदेश राज्य में शामिल हो गये हैं, तो भी कांग्रेस-संस्था ने उसके पूर्व के महाकोसल प्रांत, नागपुर प्रान्त और विदर्भ प्रान्त अभी अटूट रखे हैं।

ड, ड़ मे कोई भेद नहीं है। ड़ का उच्चारण ही नहीं होता।
व, ब का उच्चारण-भेद स्पष्ट है।

उच्चारण में ध्वनिपरिवर्तन, आगम, लोप आदि

पदात न का ण में परिवर्तन—यथा—कठिन→कठीण, कठिण
पदात ओ का व में परिवर्तन, यथा—जाओ→जाव
र वर्ण के पूर्व औ का हो मे परिवर्तन, यथा—और→होर, औरत→होरत
यथा ह ध्वनि क्षीण होती जा रही है।

(अ) शब्द के बीच और अन्त मे ह का लोप पाया जाता है। उदाहरणार्थ—
ख. बो. हि[1] —तुम्हे→ना. हि[2] →तुमे
ख. बो हि—साहब→ना. हि →साब

(आ) शब्द के अन्त में ह का लोप और आ का आगम—
उदाहरणार्थ—बारह→बारा, तेरह→तेरा
शब्द के आदि के स का छ मे परिवर्तन—
उदाहरणार्थ - सब→छब
कहीं-कहीं ओ का ऊ में परिवर्तन —
उदाहरणार्थ—परसों→परसू

ब और ह के पास-पास आ जाने पर 'भ' मे परिवर्तन और ए का आगम, कहीं-कहीं सधि हो जाती है और तदनुरूप परिवर्तन हो जाता है। यथा—
बहन→भेन
बहुत→भोत (बह्उत=भोत)
पद मे वर्णों के ऊपर अनुस्वार का उच्चारण लुप्त होता जा रहा है—
उदाहरणार्थ—नहीं→नही
पांच→पाच
नवां→नवा

संज्ञा-शब्दरूप का वैशिष्ट्य

कुछ अकारान्त सज्ञा-शब्दों का बहुवचन आ और कभी-कभी आ से और कभी-कभी अन्तिम ध्वनि को हलन्त करने से भी बनता है।
उदाहरणार्थ बात—(१) बाता (२) बाता, (३) बात्या
(बाता कर्ते कर्ते झोप लग गइ।)

---

१. खड़ी बोली हिन्दी का संक्षिप्त रूप।
२. नागपुरी हिन्दी का संक्षिप्त रूप।

आकारान्त संज्ञा-शब्द के अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व (हलन्त) करके उसमें 'या' जोड़ देने से छोटेपन या तिरस्कार का भाव द्योतित होता है—

उदा०— धीसा→धीस्या

सम्बोधन में भी यही रूप रहता है।

(ओ धीस्या। का (कहाँ) जा र्‌या (अथवा रिया) है।)

लिंग—खड़ी बोली के समान ही दो लिंग स्त्रीलिंग और पुल्लिंग होते हैं। पर खड़ी बोली में जहाँ ईकारान्त पुल्लिंग पद में 'इन' लगाने से स्त्रीलिंग होता है, वहाँ नागपुरी हिन्दी में मूल शब्द में 'अन' लगता है—

उदा०—तेली→तेलन

गौली→गौलन

वचन—प्रायः खड़ी बोली के प्रत्यय लगकर बनते हैं। परन्तु ईकारान्त संज्ञा-पदों में ई के स्थान पर 'या' लगाने की प्रवृत्ति है; परन्तु उसका पूर्ववर्ती वर्ण हलन्त हो जाता है।

उदा०—रोटी→रोट्‌या

गाली→गाल्‌या

क्रमवाचक संख्याशब्द

पहिला, दुसरा, तिसरा, चवथा, पाचवा, छटवा, सातवा, आटवा, नवा, दसवा आदि। खड़ी बोली में जहाँ सामान्य संख्या चार के बाद की शेष संख्याओं में 'वाँ' जुड़ता है वहाँ नागपुरी हिन्दी में 'वा' जुड़ता है।

कारकों की विभक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कर्ता—ने

कर्म और सम्प्रदान—कू, कूं, को, के, करने

अपादान—सू, सू, सो, से

संबंध—का, के, की

अधिकरण—मो, मे, पे

सर्वनाम : व्यक्तिवाचक सर्वनाम के चिह्न इस प्रकार हैं—

	एकवचन	बहुवचन
	प्रथम पुरुष—मे, हम	हम, अपन
कर्ता—	द्वितीय पुरुष—तू, तुम	तुम, तूम
	तृतीय पुरुष—वो	वो
कर्म—संप्रदान	प्र० पुरुष—मुजे, मुंजे, मुजकू	हमे, हमकू, हमनेकू
	द्वितीय पुरुष—तुजे, तुजकू,	तुमकूं, तुम कू
	तृतीय पुरुष—उसकू	उनकू

अतएव (इसलिए) के निमित्त **करके** का प्रयोग मराठी मे म्हणून के अर्थ में व्यवहृत होता है। यथा—

तुम बीमार थे करके मेने तुमकू फजर नी जगाया।

(तुम बीमार थे, इसलिए मैंने तुम्हें प्रातःकाल नहीं जगाया।)

व्याकरण संबंधी अन्य विशेषताएँ—

अकर्मक क्रिया में कर्ता के साथ ने का प्रयोग। यथा—

हमने एक दुसरे को मदत कन्ना चाहये।

(हमें एक दूसरे की मदद करनी चाहिए।)

सहायक क्रिया के वर्तमान काल में ह का उच्चारण प्रायः नहीं हो पाता। यथा—जाता उं, खाता उं, लाता उं, आदि।

ऐ का य मे परिवर्तन हो जाता है। यथा—है→हय।

सकर्मक क्रिया के कर्ता मे ने चिह्न लगाकर भी क्रिया मे 'हूँ' लग जाता है। यथा—

मैंने रोई हूँ, मैंने लाया हूँ।

किसी बात पर आग्रह प्रकट करने के लिए 'च' का प्रयोग। यथा—

तुमकू चलनच पडेगा (तुम्हें चलना ही पड़ेगा।)

दक्खिनी हिन्दी, उर्दू अथवा हिन्दवी का भी प्रभाव नागपुरी हिन्दी पर परिलक्षित होता है। नागपुरी हिन्दी में बुन्देली और मालवी का प्रामुख्य, जिसकी ओर ग्रियर्सन ने संकेत किया है, प्रायः नहीं के बराबर रह गया है। वह स्थानीय ध्वनि-प्रक्रिया, कतिपय नई विभक्तियों और प्रत्ययों के साथ खड़ी बोली का मूल ढाँचा सुरक्षित रखे हुए है।

नीचे ग्रियर्सन ने अपनी सर्वे में नागपुरी हिन्दी का जो उदाहरण दिया है, उसे नीचे दिया जाता है। इसे ग्रियर्सन ने बुन्देली बोली से आच्छादित कहा है, क्योंकि वह मूलतः बुन्देली बोलनेवाले परिवार से लिया गया है—

"एक आदमी खे दो पोरया हते। ओ मे को नन्हों लरका बाप खे कि हे दादा मोरे हिस्सा को मोल मोखे दे दे। फेर ओने अपनी जिनगी की कमाई दाई पोरयन खे वाटनी कर दई। आगे थोड़ेच दिन मे नन्हे पोरया ने अपनी सब धन साकडी। फेर ऊ दूसरे मुलक में फिरन खे गओ। वहाँ अपनो सब पैसा चहुलबाजी में उड़ा दओ।"

उपर्युक्त पंक्तियों में सम्प्रदान का ख बुन्देली का नहीं, निमाड़ी का है, जो मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले में बोली जाती है। पोरया निमाड़ी और मराठी है। ग्रियर्सन का उदाहरण बाजार मे बोली जानेवाली नागपुरी हिन्दी नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे आकर बसा हुआ परिवार बहुत काल तक अपनी क्षेत्रीय बोली बोलता रहता है। अतएव नमूना सामान्य जनता की सार्वजनिक रूप से बोली जानेवाली भाषा से लेना चाहिए। अब मैं आपके सम्मुख उस नागपुरी हिन्दी का उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ, जिसे सामान्य लोग बाजारों मे बोलते पहचानते हैं। (अब में आपके समोर नागपुरी हिन्दी के नमुने सादर कर्ता हु जिसको बाजार के लोक बोलते पिचानते हय।)

गोविन्दा—(किसन से) सुन, केता उं कल बड़ी फजर अपन दोनों मिलके फिरने चलेंगे। उधी से ठेसन निकल चलेंगे हौर वा बंबे मे टपाल डालके, हाटेल मे हात मु धोके, चा फराठे लेके दवाखाने कु जायगे। मे केता हु भाऊ। मुजे रात कू झोपच नी आती। वर्तमानपत्र लेके बैठता, भोत कोसीस करता फीर बि आख लगतिच नई। तबयत खूप सभालता। दुपेर कू जादा खाता बि नई। श्याम को धोड़ने मे नागा बि नई करता। कुच समझ मे नई आता, क्या करु। करके तो डाक्तर से फीर से तपासनी करना हय। उसका पूराना बील की चुकती करना हय। पगार अभी हात मे आई नई। उसके बील का हपता देने कू पाकीट मे पैसे नई हय। तेरे कने हय कुच ?

किसन—हव ना, खूप हय। मेरी थट्टा करते हो क्या ? शेठ आदमी हो, छच बोलो, तुमारे खीसे मे पैसे नई हय क्या ? क्या फोक मारते हो भाऊ ?

गोविन्दा—तुमकू मेरी बाता झुट मालुम पड़ती हय तो कुछ हरकत नहीं।

खड़ी बोली में रूपान्तर

गोविन्दा (किसन से)—सुन, मै कहता हूँ, कल बडे सवेरे हम दोनों साथ-साथ घूमने (या टहलने) चलेंगे। उधर ही से स्टेशन निकल चलेंगे और वहाँ बंबे (लेटरबाक्स) में चिट्ठी डालकर, होटल मे हाथ मुँह धोकर और चाय नास्ता लेकर अस्पताल जायेंगे। मैं कहता हूँ भाई, मुझे रात को नींद ही नही आती। समाचारपत्र लेकर बैठता। बहुत कोशिश करता। फिर भी आँख ही नहीं लगती। शाम को दौड़ने मे नागा भी नहीं करता। कुछ समझ में नहीं आता (कि) क्या करूं ? इसीलिए डाक्टर से फिर से जॉच करवाना है। उसका पुराना बिल भी चुकाना है। वेतन अभी हाथ मे आया नहीं। उसके बिल को किस्त देने को जेब मे पैसे नही हैं। तेरे पास हैं कुछ ?

किसन—हाँ ना, खूब हैं। क्या मेरी मजाक उड़ाते हो ? सेठ आदमी हो। सच बोलो। क्या तुम्हारे जेब में पैसे नही हैं ? क्या गप मारते हो भाई ?

गोविन्दा—तुमको मेरी बातें झूठ मालूम पड़ती हैं तो कोई हर्ज नहीं।

जिस प्रकार प्रेमचन्द और प्रसाद में बनारसी और वृन्दावनलाल वर्मा मे बुन्देली बहार है, उसी प्रकार नागपुरी लेखकों मे भी मराठी महक आने लगी है। यथा—

"हिन्दू धर्म में वेद, स्मृति अनेक ग्रन्थ हैं। परन्तु उन सब ग्रन्थों में सनातनी और नवमतवादी, भाविक चिकित्सक[1] आदि सर्वमतों और पंथों के लोगों के लिए एक ही सर्व-मान्य ऐसा गीता को छोड़कर और कोई ग्रन्थ नहीं है।[2]

गीता ग्रन्थ पर अनेक *पंडितों ने और पंथवादियों ने चढ़ाए* हुए अपने-अपने मतों के पेहराव के कारण हरएक को अपने जीवन में साकार करने योग्य गीता का निश्चित मूलरूप पहिचानना कठिण हो गया है।"[3]

१. समीक्षक।

२. गीताप्रणीत व्यवहारशास्त्र, पृ० १।

३. वही, मुखपृष्ठ २।

उपर्युक्त उदाहरणो से विदित हो जाता है कि नागपुरी हिन्दी मे मराठी शब्दो का प्रवेश हो रहा है। सस्कृत और विदेशी शब्द भी अपने मूल तत्सम रूप का अर्थ न देकर मराठी अर्थ देने लगे है।

उदाहरणार्थ: हफ्ता का अर्थ सप्ताह न होकर किश्त (Instalment) हो गया है। चिकित्सक वैद्य न रहकर आलोचक बन गया है। 'सादर' आदर सहित नहीं, *उपस्थित* के अर्थ मे आता है। इसी प्रकार कई मराठी शब्द नागपुरी हिन्दी में ही नही, आदर्श हिन्दी में भी संचरित हो गये हैं। उदाहरणार्थ—

भाड़ा	शिस्त	चालू, घोटाला
जीवन्त	शिक्षण	बाजू
भागीदार	टीप	वर्चस्व (तेज)
ठेला	पगार	बडी (गाड़ी)

मराठी का प्रभाव दक्खिनी, उर्दू अथवा जिसे आज दक्खिनी हिन्दी कहने का रिवाज चल पडा है, पर भी पड़ा है। चौदहवीं शताब्दी से मुसलमान शासकों का, जो इस भाषा को बढ़ानेवाले रहे हैं, बराबर मराठी-भाषाभाषी जनता से सम्पर्क रहा है।

मराठी में जोर देने के लिए *ही* के अर्थ मे **च** का प्रयोग होता है—

उदाहरण—तुला आलेच पाहिजे (तुझे आना ही चाहिए।)

दक्खिनी हिन्दी या हिन्दवी में भी इसी प्रकार से **च** प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ—

वली अपने **च** गम में सट ***नकौ*** होश।
उनके मातम के दरिया कू हैं बेजोश।[1]

मराठी का नहीं अर्थ-बोधक 'नको' दक्खिनी हिन्दवी मे खूब प्रचलित है—

उदाहरण— ये बस्ती सो दुनिया पो होकर दिवाना,[2]
अरे मन ***न को*** रे ***नको*** हो दिवाना।

कहीं-कहीं दक्खिनी हिन्दी पर मराठी के प्रभाव से कतिपय शब्दों का *'स'*, *'श'* मे परिवर्तित हो गया है और मराठी का होता (था) *ता* बनकर आ गया है।

उदा०—*स का श में परिवर्तन*

खड़ी बोली—बबई या दक्खिनी हिन्दी

,, पैसे ,, पेशे
,, सिखाया ,, शिकाया

मराठी *होता का दक्खिनी हिन्दी में 'ता'*

लाया ता।	गया ता।
(लाया था)।	(गया था।)

---

१. दक्खिनी का गद्य और पद्य, पृ० २३७।

२. वही, पृष्ठ २५६।

दक्षिण के विभिन्न क्षेत्रों में यद्यपि मराठी ने हिन्दी पर प्रभाव डाला है, तोभी उसके व्याकरण का ढाँचा मूलतः सुरक्षित है।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दी और मराठी आर्य-परिवार की भाषाएँ हैं। यद्यपि हिन्दी शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश तथा मराठी महाराष्ट्री प्राकृत और अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी कही जाती है, तथापि हिन्दी और मराठी में उच्चारण तथा प्रत्यय, प्रक्रिया और शब्द निधि में इतना अधिक साम्य है कि ऐसा भासने लगता है कि दोनों का उद्गम निकटतम स्रोत से है। मराठी में पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी दोनों के लक्षण पाये जाते हैं, परन्तु उसका झुकाव पश्चिमी हिन्दी की ओर अधिक लक्षित होता है। इससे ऐसा संदेह होने लगता है कि कहीं महाराष्ट्री शौरसेनी का पश्च रूप तो नहीं है।

मराठी ने नागपुरी हिन्दी, दक्खिनी हिन्दी, छत्तीसगढ़ी और हलबी भाषाओं को प्रभावित किया है। यह प्रभाव नागपुरी हिन्दी और दक्षिणी हिन्दी पर अधिक और छत्तीसगढ़ी तथा हलबी पर बहुत कम दिखलाई देता है।

भौगोलिक सीमाओं के अनुसार दोनों में कम और अधिक साम्य होने पर भी वे परस्पर थोड़ी-बहुत समझी जाती हैं। यही कारण है कि महाराष्ट्र संतों को इसे अपनाने में सुविधा हुई और उन्होंने राष्ट्र की बहुसंख्यक जनता तक अपने हृदय की मंगल अनुभूति का रस उसमें प्रवाहित कर, उसे राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया।

दूसरा अध्याय

दक्षिणापथ में हिन्दी-संचार

दक्षिणापथ 'रेवा' के दक्षिण मे विदर्भ, मूलक (जिसकी राजधानी प्रतिष्ठान (पैठण) रही है) और अश्मक (वर्तमान हैदराबाद-राज्याश) के भूभाग को कहा जाता रहा है। अनेक पुराणों मे इसी भाग को 'महाराष्ट्र'[1] नाम से भी अभिहित किया गया है। महाराष्ट्र मे हिन्दी-प्रवेश का इतिहास आर्यों के दक्षिण-सम्पर्क से सबध रखता है, क्योंकि हिन्दी आर्य-भाषा-परिवार की मध्य-शाखा की उत्तराधिकारिणी है। वह अपने साथ प्राचीन आर्य-भाषा-परम्परा को लिये हुए है। आर्य केवल महाराष्ट्र तक ही नहीं, सुदूर केरल और सिंहल द्वीप तक फैल गये थे। वे जब दक्षिण मे गये, तब उन्होंने महाराष्ट्र मे प्रचलित स्थानीय द्रविड़-बोलियों को आत्मसात् कर लिया और आर्य-भाषा को प्रतिष्ठित किया। पर तेलुगु, कन्नड़, तमिळ, और मलयालम भाषी क्षेत्रों मे उन्होंने इन भाषाओं को प्रभावित तो किया, पर वे इन्हें अपनी भाषा मे पचा नहीं पाये। प्रत्युत् उन्होंने इन भाषा-भाषी जनता के साथ घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित किये और उनकी भाषाओं का अध्ययन किया। अनेक बौद्ध और जैन मतावलम्बियों ने तमिळ और कन्नड साहित्य की अभिवृद्धि मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है। तमिळ के प्रथम वैयाकरण अगस्त ऋषि और तेलुगु के प्रथम वैयाकरण कण्व ऋषि कहे जाते है। इन ऋषियों का समय निश्चित करना कठिन है। यह माना जाता है कि ईसा की चौथी शताब्दी के पूर्व (कात्यायन के काल तक) आर्य सुदूर दक्षिण भारत मे भलीभाँति बस गये थे। तेलुगुभाषी जनपद पर आर्यों का ईसा की दूसरी शताब्दी मे इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आज तेलुगु भाषा के कुछ पडित यहाँ तक कहने लगे हैं कि तेलुगु तो आर्य-भाषा-परिवार का ही एक अश है।[2] तात्पर्य यह कि आर्यों का बहुत प्राचीन काल से दक्षिणा-पथ के साथ राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एव आर्थिक सपर्क रहा है। मध्यदेश की भाषा, जिसकी सीमा कुरुक्षेत्र से प्रयाग अथवा राजमहल तक और हिमालय से विन्ध्याचल तक फैली हुई थी, प्राचीन काल से ही अतर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा रही है। मध्य देश मे प्रचलित संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश भाषाओ का बराबर दक्षिण

---

१. महाराष्ट्र की सीमा में समय-समय पर थोड़ा-बहुत परिवर्त्तन होता रहा है, पर मुख्य भाग यही माना जाता है।

२. देखिए, 'History of Telugu Literature' डा० नारायणराव, पृष्ठ १६।

मे सचार रहा है। प्राचीन तमिळ वाङ्मय से स्पष्ट हो जाता है कि ईसा के २५० वर्ष पूर्व से ईसा सन् के प्रथम शती पश्चात् तक पुलिकत के पूर्व और पटकल के पश्चिम तक का प्रदेश आर्य-सत्ता के अन्तर्गत था और वहाँ आर्यभापा प्रचलित थी।[1] इस प्रदेश मे प्राप्त प्राचीन 'लेखो' से ज्ञात होता है कि ई० स० की प्रथम शती से पाँचवी शती तक यहाँ के 'लेखों' की भापा प्राकृत थी। प्रथम 'लेख' जगय्यापेठ (कृष्णा जिला) के स्तूप पर अकित है। इसमे इक्ष्वाकु कुल के माठरीपुत्र श्री वीर पुरुपदत्त नामक राजा का उल्लेख है। यह लेख प्राकृत मे है। (इडियन एंटीक्यूरी, पृष्ठ २५६) और इसके अक्षर ईसा सन् की तीसरी शती के दिखलाई देते हैं। यदि जनता प्राकृत बोलती और पढती न होती, तो यह लेख प्राकृत मे न लिखा गया होता। काची मे जब पल्लवों का राज्य स्थापित हुआ, तब वहाँ भी पाँचवी शताब्दी मे, हयूनसाग के लेखानुसार, मध्य हिन्दुस्थान की भापा बोली जाती थी।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यों की बस्ती ज्यों-ज्यो दक्षिण की ओर बढ़ती गई, उनकी भापा का भी वहाँ सचार होता गया। पर जहाँ सुदूर दक्षिण की स्थानीय भाषाएँ आर्य-भापाओं से केवल प्रभावित ही हुईं, वहाँ महाराष्ट्र मे उन्होंने वहाँ भी मूल बोलियो को आत्मसात् कर लिया। इसका कारण यह है कि वहाँ आर्यों की बस्ती अधिक शक्तिशाली रही है और उनका सम्पर्क अपने उत्तरवासी आर्य-बन्धुओं से होता रहा है। अतः परस्पर व्यवहार मे वे महाराष्ट्री, शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी, प्राकृतों और अपभ्रंशों का प्रयोग करते रहे हैं। इसके प्रमाण हमें संस्कृत नाटकों और शास्त्र-ग्रंथो मे मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य अपना सास्कृतिक ऐक्य बनाये रखने के लिए बहुत सतर्क रहे हैं। अतएव वे एक से अधिक भापाओं को समझते-सीखते रहे हैं। किसी प्राचीन कवि ने कहा भी है " 'यो मध्ये मध्यदेश निवसति स कविः सर्वभाषानिपुणः।' संस्कृत ने बहुत काल तक सास्कृतिक एकता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अन्तरप्रान्तीय भाषा का कार्य किया है। उसके पश्चात् उसका स्थान मागधी प्राकृत ने ले लिया[3] और फिर मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व एक विशिष्ट शौरसेनी अपभ्रश ने अन्तरप्रान्तीय भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी 'भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी' में इस तथ्य को स्वीकार किया है। वे लिखते हैं—'पश्चिमी अपभ्रश का व्यवहार उत्तरी राजपूत नृपतियो की राजसभाओं मे तुर्कों की उत्तरी भारत-विजय के कुछ शताब्दियों पूर्व होता था। यह एक महान् साहित्यिक भाषा के रूप मे ठेठ महाराष्ट्र से बगाल तक प्रचलित थी और कवि उसमे काव्य-रचना भी करते थे।' (पृष्ठ १७७)

---

१. **भारतीय इतिहास शोधन मंडल (पुणें) जिल्द १ संख्या २. ३, पृष्ठ ३।**

२. **भारतीय इतिहास शोधन मंडल (पुणें) जिल्द १ संख्या २. ३, पृष्ठ ३४।**

३. About A. D. 500 when the Magadha Empire declined, its language too was slowly breaking up Sanskrit had been superseded by Magadhi as the national speech of India and Magadhi in its turn was displaced by other Prakrats and dialects.

— *Short History of Indian Literature*

(Ernst Horrwitz) पृष्ठ १२४।

इतिहास से ज्ञात होता है कि अरबों ने खलीफा उमर के शासन मे, ईसा की सातवीं शताब्दी मे भारत के पश्चिमी समुद्री किनारे पर कई आक्रमण किये। कोकण के ठाना जिले पर भी छापे मारे, पर वे सफल नही हो सके। यो अरबों का भारतीय पश्चिमी प्रान्तों के साथ व्यावसायिक संबध बहुत पुराना रहा है।

आठवी शताब्दी मे अरबों ने सिन्ध पर चढाई की और उस पर आधिपत्य जमा लिया। दसवीं-ग्यारहवी शताब्दी मे मुसलमानों ने उत्तर भारत के हिस्सों पर छापे मारकर ही सतोष नहीं किया, राज्य स्थापित किये और धर्म-प्रचार भी किया। अतः भारत के आर्यों को आत्मरक्षा की स्वभावतः चिन्ता हुई होगी और उन्होंने भाषा-सबधी अपनी नीति दृढ की होगी। सस्कृत यद्यपि सामान्य बोलचाल की भाषा नही रह गई थी, तोभी उसमें आर्य-संस्कृति की अक्षय निधि रक्षित होने से वह धार्मिक और सास्कृतिक दृष्टि से समादृत होती रही। अन्य कार्यों के लिए प्राकृतों का उपयोग होता रहा। प्राकृतो मे एक तो स्थानीय होती थी और दूसरी 'देशभाषा', जो अन्तरप्रान्तीय व्यवहार के काम में आती थी। इसका सकेत हमे 'नारदस्मृति' से मिल जाता है। उसमें एक जगह लिखा है, 'सस्कृतैः प्राकृतैः वाक्यैः शिष्यमनुरूपतः। देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुः स्मृतः।' 'नारदस्मृति' का समय ईसा की पॉचवी शताब्दी कहा जाता है। उसमें इसको तीन भाषाओं का ज्ञान सम्पादन करने को कहा गया है। इन तीन मे एक सस्कृत, जो धर्म और सस्कृति की पवित्र भाषा रही है। दूसरी प्राकृत, जो स्थानीय भाषा रही है और तीसरी 'देशभाषा', जो सर्व-देशीय व्यवहार की भाषा रही है। इन्हे सीखे विना कोई 'गुरु' नही कहला सकता था। 'नारदस्मृति'-काल की 'देशभाषा' क्या थी, इस सबध मे बाबू श्यामसुन्दर दास का अनुमान है कि वह हिन्दी होगी।[1] पर उन्होंने प्रमाण और उदाहरण नहीं दिये।

उत्तर भारत मे विक्रम की आठवीं शताब्दी मे रचित सिद्धों की 'प्राकृताभास हिन्दी' मे रचनाएँ मिल जाती हैं[2]। 'नारदस्मृति'-काल की रचनाओं के उदाहरण उपलब्ध नहीं हैं। पर भाषा का विकास क्रमशः होता है। अतएव सभव है, हिन्दी की प्रवृत्ति उस समय भी किंचित् अकुरित हो उठी हो। डा० हीरालाल जैन ने पउमचरिउ, पासणाह-चरिउ, णेमिणाहचरिउ, तरङ्गवतीकथा आदि के आधार पर अपभ्रश को देशीभाषा माना है। कवियों ने इसी शब्द का प्रयोग किया है। (देखिए, पाहुड़, दोहा पृष्ठ ४३-४५)।

दक्षिण में भी अपभ्रश से क्रमशः हिन्दी का विकास हो रहा था। राष्ट्रकूट-शासकों के काल मे मान्यखेट (मलखेड़) साहित्य का केन्द्र बना हुआ था। राष्ट्रकूटवंशज अमोघवर्ष ने ईसा सन् ८१५ मे इसको राजधानी के रूप मे बसाया था। सन् ६७३ तक इसकी समृद्धि होती रही। इस अवधि में यहाँ जैन धर्म और प्राकृत तथा अपभ्रश-साहित्य

---

१. नागरी प्रचारिणी-पत्रिका, भाग ११, पृष्ठ ४४३।

२. अक्खर वण्ण परमगुण रहिजे। भणइण जाणइ एमइ कहिजे॥
सो परमेसरु कासु कहिज्जइ। सुरअ कुमारीजीभ पडिज्जई।
—सरहपा (हिन्दी-काव्यधारा, पृ० १०)

का विकास होता रहा। राजा कृष्ण तृतीय के काल में पुष्पदन्त (पुष्फयन) की प्रसिद्ध कृति 'णायकुमार-चरिउ' का (सन् ६६५ से ९७१ के मध्य) निर्माण हुआ। यह अपभ्रंश में है, पर इसमें हिंदी के उदय के लक्षण मिलते हैं। हम डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित प्रति से उसकी भाषा का एक उदाहरण देते हैं--

'सोहइ जलहरु सुरधणु छायए।'
'सोहइ माणुसु गुणसपत्तिए।'[1]

विक्रम संवत् ११८४ में रचित दक्षिण (महाराष्ट्र) के चालुक्य राजा सोमेश्वर का एक ज्ञान-कोष अभिलषितार्थ-चिन्तामणि प्रकाश में आया है, जिसमें राग-रागिनियों के देश-भाषाओं से उदाहरण दिये गये हैं। उन उदाहरणों में हिन्दी का भी उदाहरण है। एक पंक्ति है—

'नद गोकुल जायो कान्ह जो गोवी जणे पडिहेली रे।'
(ना० प्र० पत्रिका, भाग १०, पृ० ६१)

दक्षिण में ही नहीं, अन्य प्रान्तों में भी अपभ्रंश से हिन्दी का विकास हो रहा था। बंगाल में भुसुक कवि ने दसवीं शताब्दी में लिखा था

'आज भुसुक बंगाली भैली।
निज गिहिनी चंडाली लैली।'[2]

गुजरात के हेमचन्द्र ने अपने अपभ्रंश-व्याकरण में खड़ीबोली का आभास देनेवाली पंक्तियाँ दी हैं, जो हिन्दी के इतिहास-ग्रंथों में वे प्रायः उद्धृत होती रहती है। यथा—

'भल्ला हुआ जो मारिआ बहिण म्हारा कन्तु।'

कुछ उर्दू के पक्षपाती खड़ीबोली को उर्दू से उत्पन्न बतलाकर तथ्य को उलटने का प्रयत्न करते हैं और कोई उसे ब्रजभाषा से उत्पन्न कहकर भ्रान्ति पैदा करते हैं। परंतु प्राचीन काव्यकृतियों के प्रकाश में आ जाने से यह सिद्ध हो गया है कि खड़ी बोली न तो उर्दू से उत्पन्न हुई है और न ब्रजभाषा से। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। विक्रम की नवीं शताब्दी में रचित 'कुवलयमाला' नामक प्राकृतभाषा की पुस्तक में मध्यदेश की भाषा के नमूने में 'मेरे', 'तेरे', 'जाओ' जैसे शब्दों का उल्लेख है।[3] सैयद एहतिशाम हुसेन का तो कहना है कि 'शौरसेनी अपभ्रंश से विकास पानेवाली अन्य भाषाओं में एक उर्दू भी है।' 'देखिए—उर्दू साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३।

जब भिन्न-भिन्न अपभ्रंशों से भिन्न-भिन्न आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं का विकास होने लगा, तब कवियों ने संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंशों में ही रचना न कर लोकभाषा में भी लिखना प्रारंभ कर दिया। धीरे-धीरे 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा' (विद्यापति) की भावना प्रबल होती गई। प्रादेशिक भाषाओं में जब उत्कृष्ट साहित्य-रचना होने लगती है,

१. णायकुमारचरिउ, पृष्ठ १४
२. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग ८, पृष्ठ २१८।
३. हिन्दोस्तानी, अक्टूबर, १९४२, पृष्ठ २४१।

तब उसके प्रति जनता की भक्ति और उत्कट प्रेम का जागरण सहज स्वाभाविक हो जाता है। ज्ञानेश्वर की सालकृत रसाल मराठी भाषा का पान करने पर किसका मन विभोर न होगा? महाराष्ट्र सारस्वतकार भावे ने इसी भावातिरेक मे लिखा है—'जिस महाराष्ट्र मे ज्ञानेश्वर-जैसे अवतार ने जन्म लिया, उसी महाराष्ट्र मे मेरा भी जन्म हुआ। जिस भाषा मे ज्ञानेश्वर बोले, वही मेरी भाषा है और उसे ही मै बोलता हूँ। ऐसे अभिमान से भरकर कौन महाराष्ट्र-देह रोमाचित न होगी?'[1] मातृभाषा के प्रति स्वाभाविक प्रेम रखकर भी जनता अनेक कारणों से उसके अतिरिक्त अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करती रहती है। महाराष्ट्र मे मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दीभाषा का जिन कारणों से सचार हुआ, उनपर यहाँ तनिक विचार किया जाता है। वे हैं, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक।

राजनीतिक

यह कहा जा चुका है कि ईसा शताब्दी के पूर्व से ही आर्यों का दक्षिणापथ से सम्पर्क रहा है। अतएव मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व वहाँ जनता समय-समय पर आर्यभाषा के सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश-रूपो से परिचित होती रही है। अब हम मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् की स्थिति का सिंहावकोलन करना चाहते हैं।

उत्तर-पश्चिम से जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण करना प्रारभ कर दिया, तब उन्हें पजाब और दिल्ली की अपभ्रश से उत्पन्न प्रचलित हिन्दी के खड़ी बोली-रूप को अपनाना पड़ा। उसीमे उन्होंने अपनी भाषा के अरबी-फारसी शब्दो को मिलाकर जनता से सपर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। मुसलमान-सेनाओं के साथ दक्षिण मे जाकर वह बोली भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाने लगी। शेख अशरफ (सन् १५०३) और वजही (सन् १६३६) उसे हिन्दवी, शाह बुरहानुद्दीन बीजापुरी हिन्दी तथा निशाती (१६१०-१६६०) दक्खिनी कहते हैं। कहीं-कहीं 'भाखा' भी कहा गया है। शाह मीराजी (सन् १४५७) लिखते है—

> "हमीं बोल अरबी करे। और फारसी बहुतेरे।
> यों हिन्दवी बोली तब। इस अर्थ भावे सब।
> यह भाखा भले सो बोले। पुन इसका भाव खोले।
> वे अरबी बोल न जाने। न फारसी पछाने।
> ये देखत हिन्दी बोल। पुन साइने मे (?)"

खड़ीबोली मे ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पजाबी, अरबी, फारसी, शब्दों के मिल जाने से उसे रेखता अर्थात् मिश्रित बोली भी कहा जाने लगा। शिवाजी महाराज के पिता शाहजी की सभा मे जयराम कवि ने अपनी एक हिन्दी-रचना को 'रेखता' शीर्षक देकर उसका यह रूप प्रस्तुत किया है—

> "अकल चुराई मेरी कलमल पिटारे ने,
> महाबलि राजा दिलगीर करे है

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ १४१।

जिल्हे सब दुनीए के गर्नीम सब काटि काढे
जाके मात सत्तर हजार स्वार खरे हैं।
दौड़ ज्या शाम किभा शाम लेगे पुहच वहा।
साफ दिल कहता हूँ मुसाफ सिर धरे है
बाजि साहिजि के जोर मुझे साहिजहा डरे है।"[1]

इसी मराठी भाषी कवि ने 'भाखा' शब्द का भी प्रयोग किया है। यथा—
'भाखा कानन केहरि, तव कवि के हरि नाम।
एक ठोर गुन साहे को, बरनो गुन जस धाम।[2]

यह इतिहास-प्रसिद्ध घटना है कि सन् १२९४ ईसवी मे अलाउद्दीन खिलजी ने प्रथम बार महाराष्ट्र की राजधानी देवगिरि (वर्तमान दौलताबाद) पर आक्रमण कर वहाँ के राजा रामदेव को पराजित कर दिया। उस समय राजा ने संधि कर एलिचपुर का इलाका उसे दे दिया। परतु जब उसने एलिचपुर का वार्षिक कर देना बंद कर दिया, तब अलाउद्दीन ने अपने सरदार मलिक काफुर को दक्षिण भेजा, जिसने एलिचपुर प्रान्त को अपने अधिकार मे ले लिया। दूसरे ही वर्ष वह वारंगल के काकतीय राजा प्रताप रुद्रदेव द्वितीय पर टूट पड़ा और उसे पराजित कर उससे बहुत-सा धन लेकर उत्तर भारत लौट गया। सन् १३१० मे उसने पुनः दक्षिण पर चढाई की और मदुरा तक पहुँच गया। तीन वर्ष पश्चात् उसने चौथी बार दक्षिण पर चढ़ाई की और देवगिरि के यादवराजा को परास्त कर सारे महाराष्ट्र को लूटा। इस प्रकार अलाउद्दीन की सेनाएँ बराबर दक्षिण के संपर्क में बनी रही। अतएव हिन्दी का जो रूप वे अपने साथ लाई, वह मिश्रित खड़ी बोली (रेखता) का होना चाहिए। अलाउद्दीन के शासन-काल में खड़ीबोली काफी परिष्कृत हो चुकी थी। उसका दरबारी कवि अमीर खुसरो बड़ा प्रतिभाशाली कलासपन्न चतुर व्यक्ति था। फारसी के अतिरिक्त उसकी जो हिन्दी-रचनाएँ मिलती हैं, उनमें तत्कालीन हिन्दी-रूप के दर्शन होते है।[3]

उसने फारसी और हिन्दी-मिश्रित भाषा में भी रचना की है। ऐसी रचनाएँ कन्नड और मलयालम मे 'मणिप्रवाल-शैली' कहलाती है।[4] ब्रजभाषा मे भी उसकी रचनाएँ

---

१. राधामाधवविलास-चम्पू, पृष्ठ २४८।
२. राधामाधवविलास-चम्पू, पृष्ठ २४८।
३. पहेली—बीसों का सिर काट लिया,
　　ना मारा ना खून किया। (नाखून)
　दो सुखना—बम्हन प्यासा क्यों ?
　　गधा उदासा क्यों ? (लोटा न था)
४. ज़िहाले मिस्की मकुन तग़ाफुल, दुराय नैना बनाय बतियाँ।
　किताबे हिजरां न दारम ऐजां, न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
　शबाने हिजरां चूं जुल्फो, रोजे वस्लत चूं उम्र कोताह।
　सखी पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

मिलती हैं।[1] खुसरो की माता हिन्दुवानी थी और पिता तुर्क थे। अतएव उसमें देशी-विदेशी सभी सस्कार थे। वह उत्तर भारत की व्रज और खड़ी बोली के अतिरिक्त फारसी में भी अच्छी गति रखता था। "इतिहासकारो ने ख्वाजा मसऊद साद सलमान को हिन्दी का पहला कवि माना है, जिसने अपनी हिन्दी कविताओं का पूरा सग्रह तैयार कर लिया था और १०६६ ई० के लगभग वह फारसी-अरबी मे कविताएँ लिखता था। लाहौर का रहने वाला था। उसके हिन्दी-सग्रह की चर्चा अमीर खुसरो और मुहम्मद औफी ने की है।"[2] तात्पर्य यह कि जो हिन्दी-मुस्लिम-ससर्ग से दक्षिण मे गई वह मसऊद साद सलमान अथवा खुसरो के ढग की खडी बोली होगी। सेना मे यही मिश्रित जबान बोली जाती रही होगी। क्योंकि उसमें तुर्कों के अतिरिक्त हिन्दू और धर्मान्तरित मुसलमानों की पर्याप्त सख्या रहती थी।

अलाउद्दीन खिलजी के समय की एक घटना का भी उल्लेख आवश्यक है कि किस प्रकार महाराष्ट्र के दो बडे शासक-परिवार राजस्थान से दक्षिण मे गये और अपने साथ उत्तर भारतीय भाषा (हिन्दी) का सस्कार लेते गये। सन् १३०३ में अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर आक्रमण कर चित्तौड़ को जीत लिया था। उस युद्ध में वहाँ के राजा रत्नसिंह और उनके सहायक सिसोदिया के राजा लक्ष्मणसिंह मारे गये। लक्ष्मणसिंह के सात पुत्र भी हताहत हुए। उनके एक पुत्र अजयसिंह के दो पुत्र सज्जनसिंह और क्षेत्रसिंह हुए। अजय सिंह ने अपने भतीजे हमीर को गद्दी पर बैठाया, जिससे सज्जनसिंह और क्षेत्रसिंह दोनों क्षुब्ध हो गये। मुसलमानों के आक्रमण से सारा प्रदेश उजड़ चुका था। ऐसी स्थिति में दोनों भाई भाग्य की परीक्षा लेने सन् १३२४ मे राजपुताने से दक्षिण की ओर गये। इन्हींसे घोरपड़े और भोंसले घरानों की उत्पत्ति हुई।

इस समय दिल्ली में मुहम्मद तुगलक राज्य कर रहा था। उसने दक्षिण पर दृढ़ अधिकार रखने की दृष्टि से अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि (दौलताबाद) स्थानान्तरित करने का प्रयत्न किया। उसने सारी दिल्ली की प्रजा को वहाँ ले जाने का उपक्रम किया। बूढे, बीमार सभी घसीट कर ले जाये गये। उसके इस पागलपन का यह परिणाम हुआ कि बहुत से परिवारों को उत्तर से दक्षिण आना पड़ा। वह वहाँ ज्यादा ठहर नहीं पाया। उसे दौलताबाद से पुनः दिल्ली लौटना पड़ा। उसके लौटते ही दक्षिण में विद्रोह खड़ा हो गया। उसे दबाने के लिए उसने दिल्ली से हुसैन जाफ़रखाँ नामक सरदार को सन् १३४५ में दक्खिन की ओर भेजा, जिसने सज्जनसिंह और उसके पुत्र दिलीपसिंह को अपना विश्वासपात्र बनाया। सन् १३४७ मे जाफ़रखाँ ने अलाउद्दीन

---

१. **श्याम बरन पीताम्बर कांधे,**
मुरली धरे न होय
बिन मुरली वह नाद करत है,
बिरला बूझे कोय। (भौंरा)

२. **देखिए—उर्दू साहित्य का इतिहास (सैयद एहतिशाम हुसेन) पृष्ठ २०।**

नाम धारण कर बहमनी राज्य की स्थापना की। सहयोग देने के कारण सज्जनसिंह को दौलताबाद के निकटवर्ती दस गावों की जागीर भेंट में दी गई, जिससे वे भी एक सरदार कहलाने लगे। जाफरखाँ को एक गंगो नामक ब्राह्मण ने पाला था। गंगो ने फारसी को राज्यभाषा बनाकर स्थानीय बोलियों के आधार पर विकसित नई भाषा को प्रचलित किया जो हिन्दवी, हिन्दी और दक्खिनी कहलाई और यही बाद में उर्दू की भी एक शैली बन गई। बहमनी राज्य की राजधानी पहले गुलबर्गा और बाद मे बिदर में रही।

चौदहवीं शताब्दी में बहमनी राज्य के शासक मुहम्मद प्रथम ने अपनी रियासत मे सोने का सिक्का चलाना चाहा, पर दक्खिन के सुनार उस सिक्के को पाते ही गला देते और विजयनगर तथा वारंगल के सिक्कों को चला देते। मुहम्मद ने राज्य भर के सुनारों को मरवा डाला और उत्तर भारत के खत्रियों को उनकी जगह पर स्थापित किया।[1] इससे सिद्ध होता है कि उत्तर भारत से मुसलमानी सम्पर्क के कारण केवल सैनिकों की टुकड़ियाँ ही, जिनमें तुर्क, इस्लाम धर्मान्तरित हिन्दू आदि थे, दक्षिण में नहीं गईं, अपितु अन्य नागरिक व्यवसायी भी स्वयं गये या ले जाये गये। उनके साथ हिन्दी का—खड़ीबोली, ब्रज, राजस्थानी, अवधी आदि का—कोई-न-कोई रूप स्वभावतः संचरित हुआ।

हम अभी कह आये हैं कि बहमनी राज्य में मेवाड़ के सज्जनसिंह ने सरदारी स्वीकार कर ली थी। उनके वंशज उग्रसेन के दो पुत्र—करणसिंह और शुभकृष्ण हुए। करण सिंह के पुत्र भीमसेन बडे शूरवीर थे। उनके पिता करणसिंह ने सन् १४६२ मे खेलना का किला घोरपड लगाकर हस्तगत किया था। अतः मुहम्मदशाह बहमनी ने करणसिंह की मृत्यु के पश्चात् भीमसेन को 'राजा घोरपडे बहादुर' की उपाधि और मुधोल के पास ८४ गाँव की जागीर प्रदान की। करणसिंह के भाई शुभकृष्ण दौलताबाद की ओर वेरल के स्वामी बने और उनके वंशज भोंसले कहलाये। मुधोलकर घोरपडे और सातारकर भोंसले ये दोनों घराने मेवाड़ के सिसोदिया-राज्यवंश की दो शाखाएँ कही जाती हैं। भोंसले-वंश में शिवाजी महाराज का जन्म हुआ। घोरपड़ों ने मुसलमानों की अधीनता स्वीकारी और भोंसलों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किये। भोंसलों के वतनी गाँव औरंगाबाद, पैठण अहमद-नगर और पूना थे।

बहमनी राज्य के टुकड़े हो जाने पर भोंसले निजामशाही में रहने लगे। बहमनी राज्य महमूदशाह बहमनी के शासनकाल में बँट गया। उसके प्रान्तीय गवर्नर स्वतन्त्र हो गये। उन्होंने पाँच पृथक् राज्य स्थापित किये जो बरार या विदर्भ में इमादशाही, अहमदनगर में निजामशाही, बीजापुर में आदिलशाही, बिदर में बरीदशाही और गोलकुण्डा में कुतुबशाही कहलाये। अलाउद्दीन खिलजी ने जब से यादवों का राज्य समाप्त किया, तब से तीन सौ वर्षों तक महाराष्ट्र की भूमि पर मुसलमानों की सत्ता छाई रही। खण्डित बहमनी राज्य के सुलतान मराठा स्त्रियों से विवाह भी करने लगे थे। महाराष्ट्र में कई स्थानों पर मुसलमान शासकों ने स्थानीय भाषा को राजभाषा बनाया; पर दूसरी भाषा के रूप में

---

१. इतिहास-प्रवेश (जयचन्द), राजस्थान-संस्करण, पृष्ठ ३२६।

उन्होंने स्वभावतः उत्तर की भाषा 'हिन्दी' को अपनाया, क्योंकि वही उन्हे नजदीक पड़ती थी, पर बहमनी राज्य मे जैसा कि डा० बाबूराम सक्सेना ने 'दक्खिनी हिन्दी' मे फरिश्ता का हवाला देते हुए कहा है कि 'राज्य के दफ्तरों मे हिन्दी जबान प्रचलित थी।' सैयद एहितिशाम हुसेन भी अपने उर्दू साहित्य के इतिहास मे कहते है कि अगर प्रसिद्ध इतिहास 'तारीख फरिश्ता' की बात ठीक मानी जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि बहमनी बादशाहों के राज-कार्यालयों मे हिसाब-किताब हिन्दी-भाषा मे रखा जाता था (पृष्ठ ३५)। एच० रालेन्सन अपनी India—A Short Cultural History (इण्डिया—शार्ट कल्चरल हिष्टरी) मे ग्रेहमवेली के 'उर्दू लिटरेचर' के आधार पर लिखता है—'उर्दू साहित्य दक्खिन के सुल्तानों द्वारा प्रोत्साहित किया गया। हिन्दू से मुसलमान-धर्मान्तरित व्यक्तियों के लिए यह भाषा फारसी से आसान थी। अन्त में उर्दू ही राजभाषा बन गई।' (पृष्ठ २५६)। फरिश्ता के समय 'उर्दू' शब्द का जन्म ही नही हुआ था। इसलिए उसने 'हिन्दी' का प्रयोग किया है। मुस्लिम शासको के अधीन या स्वतन्त्र हिन्दू राजाओं ने भी स्थानीय भाषा के साथ-साथ हिन्दी को दो कारणों से प्रोत्साहित किया। एक तो वह उनके मूल स्थान की भाषा थी। दूसरे वह मुसलमान-शासकों के व्यवहार की भाषा बन गई थी। मुसलमान-शासक हिन्दी, हिन्दवी या रेखता का प्रयोग करते थे, वह अरबी-फारसी प्रभाव से बिलकुल बोझिल नहीं थी। "उत्तरी भारत ईरानी और अरबी संस्कृति से प्रभावित था, पर दक्षिण इससे मुक्त था। इसलिए यहाँ एक आर्य भाषा (हिन्दी) के विकास का अच्छा अवसर मिला।" (उर्दू साहित्य का इतिहास—सै० ए० हुसेन पृष्ठ ३६)।

हिन्दू-शासकों में शहाजी तथा शिवाजी महाराज के समय में हिन्दी को बहुत प्रोत्साहन मिला। शिवाजी महाराज की राजसभा मे हिन्दी के प्रसिद्ध कविभूषण की प्रतिष्ठा तो सर्व-विश्रुत है ही। कहा जाता है, गणेश और गौतम कवि भी उनके यहाँ थे। स्वयं शिवाजी का भी एक हिंदी पद प्राप्त है। वह इस प्रकार है—

"जय हो महाराज गरीब निवाज।
बंदा कमीना कहलाता हूँ साहिब तेरी लाज।
मै सेवक बहु सेवा माँगूँ इतना है सब काज
छत्रपति तुम सेकदार शिव इतना हमारा फर्ज।"

रामदासी सम्प्रदाय मे प्रत्येक शिष्य को प्रतिदिन पाँच पदो से ईश्वर-गुणगान करना पड़ता है। इसे पंचपदी कहते हैं। शिवाजी महाराज ने स्वरचित पंचपदी बनाई थी, जिसमें उपर्युक्त एक हिन्दी पद भी है।[१]

शिवाजी के पिता शहाजी बडे कलाप्रिय और साहित्यानुरागी थे। संस्कृतज्ञ और

१. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (भालेराव) भाग १०, पृष्ठ १०१।

शास्त्रज्ञों के अतिरिक्त उनकी राजसभा में ग्यारह प्राकृत (देशभाषा) कवि भी थे।[1] प्राकृत भाषाओं में मराठी, ब्रज, गुजराती, बख्तर, ठढार, पंजाबी, हिन्दुस्थानी, बागलाणी, फारसी, उर्दू और कानड़ी के कवि थे।[2] शहाजी महाराज का राजकवि जयराम मराठी-भाषाभाषी था। वह अपने ग्रंथ में दो-तीन स्थलों पर अपने संबंध में उल्लेख करता है—'महाराष्ट्र देशादागत्य प्राह।' 'महाराष्ट्र देशादागतो जयरामो नाम कवीश्वरः।'[3] महाराज की राजसभा में जो कवि बाहर से आते, वे जयराम को समस्या देते और स्वयं महाराज का यशोगान करते थे। महाराज उन्हें सुनते और प्रसन्न होते थे। एक बार रघुनाथ व्यास ने निम्नलिखित रचना सुनाकर उनका मनोरंजन किया—

'बैरन की वधू फिरै बैरन के वन में'

इसकी पूर्ति निम्नलिखित रूप में की गई है—

'माला मकरंद सुव साहेब बलिबंड तुव
दापहि सों कांपे तँहा कौन रहे रन में।
राजन के राजा तुव बाजा उन सह्यो जात
धाकतु है साहिजहां तहां मन में।
बाजत कर्णाटक भाजन कर्टाटुक,
बाटन में कागडे हाटक से तन में।
बालम की बाट लखे बार-बार बावरि सी
बैरन की वधू फिरे बैरन के वन में।'[4]

जयराम ने शहाजी की प्रशंसा में कहा है—

'तेरे गुन गनिवे के विधिना विधु ये मेरु करि,
तारा मुकुताहल माल मानो गही है।
साहे गुन जस धाम गम थक्यो अष्टे ज्याम
याते कहे जयराम तेरे संम तू ही है।'[5]

---

१. राधामाधवविलास-चम्पू (जयराम) पृष्ठ २०। इस ग्रंथ के भूमिका-लेखक ने बख्तर, ठंढार और बागलाणी भाषाओं का प्रयोग किया है। वह यह भी लिखता है कि इन भाषाओं को बोलनेवाले सैनिक शहाजी की सेना में भर्ती थे और वे इन्हें बोलते थे (पृष्ठ १४)। ये उत्तर भारत की किस स्थान की बोलियाँ हैं, ठीक नहीं कहा जा सकता।

२. राधामाधवविलास चम्पू-(जयराम कविकृत) पृष्ठ १४।

३. वही पृष्ठ २४।

४. राधामाधवविलास-चम्पू (शके १८४४ संस्करण) पृष्ठ २४६।

५. वही (शके १८४४ संस्करण) पृष्ठ २४१।

शहाजी की गुणीजनो के प्रति प्रीति देखकर उनके निकट उत्तर भारत से लोग आते रहते थे। जयराम ने अपने उपर्युक्त 'चम्पू' मे एक जगह उल्लेख किया है—

'आयो उत्तर देश तें घाटमपुर को भाट
उन्ह गजमद सो देश लो कीनी चह पह वाट।'[1]

महाराष्ट्र के हिन्दू शासको ने सदा से हिन्दी को सम्मानित किया है। शहाजी तथा शिवाजी महाराज के बाद पेशवाओं के समय में भी 'भाखा कवि' सभा मे पहुँचते थे और समादृत होते थे। सवाई माधवराव (पेशवा) को चिंतामणि मिसर (मिश्र) ने स्वरचित ध्रुपद गाकर आशीर्वाद दिया था—

'अचल राज रहो सवाई माधव महाराज राजन के राज
तेरी सरोबार को करिये, जग में तेरो हरत दुःख दरबार।
अष्टदिसा सप्तदीप नवखड को मुलुख तुमपर अवि ही साऽऽऽऽजे
देव गजानन की कृपा तुम पर मगल अपनी मन की काऽऽऽऽज।'[2]

महाराष्ट्र मे मराठी नाटकों का एक प्रारम्भिक स्रोत 'ललित' नामक स्वाँग भी है। बहुत से ललितों की भाषा हिन्दी हुआ करती थी। यह सत्रहवीं शताब्दी की बात है। मुसलमान शासन ऐसे स्वाँग देखते होंगे, उनमे से कुछ हिन्दी में रचना भी करते थे।[3] उन्हे प्रसन्न करने के लिए स्वाँगकारों ने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ कर दिया होगा। पर आम जनता भी उसका अभिनय देखती और अपना मनोरंजन करती थी। 'ललित' की भाषा का एक उदाहरण हम बालकृष्ण लक्ष्मण पाठक के 'ललित संग्रह' से दे रहे हैं—

'छड़ीदार— निर्गुण निराकार सृष्टि कू आधार
जिनकी नीति से वेद बने चार, उस साहब कू मुजरा करु,
नजर रखो मेहेरबान, साधु सत सुजान मेरे जुबान पर रखो ध्यान
कहे बंदा रामजी अज्ञान, सब साधु सज्जन कूं मूजरा करुं,
ऐसे महाराज निर्गुण निराकार, उन्ने लिए दश अवतार
किया दुष्टन का सहार, वो दीनोद्धार महाराज हैं, मेहेरबान सलाम।

पाटील—आप कौन हो?

---

१. राधा-माधव विलास चम्पू (शके १८४४ संस्करण) पृष्ठ २६८।

२. भारत इतिहास संशोधन मंडल (पुणे) अहवाल शके १८३९।

३ गोलकुण्डा के शासक मुहम्मद कुल्ली कुतुब (संवत् १९२३-९९) हिन्दी में कविता करते थे—

'रुत आया कलियों का हुआ राज,
हरि डाल के सिर फूलों का ताज।'
(राष्ट्रभाषा प्रचार सर्व-संग्रह, पृष्ठ ४)।

छड़ीदार—हम छड़ीदार, पोशाक पेना जड़ी जरदार ' 'गले में डाला भाव मोतन का हार।
ज्ञान ध्यान की वाधी तलवार भगवान के नाम को पुकारू' ललकार, ये ही हम छड़ीदार कहलाते हैं।

पाटील—तुमने कहाँ नौकरी वनाई ?

छड़ीदार—दश अवतार मे।

पाटील—कौन से दश अवतार मे ?

छड़ीदार—मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिह, वामन, परशुराम, राम श्रीकृष्ण, बौद्ध, कलकी ऐसे महाराज के दश अवतार मे नौकरी वनाई।

इसके वाद छड़ीदार दशों अवतारों के गुण-वर्णन करता है। छड़ीदार के वाद भालदार का प्रवेश होता है। वह इस प्रकार वोलता है—

भालदार, 'अर्ज सुनिये महाराज, आप गरीब निवाज, मालक सबके सिरताज, लाज रक्खो दास को, नजर रक्खो मेहर की। खाया चौरासी का फेर, देख आया दाम से मेर'' आदि।'

इस प्रकार के दार्शनिक स्वॉगों से सभी प्रेक्षकों का मनोरजन नहीं होता था। इसलिए सामाजिक व्यक्तियों की नकल करनेवाले स्वॉग भी लाये जाते थे। जब पडितजी (कथाकार) का स्वॉग आता तब वे सस्कृत, मराठी, हिन्दी आदि मिश्रित भाषा वोल उठते थे जिससे श्रोता हँस कर लोट-पोट हो जाया करते थे।[1]

इस तरह ज्यों-ज्यों उत्तर भारत का दक्षिण से राजनीतिक सबंध बढ़ता गया, हिन्दी-भाषा जनता मे सचरित होती गई।

अन्तिम पेशवा के काल मे अनंतफंदी (शके १६६६-१७८३) नामक स्वॉगधारी हो गए हैं। ये महाराष्ट्र के प्रसिद्ध लावनीवाज माने जाते हैं। मराठी के साथ-साथ हिन्दी मे भी लोक-रजनार्थ लावनियाँ गाते थे। इनकी एक हिन्दी लावनी का अंश नीचे दिया जाता है—

"बारा बरस का पठा (पट्ठा) देखो अंगी नयन पर झुरमुर डारी।
नयनों मे कजरा डार दिया पठा घर पर था सिर पर घगरी।
. . ..

गलमोतने (गलमोतिन) क हार छोमाछिम विच्चवन के झनकार।
रुमझुम पाउल बजावत नयनो की लग रही मार।
करंजफूल कानो मे चमकत माथा उपर शाल जरी।
बारा बरस का पाठा (पट्ठा) देखो अंगिनयन (अंगियन) पर झुरमुर डारी।
नयनो पर कजरा डार दिया पणघट पर था सिर पर घगरी।"[2]

---

१. साहित्यावलोकन (साहित्य-भवन, प्रयाग, प्रथम संस्करण) पृष्ठ १६३-१६४।
२. लावण्या भाग पहिला (चित्रशाला प्रेस, पुणे, आवृत्ति चवथी) पृष्ठ ७२।

आर्थिक

राजनीतिक कारणों के अतिरिक्त आर्थिक कारणों से भी उत्तर और दक्षिण की जनता का परस्पर सम्पर्क होता रहता था। व्यापार-व्यवसाय के लिए वणिक वर्ग का आवागमन होता ही रहता था। सन् १३४१—४२ मे मालवा मे अनावृष्टि के कारण भयकर अकाल पड़ा। तब अधिकाश लोग अपना घरबार छोड़कर यहाँ-वहाँ भागे। पड़ोसी प्रदेश महाराष्ट्र में भी उनका सचार हुआ। बहमनी मुसलमान शासक फीरोज के शासन-काल (स० १३६६) में महाराष्ट्र में इतना भीषण अकाल पडा कि तीस वर्ष तक वह पूर्व स्थिति में नहीं आ सका। सन् १६३० में पुनः महाराष्ट्र अकाल से काल-कवलित हुआ। जब जब ऐसी परिस्थिति आई है, जनता पडोसी प्रान्तों मे जाकर आश्रय लेती रही है। सूरत के एक डच व्यापारी ने सूरत से बटेविया स्थित डच-कौंसिल को एक अकाल के बारे मे लिखा था कि 'इस प्रकार की भयकर मॅहगाई कहीं किसी के अनुभव मे नहीं आई। कितना भी पैसा देने पर मनुष्य को खाने के लिए अन्न नहीं मिलता। कोष्टी, रगरेज, धोबी, सुनार आदि व्यवसायी लोग घरबार छोड़कर बाहर प्रान्तों में चले गए। इस मॅहगाई मे यह (बादशाह शाहजहॉ) बुरहानपुर में सन् १६३० से १६३२ तक सेना सहित रहा। *अकाल मे लोग महाराष्ट्र से बाहर प्रान्तो में भागे*।[1]

सत तुकाराम ने भी एक अकाल का उल्लेख अपने एक अभंग मे किया है—'बरे झाले देवा। निघाले दिवाले। बरीया दुष्कालें। पीड़ा केली। अनुतापमे तुझे। राहिले चिंतन। झाला हा वमन। सवसार।'

(हे भगवान! भला हुआ जो मेरा दिवाला निकल गया, भला हुआ जो इस अकाल में पीड़ा पहुँची। दुःख में तेरा चिंतन तो रहा।)

दुर्भिक्ष (अकाल) से पीड़ित हो जनता का आत्मरक्षा के लिए अपने निकटवर्ती प्रान्तों में आना-जाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त व्यापार-व्यवसाय के कारण भी उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत का सबंध रहा है। अवध, मगध और उज्जैन (अवन्तिका) व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे, साथ ही पालि भाषा के अध्ययन के भी। पूर्व में बंग (टिन) का व्यापार बहुत होता था, इसलिए 'बग' (टिन) से 'बंगाल' का नाम पड़ा है। साहसी 'सिंहों' (सभवतः उत्तर भारत की क्षत्रिय जाति) ने मराठा राष्ट्र में सैनिक छावनियाँ और व्यापारिक गोदाम स्थापित कर रखे थे। ये 'सिंह' ही 'सिंहलद्वीप' तथा सिगापुर के जन्मदाता भी कहे जाते हैं। बड़ी दूर-दूर तक इनका गमन होता था।[2]

शिलप्पदिकारम से पता चलता है कि उत्तर भारत से माल से लदी हुई गाड़ियाँ दक्षिण भारत में आती थीं तथा उस आनेवाले माल पर मुहर होती थी। इस प्रकार उज्जैन

---

१. मराठी रियासत (शहाजी) सरदेसाई पृष्ठ ४३

२. A Short History of Indian Literature By Ernest Horritz पृष्ठ १४२-१४३

होकर तमिलनाड के व्यापारी और यात्री काशी पहुँचते थे।[१] बैलगाड़ियों की यात्रा धीरे-धीरे होती थी। अतएव यात्री भी धीरे-धीरे भाषाएँ सीख लेते होंगे। अशोक के शिला-लेखों मे 'पत्तनिक' (पैठणवासियों) का उल्लेख मिलता है। ईसा शती के पूर्व से व्यापार-धंधे के लिए पैठण (महाराष्ट्र का प्राचीनकालीन प्रमुख नगर) के श्रेष्ठी और महाजन देश-भर मे सचार करते थे। ईसा की पहली शताब्दी में मेरिप्लस नामक एक मिस्री लेखक ने भारत के व्यापार के सबध मे लिखते समय पैठण के नाना प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है।

पैठण (प्रतिष्ठान) मे ईसा शती के पूर्व और पश्चात् भी चार सौ वर्ष तक शालीवाहन राज्य करते थे। इनके समय मे पैशाची, महाराष्ट्री आदि प्राकृतो को राज्याश्रय प्राप्त था। अतः उत्तर की भाषाओं से यहाँ की प्रजा परम्परा में परिचित रही है।

धार्मिक

उत्तर और दक्षिण की जनता को परस्पर निकट लाने का श्रेय धर्म और धर्माचार्यों को है। अशोककाल में बौद्ध प्रचारकों ने दक्षिणापथ ही मे सचार नहीं किया, सिंघल तथा अन्य देशों में भी प्रवेश किया। बुद्ध भगवान ने लोकभाषा पालि में उपदेश दिये। अतः जहाँ जहाँ बौद्धमत गया, पालिभाषा और उसकी उत्तराधिकारिणी प्राकृत भाषाएँ भी गईं। इसी प्रकार जैन-मत के साथ उत्तर की आर्यभाषाओं की परम्परा भी दक्षिण में पल्लवित हुई। दक्षिण के धर्माचार्यों ने भी (शकराचार्य से लेकर वल्लभाचार्य तक) उत्तर भारत में अपने मत का प्रचार कर जनता में नूतन धर्म-विश्वासों को अकुरित और पल्लवित किया। आठवीं शताब्दी मे शकराचार्य सुदूर दक्षिण के ग्राम में उत्पन्न हुए और नर्मदा के किनारे उन्होने गोविन्द संन्यासी से दीक्षा ली। बनारस जाकर जिज्ञासुओं को अपने अद्वैत-मत की शिक्षा दी तथा सारे उत्तराखण्ड में धार्मिक क्रान्ति उपस्थित कर दी। रामानुज के समकालीन आन्ध्रवासी निम्बार्क कृष्णभक्ति के प्रवर्तक थे। उन्होंने भी अपने मत के प्रचार के लिए उत्तर भारत की यात्राएँ की। लगभग सन् ११६३ में उनका देहान्त हुआ। दक्षिण कर्नाटक के प्रसिद्ध द्वैतवादी मध्वाचार्य ने भी उत्तर भारत में हरि-भक्ति का सदेश पहुँचाया और हिमालय प्रदेश में वर्षों वास किया। पुष्टिमार्ग-प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य भी दाक्षिणात्य थे। उनका उत्तर भारत में भ्रमण और भगवान श्रीकृष्ण के लीलाक्षेत्रों में निवास तथा सकीर्तन सर्वविश्रुत है। हिन्दी का मधुर कृष्ण काव्य उनकी प्रेरणा का फल है। क्या ये आचार्य केवल सस्कृत के सहारे ही समस्त उत्तर भारत की जनता तक पहुँच सकते थे? क्या ये तत्कालीन लोकभाषा-ज्ञान से सर्वदा अछूते रह सकते थे?

उत्तर भारत का नाथ-पथ जब महाराष्ट्र मे प्रविष्ट हुआ, तब उसने भी लोकभाषा मराठी का आश्रय लिया। गोरखनाथ का समय क्या है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता; पर यह

---

१. सार्थवाह (डा० मोतीचंद्र) पृष्ठ १५६-१५७।

मान्यता है कि नाथो ने बारहवीं शताब्दी मे महाराष्ट्र मे धार्मिक जागृति का भारी कार्य किया। नाथों के सस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी मे भी ग्रथ उपलब्ध है। मराठी में भी उनके नाम पर प्रचलित कृतियॉ पाई जाती है। महाराष्ट्र के नाथ पथियों को अपने गुरुओ के हिन्दी भापा में रचित ग्रथ पढ़ने की सहज उत्कंठा रही होगी। इस बहाने उन्होंने हिन्दी से परिचय प्राप्त किया होगा। महाराष्ट्र में नाथों के हिन्दी रचित मंत्र-तंत्र भी प्रचलित रहे हैं। श्री राजवाडे को पुणे में एक हस्तलिखित पोथी मिली थी, जिसके संबध मे उनका विचार है कि भाषा के रूप से प्रतीत होता है कि उनकी रचना चार-पॉच सौ वर्ष पूर्व हुई होगी। उसमे मराठी के साथ-साथ हिन्दी में भी टोटके-मंत्र आदि दिये गये हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) मार्ग-रक्षक मंत्र

श्री गोपाल, पच भैरव रक्षेन
दार चोर न ढुके।
बाघ न खायं।
काल न बरसे।
डरके न खाय।
रक्षा करे श्री गोरखनाथ।

(२) घर-रक्षक मंत्र

अरड़ बॉधो, थड बॉधो तंबा ताई
चौरासी लख जिवजत बाधों, जाति गोरख की दाही

(३) मूठ मारने का मंत्र

उन्मो आदेश गुरु कु
नागवेल कु मेरी पान
जीमे देऊ सो तजे प्रान
छाड-छाह भाये और बाप छाह
अन ब्याहा भाई माई छयाड
तिनकु छयाड
म्हारे पाछे लाग
म्हारे हात का काल खाये के लेये
मुजे छाड अवर मन कर
तुरत छाती काट कर मरे
गुरु की शकुक्त
मेरी भक्त
फुरो मत्र
ईश्वरी वाच्या।

(४) सर्व रक्षाकरण मंत्र

नमो आदेश गुरु को
पग राखे पताल
जिव राखे काल
मस्तक राखे निरकार
आकासीं मृत्तिका
पातालि मृत्तिका
तिंहि तालि मृत्तिका
ऐसा कौन बलि है
म्हैसासुर मारे तो कलेजा कांड
चूके तो मतभग
सुर की सह
फुरो मत्र
फट स्वाहा
ईश्वरी वाचा ।[1]

नाथ-मत के प्रचलन के पश्चात् महाराष्ट्र मे महानुभाव-पंथ का उदय हुआ। इसके संस्थापक चक्रधर स्वामी गुजराती ब्राह्मण थे जो गुजरात से महाराष्ट्र मे आये। उन्होंने अपने मत का प्रचार महाराष्ट्र तक ही सीमित नहीं रखा, वह उत्तर भारत की सीमा लाँघकर अफगानिस्तान की राजधानी काबुल तक पहुँच गया। महानुभावों में मराठी-भाषियों के अतिरिक्त हिन्दी-भाषियों की भी पर्याप्त संख्या है। अतएव महानुभावी धर्माचार्यों की मराठी के साथ-साथ हिन्दी में भी वाणी मिलती है। स्वयं चक्रधर की हिन्दी-चौपदी प्राप्त हैं।

महानुभावों के बाद महाराष्ट्र में चन्द्रभागा के तीरवर्ती पढरपुर के क्षेत्र से 'विठ्ठल भक्ति' का स्रोत प्रवाहित हुआ, जिसने समस्त महाराष्ट्र को आप्लावित कर दिया। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम इस मत के प्रबल प्रचारक हैं। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ आदि सतों की उत्तर भारत-यात्रा प्रसिद्ध है। वारकरी-मत के राजस्थान और पजाब में आजतक अनुयायी पाये जाते है। अतएव वारकरी सतों में बहुतों ने हिन्दी-पद रचे हैं।

संत राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए अनेक विधान रचते आये हैं। बारह ज्योतिर्लिंग भारत के सभी स्थानों मे बिखरे हुए हैं। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काची, अवंतिका, पुरी, द्वारावती—इन सात स्थानों को मोक्षदायक की संज्ञा प्रदान की गई है। इसी प्रकार निम्नलिखित सात सरिताओं को पुण्य सलिला माना गया है—

'गंगेच यमुनेचैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा, सिंधु, कावेरी जलेस्मिन सन्निधं कुरु।'

---

१. भारत इतिहास संशोधन मंडल, अहवाल शके १८३२, पृष्ठ ४८–५१।

शखस्मृति मे निम्नोक्त सरिताएँ और क्षेत्र पवित्र माने गये है—

गगायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यामरकण्टके ।
नर्मदावाञ्जदातीरे भृगुलिङ्गे हिमालये ॥
गङ्गाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा ।
सन्निहित्या गयायाश्च दत्तमक्षयता व्रजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥

शख ने गगा, यमुना, पयोष्णी (विदर्भ की पूर्णा नदी), कोमल और मालव का नर्मदातट, हरिद्वार, प्रयाग, गया को मान्यता दी है। यह स्पष्ट है कि राम और कृष्ण की लीलाभूमि होने से बहुत से तीर्थक्षेत्र उत्तर भारत मे हैं । अतएव धर्म-पिपासु भारतीय जनता विशेष पर्वों पर वहाँ पहुँचती रहती है। उत्तर तथा दक्षिण मे प्राप्त वाकटक और गुप्तकालीन पुरालेखों में वर्तमान काल को कलियुग कहा गया है, जहाँ अधर्म की बाढ़ बताई गई है। प्रयाग की त्रिवेणी मे मरण मुक्तिदाता माना गया है। अतः दक्षिण के राजा प्रायः तीर्थराज में जाते तथा दान आदि दिया करते थे। संत किसी मत के क्यों न हों, अपने विश्वासो को जनता तक पहुँचाने की आतुरता रखते है। अतएव वे पुण्य अवसरों पर अपने अनुभवों का लाभ जनता को प्रदान करते रहे हैं।[1] महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संतों में लोक-मंगल की भावना सदा से तीव्र रही है। यही कारण है कि उनकी मराठी के अतिरिक्त हिन्दी मे भी वाणियाँ उपलब्ध हैं। हम यह कह सकते हैं कि महाराष्ट्र के सतो का पवित्र स्पर्श पाकर हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में द्रुतगति से अग्रसर हुई है ।

दक्षिणापथ मे हिन्दी-प्रचार के राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक कारणो पर सिंहावलोकन करते समय निम्नलिखित तथ्य प्रकाश मे आये हैं—

(१) अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के पश्चात्, तेरहवीं शताब्दी में दक्षिण मे हिन्दी का संचार हुआ ।

(२) मुहम्मद तुगलक ने जब चौदहवीं शताब्दी में अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद मे स्थानान्तरित की, तब समस्त दिल्ली के साथ वहाँ की भाषा भी दक्षिण में पहुँची ।

(३) मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व नाथ पथियो ने महाराष्ट्र की धार्मिक जागृति मे योगदान दिया और इस तरह उनके द्वारा वहाँ हिन्दी का प्रवेश हुआ तथा महानुभाव तथा वारकरी पथ-प्रवर्तकों ने उसका प्रचार किया ।

(४) मुसलमानो के आक्रमण के समय आर्यों ने अपनी सास्कृतिक एकता स्थिर रखने के लिए मध्यदेश की भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया और इस तरह क्रमशः हिन्दी का दक्षिण मे स्वतन्त्र उदय हुआ ।

---

१. New History of Indian People (भारतीय इतिहास परिषद्) पृष्ठ ३७६ ।

तथ्यों की परीक्षा

अब हम उपर्युक्त तथ्यों की क्रमशः परीक्षा करेंगे—

तथ्य (१) और (२) के संबध में निवेदन है कि मुसलमान शासकों के देवगिरि या सुदूर मदुरा तक पहुँच जाने मात्र से वहाँ उत्तर की भाषा का संचार नहीं हो सकता। किसी भी भाषा को जनता तक पहुँचने के लिए समय अपेक्षित है। यह हो सकता है कि अलाउद्दीन खिलजी और मोहम्मद तुगलक के बार-बार दक्षिण-अभियान और अन्त मे वहाँ शासन-व्यवस्था स्थापित करने से जनता हिन्दुई या देहलवी भाषा से अधिक परिचित हो गई हो; क्योंकि उसे अधिकारियों और फौजियों के सम्पर्क मे बार-बार आना पड़ता था। पर दक्षिण मे हिन्दी-प्रवेश तुर्क शासकों के पूर्व ही हो चुका था। देवगिरि के यादवों के काल मे ही हम महानुभावो और वारकरी संतो को हिन्दी मे पद-रचना करते हुए देखते है। वारकरी-संत नामदेव का समय, जिनके बहुत अधिक हिन्दी-पद मिलते हैं, सन् १२७० और १३५० के मध्य है और उनके पूर्व महानुभाव-पंथ के संस्थापक चक्रधर स्वामी का मत-प्रचार-काल १२६३ ई० और १२७१ ई० के मध्य है। चक्रधर की हिन्दी चौपदी मिलती हैं। अतएव तुर्कों के दक्षिण-विजय के पूर्व दक्षिण मे हिन्दी का प्रवेश और प्रचार हो गया था। मुसलमानो के संसर्ग से यह अवश्य हुआ कि प्रचलित हिन्दी मे विदेशी फारसी अरबी शब्द क्रमशः आने लगे। पहले तो मुसलमान कवि ही उनका प्रयोग करते रहे, परंतु बाद मे वे इतने अधिक प्रचलित और टकसाली हो गये कि हिन्दी संतों की जबान पर भी चढ़ गये और उनकी 'वाणियो' मे उतरने लगे। महाराष्ट्र में वारकरियो से पूर्व महानुभावपंथी संतो की वाणियो में खड़ीबोली के साथ साथ ब्रजभाषा और मराठी का पुट मिलता है। अरबी-फारसी शब्दों का प्रवेश उनमें नही है।

वारकरी संत नामदेव ने भी मुसलमानी सम्पर्क के पूर्व हिन्दी में पद-रचना प्रारम्भ कर दी थी। तात्पर्य यह कि तुर्कों के महाराष्ट्र में प्रवेश के पूर्व शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न हिन्दी के ब्रज और खड़ीबोली के रूप वहाँ विद्यमान थे और मुसलमानो के प्रवेश के पश्चात् उनमें विदेशी शब्दो का आगमन होने लगा।

तथ्य (३) के संबध में निवेदन है कि 'नाथ-पंथ' ने वारकरी-सम्प्रदाय के पूर्व ही महाराष्ट्र में धर्म-जागृति का कार्य किया है। नाथों के प्रसिद्ध गुरु गोरखनाथ, जो ज्ञानेश्वर की गुरु-परम्परा में आते हैं, कब पैदा हुए और कब दक्षिणापथ में आये, ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, पर ईसा की बारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र मे इस पंथ का खूब प्रचार था, इसका उल्लेख हो चुका है। मुसलमानों के दक्षिण-प्रवेश के पूर्व उनका वहाँ पहुँचना असंदिग्ध है। नाथो के मत-प्रतिपाद्य ग्रंथ मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी हैं। जादूटोने के मंत्र, जो महाराष्ट्र मे नाथो द्वारा प्रचलित हुए थे, भी हिन्दी में हैं और जनता उनका उच्चार करती रही है। वारकरी-संतो में गुरु गोरखनाथ के हिन्दी-उपदेशों को जानने की स्वाभाविक इच्छा रही होगी। उनके द्वारा उनका मनन-चिन्तन और उपदेश भी होता होगा। हम पहले अध्याय मे देख चुके हैं कि हिंन्दी और मराठी भाषाओ मे लिपि और प्रवृत्तियों की

दृष्टि से कितनी निकटता है ! अतएव हिन्दी पढने और सीखने मे मराठी-भाषियों को विशेष कठिनता का अनुभव नहीं हुआ । 'नाथों' के महाराष्ट्र-प्रवेश के पूर्व भी महाराष्ट्र के मालखेट में दसवीं शताब्दी में रचित अपभ्रश कृतियो में हिन्दी विकास के चिह्न दिखलाई देते है । अतएव नाथों को भी दक्षिण मे सबसे प्रथम हिन्दी ले जाने का एकान्त श्रेय नही दिया जा सकता । वे प्रचारक ही कहे जा सकते है ।

चौथे और अन्तिम तथ्य के संबंध में निवेदन है कि आर्यों की सास्कृतिक भाषा संस्कृत का सुदूर दक्षिण में तुर्कों और नाथों के आगमन के पूर्व ही प्रचार रहा है । वेदों के भाष्य, धर्म, दर्शन तथा आदि ग्रथों का प्रणयन अनेक दाक्षिणात्यो द्वारा हुआ है । मध्यदेश मे संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषाओ का जब महत्त्व बढ़ा, तब वे भी दक्षिण मे पहुँचीं । सन् ११२६ ई० में चालुक्यवंशीय राजा सोमेश्वर तृतीय रचित 'अभिलषितार्थ चितामणि' में जहाँ सस्कृत के अतिरिक्त कन्नड़, तेलुगु और मराठी भाषा के उदाहरण मिलते हैं, वहाँ हिन्दी के भी उदाहरण विद्यमान हैं । और यदि पुष्पदन्त की प्राकृताभास भाषा के हिन्दी-रूप पर विचार करें, तो दक्षिण में हिन्दी के चिह्न ईसा की दसवीं शताब्दी तक देखे जा सकते है ।

"प्राचीन लेखों तथा ग्रथो से यही ज्ञात होता है कि शौरसेनी अपभ्रश, जो नागर अपभ्रंश भी कहलाती थी, लगभग ८०० ई० से शुरू होकर लगभग १२००–१३०० ई० तक उत्तर भारत में विराट साहित्य-भाषा के रूप मे विराजती रही । संस्कृत के बाद इस शौरसेनी अपभ्रंश का स्थान था । चार-छः सौ वर्षों तक सिन्धु प्रदेश से पूर्वी बगाल तक और काश्मीर, नेपाल, मिथिला से लेकर महाराष्ट्र और उड़ीसा तक तमाम आर्यावर्ती देश इस शौरसेनी या नागर अपभ्रंश नामक साहित्यिक भाषा का क्षेत्र बन गया था।"[1] तभी दिल्ली मे पैदा होनेवाला पुष्पदन्त जब महाराष्ट्र के मालखेट में जाता है, तब शौरसेनी अपभ्रश में सहज ही ग्रथ-रचना कर सका।

सन् ८०० और १००० ई० काल तक स्थिति यह थी कि "किसी उत्तर भारतीय आर्य भाषी को यदि देशाटन करना और साथ-साथ साधारण जनों तथा शिष्ट जनों से मिलना होता था, तो संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी अपभ्रश के सिवा उसका कार्य ही नहीं चलता था । शौर-सेनी अपभ्रंश उन दिनों अन्तःप्रादेशिक भाषा थी । आजकल की ब्रज, खड़ीबोली और विभिन्न प्रकार की हिन्दी का उद्गम इस शौरसेनी अपभ्रश से ही हुआ है । अब की तरह एक हजार वर्ष पहले हिन्दी ही अपने पूर्व रूप में अन्तःप्रादेशिक भाषा के रूप में अखिल उत्तर भारत पर फैली थी और तमाम आर्यभाषी लोगो मे पढ़ी, पढ़ाई और लिखी जाती रही है।"[2]

निष्कर्ष यह कि दक्षिण में हिन्दी का सचार आर्यों के दक्षिण-प्रवेश का स्वाभाविक परिणाम है । दक्षिण के आर्यों ने अपने मूल स्थान मध्यदेश से सम्पर्क बनाए रखने के लिए वहीं की भाषा को अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा स्वीकार किया । राजनीतिक,

---

१. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी (पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ), पृष्ठ ७६ ।

२. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी (पोद्दार-अभिनंदन ग्रंथ), पृष्ठ ७६ ।

आर्थिक, धार्मिक आदि कारणों से दक्षिण और उत्तर भारत के आर्यों का किस प्रकार परस्पर सम्पर्क होता रहता था, यह हम देख ही चुके है।

दक्षिणापथ अर्थात् महाराष्ट्र में मुसलमानो के आगमन के पूर्व हिन्दी प्रचलित थी, यह महानुभाव और अन्य सन्तो की वाणी से सिद्ध हो जाता है। मुसलमानो के राज्य स्थापित होने का यह परिणाम अवश्य हुआ कि ब्रज और खड़ीबोली मिश्रित हिन्दी में अरबी-फारसी के शब्दो का विशेष समावेश होने लगा और हिन्दी की नवीन शैली का जन्म हुआ, जिसे बाद में, हिन्दी, दक्खिनी हिन्दी, रेखता आदि के नाम से अभिहित-किया गया।

'रेखता' पद्य की भाषा का नाम था। राग-रागिनियो के मेल को संगीतशास्त्र में रेखता कहा जाता है। प्रतीत होता है, मिश्रित भाषा के स्वरूप का यह नाम वहीं से लिया गया है। ब्रजभाषा को महाराष्ट्र में 'ग्वालेरी' भी कहा जाता रहा है। सत्रहवीं शताब्दी में महिपतिबुआ ने मराठी मे 'भक्ति-विजय' नामक सतचरित्र लिखा है। उसमे उन्होंने नाभाजी के भक्तमाल की ब्रजभाषा को 'ग्वालेरी' कहा है।[1] मुसलमान शासकों ने दिल्ली से पृथक् शैली में 'दक्खिनी' का विकास किया। जबतक उसमे देशी शब्द प्रचुर रहे, वह हिन्दी बनी रही और जब विदेशी शब्दों की प्रचुरता बढ़ी, उर्दू हो गई।

महाराष्ट्र के सतों ने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी मे भी उत्साह से रचना की है और यह उनके हृदय की राष्ट्रीय मगल-भावना का परिणाम है कि मराठीतर जनता भी उनके उपदेशों से लाभान्वित होती रहती है। उनकी वाणी का रसास्वाद करने के पूर्व, हमें महाराष्ट्र में प्रचलित मुख्य संत सम्प्रदायों से परिचित हो जाना चाहिए।

---

१. **नाभाजी विरंची अवतार। तेणे संत चरित्र ग्रन्थ थोर**
ग्वालेरी भाषेंत लिहिला असे। (महाराष्ट्र सारस्वत), पृष्ठ ६२३।

तीसरा अध्याय

महाराष्ट्र के प्रमुख संत-सम्प्रदाय

सामान्य जनता मे सासारिकता से विरक्त परमतत्वान्वेषक को 'सत' कहने की परिपाटी है। परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में निर्गुण ब्रह्मोपासको को 'सत' और सगुण ब्रह्मोपासकों को 'भक्त' नाम से अभिहित करने की परिपाटी है। स्वर्गीय वड्थ्वाल ने इसकी उत्पत्ति पालि भाषा के उस शात शब्द से मानी है, जिसका अर्थ निवृत्तिमार्गी या विरागी होता है। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि यह सत् शब्द का वहुवचन हो सकता है, जिसका अभिप्राय एकमात्र सत्य में विश्वास करनेवाला अथवा उसका पूर्णतः अनुभव करनेवाला व्यक्ति समझा जाता है।[१] इसीसे मिलती-जुलती बात पं० परशुराम चतुर्वेदी भी कहते हैं—"सत शब्द उस व्यक्ति की ओर सकेत करता है, जिसने सत्रूपी परमतत्त्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो, जो सत्यस्वरूप नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो, वही सत है।[२] 'सत' के इस रूप को समझ कर भी हिन्दी वाड्मय में केवल निर्गुणवादी को सत कहने की परिपाटी चल पड़ी है, जो केवल व्यावहारिक मात्र कही जा सकती है। 'परम सत्य' का साधक चाहे अपने 'पिंड' मे 'उसके' दर्शन करे, चाहे पिंड से बाहर सृष्टि के अणु-अणु में 'उसका' स्पदन अनुभव करे, सत ही है। सगुण और निर्गुण में विभाजक रेखा खींच कर एक को 'भक्त' और दूसरे को 'सत' कहने से इतिहास-लेखन मे सुविधा हो सकती है, तथ्य-ग्रहण में नहीं।

मराठी-साहित्य मे 'सत' शब्द व्यापक अर्थ मे व्यवहृत होता है। वहाँ विष्णु के अवतार 'राम' के उपासक तुलसीदास सत हैं और ब्रह्म के प्रतीक 'राम' का नामस्मरण करनेवाले निर्गुणी कवीर भी सत हैं। वहाँ भक्त और सत के बीच कोई भेद नहीं माना

---

१. हिन्दी काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय—प्रस्तावना, पृष्ठ ४।
२. उत्तर भारत की संत-परम्परा, पृष्ठ ५।

गया। धुंडा महाराज ने विगतवर्ष (सन १९५४ में) मराठवाड़ा सत-साहित्य-परिषद् मे कहा था—"जिसमे मानव जाति के हृदयों में ईश्वरभाव, सद्धर्मनिष्ठा, नैतिकता, परधर्म सहिष्णुता, अन्तर्मुखता, सेवा, त्याग, प्रेम आदि दैवी गुण जागृत होते है, वे सब संत वाङ्मय हैं।"[1] 'वैकुण्ठवासी सत' जनता की आत्मा मे परमात्मा की तड़पन पैदा करने के लिए भूलोक मे आते है। उनका यही साध्य है और उस तक पहुँचने के लिए उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार भिन्न-भिन्न साधन प्रस्तुत किये हैं। उन्हीं साधनो के अनुसार उनके 'पथ' हो गये हैं। पंथों की विभिन्नता मे गन्तव्य की एकता निस्संदेह है। संत नामदेव ने अपने एक अभंग मे संत के लक्षणों का वर्णन किया है। उनके मत से जो सब प्राणियों मे परमात्मा को देखता है, जो सोने को मिट्टी और जवाहरात को पत्थर समझता है, जिसने अपने हृदय से क्रोध और वासना को हटा दिया है, जो शाति और क्षमा को मन मे स्थान देता है, जिसकी वाणी भगवान का नाम लेती रहती है, वह संत है।"

जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलनभाव को साध्य मानकर लोक-मंगल की कामना करता है, उसे हम 'संत' की श्रेणी मे रखते हैं। महाराष्ट्र मे समय-समय पर जो धर्म-सम्प्रदाय प्रचलित रहे है, उसका यहाँ विहंगावलोकन किया जाता है।

उत्तर भारत से जब आर्य महाराष्ट्र में आकर वसे तब अपने साथ वैदिक धर्म की परम्परा लेकर आये। और वहाँ उसीकी प्रतिष्ठा हुई। उसके पश्चात् जब उत्तर मे अहिंसा के तत्व को लेकर जैन और बौद्ध मतो का उदय और प्रचार हुआ, तब वे भी महाराष्ट्र मे सचरित हो गये। यद्यपि जैन मत बौद्धमत के पूर्व ही प्रादुर्भूत हो चुका था, तोभी महाराष्ट्र मे पहले बौद्ध मत का ही प्रवेश हुआ। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व सातवाहन-सम्राटों के समय में महाराष्ट्र मे बौद्धपंथ की महायान शाखा ने जनता में धर्मोपदेश दिया। महायान शाखा मे बुद्ध और बोधिसत्व की भक्तिपूर्ण पूजा मोक्ष प्राप्ति का एक साधन मानी जाती है। उसमे भक्ति को ज्ञान से अधिक महत्व दिया जाता है। पौराणिक मत के अनुसार उसमे देवताओ की कल्पना है। बुद्ध और बोधिसत्व के अनेक अवतार माने गये हैं, जिनकी सख्या अस्सी हजार है। इसके अतिरिक्त शकर, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि पौराणिक देवताओं का भी उसमे समावेश है। यही कारण है कि सामान्य जनता उसके प्रति सहानुभूति रख सकी। महाराष्ट्र मे ठाणे, रत्नागिरि, कुलाबा, कोकण, पुणे, नाशिक, औरंगाबाद, सातारा आदि स्थानों में बौद्ध-गुफा-मंदिर है, जिन्हे महाराष्ट्र मे 'लेण' कहते हैं। प्रत्येक 'लेण' एक ही चट्टान को काटकर बनाई जाती है। ये बौद्ध चैत्य हैं। इनमे बौद्ध मूर्ति और चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने पाये जाते हैं।

---

१. प्रतिष्ठान (जुलाई १९५४) पृष्ठ २२।

महाराष्ट्र मे बौद्धमत के पश्चात् जैनमत का प्रवेश हुआ। इस पथ मे अहिसा और भिक्षावृत्तियुक्त परिव्रजा को श्रेष्ठ माना जाता है।

इस पथ के सस्थापक महावीर 'जिन' की पदवी से विभूषित किये गये हैं, जिसका अर्थ है—इन्द्रियविजयी। तप और इन्द्रिय-दमन पर उनका विशेष आग्रह है। उपवास तप का ही एक अंग है। यति और गृहस्थ दोनों को उसे करने का उपदेश दिया जाता है। महावीर चौबीसवे तीर्थंकर माने जाते हैं। जो भवसागर तरने का मार्गदर्शन करता है, उसे तीर्थंकर कहते हैं। इस पंथ के श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दो भेद हैं। श्वेत वस्त्रधारी श्वेताम्बर और वस्त्रविहीन दिगम्बर कहे जाते हैं। परन्तु दिगम्बर-सम्प्रदाय में पहले सन्यासी भले ही नग्न रहा करते हों, पर सामान्य जनता वस्त्र-धारण करती रही है। श्वेताम्बर के भी दो उपभेद हैं—एक मूर्त्तिपूजक और दूसरे स्थानकवासी। श्वेताम्बर में मठ की दृष्टि से साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—ये चार वर्ग हैं। दिगम्बर में साध्वी को स्थान नहीं है।

महाराष्ट्र मे बौद्धों की 'लेण' की अनुकृति पर जैनियों की भी लेणें पाई जाती हैं, परन्तु उनकी सख्या साठ-सत्तर से अधिक नहीं है। बौद्धों के समान जैनियो की लेणें बड़ी नहीं हैं। वे पुणें, नासिक और खानदेश में यत्र-तत्र हैं। लेण में महावीर की मूर्ति सिंहासन-स्थित होती है, पास ही उनके शिष्य गौतम स्वामी, चार नाग और पारसनाथ की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। महाराष्ट्र मे जितनी प्राचीन जैनी लेणें हैं, उतने प्राचीन जैन-मंदिर नहीं हैं। महाराष्ट्र में बौद्धचैत्यों की अधिक संख्या होने से सिद्ध होता है कि वहाँ जैनमत का अधिक प्रभाव और प्रचार नहीं हो पाया।

महाराष्ट्र के दक्षिण भाग में वीर शैव अर्थात् लिंगायत पथ भी प्रचलित था। इसकी स्थापना कर्नाटक में ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुई। बसवेश्वर इसके संस्थापक हे। उस समय द्रविड़ देशों में शैव और वैष्णव मत का प्रचलन था। वसव न वहीं के शैवमत से अपने लिंगायत पंथ की प्रेरणा ग्रहण की। 'वीर शैवाचार प्रदीपिका' में इस पंथ के आचार-धर्म का निर्देश है। सभी वर्णों को धर्म-मर्यादा के भीतर आचरण कर मोक्ष प्राप्त करने का इसमें उपदेश है। ब्राह्मण को लिंगायत होने के लिए तीन वर्ष, क्षत्रिय को छह वर्ष, वैश्य को नव वर्ष और शूद्र को बारह वर्ष उम्मीदवारी करनी पड़ती थी। शिव लिंग पूजक जाति भेदातीत माना जाता था। पहले सभी वर्ण के व्यक्ति इसकी ओर आकृष्ट हुए, परन्तु जब इसमें ब्राह्मणों की अपेक्षा अन्य जातियों का प्राबल्य हुआ, तब ब्राह्मण इसमें से क्रमशः छूटने लगे। साम्प्रत इस मत के अनुयायियों में वैश्यों की सख्या अधिक है।

लिगायतो में वर्ण-भेद पाया जाता है। परन्तु अहिंसा-तत्त्व को जैन और बौद्ध मतों के समान ही महत्त्व दिया जाता है। यह मत वैदिक मत के बहुत सन्निकट है।

चातुर्वर्ण्य का निषेध और शैवव्रत का पालन इसके प्रारंभिक मुख्य लक्षण थे ; पर बाद मे तो इसमे भी जाति-भेद प्रविष्ट हो गया। जंगम लिंगायतों मे श्रेष्ठ और पूज्य ब्राह्मण माना जाता है। वह छोटी जाति के लिंगायत के यहाँ भोजन नही करता। वह पथ महाराष्ट्र की सीमा पर ही रहा।

महाराष्ट्र में जिन प्रमुख सम्प्रदायों ने जनता को अधिक प्रभावित किया, वे हैं—

(१) नाथ-सम्प्रदाय,
(२) महानुभाव-सम्प्रदाय,
(३) वारकरी-सम्प्रदाय,
(४) दत्त-सम्प्रदाय,
(५) समर्थ-सम्प्रदाय।

इनमे वारकरी-सम्प्रदाय का प्रभाव सर्वव्यापक है। इसने पूर्ववर्ती नाथ-सम्प्रदाय को अपनेमें समाहित कर लिया है और परवर्तियों को इतना अधिक प्रभावित किया है कि उनमे तात्त्विक भेद प्रायः बहुत ही कम रह गया है, जो आगे होनेवाले सिंहावलोकन से स्पष्ट हो जायगा।

(१) नाथ-सम्प्रदाय

वारकरी-सम्प्रदाय के स्तम्भ ज्ञानेश्वर अथवा ज्ञाननाथ अपनी गुरु-परम्परा मे आदिनाथ—मत्स्येन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गैनीनाथ—निवृत्तिनाथ का उल्लेख करते हैं। अतः स्पष्ट है कि ज्ञानेश्वर के पूर्व महाराष्ट्र मे 'नाथ-मत' प्रचलित था। मराठी के प्रथम ग्रन्थ 'विवेकसिन्धु' के रचनाकार मुकुन्दराय नाथपथी कहे जाते है और मुकुन्दराय का काल बारहवीं शताब्दी माना जाता है। अतएव मुकुन्दराय के पूर्व यह मत महाराष्ट्र मे प्रतिष्ठा पा चुका होगा। महाराष्ट्र मे 'गोरख-अमर-सवाद और गोरख-गीत' क्रमशः गोरखनाथ और उनके शिष्य गैनीनाथ रचित माने जाते हैं। गोरखनाथ के कालनिर्णय से उनके मत का महाराष्ट्र मे 'संचार-काल' निश्चित हो सकता है। पर गोरखनाथ का व्यक्तित्व इतना व्यापक और प्रभावशाली रहा है कि देश के कोने-कोने से उनका संबंध जोड़ा जाता है। जगह-जगह उनके मठ, मंदिर, समाधि-स्थल आदि बिखरे हुए हैं। ब्रिग्ज उन्हे पंजाबी, ग्रियर्सन काठियावाड़ी और मोहनसिंह पेशावरी कहते हैं। परन्तु उन्हें बंगाली और गोदावरी तीरस्थ चन्द्रगिरिवासी दाक्षिणात्य भी कहा जाता है। अधिक मत उन्हे उत्तर भारत के मानने के पक्ष मे है। उनका समय ईसा की सातवी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक अनुमाना जाता है। महाराष्ट्र मे

1. देखिए—नाथ-सम्प्रदाय, पृष्ठ ९६—१०२।

नाथ-सम्प्रदाय का सचार बारहवीं शताब्दी निर्धारित किया गया है और यदि गोरखनाथ के द्वारा ही महाराष्ट्र में नाथ-मत प्रचलित हुआ है तो उनका समय ईसा की दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी हो सकता है। डा० बड़थवाल विक्रम की ग्यारहवीं और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी विक्रम की दसवीं शताब्दी मानते हैं।

वारकरी सतों की गुरु-परम्परा 'आदिनाथ' से प्रारम्भ होती है। और नाथ-सम्प्रदाय मे आदिनाथ ही उसके प्रवर्तक माने जाते है। ये आदिनाथ कौन हैं—इसका निश्चित ज्ञान नही है। ऐतिहासिक शोध से कुछ भी प्राप्त नहीं है। धार्मिक विश्वास है कि आदिनाथ भगवान शिव ही हैं। 'गोरख-विजय' में एक कथा है कि एक दिन शिवजी समुद्र के किनारे एक पहाड़ी पर पार्वती को जीवन-मृत्यु-संबंधी महाज्ञान नामक उपदेश दे रहे थे। उसका परिणाम यह कहा जाता है कि जो उसे सुनता है, वह मृत को बचा सकता और देवताओं को अपने अधीन कर सकता है। जिस समय शंकर-पार्वती महाज्ञान की चर्चा मे रत थे, मत्स्येन्द्रनाथ वहीं तपस्या कर रहे थे और उसे सुन रहे थे। जब शिवजी ने यह जाना, तब उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ को शाप दे दिया कि यह महाज्ञान तू नारी-माया में फँसकर खो देगा। मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) ने गोरखनाथ आदि शिष्यों मे 'वह ज्ञान' सचरित कर दिया। पार्वती को विश्वास था कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो नारी के वशीभूत न हो। पार्वतीजी परीक्षाप्रिय हैं। उन्होंने मीननाथ और गोरख आदि की परीक्षा ली। गोरखनाथ को छोड़ कर सभी मायावश हो गये। जब मीननाथ कदलीपत्तन में जाकर नारी-जाल मे फँसे, तब गोरखनाथ द्वारा उनका उद्धार हुआ।

इस कथा से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नाथ मत शैवमत से निकला है और गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ थे तथा गोरखनाथ चरित्र की उच्चता में अपने गुरु के भी गुरु थे। गोरख मत्स्येन्द्रनाथ के सचमुच शिष्य थे, यह भी अकाट्य रूप से नहीं कहा जा सकता। 'गोरखबानी' से ज्ञात होता है कि गोरख ने लोक-मर्यादा की दृष्टि से ही मत्स्येन्द्रनाथ को अपना गुरु मान लिया था। वे कहते हैं—

> 'अवधू ईश्वर हमारे चेला भणीजै मछीन्द्र बोलिए नाती
> निगुरी पिरथी परलै जाती तार्थै हम उलटी थपना थापी।'[1]

(हे अवधूत, शिव हमारे चेला हैं, मत्स्येन्द्रनाथ नाती चेला, जो वस्तुतः उल्टी स्थापना है। यदि हम ऐसा न करते तो गुरुहीन पृथ्वी प्रलय में चली जाती।) क्या इसीलिए 'शिव' को कल्पित गुरु मानकर गोरख ने अपनी गुरु-परम्परा चला दी? गोरख-विजय की 'कथा' से भी यह ध्वनि निकलती है कि गोरखनाथ अपने गुरु से आत्मबल और सयम में अधिक दृढ़ थे। हो सकता है, लोक मर्यादा की रक्षा के लिए ही उन्होंने 'मत्स्येन्द्रनाथ' का शिष्यत्व स्वीकार किया हो।

---

१ गोरखबानी पृष्ठ ४०।

नाथमत के पूर्व बौद्ध और जैन मत का प्रचार हो चुका था। अतः इसमे सदाचार, अहिंसा आदि प्रमुख उपकरणो के कारण इसे बौद्ध और जैन मतोत्पन्न भी कहा जाता है।

गोरखनाथ की गणना वज्रयानी बौद्धों के चौरासी सिद्धो मे की जाती है। बुद्ध भगवान के निर्वाण के पश्चात् उनका मत महायान और वज्रयान शाखाओं में बिखर चुका था। वज्रयान महायान का ही उत्तररूप कहा जाता है। महायान मे बुद्ध 'उद्धारक' और वज्रयान में 'वज्रगुरु' के रूप मे प्रचारित किये गये। तान्त्रिक सिद्धि में जो प्रवीण होता, वह 'वज्रगुरु' कहलाता था। वज्रयान सम्प्रदाय के नैतिक शैथिल्य के कारण गोरखनाथ ने नूतनपंथ स्वीकार किया, जिसमे बौद्धमत के कुछ तत्त्व, विशेषकर मनोलय योग (शून्य-सम्पादन) का स्वभावतः संचार हो गया। इस प्रकार नाथ-मत का बौद्धमत से संबध जुड़ जाता है। और चूँकि नाथपंथियों के नाम के साथ जैनी साधुओं के समान ही 'नाथ' शब्द जुड़ा रहता है, इसलिए यह कहा जाने लगा कि इसकी उत्पत्ति जैनमत से है। परन्तु 'नाथ' शब्द के सादृश्य के कारण नाथ-मत को जैनमत से नाथना उचित प्रतीत नही होता। फिर भी जैन-मत से नाथमत का कोई सम्पर्क ही न रहा हो, सो बात नहीं है। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र मीननाथ और पारसनाथ की गणना जैन संतों में की जाती है और बंबई के एक जैन मदिर मे गोरखनाथ की मूर्ति भी है। नाथ-मत मे मलधारणाव्रत जैसे संस्कार को देखकर जैन-प्रभाव की कल्पना होती है।

सत्य तो यह है कि हमारे देश के विभिन्न मत-सम्प्रदाय एक दूसरे के इतने सन्निकट हैं कि वे परस्पर आचार-विचार का आदान-प्रदान करते रहे हैं। प्रत्येक नूतन सम्प्रदाय अपने पूर्ववर्ती सम्प्रदायों का किसी न-किसी रूप मे ऋणी रहता आया है। नया मत ग्रहण करते समय जनता अपने पूर्व विश्वास और आचार-धर्म को शत-प्रतिशत नहीं त्याग पाती। प्राचीन संस्कारों के प्रति मानव-मन की सहज ममता रहती है।

नाथ शब्द की उत्पत्ति के संबंध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"ना का अर्थ है अनादि सम और थ का अर्थ है भुवन त्रय का स्थापित होना। इस प्रकार नाथ-मत का स्पष्टार्थ वह अनादि धर्म है, जो भुवन त्रय की स्थिति का कारण है। श्री गोरख को इसी लिए नाथ कहा जाता है। फिर ना शब्द का अर्थ नाथ ब्रह्म जो मोक्षदान में दक्ष है, उनका ज्ञान कराना और थ का अर्थ है (अज्ञान के सामर्थ्य को) स्थगित करनेवाला। चूँकि नाथ के आश्रयण से इस नाथ ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञान की माया अवरुद्ध होती है, इसलिए 'नाथ' शब्द का व्यवहार किया जाता है।"[१]

नाथ-पंथी नाथ, जोगी, दर्शनी और कनफटा कहलाते हैं। 'नाथ' क्यों कहलाते हैं, इसकी चर्चा की जा चुकी है। 'योगी' इसलिए कहलाते हैं कि ये हठयोग—(यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि) की साधना करते हैं। 'दर्शनी' इसलिए कहलाते हैं कि ये कानों मे भारी कुंडल धारण करते हैं और 'कनफटा' इसलिए कहलाते हैं कि इनके कान फटे हुए होते हैं। महाराष्ट्र मे इन्हे गोसावी भी कहते है। नाथों मे कान फाड़ने की प्रथा कैसे और कब प्रारम्भ हुई, कहना कठिन है। कोई गोरखनाथ को इसका

१ नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ ३।

जन्मदाता कहते हैं, तो कोई मत्स्येन्द्रनाथ को। एक किंवदंती है कि जब मत्स्येन्द्रनाथ ने शिव भगवान के आदेश से योग का प्रचार प्रारम्भ किया, तब उन्होंने शिवजी को कनफटे रूप में विशाल कुंडल धारण किये हुए देखा। दूसरी किंवदन्ती है कि जब मत्स्येन्द्रनाथ मत्स्यरूप में थे, तब उनके कान फटे हुए थे। इससे यह अनुमान निकाला जा सकता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने अनुयायियों में यह प्रथा प्रचलित की होगी।

गोरखनाथ ने जोगियों की कई श्रेणियाँ निर्दिष्ट की हैं—जैसे आरम्भ जोगी, परिचय जोगी और निष्पत्ति प्राप्त जोगी। आरम्भ जोगी 'उन्मन' (समाधि की एक अवस्था) में खेलता है और 'अहनिसि' (अहर्निश) देवता (ब्रह्म) के साथ मेल करता रहता है तथा 'निसपति' (निष्पत्ति) जो अग्नि और जल मे जैसे लोहा शुद्ध होता है वैसे ही 'नाना कठोर' साधनाओं द्वारा शुद्ध हो जाता है।[1]

गोरख के नाम पर चलनेवाले तंत्र-मन्त्रों से भी गोरख और उनके मत का जनता पर आतक छा जाना स्वाभाविक था। 'मंत्र-तंत्र' के अतिरिक्त नाथपथी योग-साधना पर भी जोर देते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि योग के अंग हैं। इड़ा, पिगला तथा सुषुम्ना नाड़ियो पर नियत्रण रख मूलाधार स्थित कुंडल को जागृत करके ब्रह्मरध्र (दशम द्वार) में समाधिस्थ होना योगी का परम लक्ष्य माना जाता है। बिन्दु (वीर्य) रक्षा तथा समाहार उसका आदर्श कर्म है। 'गोरख' कहते हैं—

'काछ का जति मुष का सती
सो सत पुरुष उतमों कथी।'[2]

लंगोट का पक्का और मुख का सच्चा उत्तम सत् पुरुष कहा जाता है।

नाथमत में स्वर-विज्ञान का भी महत्त्व है। गोरखबानी में कहा है—

'सूरजे खायबा, चन्द्र सोयबा
उभै न पीबा पानी।' (पृष्ठ ६५)

जब दाहिना स्वर चले तब खाना और बायाँ चले तब सोना तथा दोनों के चलते समय जल न पीना चाहिए।

इस मत में गुरु-महिमा का बड़ा महत्त्व है। परन्तु जो गुरु कथनी और करनी मे एक है, वही गोरख को मान्य है। उन्होंने कहा है—

'रहता हमारे गुरु बोलिये,
हम रहता का चेला,
मन मानै तो सग फिरै,
नहिं तर फिरै अकेला।'

माया को मारकर सुषुम्नानाड़ी के मार्ग से कुंडलिनी शक्ति को ब्रह्माड मे ले जाकर ब्रह्मरस का पान करके योगी संतुष्ट होता है।

---

१. **गोरखबानी।**

२. **गोरखबानी, पृष्ठ ४२।**

शक्तियुक्त शिव को अन्तिम सत्य माना गया है—

'शिवस्याभ्यांतरे शक्तिः शक्तेरभ्यंतरे शिवः ।

अंतरम् नैवजानीयात् चन्द्रचद्रिकयोरिव ।' (गोरख सिद्धात संग्रह, पृष्ट ३१)

शिव और उनकी शक्ति का अन्योन्य सबंध है। शंकराचार्य जहाँ ब्रह्म की माया से भासमान् जग को असत्य कहते हैं, वहाँ गोरख शिव की माया से भासमान् जगत् को सत्य मानते हैं। इसीसे वे जग का पूर्णभोग करना चाहते हैं। गोरख के शिव अपनी शक्ति से बिलकुल अभिन्न है। जग के पिंड ब्रह्माड के ही अंग है। पिंड मे ही ब्रह्माड समाया हुआ है।

नाथ-मत में कार्य-कारण की अभिन्नता है। उत्पत्ति के पूर्व कार्यरूपी जगत् कारणरूपी शिव मे समाविष्ट समझा जाता है। व्यक्त और अव्यक्त दोनो अवस्थाओं में शिव और उनकी शक्ति जगत् पिंडों मे व्याप्त रहती है। 'आत्मा और जगत् के मध्य संचरित रहने वाले शिव के साथ ऐक्य अनुभव करना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। यही सामरसी-करण कहलाता है। ब्रह्माड के मूल में कुडलिनी शक्ति रहती है और पिंड के मूल मे भी वह सुप्तावस्था मे रहती है। साधक उसको जागृत कर परमानन्द लाभ करता है।'[1]

कुंडलिनी की जागृति के लिए मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग की साधना आवश्यक होती है। नामदेव ने योग की साधना का उल्लेख किया है—

'इड़ा पिंगुला अउर सुखमना,
पउनै बंधि रहाउगो।
चंदु सूरजु दुइ सम करि राखउ,
ब्रह्म जोति मिलि जाउगो।'

नाथों के मेखला, शृङ्गी, कंथा, कर्णमुद्रा, कौपीन, पुंगी, व्याघ्राम्बर, खड़ाऊँ, झोली तथा कनछेदन वाह्याचार और रूप हैं। ये भिक्षा के समय एकतारा बजाते, 'अलख निरजन' कहते हैं और पुंगी बजाकर भोजन करते हैं।

नाथ-मत में 'कैवल्यमुक्ति' का मार्ग सभी वर्णों और स्त्री-पुरुषों के लिए समान रूप से मुक्त है।

महाराष्ट्र मे नाथ-मत के प्रतिष्ठापक गोरखनाथ के संस्कृत और हिन्दी के अनेक ग्रथों के अतिरिक्त मराठी में 'अमरनाथ संवाद' और ओवीबद्ध 'गोरख गीता' ग्रंथ भी मिलते हैं। 'गोरख के इन दो ग्रथों के अतिरिक्त नवनाथों की भी दक्षिण मे बहुत प्रसिद्धि है। परन्तु ये नवनाथ कौन हैं, निश्चित नहीं कहा जा सकता। भिन्न-भिन्न ग्रथों में इनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। 'महार्णव तंत्र' के अनुसार उनके नाम है—गोरखनाथ, जालंधरनाथ, नागार्जुन, सहस्रार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड़भरत, आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ। नाथ-सम्प्रदाय की बहुमान्य गुरु-परम्परा निम्नलिखित अनुसार है —

१. प्रसाद (मराठी) फरवरी, १९५४, पृष्ठ २५-२६।
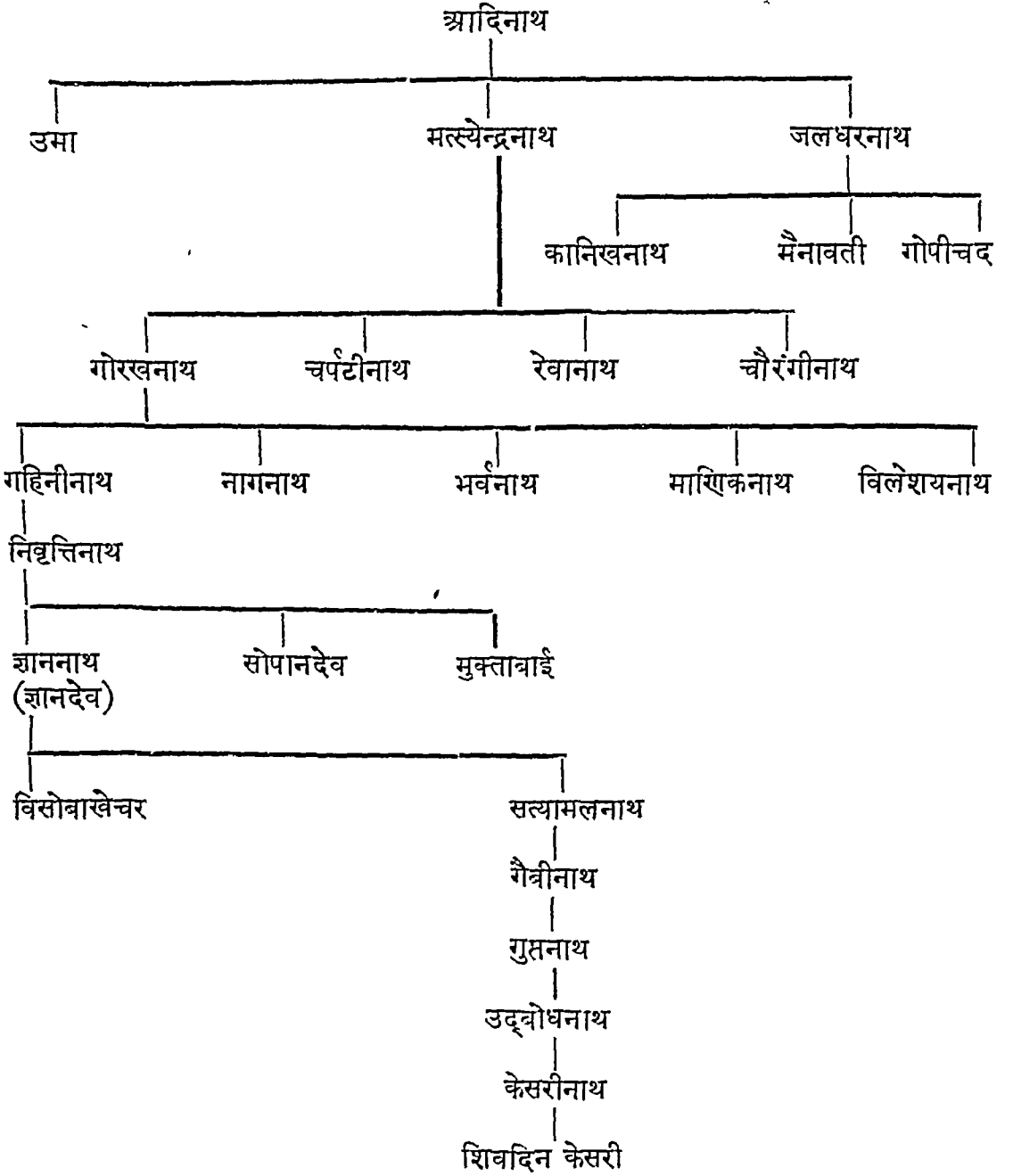
परन्तु श्रीदत्तो वामन पोतदार ने भारत-इतिहास-संशोधन मंडल, पुणे के चतुर्थ सम्मेलन वृत्त में (शके १८३८ पृष्ठ २० पर) गोरखनाथ के पूर्व की थोड़ी भिन्न परम्परा इस प्रकार दी है—

'आदिनाथ
|
उदोनाथ
|
मछीन्द्रनाथ
|
गोरखनाथ

यह परम्परा श्री पोतदार को किसी प्राचीन ग्रंथ मे प्राप्त हुई है, 'मछीन्द्रनाथ' (मत्स्येन्द्रनाथ) और आदिनाथ के बीच 'उदोनाथ' का कहाँ से प्रवेश हो गया? पर जिस प्राचीन ग्रंथ की 'ओवी' से यह परम्परा उन्हे प्राप्त हुई है, उसीमे उमानाथ को ही 'जगदम्बा' कहा गया है। अतएव आदिनाथ (शंकर) ने पहले जगदम्बा (पार्वती) को उपदेश दिया और फिर उनसे 'मछीन्द्रनाथ' ने प्राप्त किया। नाथ सम्प्रदाय में पार्वती को 'उदोनाथ' भी कहते हैं। अतएव पहली गुरु-परम्परा में जहाँ 'मछीन्द्रनाथ' आदिनाथ के सीधे शिष्य होते है, वहाँ दूसरी परम्परा में उन्हें 'उदोनाथ' का शिष्यत्व स्वीकारना पड़ेगा। यही केवल अन्तर है।

यद्यपि चोखामेला तक नाथ-परम्परा दी गई है, परन्तु वास्तव मे यह ज्ञाननाथ से आगे नहीं बढ़ती। (यो ज्ञानेश्वर भी अंत तक 'नाथ' नहीं रहे। वारकरी-मत के अन्तर्गत 'भागवत मत' के पोषक बन गये।) महाराष्ट्र मे त्र्यंबक के पास ब्रह्मगिरि पर गोरखनाथ की गुफा, गैनीनाथ का मठ और निवृत्तिनाथ की समाधि है। सातारा जिले मे गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ की समाधियाँ हैं।

महाराष्ट्र मे नाथ-पंथ के लोप हो जाने के दो कारण श्री मुकाशी ने दिये हैं। 'पहला यह कि बाह्याचार पर अधिक ज़ोर देने से मूल शुद्ध योगाभ्यास का अनुभव और बोध पीछे रह गये तथा साम्प्रदायिक विकृति बढ़ गई। दूसरा यह कि महाराष्ट्र मे यह मत चला ही था कि वारकरी पंथ के प्रभावी प्रवाह मे उसे विलीन होना पड़ा।'[१] परन्तु हमारे मत से इसके न पनपने का कारण इसका मूलतः ज्ञानमार्गी होना और 'बिन्दु-रक्षा' पर अत्यधिक आग्रह करना है। यद्यपि गृहस्थाश्रम मे योग-साधना का स्पष्ट निषेध नही है, तो भी गृहस्थ योगी समाज मे समादृत नहीं होता। जनसाधारण का मन 'अलख' कहने से नहीं भरता, वह अलख को लखना चाहता है। महाराष्ट्र के दक्षिण मे—तमिल देश मे—ईसा की चौथी शताब्दी से अलवार सगुण उपासना की साधना कर रहे थे। वे अपने नाम-सकीर्तन-यज्ञ द्वारा यह प्रचारित कर रहे थे कि भगवान के चरणों मे अपने हृदय का प्रेम अर्पित करने से भव का ताप मिटता और मोक्ष प्राप्त होता है। इसके लिए किसी कर्मकाड की आवश्यकता नहीं, नाम-स्मरण ही बस है। वर्ण, जाति, (स्त्री-पुरुष), गृहस्थ ब्रह्मचारी, किसी का भी 'साहब' के दरबार मे प्रवेश निषिद्ध नहीं है। जिस समय अलवार भाव-विभोर हो कीर्तन करते थे, हजारों की संख्या मे स्त्री-पुरुष भक्ति-रस मे मग्न हो जाते थे। अलवारों के भजनों का संग्रह 'प्रबन्धम्' के नाम से हुआ है और वह 'तमिलनाड' मे अति प्रसिद्ध है, अति समादृत है।

क्रमशः अलवारों की यह नाम-संकीर्तन-भक्तिधारा महाराष्ट्र मे सचरित हो गई। भगवान को स्थूल रूप मे देखने का प्रलोभन कम आकर्षक न था। नाथाभिमुख महाराष्ट्र-जनता ने ज्ञानेश्वर काल मे ही नामदेव और ज्ञानदेव के नेतृत्व मे अलवारों के नाम संकीर्तन-यज्ञ से प्रभावित हो, 'पंढरपुर के विठ्ठल' में साक्षात् भगवान के दर्शन किये।

---

१. प्रसाद (मराठी) फरवरी, १९५४ पृष्ठ २८

वारकरी संत जो अपनी गुरु-परम्परा नाथों से जोड़ते हैं, वह इसीलिए कि उनके संस्थापक ज्ञानेश्वर ने स्वयं अपनी गुरु-परम्परा नाथों से वर्णित की है। 'नाथ-पंथ ने शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त को योगमार्ग के अनुभव से ग्रहण करने का उपदेश दिया। इसीलिए ज्ञानेश्वर ने अद्वैत के साथ योग ग्रहण किया और उसमे भक्ति का समावेश कर महाराष्ट्र में भागवत धर्म का प्रारम्भ किया।'[1]

इस नूतन पंथ ने वैष्णवों और शैवों के संघर्ष का अत कर दिया—

'तुका म्हणे भक्ति साठीं हरि हर
हरिहरा भेद नाहीं, नका करू वाद।'

(सकल सत-गाथा, पृष्ठ २६४)

(तुकाराम कहते हैं कि भक्ति के लिए हरि और हर हैं और हरि तथा हर में भेद नहीं है। फिर झगड़ा क्यों करते हो?)

(२) महानुभाव-सम्प्रदाय

जिस समय महाराष्ट्र मे नाथ-मत वारकरी मत मे विलीन हो रहा था, उसी समय ईसा की तेरहवीं शताब्दी में चक्रधर द्वारा प्रवर्तित महानुभाव-पथ का प्रादुर्भाव हो रहा था। यह मत महाराष्ट्र में ही उत्पन्न होकर नहीं रह गया, उत्तर भारत और काबुल तक इसने प्रवास किया। इसे महानुभाव (महान् अनुभवः यस्य सः) के अतिरिक्त मानभाव, महात्मा, अच्युत, जयकृष्णी, भटमार्ग, परमार्ग आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। महाराष्ट्र में यह मानभाव और महात्मा पंथ, गुजरात में अच्युत और पंजाब में जयकृष्णी पंथ कहलाता है।

इसके संस्थापक चक्रधर स्वामी का जन्म गुजरात मे ईसा सन् ११९४ मे हुआ। ये सन् १२२३ के लगभग महाराष्ट्र में आये और सन् १२७४ में इनका स्वर्गवास हुआ। इनका जीवन-चरित्र बड़ा रहस्यपूर्ण और रोचक है। इनका मूल नाम हरपाल देव था और ये गुजरात के विशाल देव राजा के पुत्र थे। कहा जाता है कि सन् ११५३ में जब इनकी असामयिक मृत्यु हो गई तब द्वारावती के चॉगदेव राउल ने देह-परित्याग करके इनके मृत शरीर में प्रवेश कर नवीन अवतार धारण किया। इन्हे द्यूत-क्रीड़ा का बड़ा नशा था। कई बार ये बहुत-सा द्रव्य हार चुके थे।

इस घटना के पश्चात् से हरपाल का मन ससार से उचट गया। एक दिन उसने पिता से कहा कि मैं रामटेक (नागपुर के निकट अत्यन्त मनोहर स्थल, जिसे कुछ विद्वान् मेघदूत का रामगिरि भी कहते हैं) में भगवान राम के दर्शन करने जाऊँगा। महाराष्ट्र के यादव राजाओं से गुजरात-राज्य का शत्रुभाव होने से पहले तो पिता ने आज्ञा नही दी। पर जब पुत्र ने विशेष आग्रह किया तब जाने की अनुमति दे दी। साथ में पिता ने जो अंगरक्षक दिये थे, उन्हें चतुराई से लौटाकर वह रामटेक न जाकर ऋद्धिपुर पहुँच गया। वहाँ उसने

---

१. महाराष्ट्र-परिचय, पृष्ठ ४७६।

गोविंद प्रभु से मन्त्रोपदेश ग्रहण किया। गोविंद प्रभु ने उसका नाम 'चक्रधर' रख दिया। अपने गुरु से शक्ति स्वीकार कर चक्रधर स्वामी सालबर्डी की रमणीय पहाड़ी पर गये और बारह वर्ष तक वहीं तप करते रहे। उसके पश्चात् आंध्र प्रान्त में भ्रमण करते समय उनका, घोडे के व्यापारियों से, संपर्क हो गया और वे उन्हें वारंगल ले गये जहाँ व्यापारियों को अपने घोड़ों के व्यापार में लाभ हुआ। वहीं एक व्यापारी ने अपनी कन्या हंसा से उनका विवाह कर दिया। बहुत समय विलास में बीतने पर एक दिन किसी 'अवधूत' के दर्शन से पुनः उनमें विरक्ति जागृत हुई और वे घर से भाग खड़े हुए और विदर्भान्तर्गत अचलपुर पहुँच गये। अचलपुर से भ्रमण करते हुए मेहकर पहुँचे, जहाँ कुछ समय व्यतीत कर सिंहस्थ के लिए नाशिक रवाना हो गये। मार्ग में प्रतिष्ठान (पैठण) पहुँचकर इन्होंने संन्यास-दीक्षा ली। यहाँ नागाम्बिका नामक साधिका ने इनसे दीक्षा ली और ये यहीं ठहर गये। इसी समय से चक्रधर पूर्णरूप से विरक्त हो अपने मत का प्रचार करने लगे। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

इनके शिष्यों की संख्या ५०० के लगभग है। उनमें नागदेवाचार्य, महीन्द्र, जनार्दन, दामोदर, भाडारेकर, बाइसा उर्फ नागाम्बिका और महदंबा प्रमुख हैं। महदंबा, नागदेवाचार्य की चचेरी बहिन थी। नागदेव के शिष्यों में दामोदर पंडित प्रसिद्ध गायनाचार्य और कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। नागदेव की शिष्य-परम्परा भी बड़ी है। यद्यपि जाति-भेद चक्रधर को मान्य न था, पर पंथ के प्रारभ होने से तीन सौ वर्ष तक महानुभाव-मत ब्राह्मणों में ही फैलता रहा। बाद में अन्य जातियाँ भी उसमें सम्मिलित होने लगीं।

महानुभाव-पंथ के समय नाथ-मत प्रचलित था। अतएव उसपर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। महानुभाव-मत में नाथों के ज्ञान को अपनाकर भी भक्ति का बहिष्कार नहीं किया गया। यही नहीं, ज्ञान से भक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया। दोनों मार्गों को ईश्वरप्राप्ति का साधन माना गया। उनका विश्वास है कि निराकार भगवान भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए साकार रूप धारण करते हैं।

महानुभावों ने कृष्ण-भक्ति को अपनाया। श्रीकृष्ण, श्री दत्तात्रेय, द्वारावती के चागदेव राउल, ऋद्धिपुर के गुंडम राउल और चक्रधर—ये 'पंच कृष्ण-अवतार' कहे जाते हैं। चक्रधर का नाम, रूप, लीला, चेष्टा, स्थान, श्रुति, स्मृति और प्रसाद-पंथ में

अतिप्रिय हैं। महानुभाव राम, वामन आदि को ईश्वर-अवतार नहीं मानते। इस मत में नाथों के समान ही नैतिक चरित्र पर बल दिया गया है। साधक के लिए चित्रांकित स्त्रीदर्शन भी निषिद्ध ठहराया गया है।[१] परन्तु नियम की यह कठोरता विशेष परिस्थितियों में टिक नहीं पाई। स्वय चक्रधर स्वामी ने महदंबा नामक स्त्री को शिष्या-पद से गौरवान्वित किया था। जातिपाँति का बन्धन भी सिद्धान्त-रूप से महानुभावों को स्वीकार नहीं है। इसमें भी नाथों का प्रभाव देखा जा सकता है।

दर्शन के क्षेत्र मे महानुभाव जीव, देवता, प्रपच और परमेश्वर—इन चार पदार्थों को अनादि मानते हैं।

जीव :—गीता के कथनानुसार चक्रधर ने भी जीव की नित्यता मानी है।

देवता :—परमेश्वर की आज्ञा से देवता सृष्टि का संचालन करते हैं। उनके नौ समूह हैं। ब्रह्माड मे उनकी सख्या ८१ करोड, ११ लाख और १० है। वे नित्यबद्ध और मर्यादित शक्तियुक्त हैं। मुक्ति देने की क्षमता उनमें नहीं है। सृष्टि के प्राणियों को उनके कर्मानुसार सुख-दुःखमय फल प्रदान करते रहते हैं।

प्रपंच (जगत्) :—इसका अन्तिम भाग परमाणु प्रलय में भी नष्ट नहीं होता। इसके दो भाग हैं—कार्य और कारण रूप। कारण-रूप जगत् नित्य है। कार्य-रूप जगत् अनित्य है—उसका नाश होता है।[२] न्याय-दर्शन में भी जगत् की नित्यता प्रतिपादित की गई है।

परमेश्वर :—नित्य है। इसे अन्तिम सत्य कहा गया है। यह स्वयं, प्रकाश, व्यापक, आनदमय, सर्वसाक्षी, ज्ञानमय और सर्वकर्त्ता है। महानुभाव पेट और पीठ के समान परमेश्वर और ब्रह्म को एक ही परमेश्वर के दो अग मानते हैं।

जीव और माया—जीव को प्रेरित करनेवाली माया है। जबतक 'जीव' मुक्त नहीं हो जाता, वह उसके साथ संलग्नरूप से लगी रहती है।[३] जीव कर्मों का शुभाशुभ फल भोगता रहता है। जीव के शुद्ध स्वरूप को ईश्वर और माया के अतिरिक्त और कोई नहीं देख सकता। जीव कृत कर्मों के फल-प्रदाता देवता माने गये हैं। उनकी नियुक्ति ही इसीलिए की गई है। देवता जबतक जीवों को नहीं देख सकेंगे, तबतक वे उनके कर्मों का फल कैसे दे सकेंगे? अतएव प्रत्येक देवता का 'मल' वासना-रूप 'जीव' धारण करता है जिससे देवता जीव के व्यापारों के दर्शन करते हैं। प्रत्येक जीव ८१०१२५००१० 'मल' से आवृत्त है। सूक्ष्म शरीर की रचना के पश्चात् वह स्थूल शरीर धारण कर लेता है।

---

१. 'स्त्री दर्शनमात्रेंचि माजवी' चित्रींची स्त्री न पहावी (आचार ६-१०)
(स्त्री दर्शनमात्र से ही उन्मत्त बनाती है। इसलिए चित्र-लिखित स्त्री को भी न देखना चाहिए।)

२. ब्रह्म-विद्या शास्त्र (मुकुंदराज), पृष्ठ २९।

३. वही, पृष्ठ २३।

जीव और ईश्वर—महानुभावों के मत से 'जीव' को मुक्त करने का सामर्थ्य देवताओं में नहीं है ; क्योंकि वे स्वय नित्यबद्ध हैं। ईश्वर ही उन्हें मोक्ष-प्रदान कर सकता है। परन्तु जबतक 'जीव' अविद्या से जकड़ा हुआ है, वह ईश्वर का परमानन्द लाभ नहीं कर पाता। यहाँ विद्या और अविद्या को समझ लेना चाहिए। विद्या दो प्रकार की होती है—(१) परा और (२) अपरा। परा उसे कहते हैं जिससे परमात्मा जाना जाता है और अपरा उसे जिससे देवी-देवताओं की उपासना की जाती है। जो परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होने के बाद विहित आचार करते है, उन्हे भगवान अपरोक्ष ज्ञान देकर सब पदार्थों को प्रत्यक्ष कराते हैं। परमात्मज्ञान के अनुसरण से क्या तात्पर्य है? 'ज्ञान प्राप्त होने पर सर्वसंगपरित्याग कर नन्हे बालक के समान पूर्ण रीति से परमेश्वराधीन होने और उनके कथित आचारानुसार आचरण कर उनकी आज्ञा पालने का नाम 'अनुसरण' है।'[1] अनुसरण से देवताओं के प्रति किये गये कर्मों का भोग रुक जाता है। विशुद्ध जीव की अविद्या से मुक्ति ही मोक्ष है। आत्मज्ञान से यह मोक्ष संभव होता है, पर प्रेम अर्थात् भक्ति से भी मोक्ष मिलता है। 'सूत्र-पाठ' मे यद्यपि परेमश्वर निराकार कहा गया है, तथापि वह जीवों पर कृपा कर पृथ्वी पर अवतार लेता है और उन्हे अपना सान्निध्य प्रदान करता है। सान्निध्य प्राप्त होने पर उसकी दासता से मुक्ति हो जाती है।

आचार-धर्म—महानुभाव-मत मे अहिंसा, निस्संग, निवृत्ति और भक्ति इन चार सूत्रों की मान्यता है। उसमे आत्म-परीक्षा, गुरुभक्ति वैराग्य-प्रदर्शन-विमुखता आदि आचार-पालन का उपदेश दिया गया है। यद्यपि चक्रधर स्वामी स्वयं वर्ण-व्यवस्था में आस्था नहीं रखते थे, तथापि उन्होंने अपने अनुयायियो से उसके विरुद्ध विद्रोह करने का आग्रह नहीं किया। यह 'पंथ' भगवद्गीता के अहिंसा और सत्य पर आश्रित होने के कारण चक्रधर स्वामी के मुख से निकले हुए उपदेश-वचनों (सूत्र) और गीता को पूज्य मानता है।

कबीर के समान चक्रधर स्वामी ने भी अपने हाथ से किसी ग्रंथ की रचना नही की। उनके शिष्यों ने ही उनके वचनों का संग्रह किया है। महानुभावों ने लोक-भाषा के माध्यम से अपने उपदेशों का ग्रंथरूप मे प्रचार किया। ज्ञानेश्वर के पूर्व से ही मराठी मे महानुभावो के ग्रंथ रचे जाते रहे हैं। ज्ञानेश्वर तक आते-आते मराठी अधिक क्षेत्रों में प्रचलित और विकसित हो चुकी थी।

महाराष्ट्र मे महानुभाव-पंथ बहुत काल तक तिरस्कृत रहा। एकनाथ और तुकाराम महाराज तक ने अपने अभंगो मे इसकी भर्त्सना की है। सन् १७८२ के लगभग श्री सवाई माधवराव पेशवा ने इनके संबंध में 'विप्रव्यवहार निर्णय' दिया था—

'मान भाव अतिनिंद्य सर्वधर्म बहिष्कृत, चातुर्वर्ण की निकृष्ट-से-निकृष्ट जाति तक मे भी नहीं, षड् दर्शनों में भी नहीं, अविधि मंडित, नीलाम्बर हैं। इनका कोई उपदेश ग्रहण न करे, जिसने ग्रहण किया हो, उसका बहिष्कार किया जाय।'

---

१. महानुभाव आचार—डा० कोलते, पृष्ठ ७-८।

महाराष्ट्र में महानुभावों के सबंध में कतिपय तिरस्कार-सूचक उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। यथा ' ' 'मानभावी ऊ (महानुभावी जुआ) मानभावी कावा (महानुभावी धूर्तता) गड़वड़ गुंडा।' महानुभाव यद्यपि कृष्णभक्त है, तथापि वे वारकारियों के तीर्थस्थल—पंढरपुर में नहीं जाते।

महानुभावों के प्रति सदेहजनक वातावरण होने के कुछ कारण ये है :—

(१) महानुभाव पथीय ग्रंथ गुप्त लिपियो मे (जिनमे सकळ और सुंदरी लिपियाँ प्रमुख है) रक्षित रहने से जनता उनके तत्त्वो को भली-भाँति समझ नहीं सकी।

(२) जनता मे यह मान्यता रही है कि मुस्लिम शासकों के साथ इनका कोई गुप्त समझौता है, (कदाचित् इन्होंने अपने को हिन्दू न कहा हो।) इसलिए इन पर 'काफिरों' पर लगनेवाला 'जजिया' कर नहीं लगा।

(३) जनता मे यह विश्वास कि देवी-देवताओ की मूर्तियों के प्रति इनकी अश्रद्धा है।

सन् १६१५ के लगभग स्व० विनायकराव भावे ने प्रथम वार महानुभावी लिपियों में सकळ और सुन्दरी लिपि की 'कुजी' प्रकट कर 'पथ' के पवित्र ग्रन्थों के तत्त्वों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। इनके पश्चात् यशवंतराव देशपाडे, वा० ना० देशपाडे, स्व० हरिभाऊ नेने, डा० विष्णु भिकाजी कोलते आदि ने इस पथ के दर्शन और आचार पर यथेष्ट प्रकाश डाला है, जिससे जनता में प्रचलित भ्रांतियाँ दूर हुई हैं। मुसलमान शासक किसी भी जाति के साधुओ पर 'जजिया' नहीं लगाते थे और महानुभाव आचार्य मूर्तियों के प्रति भी अनादर व्यक्त नहीं करते थे। चक्रधर ने साधकों को मूर्तिपूजा में ही न भूले रहने का उपदेश मात्र दिया है। उनके कथन 'मूर्खस्य प्रतिमा पूजा' का यही अर्थ है। महानुभाव पथ द्वैतवादी होते हुए भी बहुदेवोपासना का पक्षपाती नहीं है। क्योंकि यह देवताओं मे मोक्ष प्रदान के सामर्थ्य पर विश्वास नहीं करता। यह वेदों में भी विश्वास नहीं करता। इसलिए अवैदिक मत है। यह अपने पड़ोस में पल्लवित लिंगायत मत से भी कई बातों मे साम्य रखता है। इसमे पाँचकृष्णों का मान है और उसमे शिव के पाँचमुखों के रूप पचाचार्य की महिमा है। दोनो को सामाजिक विषमता अमान्य है। दोंनों पथों में शव को भूमि-समाधि दी जाती है। पर यह समता आकस्मिक है। लिंगायत-मत का प्रत्यक्ष कोई प्रभाव महानुभावों पर पड़ा हो, इसका कोई प्रमाण नहीं है।

(३) वारकरी-सम्प्रदाय

वारी (यात्रा) करी (करनेवाला)=यात्रा करनेवाला। जो यात्रा करता है वह वारकरी कहलाता है। धार्मिक दृष्टि से उसे वारकरी कहते हैं जो पढरपुर स्थित विट्ठल की मूर्ति का उपासक है और आषाढ तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को नियमित रूप से पढरपुर की यात्रा कर मूर्ति के दर्शन करता है। यह धर्म-यात्रा आषाढ़ कार्तिक की शुक्लपक्षीय एकादशी के अतिरिक्त अन्य महीनों की एकादशी को भी की जा सकती है।

इस पंथ में पंढरपुर की 'वारी' की जाती है। इसलिए यह वारकरी कहलाता है। इसमें पाडुरंग को प्रिय तुलसी की माला धारण की जाती है, इसलिए यह माळकरी कहलाता

है। इसमे भगवान् को सर्वस्व अर्पित किया जाता है। इसलिए इसे भागवत सम्प्रदाय भी कहते हैं। यह पंथ कब से प्रारंभ हुआ, यह कहना कठिन है। प्रसिद्ध संत बहिणाबाई का एक अभग है जिसमे उन्होंने ज्ञानेश्वर को इस पथ की नींव कहा है। पर ज्ञानेश्वर के समकालीन संत नामदेव कहते हैं—"हमारे पहले भी अनेक भक्त हो गये हैं"। (पूर्वी अनंत झाले) अतएव ज्ञानेश्वर और नामदेव के पूर्व से यह पंथ महाराष्ट्र में प्रचलित है। इसका संबंध पंढरपुर की विठ्ठल मूर्ति से होने के कारण पहले हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि यह पंढरपुर में कहाँ से और कब आई। कई स्थलों पर इसे कन्नड से आई हुई कहा गया है।

नामदेव कहते हैं—"कानडा विठ्ठल पंढरीये।"
(कानडा का विठ्ठल पंढरपुर में है।)
एकनाथ गाते है—"कानडा विठ्ठल, कानडा विठ्ठल,
कानडा विठ्ठल विटेवरी ॥
कानड़ा विठ्ठल, कानडा बोले,
कानड्या विठ्ठले, मन वेधियले ॥"

विठ्ठल की उत्पत्ति कई प्रकार से लगाई जाती है। डा० ट्रंप इसकी उत्पत्ति विष्ट से लगाते हैं—विष्ट—वीठल—विठ्ठल।

राजवाडे विठ्ठल को विष्ठल से उत्पन्न बतलाते है। विष्ठल का अर्थ होता है दूर। जो देवता दूर रहता है, वह 'विठ्ठल'। इसका अर्थ यह हुआ कि विठ्ठल-मत पंढरपुर में दूर से लाया गया है। परंतु अनेक विद्वान् इसकी उत्पत्ति 'विष्णु' से मानते हैं। विष्णु का कन्नड़ रूप विट्टि है। अतएव डा० भाडारकर का यह मत साधु जान पड़ता है कि विठ्ठल 'कानड़ी' है। 'विठ्ठल' को विष्णु के कृष्णावतार का बालरूप माना जाता है, जो अपने भक्त पुडलीक को वर देने के लिए पंढरपुर चलकर आये और उसीके सकेत पर वीट (ईंट) पर खडे हो गये और अभीतक खडे हैं।[1] कीर्तन के प्रारम्भ प्रसगोपरान्त और अन्त में "पुंडलीक वर दे हरि विठ्ठल" की शाति-घोषणा की जाती है। जिससे यह प्रतीत होता है कि पुंडलीक को वर देनेवाले हरि विठ्ठल ही है। भक्त पुडलीक और विठ्ठल की प्रतिमा के अस्तित्व-काल के संबध में महाराष्ट्र के विद्वानों ने पर्याप्त शोध की है। विठ्ठल-मंदिर मे सन् १२७३ का ज्ञानदेव कालीन एक शिलालेख है। उसमे मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए दान-दाताओं के नामों का उल्लेख है। दाताओं मे रामदेव राव यादव और उनके मंत्री हेमाद्रि का नाम है। इससे इस मंदिर की प्राचीनता सिद्ध होती है। जब सन् १२७३ में इसका जीर्णोद्धार हुआ तब यह पाँच-छः सौ वर्ष पुराना अवश्य

---

१. 'युगे अट्ठावीस विटेवरी उभा' (अट्ठाईस युग से ईंट पर खड़ा हुआ है)—नामदेव की आरती (प्रसाद-एप्रिल १९२४, पृष्ठ २८)।

रहा होगा। इसके अतिरिक्त मंदिर में एक दूसरा शिलालेख (सन् १२२० का) है जिसमें होयसला यादव सोमेश्वर के मैसूर राज्यान्तर्गत कड्डूर गाँव के दान का उल्लेख है। इसी लेख मे 'पुंडलीक' मुनि का भी उल्लेख है[१]।

श्री क्षेत्र आलदी मे हरि हरेन्द्रस्वामी के मठ में किसी कृष्णस्वामी की समाधि मिली है। उसमे शके ११३१ अंकित है और समाधि पर विठ्ठल रुक्मिणी की मूर्ति है। यह ज्ञानेश्वर के जन्म से ६० वर्ष पूर्व का काल है। ज्ञानेश्वर महाराज के पूर्वज भी पंढरपुर की यात्रा करते थे। नामदेव के अभंगों मे इसका उल्लेख है। आदि शंकराचार्य रचित एक पाण्डुरंगाष्टक भी प्रसिद्ध है जिसका एक अंश है—"पर ब्रह्मलिंग भजे पाण्डुरंगम्[२]।" विठ्ठल पाण्डुरंग भी कहलाते हैं।

मैसूर-शासन के सन् १६२६ के प्राचीन वस्तु-संशोधन-विभाग के विवरण में शके ४३८ के एक ताम्रपट का उल्लेख है, जिसमें राष्ट्रकूट अभिधेय ने जयद्वीप नामक ब्राह्मण को अनेवरी, चाल, कंदक व दुइपल्ली के साथ 'पाण्डुरंग पल्ली' गाव दान मे देने का निर्देश है। पाण्डुरंग पल्ली पंढरपुर है और अन्य गाँव पंढरपुर तालुके के आनवली, चळ और कोंढ़रकी हो सकते हैं। इन सब उल्लेखों से प्रतीत होता है कि शालिवाहन शके के प्रथम शके में पंढरपुर की स्थापना हुई होगी और यही समय भक्तराज पुंडलीक का होना चाहिए[३]।

विठ्ठल की प्रतिमा के हाथों में विष्णु के चक्र और पद्म-चिह्न है। वारकरी विठ्ठल को विष्णु का कृष्णावतार मानकर पूजते हैं। प्रतिमा के मस्तक पर 'शिवलिंग' का चिह्न समझ कर कोई उसे शैव मत का प्रतीक भी मानते हैं। परन्तु श्री खरे उसे शिव-लिंग नहीं, कृष्ण का मुकुट मानते हैं[४]। यदि हम क्षणभर को यह भी मान लें कि प्रतिमा के मस्तक पर शिवलिंग है तब भी कोई आपत्ति नहीं। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत-प्रचार से दक्षिण में वैष्णवों-शैवों मे जो संघर्ष प्रारंभ हो गया था, वह 'विष्णु' की विठ्ठल मूर्ति पर 'शिव' की स्थापना से समाप्त हो गया होगा। वारकरी संतों ने विष्णु और शिव को एक कर जनता के हृदयो से साम्प्रदायिक कलुष को धोने का ही प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त जब मूर्ति के हाथों में चक्र और पद्म है तब मस्तक पर शिव का आभास होने पर भी उसका विष्णुत्व रक्षित रह जाता है।

---

१. श्री विट्ठल आणि पंढरपुर, पृष्ठ ३७।
२. प्रसाद, एप्रिल, १६५४ पृष्ठ २८।
३. वही, एप्रिल, १६५४ पृष्ठ २८।
४. देखिए—श्रीविट्ठल आणि पंढरपुर (खरे), पृष्ठ ७२।

कोई उसे जैनमूर्ति कहते हैं। भारतवर्षीय अर्वाचीन कोश पृष्ठ २८८ में इसे नेमिनाथ तीर्थंकर की मूर्ति कहा गया है और अपने कथन के समर्थन में निम्न श्लोक उद्धृत किया गया है। "नेमिनाथस्य या मूर्तिः त्रिषु लोकेषु विश्रुता। द्वौ हस्तौ कटि-पर्य्याये स्थापयित्वा महात्मनः। मूर्तिः तिष्ठति सा सम्यक् जैनेन्द्रेण च पूजिता..... " आदि।"

परन्तु उपर्युक्त श्लोक के कर्ता और ग्रंथ-संदर्भ का उल्लेख न होने से इस मत को निराधार ही मानना पडेगा। कोई उसे बुद्ध-मूर्ति मानते हैं। इस मत को पुरस्सर करनेवाले श्री आनंद रामचद्र कुलकर्णी, (सेक्रेटरी बुद्ध सोसाइटी, नागपुर) हैं। इस सबंध में उन्होंने एक चौपतिया पत्रक प्रकाशित किया है। उसमें वे यह तो स्वीकार करते हैं कि पंढरपुर की विट्ठल-मूर्ति विष्णु की मूर्ति है; पर उनका कहना है कि भगवान बुद्ध को हम विष्णु का ही अवतार मानते हैं। इसलिए 'विट्ठल' को बुद्ध की प्रतिमा भी कहा जा सकता है।

श्री कुलकर्णी की यह मान्यता ठीक है कि पुराणों मे बुद्ध को भी एक अवतार माना गया है। पर जब वे यह कहते हैं कि पंढरपुर के मंदिर मे पत्थर के स्तम्भ पर ध्यानस्थ मूर्ति बुद्ध की लगती है, विष्णु के अवतार कृष्ण की नहीं, तभी विवाद उठता है। वे कहते है कि यदि वह कृष्ण की मूर्ति होती तो उसके साथ ही रुक्मिणी होती। पड़ोस में जो रुक्मिणी की प्रतिमा दिखाई गई है, वह बाद की असत्य कल्पना है और विट्ठल की मूर्ति को कृष्णमूर्ति सिद्ध करने के लिए वहाँ लाई गई है। फिर वे पूछते है कि मूर्ति के हाथ कमर पर क्यों हैं? यदि वह राम की मूर्ति होती तो हाथ मे धनुषबाण होते और यदि कृष्ण की होती तो गदा अथवा सुदर्शन-चक्र सुशोभित होता। पर उसके हाथ में कोई भी शस्त्र नहीं है। इससे उनका निष्कर्ष यह है कि चूँकि बुद्ध अहिंसा के अवतार थे, इसलिए उनके हाथ रिक्त दिखलाये गये है।

इस सबंध में हमारा यह कहना है कि जिस प्रकार वे कृष्ण को एकाकी मुद्रा मे देखने के अभ्यासी नही है, उसी प्रकार क्या उन्होंने बुद्ध भगवान की ध्यानस्थ मूर्ति खड़ी और कमर पर हाथ रखे देखी है? बुद्ध की शात पद्मासन मुद्रा प्रसिद्ध है। फिर 'पत्रक' मे वारकरी संतों के वचन उद्धृत कर उनसे 'बुद्ध' के उपदेशों का अर्थ लिया गया है। जैसे तुकाराम का यह वचन उद्धृत किया गया है, 'विट्ठल गणपति दुजा नही।' (विट्ठल और गणपति भिन्न नहीं हैं) और यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि विट्ठल की मूर्ति बुद्ध की है, क्योंकि बुद्ध को गणपति भी कहा गया है। अपने समर्थन में अमरकोश से बुद्ध के ये नाम भी उद्धृत किये गये हैं—

'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः
समंतभद्रो भगवान्, मारजिल्लोकजित्, जिनः।
षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।'

परन्तु अमरकोश मे तो विनायक शब्द है और तुकाराम तो गणपति कहते हैं। यहाँ श्री कुलकर्णी ने गणपति का अर्थ विनायक मानकर विट्ठल को 'बुद्ध' सिद्ध करने की

खींचतान की है। अंत में उन्होंने वारकरी-सम्प्रदाय के पाँच सदाचार-नियमों को उद्धृत किया है—

(१) मै प्राणियों की हिंसा नहीं करूँगा।
(२) मैं चोरी नहीं करूँगा।
(३) मैं व्यभिचार अथवा पर-स्त्रीगमन नहीं करूँगा।
(४) मै झूठ नहीं बोलूँगा।
(५) मै शराब नहीं पीऊँगा।

इन सदाचार-नियमों को आप बुद्ध के पंचशील कह कर यह सिद्ध करते हैं कि विठ्ठल बुद्ध की मूर्ति है और उसकी उपासना करनेवाला वारकरी-मत बौद्ध मत ही है।

इस सबध में यही कहना है कि उपर्युक्त 'पचशील' ससार के प्रायः सभी धर्ममतो मे मिल जायेंगे। तब इन्हीं पाँच नियमों को मानने से ही वारकरी बौद्धमतावलम्बी कैसे सिद्ध हो गये?

यह बात सत्य है कि वारकरी-मत पर नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव है। और नाथ सम्प्रदाय को बौद्धमत की परिष्कृत स्वतन्त्र शाखा कहा जा सकता है। पर वारकरी मत बौद्ध-मत नही हो सकता, क्योंकि उसके अतरग में आस्तिकता है, भक्ति का अजस्र स्रोत है। बौद्धमत का दार्शनिक दृष्टिकोण वारकरियों से सर्वथा भिन्न है। एक आत्मवादी है और दूसरा अनात्मवादी। अतः श्री कुलकर्णीजी का वारकरियों को बौद्ध सम्प्रदाय में घसीटना प्रचार-प्रयास मात्र प्रतीत होता है।

वारकरी मत भागवत धर्म कहलाता है। इस धर्म का मर्म श्रीमद्‌भागवत के एकादश स्कन्ध में समझाया गया है। इसकी उत्पत्ति भागवत के उपदेशों से हुई है। शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि, अहकार से अनेक या एक जन्म के स्वभाव का अनुसरण जो कर्म करे, वह सब नारायण के लिए ही है। इस भाव में उन्हे उन्ही को समर्पित कर दे। भगवान् को आत्मसमर्पण करने का मार्ग गीता मे भी उल्लिखित है। भागवत में नाम-संकीर्तन पर भी आग्रह प्रदर्शित किया गया है। कलियुग मे यह सहज साधना मानी गई है। यही कारण है, सतों ने नाम-संकीर्तन को जीवन का यज्ञ बना लिया था। सृष्टि के प्राणियों मे परमात्मा को अनुभव करना भागवत धर्म ही है। ज्ञानेश्वर कहते हैं, 'जे जे भेटे भूत। तें तें मानिजे भगवंत।' (ज्ञानेश्वरी अध्याय १०, ११८) हरि की व्यापकता तुकाराम ने भी अनुभव की है। अपने एक अभग में वे कहते हैं—

'विश्वीं विश्वभर। बोले वेदातीचे सार।'

एक स्थल पर वे और भी गाते है—

'विष्णुमय जग वैष्णवाचा धर्म।'

यह पथ अद्वैतमतवादी होते हुए भी भक्ति-प्रधान है। वेदान्त से सच्ची भक्ति का स्रोत झरता है। यह तथ्य इस मत से प्रतिपादित होता है। परमात्मा व्यापक, निर्गुण,

निराकार होते हुए भी सगुण साकार है। तुकाराम कहते हैं—'दोन्हीं टिपरी एकचि नाद।'

एकनाथ महाराज भी भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं मानते—

'भक्तीचे उदरीं जन्मले ज्ञान,
भक्तीने ज्ञानासी दिधलें महिमान
भक्ति ते मूळ, ज्ञान तें फळ,
वैराग्य केवल तेथींचे फूल।'

(भक्ति के उदर से ज्ञान का जन्म हुआ है। भक्ति मूल है, वैराग्य उसका फूल और ज्ञान फल है।)

पंढरी राय विट्ठल की भजनोपासना अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों की प्रदाता मानी गई है। इस पंथ में श्री निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, निलोबाराय, आदि संतों की और वेद, गीता, भागवत, ज्ञानेश्वरी, श्रीनाथ भागवत, श्रीतुकाराम बुआची गाथा, हरिपाठ तथा अन्य संतों के ग्रंथ मान्य हैं।

सोमवार, एकादशी, महाशिवरात्री, (वारकरियों के गुरु नाथ हैं जो शिव से अपनी परम्परा मानते हैं, अतः उन्हें भी शिव पूज्य हैं। भी मान्य हैं। गंगा, गोदावरी आदि नदियों को तीर्थ रूप माना जाता है।

आचार—वारकरियों के आचार-धर्म-आदेश सार-रूप में इस प्रकार है—

(१) अपने वर्ण और आश्रम के अनुरूप कार्य करते रहो। (वारकरियों ने वर्ण-व्यवस्था को भक्तिमार्ग में प्रतिबन्धक नहीं माना।)

(२) 'आसाढ़ी कार्तिकी विसरूनका।' (नामदेव ने प्रत्येक वारकरी के लिए प्रतिवर्ष दो बार आषाढ़ी और कार्तिकी की एकादशी को पंढरपुर की यात्रा का संकेत किया है।)

(३) गले में तुलसी की माला धारण करो।

(४) गोपीचन्दन का उर्ध्व पुड्र लगाकर मुद्रा धारण करो और लकड़ी में भगवा वस्त्र बाँधकर पताका लेकर चलो।

(५) परस्त्री, पर-धन और मद्यपान से दूर रहो।

(६) पंढरपुर जाने पर चंद्रभागा नदी में स्नान, विट्ठल के दर्शन, ग्राम-प्रदक्षिणा और भजन-कीर्तन करो।

(७) परस्पर ज्येष्ठ और कनिष्ठ का भेद मत रखो।

भगवान कृष्ण के रूप की उपासना वारकरियों के हृदय का हार है—

'धनि धनि बनखंड ब्रिंदावना। जहं खेले श्री नाराइना।' (नामदेव)

वारकरी संतों की सूची—

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश पृष्ठ १७६ मे इस प्रकार दी गई है—

१	२	३		४
क्रमाक	सतों के नाम	समय		समाधिस्थान
१.	निवृत्तिनाथ	सन् ११६५	१२१६	त्र्यम्बकेश्वर
२.	ज्ञानेश्वर महाराज	,, ११६७	१२१८	आलंदी
३.	सोपानदेव	,, ११६६	१२१८	मासवड़
४	मुक्ताबाई	,, १२०१	१२१६	एदलाबाद
५	विसोबा खेचर	,, ?	१२३१	?
६.	नामदेव	, ११६२	१२७२	पढरपुर
७.	गोरा कुंभार	,, ११८६	१२३६	तेर
८.	सावता माळी	,, ?	१२१७	अरणभेंडी
६	नरहरि सुनार	—	१२३५	पंढरपुर
१०.	चोखामेला	—	१२३०	पढरपुर
११.	जगमित्र नागा	—	१२५२	परली (वैजनाथ)
१२.	कूर्मदास	१२५३	—	लऊल
१३.	जनाबाई	—	—	पढरपुर
१४.	चॉगदेव	?	१२२७	पुणतावे
१५.	भानुदास	१३७०	—	पैठण
१६.	एकनाथ	१४७०	१५२१	पैठण
१७	राघव चैतन्य	—	—	ओतूर
१८.	केशव चैतन्य	—	१३६३	गुलबर्गा
१६.	तुकाराम बुवा	—	१५७२	देहू
२०.	निलोबाराय	—	—	पिंपलनेर
२१.	बोधलेबुवा	तुकाराम के	समकालीन	
२२	शंकरस्वामी	—	—	शिरुर
२३	मल्लाप्पा	—	—	आलदी
२४	मुकुंदराज	—	—	आवे
२५.	कान्होपात्रा	—	—	पंढरपुर
२६.	जोगा परमानन्द	—	—	वार्शी

महाराष्ट्र के संतों ने 'कृष्ण' के प्रायः बाल और मर्यादित रूप को अपनाया है। उन्होंने उत्तर के भागवत सम्प्रदायी भक्तों की नाईं कृष्ण का राधा और गोपी का शृंगारमूलक भक्तिरस का विशेष पान नहीं किया। इसीलिए पंढरपुर में विठ्ठल (कृष्ण) की मूर्ति के निकट राधा-रानी न होकर, रुक्मिणी देवी प्रतिष्ठित हैं।

यह कहा जा चुका है कि वारकरी-संत कृष्ण (विठ्ठल) के प्रति भक्ति रखते हुए भी अद्वैतवादी हैं। उत्तर भारत के भक्त संतों के समान वे आराध्य के चरणों में देह-मुक्त हो जाने पर भी नहीं रहना चाहते। वे भव-बंधन से छूट कर मोक्ष चाहते हैं—भगवान में एकाकार होना चाहते हैं। अपवाद स्वरूप नामदेव का एक अभंग है[1] जिसमें वे पढरी राय के चरणों की सेवा के लिए वार-वार जन्म लेना चाहते हैं। पर यह अभंग उस समय का हे जब नामदेव विठ्ठल के सगुण रूप के उपासक थे और ज्ञानदेव के सम्पर्क में नहीं आये थे। ज्ञानेश्वर के प्रभाव में आने पर उन्होंने विसोवा खेचर से 'उपदेश' ग्रहण कर विठ्ठल को सर्वव्यापी अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया।

नवधा भक्ति में—

> "श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्,
> अर्चनं वंदनं दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ॥"

का समावेश होता है। महाराष्ट्रीय वारकरियो ने 'श्रवण और कीर्तन' को पुरस्सर करने के लिए एक नूतन संस्था का जन्म दिया। नामदेव इसके प्रथम आचार्य है। वे जनता के मध्य खडे होकर ताल और मृदग के साथ कीर्तन करते और पुराणों से उदाहरण दे-देकर अपने अभंगों की व्याख्या करते थे। उनके इस 'कीर्तन' मे ज्ञानदेव, निवृत्तिनाथ आदि सत भी सम्मिलित होते थे। नामदेव की इस कीर्तन-पद्धति का महाराष्ट्र मे खूब प्रचलन हुआ। इसे 'निरूपण' भी कहते हैं।

(४) दत्त-सम्प्रदाय

महाराष्ट्र में इस सम्प्रदाय का पुनरुद्धार पंद्रहवीं शताब्दी मे हुआ। दत्त त्रिमूर्तिदेवता है जिनमे ब्रह्मा, विष्णु और महेश का समावेश है। साथ ही इनमें सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का एक्य दर्शन भी होता है। सूर्य, शक्ति, गणपति, विष्णु और शंकर की 'पंचायतन-पूजा' की परिपाटी शंकराचार्य ने जनता की मत-विभिन्नता का अन्त करने के लिए प्रारंभ की थी। इसी भावना से इस त्रिमूर्ति देवता की सृष्टि की गई

---

१. पाहतां तुझे चरण हरली भवकथा। पुढती एक चिंता वाटत से।
आणीं मुक्ति पद देसी पांडुरंगा। मग या सत संगा कोठे पाहूँ ॥
मग हें पढरी आनंद सोहळा। कवणाचे डोळा पाहूं देवा।
मग हे हरिकथा अमृत संजीवनी। वचणाचे श्रवणी एकों देवा।
नामा म्हणें मज पंढरीची सोय। अनन्त जन्म होय याचि लागीं।

प्रतीत होती है। दत्तावतार की शिव पुराण, हरिवंश पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में चर्चा है, परन्तु जयदेव ने अपने गीतगोविन्द में जहाँ दशावतारों की वंदना की है, वहाँ 'दत्त' का उल्लेख नहीं है। क्षेमेन्द्र के 'दशावतार-चरित' मे भी दशावतार का उल्लेख नही है। दशावतार का काल-निर्णय संदिग्ध है।

पर दत्त की जन्मतिथि मार्गशीर्ष पूर्णिमा मानी जाती है। इनके जन्म की कथा इस प्रकार है। एक बार अत्रि ऋषि ने ऋक्षकुल पर्वत पर पुत्र-प्राप्ति के लिए तप किया। तप के तेज से जब ज्वाला निःसृत होने लगी तो त्रिलोक तप उठा और जनता 'त्राहि त्राहि' कर उठी। तब सब देवता उनके पास गये और उन्हे वरदान दिया कि उन्हे ऐसा पुत्र प्राप्त होगा जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों का अंश धारण करेगा। समय पाकर अत्रि की पत्नी अनुसूया को जो पुत्र हुआ, उसका नाम दत्त रखा गया।

त्रिमुखी दत्तात्रेय ने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की, वर्ण-व्यवस्था की पुनर्घटना की और यज्ञ-कर्मों का पुनरुद्धार किया। दत्त-सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा इस प्रकार है—शंकर, विष्णु, ब्रह्मदेव, वशिष्ठ, शक्ति, पाराशर, शुक्र, गौडपादाचार्य, गोविंदाचार्य, शंकराचार्य, विश्वरूपाचार्य, ज्ञानगिरीय, सिंहगिरीय, ईश्वरतीर्थ, नृसिंहतीर्थ, विद्यातीर्थ, मली महानंद, देवतीर्थ सरस्वती, यादवेन्द्रतीर्थ, सरस्वती-कृष्ण सरस्वती, नृसिंह सरस्वती, माधव सरस्वती। श्री पादश्रीवल्लभ इस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य और दत्तात्रेय के अवतार माने जाते हैं। वीठापुर में आवळ राजा के यहाँ इनका ईसा की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरकाल में जन्म हुआ। ये यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात् माता की आज्ञा से घर त्याग कर काशी होते हुए बदरिकारण्य पहुँचे और वहाँ इन्होंने नारायण के दर्शन प्राप्त किये। वहाँ से ये गोकर्ण गये, जहाँ तीन वर्ष तक रहे। वहाँ से कुरवपुर (कुरगड्डी-बेजवाड़ा के निकट) गये और कई चमत्कार करने के पश्चात् अदृश्य हो गये। इनके पश्चात् सन् १४०८ से १४५८ तक नृसिंह सरस्वती ने इस सम्प्रदाय का नेतृत्व ग्रहण किया। इनका जन्म विदर्भ स्थित करंजनगर (वर्तमान कारंजा) में ब्राह्मण कुल मे हुआ। इन्हे भी दत्तात्रेय का अवतार कहा जाता है। इन्होंने भी बदरिकारण्य की यात्रा की और सन्यासी के रूप में अनेक स्थानो में भ्रमण किया। एकनाथ महाराज के गुरु जनार्दन स्वामी दत्त-सम्प्रदाय के बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं। इनका जन्म सन् १५०४ मे चालीसगाँव मे हुआ। इन्हें हिन्दू और मुसलमान जनता का समानरूप से आदर प्राप्त था। इनके शिष्य एकनाथ ने वारकरी-मत स्वीकार कर लिया था। हुमणाबाद के माणिक प्रभु इस सम्प्रदाय के अंतिम प्रसिद्ध संत हो गये हैं जिनके आगे हिन्दू-मुसलमान दोनों नतमस्तक होते थे। इस तरह हम देखते है कि दत्त-सम्प्रदाय ने वर्ण-व्यवस्था को अखंडित रखते हुए भी सभी जातियो में, यहाँ तक कि मुसलमानों मे भी, समभाव उत्पन्न करने का यत्न किया। कई मुसलमान दत्त सम्प्रदायी आचार्यों के उपासक हो गये थे।

सम्प्रदाय के ग्रंथ 'गुरु-चरित्र' में आचार धर्म की विस्तृत व्याख्या की गई है। ब्राह्मणो को वेदाध्ययन, सध्यापूजा आदि का आदेश है। उन्हे यह भी आदेश है कि वे

शूद्रों तथा दुराचारियों के यहाँ अन्न ग्रहण न करें। जनता को लोकविरुद्ध आचार-पालन का निषेध किया गया है। इस सम्प्रदाय में सगुणोपासना और योग-मार्ग ग्रहण करने का निर्देश है।

दत्तात्रय अमर हैं, ऐसी साम्प्रदायिकों की मान्यता है। नाथ-पंथियों में दत्त सिद्धि-प्रदाता, दिगम्बर और अवधूत कहे गये है और महानुभावों में पंच कृष्णों मे दत्त एक माने गये हैं। परंतु वे त्रिमूर्ति दत्त नहीं हैं। महानुभावों मे दत्त देवावतार नहीं, ईश्वरावतार हैं। फिर भी ये समन्वयवादी देवता होने से प्रत्येक सम्प्रदाय मे पूजित हैं"।[1]

इस पंथ का अद्वैत दर्शन है। ब्रह्म को निरामय, नित्यानंद तथा ज्ञान की आँखों से ज्ञातव्य कहा गया है। ब्रह्म की इच्छाशक्ति ही प्रकृति है और जीव ही मूल रूप से ब्रह्म है। भिन्न-भिन्न देह धारण करने से भिन्न-भिन्न दिखाई देता है। यह ससार महेश के संबंध से उत्पन्न हुआ है, उन्ही के संबध मे रहता है और उन्हीं के संबंध मे उसका 'लय' हो जाता है। नददास के शब्दों मे 'वा गुण की परछाँह री मायादर्पण बीच' के समान यह समस्त सृष्टि है। जिस प्रकार सूर्य के विना उसका तेज पृथक नहीं रह सकता, उसी प्रकार महेश के विना उसकी सृष्टि का अस्तित्व नहीं टिक सकता।

(५) समर्थ-सम्प्रदाय

ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के मध्य मे समर्थ रामदास ने अपने पंथ का महाराष्ट्र मे प्रचार किया। यह मुस्लिम साम्प्रदायिकता के अतिरेक का काल था। अपने 'परचक्र निरूपण' में 'समर्थ' ने जनता की दयनीय स्थिति का बडा ही करुण चित्र अंकित किया है। जनता अखण्ड चिंता के प्रवाह में पड़ी हुई थी, किसी को कोई मार्ग नहीं सूझता था। जनता को वैदिक धर्म और वर्णाश्रम के पंथ पर खींच कर उसमे स्वकर्तव्य बोध जाग्रत करने का संकल्प 'समर्थ' ने किया और यह अमर मत्र प्रचारित किया कि 'भगवन्त के अधिष्ठान सहित आन्दोलन में सामर्थ्य निहित है।' सन् १६४४ में जावे में उन्होंने अपने सम्प्रदाय की स्थापना की।

समर्थ ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दासबोध' में अन्य पूर्ववर्ती संतों की भाति अद्वैत का ही प्रतिपादन किया है। संसार में आत्मज्ञान अप्रतिम है। यही सर्व विद्या का सार है। जीवात्मा परब्रह्म से अभिन्न है। इसे ही जानने का नाम आत्मज्ञान अथवा आध्यात्म विद्या है और परब्रह्म निर्गुण निराकार है। परब्रह्म एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न भासता है—

'ब्रह्म एकचि असे। परि तें बहुविध भासे।'[2]

---

१. "जय जय दत्तराज योगी, जय जय महाराज योगी
शंख, चक्र और त्रिशूल विराजे गले बड़ी वनमाला
जोगदंड अवधूत दिगंबर बनारस रहनेवाला।"

प्रसाद (मराठी), जून १९५४, पृष्ठ ४०।

२. वही, जुलाई, पृष्ठ ५८।

(ब्रह्म एक ही है, पर वह बहुविध भासता है।) ब्रह्म निर्गुण निराकार, निर्विकार शाश्वत, दृश्य और शून्य से भी भिन्न है अर्थात् केवल ज्ञानस्वरूप है। सभी स्थानों मे एक ब्रह्म ही है।

समर्थ ने दृश्यमान जगत् को 'माया'नाम से अभिहित किया है। पचमहाभूत माया ही है। ब्रह्मज्ञान से 'माया' का नाश होता है। इस प्रकार शंकराचार्य की माया की कल्पना का रामदासी 'माया' से बिलकुल मेल खाता है।

रामदास विवेक को जागृत कर जगत् में जगदीश के दर्शन की प्रेरणा देते हैं। रामदास वर्णाश्रम-धर्म के पोषक थे और ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को उन्नत करने की चिंता रखते थे। उनका विश्वास था कि जो ब्राह्मण वर्णाश्रम धर्म में अग्रस्थान रखता है, उसे आदर्श बनना ही चाहिए। तभी वह 'वर्णाना गुरुः' कहला सकता है। उन्होंने ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों को भी स्वकर्मनिरत रहने की चेतना दी। अपने विहित कर्म को करने का उन्हे बार-बार आदेश दिया है। उन्होंने 'कर्म-मार्ग' से उपासना का महत्त्व प्रतिपादित किया है। श्रवण, कीर्तन और आत्मनिवेदन भक्ति का उन्होंने आग्रह किया है। सम्प्रदाय में रामोपासना अनिवार्य समझी जाती है। स्वयं निर्धन होकर समाज सेवा साधकों का लक्ष्य समझा गया। निस्पृहता, त्याग और परोपकार आचार धर्म के मूल सूत्र हैं। भिक्षा को उन्होंने पेट भरने का साधन नहीं, मुख्य दीक्षा कहा है। रामदासियों को मेखला, शिरोवस्त्र, झोली और रामनामाकित वस्त्र तथा भगवा झडे मे पंचवस्त्र तथा कुबड़ी (कक्ष-दंड) साथ रखने का विधान है। हरिकथा-निरूपण, राजनीति-व्यवहार, सावधानता और अत्यंत साक्षेप-पंथ की चतुःसूत्री कहलाती है।[1] राम-मदिर मे रामोपासना और हनुमान-मदिर मे बलोपासना का उपदेश समर्थ ने जनता को दिया। उनकी सेवा की सीमा ब्राह्मण वर्ण ही नहीं थी, वे तो अपने ज्ञान को सभी तक पहुँचाने का आग्रह करते रहे हैं। उनका उपदेश है—

जें-जें काहीं आपणास ठावे। तें तें इतरा शिकवावें
शहाणे करून सोडावें। सगले जना॥

(जो हमें आता है, वह दूसरों को भी सिखलाना चाहिए। सबको बुद्धिमान बनाकर ही छोड़ना चाहिए।)

लोक कल्याण की इतनी प्रबल भावना समर्थ मे भरी हुई थी। उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार प्रकट की है—आदि नारायण—महाविष्णु—हंस—बुद्ध देव—वसिष्ठ—राम—रामदास।

महाराष्ट्र मे रामदासी मठों की संख्या पर्याप्त है। जयरामस्वामी, वडगावकर, रगनाथ स्वामी, आनंदमूर्ति और केशवस्वामी को 'दास पंचायतन' की संज्ञा दी गई है। ये पाँचों समर्थ रामदास के समकालीन और अनुयायी हैं। महाराष्ट्र के सभी सम्प्रदाय के संतों ने

१. प्रसाद (मराठी जुलाई), १९५४ पृष्ठ ६१।

वैदिक धर्म के आचार-विचार की स्वत्व-रक्षा का आग्रह किया है। सभीने वर्ण व्यवस्था को ध्वस्त करने का कभी भी संकल्प नहीं किया, प्रत्युत उसकी रक्षा का ही उपदेश दिया है। वर्ण-व्यवस्था के भीतर रहकर आत्मज्ञान प्राप्त करने की ओर उनका निर्देश है। वे तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अद्वैती हैं; पर उनका अद्वैत भक्तिरस से सिक्त है। इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति कबीर के समान उलटबाँसी का रूप धारण नहीं कर पाई। उन्होंने सहजभाव से लोकभाषा मे जनता को राम देवता मे अधिष्ठित भगवान की सर्वव्यापकता का आभास करा कर उनके चरणों मे अपने विहित कर्मों को समर्पित करने का उपदेश दिया है। उनके पथ मे विठ्ठल, दत्तात्रय, राम—किसी को भी केन्द्र-बिंदु मानकर, उसे सर्वव्यापी अनुभव कर, उसका नामोच्चार साधना का एक मार्ग माना गया। वारकरी और समर्थ सम्प्रदाय के तत्त्वो मे कोई मौलिक भेद नहीं है। समर्थ सम्प्रदाय मे मठों और महन्तो को प्रचार की दृष्टि से महत्त्व प्रदान किया गया है। यही अन्तर है। सम्प्रदाय की कार्य-प्रणाली के बीस लक्षण समझे जाते है, जिनमे (१) लेखन, (२) वाचन, (३) अर्थ बोध, (४) आशका निवृत्ति, (५) अनुभव, (६) गान, (७) नृत्य, (८) ताली बजाना, (९) अर्थभेद, (१०) प्रबन्ध रचना (११) प्रबोध, (१२) वैराग्य, (१३) विवेक, (१४) पर संतोषीकरण, (१५) राजनीति, (१६) एकाग्रता, (१७) समय और प्रसंग ज्ञान, (१८) उदासीनता, (१९) समाधान और (२०) रामोपासना की गणना है। वारकरियों द्वारा प्रवर्तित भागवत धर्म को समयानुरूप उत्थापित करने के लिए समर्थ-सम्प्रदाय अग्रसर हुआ। अगले अध्याय मे हम सभी सम्प्रदायों के उन संतों का परिचय प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने हिन्दी को अपनी अमोल वाणी का माध्यम बनाकर राष्ट्रभाषा की पदवी प्रदान की।

---

(१)

शक-सवत की १२वीं शताब्दी के महानुभावी सत दामोदर पडित की
हिन्दी-रचना
लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन पाण्डुलिपि का छायाचित्र
[स्व० हरिभाऊ नेने के सौजन्य से

(२)

दामोदर पंडित की हिन्दी-रचना
तीन सौ वर्ष प्राचीन पाण्डुलिपि से

चौथा अध्याय

मराठी संतों की हिन्दी वाणी : संत-परिचय और वाणी-विवेचन

पिछले अध्याय मे हमने महाराष्ट्र मे प्रचलित नाथ, महानुभाव, वारकरी, दत्त और रामदासी सत-सम्प्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्त और आचार-धर्म की स्थूल रूपरेखा प्रस्तुत की है। अब हम उन प्रमुख सतों का परिचय देते हैं, जिनकी वाणी ने हिन्दी के माध्यम से लोक-कल्याण की वर्षा की है। नाथ-सम्प्रदाय ने महाराष्ट्र में धर्म-जागृति का बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यद्यपि ज्ञानेश्वर महाराज के जाज्वल्यमान व्यक्तित्व में यह सम्प्रदाय हतप्रभ हो गया, तथापि उसकी सृष्टि और सृष्टिकर्ता को देखने से ज्ञान-दृष्टि कभी भी महाराष्ट्र-संतों से ओझल नहीं रही। महानुभावी, वारकरी, दत्तानुयायी और रामदासी-सभी सतों ने नाथमत से थोड़े-बहुत अश में प्रेरणा ग्रहण की है, परन्तु विशुद्ध नाथ-सम्प्रदायी महाराष्ट्रीय संतो में ज्ञानदेव के पूर्व निवृत्तिनाथ और गैनीनाथ का ही प्रमुखता से उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु इन्होंने भी नाथ-मत के अनुसार केवल 'ध्यान-योग' पर जोर नहीं दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि गैनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को बालकृष्ण-भक्ति की भी दीक्षा दी। जो हो, ज्ञानेश्वर के पश्चात् भी 'नाथपथी' परम्परा राशिन और पैठण में चलती रही है, जो इस प्रकार है—

आदिनाथ—मछेन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गैनीनाथ—निवृत्तिनाथ—ज्ञाननाथ (ज्ञानेश्वर)—सत्यामलनाथ—गैबीनाथ—गुप्तनाथ—उद्बोधनाथ—केसरीनाथ— शिवदिन-नाथ—नरहरि—महीपति।

परन्तु इन सतों को विशुद्ध 'ध्यान योगी' नाथपथी कहना कठिन है। क्योंकि इन्होंने ज्ञानेश्वर को अपना गुरु मानकर उनके आदर्शों को स्वीकार किया है। ज्ञानेश्वर ने अपने जीवन के उत्तरकाल में वारकरी सम्प्रदाय को अपना ही नहीं लिया था, वे उसकी आधार-शिला भी वन गये थे। और वह सम्प्रदाय नाथपंथ के समान कोरा ज्ञानमार्गी नहीं है, उसमे भक्ति का भी समावेश है। ऐसी दशा मे राशिन और पैठण के सतों को ज्ञानेश्वर की परम्परा में रखा जाय अथवा मछेन्द्रनाथ और गोरखनाथ की विशुद्ध नाथ-

पंथी परम्परा के अन्तर्गत लिया जाय, इसका निर्णय हम उनकी रचनाओं के अध्ययन से ही कर सकते है। पैठण के शिवदिन केसरी की हिन्दी-रचनाओं से ऐसा ज्ञात होता है कि ये शुद्ध ज्ञानमार्गी हैं। परन्तु मराठी मे इन्होंने अपनी कुलदेवी तुलजापुर की भवानी और पढरपुर के विट्ठल पर स्तुतिपरक पद-रचनाएँ की है, जिनमे भक्ति का स्वर स्पष्ट है। ये कथा-कीर्तन भी करते रहे है। ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञानेश्वर के पूर्ववर्ती महाराष्ट्रीय सतो ने भले ही अपनी गुरु-परम्परा आदिनाथ से निर्धारित की हो; पर वे वास्तव मे विशुद्ध ज्ञानमार्गी नहीं थे, उनमे भक्ति का भी समावेश हो गया था।

विशुद्ध ज्ञानमार्गी नाथ-पथियो मे ज्ञानेश्वर से पूर्व जो संत हुए हैं, उन्होंने संभवतः हिन्दी मे भी उपदेश दिया हो; पर वे मुझे अभी प्राप्त नही हो पाये। महाराष्ट्र में गोरखनाथ के नाम पर जो तंत्र-मंत्र हिन्दी मे प्रचलित हैं, वे किसी मराठी भाषी नाथ-सम्प्रदायी के है, अथवा स्वयं गोरख या उनके महाराष्ट्रीय शिष्य के है, यह कहना कठिन है।

ऐसी दशा में सत-पंथ के अनुसार संतों को विभाजित करना कठिन है, क्योंकि संत प्रायः समन्वयवादी हुआ करते हैं। उदाहरण के लिए महानुभाव पंथ को ही लीजिए। इस पंथ के सतों ने यद्यपि नाथ-योगियों पर तीखा व्यग्य किया है, तो भी उनका नाथमत से सम्पर्क रहा है। चक्रधर के गुरु गोविन्द प्रभु अथवा गुडेमराउल नाथपंथी चागदेव के शिष्य थे। चागदेव राउल ने जिन्हे चक्रपाणि भी कहते हैं, हरपालदेव के (जो चक्रधर के पूर्वावतार थे) शरीर मे प्रविष्ट हो, उसे जीवित किया था। इस आख्यायिका से महानुभाव और नाथ-पंथ का संबंध प्रकट होता है।[1] इसी प्रकार जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, ज्ञानदेव भक्ति-मतवादी वारकरी होते हुए भी नाथों के गुरुत्व को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकारते है। वे नाथमत को 'पंथराज' कहते हैं। रामदास-काल मे बहियाबाई वारकरी सत श्रेष्ठ तुकाराम की शिष्या रही है और उनकी समाधि के अनन्तर समर्थ-मत के प्रवर्तक रामदास महाराज की भी शिष्या रही है। अतः उनकी गणना तुकाराम तथा रामदास दोनो की शिष्य-परम्परा में होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि संतों को पंथ विशेष के अन्तर्गत रखना आसान नहीं है। हिन्दी भाषा के विकास की दृष्टि से महाराष्ट्र में होनेवाली राजनीतिक उथल-पुथल को सम्मुख रखकर संतों का अध्ययन अधिक उचित होगा, क्योंकि उसका प्रभाव भाषा और साहित्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इन सब बातों को ध्यान मे रखकर हमने संतों की वाणियों के अध्ययन का विभाजन इस प्रकार किया है—

प्रथम खण्ड : मुसलमान-आक्रमण के पूर्व (यादवकालीन) सतों की हिन्दी-वाणी।

द्वितीय खण्ड : मुसलमान-आक्रमण के पश्चात् (मुसलमानकालीन) मराठी संतों की हिन्दी-वाणी।

---

१. देखिए—महाराष्ट्र-परिचय, पृष्ठ ३३१।

तृतीय खण्ड : मुसलमान वर्चस्व के ह्रासोपरान्त (शिवाजी कालीन) मराठी संतों की हिन्दी-वाणी।

चतुर्थ खण्ड : पेशवाकालीन और पेशवोत्तर मराठी संतों की हिन्दी-वाणी।

प्रथम खण्ड में मुसलमान-आक्रमण के पूर्व यादवकालीन संतों की हिन्दी-वाणी की चर्चा की गई है। इसमें महानुभावी संत तथा ज्ञानेश्वर महाराज और उनकी बहिन मुक्ताबाई का समावेश है। ज्ञानेश्वर की समाधि के दो वर्ष पूर्व मुसलमानों ने महाराष्ट्र पर आक्रमण कर दिया था। पर उसका महाराष्ट्र-जीवन पर प्रभाव नही पड़ा था। द्वितीय खण्ड में नामदेव से लेकर तुकाराम के पूर्व तक के संतों का परिचय है। तृतीय खण्ड मे तुकाराम और रामदास तथा उनके समसामयिक संतों का परिचय है। चतुर्थ खण्ड मे हरिहरनाथ, शिवदिन केसरी, अमृतराम आदि संतों का परिचय है।

प्रथम खंड

मुसलमान-आक्रमण के पूर्व (यादवकालीन) : मराठी संतों की हिन्दी-वाणी

चक्रधर और हिन्दी

महाराष्ट्र मे सबसे प्राचीन हिन्दी-वाणी महानुभाव पंथ के प्रवर्तक महात्मा चक्रधर की प्राप्त होती है। इनका परिचय महानुभाव-पंथ की चर्चा करते समय विस्तार के साथ दिया जा चुका है। अतएव यहाँ उसके पिष्ट-पेषण की आवश्यकता नहीं। यहाँ केवल उनकी चौपदी दी जाती है, जिन्हें उन्होंने पैठण (प्रतिष्ठान) में गाया था—

"मूल स्थानीं भिउ बंध बाधो हो जोई ना काल कलाई ॥
गुरुवचनें उठीयाना दृढ़ बधाई जे वीना चचल नाहीं।
सुती बंधी स्थिर होई जेणे तहमी जाई
सो परी मोरो वैरी, आपणाँ काई ॥

× ×   × ×

पाचे पंचायत पावै जन हो धावती आप आण स्थानीं।
पवण पुरो हो मनि स्थिर करो हो चन्द्र मैली वा भान।
अयागमन दुई जे वारो बुद्धि राखो अपन ये।
झाटिये जाता निवारो हो भिडे न वायो जाई ॥
आँखें निरजन लो लो करी हो भाव अभाव दोन्ही नाहीं।

यह मराठी-गुजराती मिश्रित हिन्दी है। इसमें 'नाथों' के सूर्य-चन्द्र-नाड़ी मेल, प्राणायाम आदि साधनों पर व्यग्य है। महाराष्ट्र मे मुसलमान-संसर्ग के पूर्व यह रची गई है। इसमे 'बाधो', 'करो' जैसे विधि-क्रियारूप खड़ी बोली की स्वतत्र सत्ता के निर्देशक हैं। चक्रधर महाराज की हिन्दी मे इतनी गति नही प्रतीत होती, जितनी उन्हींकी समकालीना शिष्या 'महदायिसा' की है।

महदायिसा

इस कवयित्री को महदायिसा के अतिरिक्त, महदबा, उमाम्बा और रूपाई भी कहते हैं। यह मराठी की आदि कवयित्री कही जाती है। इसके जन्म और मरण के संबध में निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। 'नागदेव-स्मृति' ग्रंथ से इतना ही ज्ञात होता है कि इसके पूर्वज वामनाचार्य देवगिरि के यादवराजा महादेवराय के यहाँ पुरोहित थे। डा० तुलपुले ने 'महाराष्ट्र सारस्वत' के परिशिष्ट (पृ० ८८५) में वामनाचार्य का वंश-विस्तार इस प्रकार दिया है—

वामनाचार्य (महदायिसा)
|
महेश्वर पंडित (वैजाइसा)
|
माधवभट (आबाइसा) — बायेनायेक (कामाइसा)

माधवभट (आबाइसा)
|
नागदेवाचार्य (गंगाइसा)
|
महेश्वर पंडित
|
नागाइसा

बायेनायेक (कामाइसा)
|
महदाइसा कवयित्री
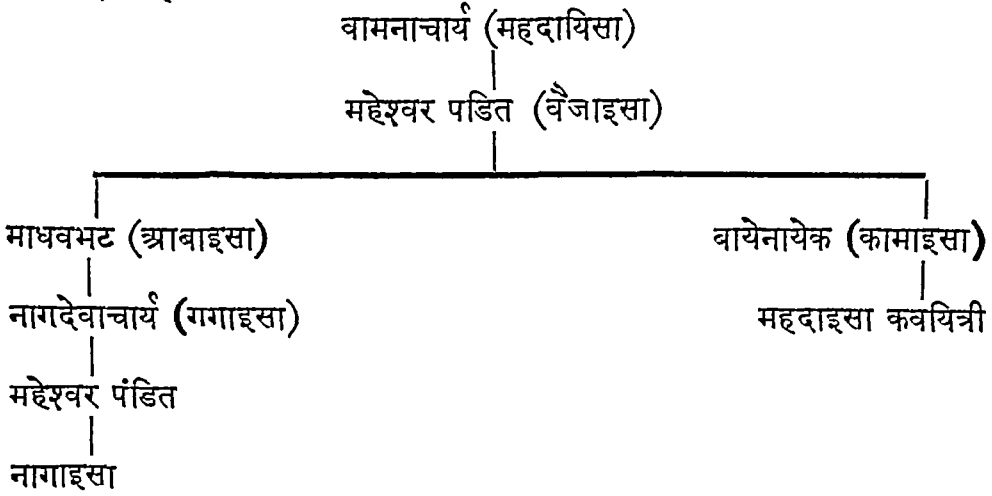
इस प्रकार महदायिसा नागदेवाचार्य की चचेरी बहिन होती है। महदायिसा बाल-विधवा थी। नागदेवाचार्य के साथ ही इसने चक्रधर का अनुसरण किया। चक्रधर के देहान्त के पश्चात् यह ऋद्धिपुर में गोविन्दप्रभु के पास रहने लगी। इस कवयित्री की गुरुभक्ति बड़ी प्रबल थी। यह अपने काल में अत्यंत विदुषी समझी जाती थी। नागदेवाचार्य ने इसे वृद्धा (म्हतारी) कहा है। इसका प्रयाण-काल शके १२३० है। 'स्मृति-स्थल' में नागदेवाचार्य का अपनी 'म्हतारी' के निकट रहने का उल्लेख है। अतएव महदायिसा का प्रयाणकाल शके १२३० के पूर्व होना चाहिए। इस कवयित्री ने मराठी में धवळे, मातृकी, रुक्मिणी-स्वयंवर और गर्भकाण्ड ओव्या नामक ग्रंथों की रचना की है। इसे मराठी की प्रथम कथा-काव्य लेखिका होने का श्रेय प्राप्त है। इसने हिन्दी में भी रचना की है। पता नहीं, कितने पद काल-कवलित हो गये। एक पद जो प्राप्य है, वह नीचे दिया जाता है—

> "नगर द्वार हो भिच्छा करो हो, बापुरे मोरी अवस्था लो।
> जिहाँ जावो तिहाँ आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिंता लो।
> हाट चौहाटा पड रहू हो माग पंच घर भिच्छा
> बापुड लोक मोरी आवस्था कोउ न करी मोरी चिंता लो।

'मार्ग' के आचार्य के अनुसार साधिका भिक्षा माँगकर चौहाटे में पड़ी रहती है। उसके गुरुदेव ही उसकी चिंता करते हैं। वह उन्हीं का आह्वान करती है। महदायिसा की गुरुभक्ति प्रसिद्ध है।

महदायिसा के हिन्दी-पद की भाषा खड़ी बोली और व्रज का मिश्रण है। अभिव्यक्ति मे सहज प्रासादिकता है। करुणभाव की छाया है। चक्रधर स्वामी की अपेक्षा महदायिसा की भाषा मे अधिक प्रौढता है, अधिक हिन्दीपन है। क्या ही अच्छा होता, इनके और भी हिंन्दी पद प्राप्त हो सकते !

दामोदर पंडित

महानुभाव सत कवियों मे दामोदर पडित का मूर्धन्य स्थान है। इनके जन्म-स्थान और दीक्षापूर्व जीवन का वृत्त अज्ञात है। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये इस पंथ मे आने के पूर्व नाथपंथी थे। शके १२०६ मे नागदेवाचार्य 'रिद्धपुर' से लौटकर गोदावरी तट स्थित 'निंवा' नामक स्थान मे रहने लगे। सम्भवतः वहीं इनकी दामोदर पंडित से भेंट हुई। कहा जाता है कि शके ११६४ मे इन्होंने सपत्नीक महानुभाव-मार्ग में दीक्षा ली। इनकी पत्नी हिराबा अत्यत सुशीला और पंडिता थी। उसमे उत्कट गुरु-भक्ति थी। एक बार उसने अपने गुरु नागदेवाचार्य को घर पर भोजन के लिए आमन्त्रित किया। उस समय उसकी प्रिय पुत्री आसन्नमरणा थी तो भी वह उनकी सेवा-शुश्रूषा मे लगी रही। आचार्य को भोजन खिलाने के पश्चात् जब उसने पुत्री की सुधि ली, तब उसने देखा कि वह कभी की वेसुध हो चुकी थी—प्राणान्त कर चुकी थी। इस दृश्य को देखकर उसके हृदय का बॉध फूट पडा। वह विचलित होकर रो उठी। इस घटना ने उसका जीवन-क्रम ही पलट दिया। वह विरक्त हो गई और गुरु के सान्निध्य में रहने लगी। दामोदर पंडित ने संन्यास नहीं लिया। वे अपने पुत्र के पालन-पोषण में लगे रहे। उनका मन निवृत्ति से दूर ही भागता रहा। कई बार संन्यास लेने की इच्छा करते रहने पर भी, ले न पाते। किंवदंती है कि एक दिन हिराबा ने पति को यह संदेश भेजा कि जिस चूल्हे की तुमने खीर खाई है, क्या उसी की राख खाने ठहरे हुए हो? पत्नी का यह व्यंग्य कवि के हृदय मे चुभ गया। दामोदर पंडित सन्यासी हो गये और पत्नी के समान ही गुरु के आश्रम मे रहने लगे।

संन्यस्त कवि संस्कृत के आचार्य तो थे ही, मराठी पर भी पूर्ण अधिकार रखते थे। हिन्दी से भी उनका परिचय था, जो उनकी अनेक चौपदियों की रचनाओं से प्रकट है।

साहित्य और दर्शन के अतिरिक्त संगीतकला के प्रति भी उनकी अत्यधिक रुझान थी। उनके कण्ठ से संगीत रह-रह कर झर उठता था, जिसके नाम मे वे स्वयं भूल जाते थे। महानुभाव-मार्ग मे संन्यासियों के लिए गायन का निषेध होने से उन्हे बड़ा मानसिक बोझ अनुभव होता था। एक दिन उनके सयम का बॉध टूट ही तो गया। वे आत्मविभोर होकर गाने लगे। गुरु के कानों में संगीत-ध्वनि पड़ते ही वे चुपके से दामोदर पंडित के पीछे आ खड़े हुए। दामोदर पंडित वेदनाभरे स्वर मे गा रहे थे, जिसका भावार्थ यह था कि "हे मेरे गोविन्द राजा, जिस प्रकार शिशु अपनी मॉ के लिए रोता है, उसी प्रकार मैं भी तेरे लिए रोने लगता हूँ। गीत गाकर मैं तुझे अपनी ओर खींचना चाहता हूँ। क्या यह मेरा अपराध है?"

आचार्य इस भाव-भीने गीत को सुनकर विचलित हो उठे। वे दामोदर पंडित के सामने आ गये और बोले—"तुम पर अब गायन-निषेध की आज्ञा नहीं रही। चक्रधर स्वामी ने जो 'गीतुविखो' कहा है। वह विलासी गीतो के लिए लागू होता है, तुम्हारे गीतों के लिए नहीं।" पडित के कण्ठ और गीत-माधुर्य का यह उत्कट उदाहरण है।

ग्रन्थ-रचना

कवि की भागवत के दशम स्कंध की कथा पर आधारित 'वछाहरण' और भिन्न-भिन्न रागनियों मे रचित साठ चौपदियाँ प्रसिद्ध हैं। चौपदियों में नाथ-पथियों पर व्यंग्योक्तियों की वर्षा है। इसीसे अनुमाना गया है कि ये महानुभाव पंथ में आने के पूर्व स्वय नाथ-पंथी रहे हैं। इसीलिए आचार्य ने 'नाथों' से मुठभेड़ होने के लिए कदाचित् इन्हें आदेश दिया हो। जो हो, यह बात सत्य है कि इनकी चौपदियों मे नाथ-मत पर निर्मम प्रहार है। नाथ-मत में जब औघड़ियों और कनफटियों के गुह्याचार्य प्रबल हुए और भक्ति के प्रति स्वभावतः उपेक्षा दिखलाई दी तब जनता में उनकी प्रतिष्ठा गिरने लगी। महाराष्ट्र के ही नहीं, उत्तर भारतीय सतों की भी विविध योग-साधनाओं पर व्यग्योक्तियों की प्रवृत्ति पाई जाती है। भक्ति-मार्गी सत-मडली के प्रति जहाँ जनता में श्रद्धा का भाव प्रबल हो रहा था, वहाँ नाथ पंथियों के प्रति आतक और उपेक्षा की भावना बढ़ रही थी। महाराष्ट्र में महानुभावों ने सर्वप्रथम नाथ-पंथियों पर प्रहार करना प्रारम्भ किया।

एक चौपदी में दामोदर पडित नाथ-पथी योगी, वैरागी और भोगी की व्याख्या करते हैं—

"नवनाथ कहे सो नाथ पथी,
जगत कहे सो जोगी।
विरद बुझे तो कहि वैरागी,
ज्ञान बुझे सो भोगी।"

फिर वे गरुआ (गर्व करनेवाले अवधूतों) को सुनाते हैं—

"सुन हो तुम्ह सिद्धान्त गुरुआ,
सारा ज्ञान पथु हमारा
शुन्य निरसुन्य काहा के कहिजे,
ये शिव शकती समाजु गती,
कवण युक्ति तुम पाया
ब्रह्मा विष्णु महेश चन्द्र रवि,
भ्रमण करत समाया।"

दंभ और लोभ बन्धनकारी होते हैं । 'पंडित' चेतावनी देते हैं—

"हटो हटो रे दंभ करण,
माथे निब्रित नावे ।
जता जता दंभ करेगा,
तंता बंधन पावे ।
चिथड़ा फाटा तुटा पहेरो,
उपरि चोर न आवे ।
येहि रहनि जे चालती,
ते जंगल मध्ये सोवे ।"

(जो गरीबी धारण कर लेते है, उनपर चोरों की दृष्टि नहीं जाती और वे निर्भीक हो सुख की नींद सोते है ।)

दामोदर पंडित की हिन्दी मे मराठी की छाया है । उसमे खड़ी बोली के साथ-साथ ब्रजभाषा रूप भी विद्यमान है । ब्रजभाषा काव्यभाषा के रूप में उत्तर मे प्रचलित रही है और वह दक्षिणापथ मे भी सचरित हो गई थी ।

दामोदर पंडित की हिन्दी-रचनाओं मे यद्यपि काव्य का कोई चमत्कार नही है, तथापि मुसलमानों के संसर्ग से रहित दक्षिण मे हिन्दी का रूप किस प्रकार सहज रीति से विकसित हो रहा था, इसकी झलक इनकी भाषा में दीख पड़ती है ।

ज्ञानेश्वर

यद्यपि ज्ञानेश्वर ने अपनी गुरु-परम्परा आदिनाथ से स्वीकार की है और स्वयं 'नाथ-मत' मे दीक्षित भी हुए हैं, तथापि वे वारकरी सम्प्रदाय की 'नीव' के पत्थर माने जाते हैं । अतएव हम उन्हे 'वारकरी पंथी संत' के अन्तर्गत ही रखना चाहते हैं ।

उनका जन्म पैठण के निकट आळन्दी ग्राम मे हुआ था । उनकी जन्मतिथि के संबध मे थोड़ा मतभेद है । एक मत के अनुसार श्रावण वदी अष्टमी शके ११९७ (सन् १२७५) और दूसरे मत के अनुसार शके ११९३ (सन् १२७१) मे उनका जन्म हुआ । प्रथम मत के पोषक डा० रानडे, तुलपुले, पागारकर आदि और दूसरे मत के पुरस्सरकर्ता महाराष्ट्र सारस्वतकार भावे, दाडेकर आदि है । ज्ञानदेव की 'ज्ञानेश्वरी' का रचनाकाल प्रायः निश्चित है । स्वयं ज्ञानदेव की यह ओवी 'ज्ञानेश्वरी' के अन्त मे मिलती है—

"शके बाराशे बारोत्तरें । तैं टीका केलीं ज्ञानेश्वरें ॥
सच्चिदानन्द बाबा आदरें । लेखकू जाला ॥"[1]

ज्ञानेश्वर का समाधिकाल उनके समकालीन नामदेव तथा अन्य सन्तों के अभंगों से निश्चित हो जाता है ।

---

१. शके १२१२ (सन् १२९०) में ज्ञानेश्वरी की टीका लिखी और सच्चिदानन्द बाबा ने सादर लेखन का कार्य किया ।

नामदेव कहते हैं—

धन्य अलकापूर इन्द्रायणी तीर। दैव सिद्धेश्वर नादे तेथें
पुण्य क्षेत्र ऐसें पाहूनीया आधीं। कृष्णा कार्तीक मास त्रयोदशीं।
देव गुरुवार दुर्मुख सवत्सर। करिती सुरवर कुसुम वृष्टी।
नामा म्हणे ज्ञानराज ब्रह्म पूर्ण। समाधि निधान संजीवनी।

विसोबा खेचर कहते हैं—

"शके बाराशें आठरा। दुर्मुख नाम सवत्सरा।
गुरुवासर कार्तिक मासीं। कृष्णपक्ष त्रयोदशी।
माध्यान्हीं दिनकर। राहे क्षणमात्र स्थिर॥
खेचर बदी ज्ञानेश्वर। जोडोनिया दोन्ही कर॥"

जनाबाई कहती हैं—

"धन्य सर्व काल धन्य तो सुदिन। धन्य हा निधान ज्ञानदेव
बारा शतें अठरा दुर्मुख संवत्सर। तिथी गुरुवासर त्रयोदशी॥
शरदृतु कृष्णपक्ष कार्तीक मास। बैसे समाधीस ज्ञान राजा
नामयाची जनी लागते चरणीं। ज्ञानेश्वरी ध्यानीं जपत से।"

चोखामेला कहते हैं—

कृष्ण त्रयोदशी कार्तिक मास। बैसे समाधीस ज्ञानदेव।
जातिहीन चोखा जोडुनि कर। समाधी निर्धारि संजीवनी॥

शके १२१८, कृष्णपक्ष त्रयोदशी, गुरुवार ज्ञानेश्वर की समाधि-तिथि निश्चित है। और ज्ञानेश्वर यह भी कहते हैं कि बाईस वर्ष ही वे जीवित रहे।[1]

समाधिकाल शके १२१८ से २२ वर्ष घटा देने पर शके ११९६ जन्म शके निश्चित करना पड़ता है; पर परम्परा जन्मकाल शके ११९७ के पक्ष में है। यदि ज्ञानेश्वरी की पंक्तियाँ प्रक्षिप्त नहीं है, तो ज्ञानेश्वरी का रचनाकाल शके १२१२ अकाट्य प्रमाण है और समाधिकाल भी सम सामयिक बहु संतों द्वारा समर्थित होने से असदिग्ध हो जाता है। ज्ञानेश्वर स्वयं बाईस वर्ष जीवित रहने की बात कहते हैं। बाईस वर्ष को हम लगभग बाईस वर्ष मानकर परम्परा पुष्ट शके ११९७ को उनका जन्मकाल मान लेते हैं। डा० रानडे और तुलपुले भी इसी मत के समर्थक हैं।

जीवन-झलक

ज्ञानेश्वर के पिता विट्ठलपंत बचपन से ही निवृत्तिमार्गी थे। यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् अल्पकाल में ही उन्होंने वेद और शास्त्रों का अध्ययन कर डाला था और पिता की आज्ञा लेकर अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा की थी। जब वे आळंदी पहुँचे, तब रुक्मिणीबाई से उनका विवाह हो गया और वे वहीं रहने लगे। विट्ठलपंत का मन गृहस्थी के कार्य में नहीं लगता था। वे बार-बार काशी जाने का आग्रह करते। एक दिन

1. 'महाराष्ट्र-सारस्वत' (चतुर्थ आवृत्ति) पृष्ठ १९८-१९९।

पत्नी से गंगास्नान की आज्ञा प्राप्त कर काशी भाग ही गये। वहाँ 'महाराष्ट्र सारस्वतकार' के अनुसार उन्होंने श्रीपाद स्वामी से संन्यास-दीक्षा ग्रहण की।[1] परन्तु श्री आजगावकर के अनुसार उन्होने यह दीक्षा रामानन्द स्वामी से ली।[2] वहाँ उनका नाम चैतन्य स्वामी रखा गया। एक बार श्रीपाद या रामानन्द स्वामी रामेश्वर की तीर्थ-यात्रा के मार्ग मे जब आळंदी पहुँचे तब चैतन्य स्वामी की पत्नी उनसे मिली। स्वामीजी ने उसे 'पुत्रवती भव' का आशीर्वाद दिया, जिसे सुनकर वह हँस पड़ी और उसने अपने विरक्त पति की समस्त गाथा कह सुनाई। जब स्वामीजी को चैतन्य स्वामी के छलाचार का ज्ञान हुआ तब वे रुक्मिणी बाई को साथ ले काशी लौट गये और चैतन्य स्वामी की असत्य कथन पर कड़ी भर्त्सना की। चैतन्य स्वामी पुनः विट्ठलपंत होकर आळंदी लौट आये। तब शके १६१५ के पश्चात् उनके निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई नामक चार सतति हुई। पत ने सन्यास त्याग कर गृहस्थाश्रम स्वीकार किया था, अतएव ब्राह्मण-वर्ग के वे कोप-भाजन बने। ब्राह्मण-वर्ग ने प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्हे देहात प्रायश्चित्त का निर्णय दे दिया! उन्होंने सहर्ष त्रिवेणी मे जाकर देह अर्पित कर दी। चारो भाई-बहिन नाथ-मत मे दीक्षित हो गये थे। फिर भी आळन्दी के ब्राह्मणों ने उन्हे पैठण के ब्राह्मण-समाज से 'शुद्धि-पत्र' लाने का आग्रह किया। ज्ञानदेव के अलौकिक चमत्कार-प्रदर्शन के कारण उन्हे 'शुद्धिपत्र' की प्राप्ति हो गई। वहाँ से ज्ञानदेव निकासे गये। वहीं महालया मन्दिर मे एक खम्भे पर कोयले से ज्ञानेश्वरी की रचना के बाद उन्होने नामदेव और अपने भाई तथा अन्य सतों के साथ भारत के प्रसिद्ध तीर्थस्थलों की यात्रा की। यात्रा से लौटने पर ही ज्ञानेश्वर ने समाधि की तिथि निश्चित कर डाली। नामदेव तथा अन्य सतों के अश्रुभरित नेत्रो के सम्मुख सत ज्ञानदेव ने आळदी के सिद्धेश्वर मंदिर के सम्मुख जीवित समाधि ले ली। नामदेव के अभगो मे इस प्रसग का बड़ा ही करुण उल्लेख है।

ज्ञानेश्वर ने अपनी बाईस वर्ष की आयु मे जो ग्रथ-रचना का कार्य किया, वह उनके असाधारण व्यक्तित्व का ही द्योतक है। आज महाराष्ट्र-घरों मे उनकी 'ज्ञानेश्वरी' वेदों के समान पवित्र और पूज्य मानी जाती है। उसमे उन्होने केवल गीता की टीका ही नहीं लिखी, काव्य की मधुर चमत्कृति भी सचित कर दी है जिसे पढ़ते समय आत्मा ज्ञान से प्रकाशित और मन काव्य सौष्ठव से चमत्कृत हो उठता है। यह भगवद्गीता पर मराठी मे प्रथम टीका है। ७७० मूल श्लोकों पर ६००० ओवियों मे यह सम्पूर्ण हुई है। इसमें गीता के अर्थ का स्वतत्र प्रतिपादन किया गया है। प्रतिपादन मे ज्ञानदेवत्व झलक उठा है। तभी इसकी स्वतंत्र सत्ता और प्रतिष्ठा है। किंवदन्ती है कि ज्ञानेश्वरी की रचना को सुनकर निवृत्तिनाथ ने उसकी बड़ी प्रशसा तो की, पर यह भी कहा कि यह तो दूसरे की कृति का भावार्थ है। तुम अपना भी तो कोई ग्रंथ लिखो। अपने गुरु और बन्धु से प्रेरित होकर उन्होंने 'अमृतानुभव' की रचना की। इसे कवि ने

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत पृष्ठ १२२।
२ महाराष्ट्र संत कवयित्री, पृष्ठ २७।

'अनुभवागत' भी कहा है। इसमे शिव-शक्ति की एकता, शब्द-मंडन, शब्द-खडन, स्फूर्तिवाद आदि विषयों का अन्वय-पद्धति पर विवेचन और शकर-मत का समर्थन है।

इनके अतिरिक्त उनकी 'चागदेव पासष्टी' नामक एक रचना और है। इसमे हठयोगी चागदेव को ज्ञानदेव द्वारा प्रेषित उपदेश है। इसका एक रोचक प्रसग है। एक बार जब चागदेव् ज्ञानदेव को पत्र लिखने बैठे तब उन्हे यह नही सूझा कि वे अवस्था मे छोटे ज्ञानदेव को क्या लिखें 'आशीर्वाद' या 'तीर्थ रूप'? अतः उन्होंने कोरा कागज ही भेज दिया। उसे देखकर ज्ञानदेव की बहिन मुक्ताबाई ने व्यंग्य किया कि " 'चागदेव' ने इतने वर्षों तक साधना की, पर अभी तक वह कोरे ही रहे।" निवृत्तिनाथ यह सुनते ही बोल उठे "कोरा कागज यह बतलाता है कि अभी तक चागदेव का अतरग कोरा और निर्मल है।" मुक्ताबाई मौन रह गई। अपने भाई की आज्ञा से ज्ञानदेव ने पैंसठ ओवियों मे चागदेव को उत्तर लिखा। वही 'चागदेव पासष्टी' है। ज्ञानदेव के यही ग्रंथ प्रामाणिक कहे जाते हैं। इन ग्रथों के अतिरिक्त उनके अनेक अभंग भी प्रचलित हैं। उन अभंगों मे भक्ति-प्रवाह-रस को देखकर 'भारद्वाज' नामक एक विद्वान् ने यह प्रतिपादन किया कि महाराष्ट्र मे दो ज्ञानदेव नामंक संत हो गये हैं। एक नाथ-पथी हठयोगी ज्ञानदेव और दूसरे भक्त ज्ञानदेव, पर 'भारद्वाज' के मत का समर्थन नहीं हुआ। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव नामक एक ही सत हैं। उन्होंने भारत की तीर्थ-यात्रा के समय नामदेव को भी अपने साथ लिया था और उत्तर भारत के क्षेत्र देखे थे। सम्भवतः इसी समय उन्होंने हिन्दी मे भी पद-रचना की। परन्तु महाराष्ट्र मे उनकी रक्षा का प्रयत्न नहीं हुआ। जो एक-दो पद उपलब्ध हुए हैं, उन्हें यहाँ दिया जा रहा है—

"सब घट देखो माणिक मौला
कैसे कहूँ मैं काला धवला
पचरग से न्यारा होय
लेना एक और देना दोय। ध्रुवपद।

निर्गुण ब्रह्म भुवन से न्यारा
पोथी पुस्तक भये अपारा।
कोरा कागद पढ कर जाय
लेना एक और देना दोय।

अलख पुरुप मैं देखा दिष्टि
करकर आउन समार मुष्टि (?)
छाटा मे कछू न होय
लेना एक और देना दोय।

---

१. देखिए—'ज्ञानदेव और ज्ञानेश्वर' (भारद्वाज)।

खलल दिया त्रिलिका
तिरते तिरते मन न थका

इस पार न भावे कोय
लेना एक न देना दोय।

निर्गुन दाता कर्ता हर्ता
सब जुग बन मो आपहिता

सदा सर्वदा अच्चल होय
लेना एक न देना दोय।"

भगवान सब प्राणियों मे समाया हुआ है। इसका कोई रूप-रग नहीं है, उसे काला और धवल कैसे कहा जा सकता है? पोथी-ज्ञान से निर्गुण ब्रह्म नहीं जाना जा सकता। उस 'अलख' को अन्तर्दृष्टि से 'लखा' जा सकता है। श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव ने उनका एक और पद प्रकाशित कराया है—

"सोई कच्चा वे नहीं गुरू का बच्चा
दुनिया तज-कर खाक रमाई, जाकर बैठा वन मों
खेचरि मुद्रा वज्रासन मा ध्यान धरत है मन मों
तीरथ करके उम्मर खोई जागे जुगति मो सारी
हुकुम निवृत्ति का ज्ञानेश्वर को तिनके ऊपर जाना
सदगुरु की (जब) कृपा भई तब आपहि आप पिछाना।"[1]

वनवास, मुद्रा, आसन, अभ्यास, तीर्थाटन और पोथी-ज्ञान से सच्चा वैराग्य उत्पन्न नहीं होता। वह तो गुरु के अनुग्रह से ही प्राप्त होता है और उसी से 'परमार्थ-पथ' प्रशस्त होता है। इन पंक्तियों मे ज्ञानदेव की हठयोग की क्रियाओं में आस्था प्रकट नहीं होती और न सर्वथा निवृत्ति मे ही उनका विश्वास जान पड़ता है। वे ससार में पद्माम्बुजवत् रहकर प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति साधने के पक्ष में हैं। ज्ञानेश्वर का तात्त्विक पक्ष 'ज्ञानेश्वरी' से स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने ईश्वर और जगत् का संबंध अग्नि और उसकी ज्वाला, कमल और उसकी पंखुड़ी, रत्न और उसकी चमक, शर्करा और उसकी मिठास, समुद्र और उसकी लहर के समान अभिन्न प्रतिपादित किया है। वे जगत् को मिथ्या नहीं, सत्य और चैतन्य रूप मानते हैं। उसमे परब्रह्म समाया हुआ अनुभव करते हैं। सृष्टि और ब्रह्म में भिन्नता का आभास माया है। ज्ञानेश्वर के नाथ गुरुओं ने 'शून्यवाद' को प्रमुखता दी थी, पर ज्ञानदेव ने समाज के अनुकूल निष्काम भक्तिपरक भागवत मत को प्रतिष्ठित किया जो महाराष्ट्र मे 'वारकरी पथ' कहलाता है।

---

१. 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', भाग १०, पृ० ६४।

ज्ञानदेव के हिन्दी पद

ज्ञानदेव के उपर्युक्त दो हिन्दी पद दिये गये हैं। उनपर ध्यान देने से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—

(१) पहले पद भी भाषा में 'मौला' शब्द मे मुसलमानी प्रभाव दिखलाई देता है। पद की सब पंक्तियों का भाव स्पष्ट नहीं है।

(२) दूसरे पद मे पहले पद की अपेक्षा अधिक विदेशी शब्द है और पद की पक्तियाँ भाव और भाषा की दृष्टि से अधिक स्पष्ट हैं।

निष्कर्ष—पहला पद ज्ञानेश्वर का प्रतीत है, जिसपर मुसलमानी प्रभाव न्यूनतम है और उसकी रचना महाराष्ट्र मे हुई जान पड़ती है। ज्ञानेश्वर के समय मे महाराष्ट्र पर अलाउद्दीन खिलजी का प्रथम आक्रमण सन् १६६४ मे हो चुका था, पर उसके दो वर्ष पश्चात् ही उन्होंने समाधि ली थी। इतने अल्पकाल मे ज्ञानेश्वर की भाषा पर विदेशी प्रभाव पड़ना सभव नहीं जान पड़ता। प्रथम पद मे 'मौला' शब्द लिपिक की असावधानी से आया जान पड़ता है अथवा मुस्लिम आक्रमण के पूर्व अरवी व्यापारियों के सम्पर्क से मौला जैसे शब्द महाराष्ट्र में प्रचलित हो गये हों।

दूसरे पद के सबध में दो निष्कर्ष निकल सकते हैं। एक तो यह कि वह ज्ञानेश्वर-रचित नहीं है, क्योंकि उसमे विदेशी शब्द अधिक हैं, भाषा में परिष्कार भी अधिक है। दूसरा यह कि यदि वह ज्ञानेश्वर-रचित है तो उसकी रचना नामदेव के साथ उत्तर-यात्रा के समय हुई होगी। क्योंकि उत्तर भारत मुसलमानों से प्रर्याप्त प्रभावित हो चुका था। उत्तर भारतीय जनता को उपदेश देते समय उन्होंने उनमें प्रचलित शब्दों को स्वभावतः ग्रहण कर लिया होगा। पता नहीं, श्रीभालेराव ने वह पद कहाँ से प्राप्त किया ? जो हो, हम उसे ज्ञानेश्वर-रचित मान सकते हैं। क्योंकि दक्षिण भारत के अत्यन्त प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर ने जब उत्तर भारत की यात्रा की होगी तब जनता उनके दर्शनों और उपदेशों को सुनने के लिए अवश्य आतुर हो उठती होगी और उसी परिस्थिति मे उन्होंने हिन्दी पद लिखे होंगे। दुर्भाग्य है कि हमें उनके अन्य हिन्दी पद प्राप्य नहीं हैं। फिर भी यह हिन्दी के लिए कम सौभाग्य की बात नहीं है कि महाराष्ट्र के सत श्रेष्ठ ज्ञानदेव ने उसमें पद-रचना कर उसे गौरवान्वित किया।

मुक्ताबाई

महाराष्ट्र में इस सत कवयित्री को बड़ा आदर प्राप्त है। ज्ञानेश्वर की बहिन होने के नाते ही नहीं, ये स्वय अत्यन्त परमार्थ-परक और तेजस्विनी होने के कारण पूजित हुईं। ज्ञानदेव के समान ही इनकी प्रारम्भिक जीवन-गाथा उपलब्ध नहीं है। ज्ञानेश्वरी ग्रथ का समाप्ति-काल शके १२१२ निश्चित है। अतएव इसी शताब्दी मे निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई का जन्म होना चाहिए। सामान्य रूप से इन भाई-बहिन का जन्म-काल इस प्रकार है—

(१) निवृत्तिनाथ : शके ११६५ श्रीमुख सवत्सर, माघ वदी १, प्रात.काल।

(२) ज्ञानदेव : शके ११६७ युवा सवत्सर, श्रावण कृष्ण ८, मध्यरात।
(३) सोपानदेव : शके ११६६ ईश्वर संवत्सर कार्तिक सुदी १५ प्रहर रात।
(४) मुक्ताबाई : शके १२०१ प्रयाति सवत्सर, आश्विन सुदी १, मध्याह्न।

कहीं-कही इनके जन्म-शक मे विभिन्नता भी पाई जाती है—

(१) निवृत्तिनाथ : शके ११६०
(२) ज्ञानदेव : शके ११६३
(३) सोपानदेव : शके ११६६
(४) मुक्ताबाई : शके ११६६

इन दो विभिन्न शक-तालिकाओं मे से कौन प्रामाणिक है, यह कहना कठिन है। परन्तु परम्परा प्रथम तालिका पर विश्वास करती है। अतएव हम उसी को मानकर मुक्ताबाई का जन्म शके १२०१ निर्धारित करते हैं।

पिता विट्ठल पत ने सन्यासी होकर पुनः गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किया, इसका प्रायश्चित ब्राह्मणों ने यह निश्चित किया कि पत को शरीरान्त कर देना चाहिए। अतएव अपनी नन्हीं संतति को वहीं छोडकर वे पत्नीसह प्रयाग गये और वही गंगा मे प्रवाहित हो गये। माता-पिता के सहसा छोड़ जाने पर चारो भाई-बहिन अपने पैतृक गृह आपेगॉव लौट गये। उस समय मुक्ताबाई की आयु चार वर्ष की थी। संन्यासी की संतति होने से जनता की उनके प्रति सहानुभूति नहीं थी। कुछ समय पश्चात् वे आपेगॉव से आळदी और वहॉ से पैठण आदि स्थानों में गये। नेवासे मे किंवदन्ती के अनुसार ज्ञानेश्वर ने एक पतिव्रता स्त्री के मृत पति को कर-स्पर्श से प्राण-दान दिया। यहीं ज्ञानेश्वर की सच्चिदानद बाबा से भेंट हुई जो ज्ञानेश्वरी के पाण्डुलिपिकार बने।

मुक्ताबाई मे बचपन तो था ही, वाचालता भी बहुत थी। एक बार चारों भाई-बहिन पंढरपुर विट्ठलनाथ के दर्शन को गये। वहॉ नामदेव भी थे। नामदेव ने अभिमान के साथ सतो से कहा कि "मुझे पाडुरग साकार दर्शन देते है। यह सौभाग्य किस सत को प्राप्त है?" सतो ने जब नामदेव को नमस्कार किया, तब नामदेव ने अभिमान मे उन्हे प्रतिनमस्कार नहीं किया। मुक्ताबाई से यह दृश्य नहीं देखा गया। वे बोल उठीं—"पंढरपुर में आनेवाले सभी सत तेरे पैरों पर सिर रखते होंगे, मेरे भाइयों ने भी पाडुरग के साथ-साथ तुझे भी नमस्कार किया, परन्तु जबतक तेरा अभिमान नहीं जायगा, मैं तुझे नमस्कार नहीं करूँगी।" भाइयों ने बहिन के स्पष्ट कथन से जब अरुचि प्रदर्शित की तब वे पुनः बोलीं—"ज्ञान के बिना भक्ति व्यर्थ है, जबतक ज्ञान नहीं होगा, अहकार नहीं जायगा और अंहकार के गये बिना ज्ञान नही होगा।" उन्होंने पुनः नामदेव पर कशाघात किया—"इस चंदन के वृक्ष को अंहकार रूपी सर्प ने घेर रखा है, जबतक वह दूर नहीं होगा, तबतक उसका संसर्ग भयानक है।'[1] अतः यह निर्णय हुआ कि ज्ञानेश्वर की गुफा में संत गोरा कुमार के द्वारा सब संतों की परीक्षा ली जाय। यदि नामदेव उसमें उत्तीर्ण हो गये तो सभी उनका वन्दन करेंगे—उनके संतत्व को मान देंगे। कहा जाता है, जब

१ 'महाराष्ट्र-संत कवयित्री'—पृष्ठ ३४।

मुक्ताबाई गोरा कुंभार की ओर जाने को निकली तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो आकाश में मोतियो का चूर्ण बिखर गया हो अथवा बिजली की कड़कड़ाहट और चमचमाहट से आकाश भासमान हो उठा हो अथवा सारा आकाश ही पीताम्बर ओढ़े हुए हो।[1] मुक्ताबाई का यह 'तेजस्वी प्रस्थान' कहा जाता है। यह उसकी योग-साधना का चिह्न माना जाता है। गोरोबा के निकट जाकर वहाँ सब संतो को, जिनमे नामदेव भी थे, मुक्ताबाई ने आमंत्रित किया। गोरोबा ने सबके शिर को घडे की तरह ठोकना प्रारम्भ कर दिया। जब नामदेव की बारी आई तब उनका भी शिर ठोका-पीटा गया और अत में वे कच्चे सत घोषित किये गये। इसपर नामदेव को मुक्ताबाई पर बडा रोष आया और वे खीझते हुए पढरपुर लौट गये। मुक्ताबाई की अन्तःप्रेरणा से उन्होंने अन्त मे बिसोबा खेचर को अपना गुरु बना लिया, क्योंकि सतमत मे बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता।

मुक्ताबाई का स्वतत्र चरित्र प्राप्य नहीं है। ब्राह्मणों ने सन्यासी की सन्तति होने के कारण चारों भाई-बहन को समाज में मान्यता प्रदान नहीं होने दी। इसीलिए मुक्ताबाई आजीवन अविवाहिता रहीं और अपने भाइयो के साथ परमार्थ साधना मे लगी रही। जिस समय ज्ञानदेव ने शके १२६६ मे आळन्दी में समाधि ली, उसकी आयु २१ वर्ष की थी। समाधि के निकट अश्रुपुष्पाजलि अर्पित करते समय वह इतनी ही बोली—

> "आम्हा माता पिता नित्य् ज्ञानेश्वर।
> नाहीं आता थार विश्राती सी।"

ज्ञानदेव की समाधि के अनन्तर सोपानदेव ने भी शके १२१२ में 'सासवड़' मे समाधि ले ली। इसके पश्चात् मुक्ताबाई निरन्तर उदास रहने लगी। अपने पितृ स्थान के दर्शन करके वह माणगॉव गई, जहाँ शके १२१६, वैशाख वदी, १२ को मेघगर्जन और जलवृष्टि के समय उसने इहलीला समाप्त की। मुक्ताबाई ने अपने भाई निवृत्तिनाथ से ही गुरुदीक्षा ली थी। उसने चागदेव को दीक्षा दी थी, यह चागदेव ने स्वय अपने एक अभंग में स्वीकार किया है।[2] उन्होंने अनेक अभगों मे मुक्ताबाई का उल्लेख किया है।

मुक्ताबाई की रचनाएँ बहुत कम प्राप्त हैं। 'ज्ञानदेवी गाथा' मे उनके ४२ अभग हैं। 'ताटीचे अभग' भी उनके कहे जाते हैं, परन्तु वे 'गाथा' मे नहीं हैं। वे प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। वे ज्ञानदेव-भगिनी मुक्ताबाई के नहीं, और किसी मुक्ताबाई के हो सकते हैं। मुक्ताबाई के नाम पर एक हिन्दी-पद प्रचलित है—

> "वाह वाह साहबजी सद्गुरुलाल गुसाईंजी
> लालबीच मो उडला काला ओंठ पीठसों काला।
> पीत उन्मनी भ्रमरगुफा रस झूलन वाला॥

---

१. मोतियांचा चुरा फेंकिला अंबरी, विजूनिया परी फील झालें॥
जरी पीतांबर नेसविली नया। चैतन्याचा गाया नील बिन्दु॥
तळी परी पसरे शून्याकार जालें। सूर्याची ही पिलें नाचू लागे॥

१. मुक्ताई जीवनचा गया दिधले, निर्गुणी साधंले घर कैसें। महाराष्ट्र संत कवयित्री, पृ० ३८।

सद्गुरु चेले दोनों बराबर एक दस्तयो भाई।
एक से एक दर्शन पाये महाराज मुक्ताबाई।"[1]

मुक्ताबाई का ज्ञानदेव से स्वतंत्र तत्त्वज्ञान नहीं है। नामदेव संबंधी आख्यायिका से यही जान पड़ता है कि वे कोरी भक्ति को निरर्थक समझती है। ज्ञान-समन्वित भक्ति उन्हे मान्य थी और साधना के पथ पर 'गुरु का मार्गदर्शन' आवश्यक समझती थीं। संत-परीक्षा-सभा के संबंध में मुक्ताबाई का गोरा कुंभार के निकट जाते समय का वर्णन करनेवाले अभंग मे जो आकाश मे प्रकाश आदि छा जाने का उल्लेख है, उसके आधार पर आजगाँवकर लिखते है कि "मुक्ताबाई की योगविद्या मे अच्छी गति होनी चाहिए।[2] पर हम इस वर्णनमात्र को आलंकारिक मानते हैं। इससे मुक्ताबाई के तेजस्वी रूप का ही संकेत मिलता है, किसी योगसाधना का चमत्कार नहीं। स्वयं ज्ञानेश्वर ऐसी क्रियाओं में आस्था नहीं रखते थे। उन्होंने हठयोगियों का उपहास ही किया है। अतएव मुक्ताबाई अपने भाइयों के पथ-चिह्नों पर अग्रसर होनेवाली सात्विक साधिका रही हैं, जिनके अभंगों का पवित्र उच्चार संत-समाज में सादर होता रहता है।

---

१. 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', भाग १०, संवत् १९८६, पृ० ६४।
२. 'महाराष्ट्र-संत कवयित्री', पृष्ठ ३४।

द्वितीय खंड

मुसलमान आक्रमण के पश्चात् (मुसलमान कालीन)
मराठी संतों की हिन्दी-वाणी की विवेचना

नामदेव का समय

जिस समय नामदेव का महाराष्ट्र में प्रादुर्भाव हुआ, उत्तर भारत मे खिलजियों के शासक सैनिक-अभियान की महत्त्वाकाक्षा पूर्ण योजना बनाने मे संलग्न थे। उत्तर भारत में तीन सौ वर्ष से मुसलमानों का शासन भारतीय जीवन में उथल-पुथल मचाये हुए था। परन्तु विंध्य और नर्मदा की उपत्यका को लॉघने का उनमे साहस एकत्र नहीं हो पाया था। अलाउद्दीन खिलजी के कानों में देवगिरि के यादव राजा के वैभव की कथाएँ नित्य पड़ा करती थीं और वह दक्षिण के द्वार पर रह-रहकर दस्तक दे रहा था। विदेशी आक्रमण की सभावना से यादव राजा सशक अवश्य थे, परन्तु जनता का सामान्य सामाजिक जीवनक्रम अखंडित था—जाति-पॉति की जञ्जीरों मे जकड़ा हुआ था। रोटी-बेटी-व्यवहार निर्बन्ध नहीं थे। वर्ण-व्यवस्था का इतना आतक था कि सतों तक ने हृदय से उसकी असामाजिकता अनुभव करते हुए भी उसे विधि का विधान मान कर स्वीकार कर लिया था। देवगिरि के यादव राजा के मत्री हेमाड़ पत (हिमाद्रि) ने 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' नामक ग्रथ की रचना कर इस प्रथा को और भी दृढ करने का उपक्रम किया। इस ग्रंथ मे उन्होंने वर्ष भर में दो हजार व्रतों और अनुष्ठानों की व्यवस्था दी है। इसका तत्कालीन जनता पर जो गहरा प्रभाव पड़ा, वह आज तक अनुभव किया जाता है। महाराष्ट्र के प्रायः प्रत्येक धार्मिक पथ में व्रतों का विधान है।

नामदेव के समय मे नाथ और महानुभाव-पथ प्रचलित थे। नाथमत स्पष्ट रूप से अलख निरंजन की योगपरक साधना का समर्थक और बाह्याडम्बरों का विरोधी था। महानुभाव-पंथ में भी बहुदेवोपासना और वैदिक कर्मकाड का विरोध निहित था। परन्तु कृष्णोपासक होने के नाते मूर्तिपूजा का कड़ा निषेध नहीं था। सामान्य जनता पढरपुर के विठल को अपना प्रधान उपास्य देव बनाये हुए थी। प्रतिवर्ष लाखों की सख्या में स्त्री-पुरुष आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी को पैदल चलकर वहाँ जाते थे। यह यात्रा

'पढरपुर की वारी' कहलाती थी और आज भी कहलाती है। जनता के मन को पढरपुर के देवता से हटाने में नाथपंथियों ने कम उद्योग नहीं किया। ब्रह्म किसी मंदिर मे नहीं, सब जगह है। यह बात नाथपंथी 'विसोबा खेचर' ने विशेष रूप से प्रचारित की और नामदेव को, जो पढरपुर के विठोबा के बडे भक्त थे, अपने मत मे मिला लिया। खेचर के उपदेशों से नामदेव और उनके समसामयिक तथा परवर्ती सन्तों ने विठ्ठल की व्यापकता को अवश्य अनुभव किया, परन्तु सामान्य जनता की पढरपुर की 'वारी' जारी रही। यद्यपि नामदेव के पूर्व तक महाराष्ट्र मुसलमानों से पद-दलित नहीं हो पाया तो भी उनके एकेश्वरवाद के उपदेश नाथों द्वारा वहाँ भारतीय दर्शन मे सचरित हो चुके थे। अतः मुसलमानों का ससर्ग होने पर भी उसे उनके धार्मिक मत मे ऐसी कोई नवीनता नहीं दिखलाई दी, जिससे उसके प्रति उसका बरबस आकर्षण बढ़ता।

हिन्दू धर्म मे ही जो विष्णु और शिव का सघर्ष था, उसे किसी ने बड़ी चतुराई से पढरपुर की विठ्ठल (विष्णु) की मूर्ति के मस्तक पर शिव-चिह्न अंकित कर दूर कर दिया।

सक्षेप में, नामदेव के समय मे वर्ण-व्यवस्था की तीव्रता थी। 'याति हीनों' को मदिर-प्रवेश निषिद्ध था, यहाँ तक कि पुरोहितों ने मदिर के द्वार पर नामदेव को भी कीर्तन करने की अनुमति नहीं दी थी।

यादव राजा के शासन मे जनता का जीवन सुखी था। साहित्य और कला को प्रोत्साहन प्राप्त होता था। इसी युग मे ज्ञानेश्वर जैसे सन्त ने ज्ञानेश्वरी और आनदानुभव के समान प्रौढ़ साहित्य-रचना कर मराठी मे नवीन युग को जन्म दिया।

नामदेव का जीवन-चरित्र

नामदेव ने दर्जी जाति के परिवार मे, शके ११६२ प्रथम सवत्सर कार्तिक शुक्ल ११ रविवार को, सूर्योदय के समय, नरसी ब्राह्मणी ग्राम मे जन्म धारण किया।[१] उनके पिता का नाम 'दामा शेट' और माता का 'गोणाई' था। नामदेव की एक बहिन भी थी जिसका नाम 'आऊबाई' था। नामदेव का विवाह उनकी ६ वर्ष की अवस्था मे ही हो गया था। उनके चार पुत्र और चार पुत्रियाँ हुई। उनका वश-वृक्ष इस प्रकार है—

१. पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ—१२६।
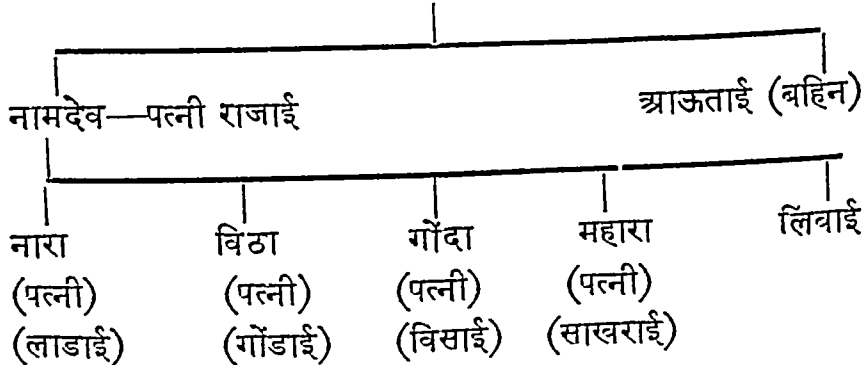
नामदेव के पिता विट्ठल-भक्त थे। प्रतिवर्ष वे पंढरपुर की 'वारी' (यात्रा) करते थे। अतएव बचपन से ही 'नामा' के मन में विट्ठल-भक्ति का उदय हो गया था। वे जब आठ वर्ष के थे तब उनकी माँ ने विट्ठल-मंदिर मे दूध का नैवेद्य चढ़ाने को उन्हें भेजा। किंवदन्ती है कि मूर्ति ने उनके आग्रह को मानकर उनके कटोरे का दूध पी लिया। इस चामत्कारिक घटना का उल्लेख उनके एक आत्मकथात्मक पद मे है—

"दूध कटोरे गडवै पानी
कपिल गाई तामै दुहि आनी ॥
दूध पीउ गोविंदे राइ
दूध पीउ मेरो मन पतिआइ।
नाहींत घर को बापु रिसाइ।
लै नामे हरि आगे धरी।
एक भगत मेरे ह्रदै बसै
नामे देखि नराइन हसै।
दूध पी आइ भगतु धरि गइआ।
नामे हरिका दरसुनु भइया।

नामदेव का मन घर-गृहस्थी में नहीं लगा। अतएव वे पंढरपुर में जाकर ही विट्ठल की सेवा में रहने लगे। वहीं उनकी ज्ञानेश्वर तथा उनके भाई-बहनों से भेंट हुई और उनके संसर्ग से उन्होंने विसोबा खेचर से दीक्षा ली। अब उनकी प्रेमपूर्ण भक्ति मे ज्ञान का भी समावेश हो गया। उन्होंने ज्ञानेश्वर के साथ उत्तर भारत की यात्रा की और कहा जाता है कि उस यात्रा में उन्होंने कई चामत्कारिक बातें कीं। मारवाड़ मे जब ये दोनों सत पहुँचे, तब बीकानेर के पास 'कोलादजी' नामक ग्राम के निकट उन्हे बड़ी प्यास लगी। खोजते-खोजते उन्हें एक गहरा कुँआ दिखाई दिया। ज्ञानेश्वर योगी होने के कारण सूक्ष्म देह धारण कर सहज ही कुँए में उतर गये और पानी पी आये और नामदेव से कहने लगे कि 'कहो तो तुम्हारे लिये भी पानी ले आऊँ।' नामदेव ने उत्तर दिया कि 'कहीं पानी भी माँग कर पिया जाता है।' वे ध्यानस्थ हो गये और 'विट्ठल विट्ठल' की रट लगाने लगे। कुछ ही क्षणों मे ज्ञानेश्वर ने देखा कि कुँए का पानी ऊपर उठकर सतह पर लहरा रहा है। उन्होंने नामदेव की समाधि भंग कर यह दृश्य दिखलाया और उनकी भक्ति के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। कहा जाता है कि वह कुँआ आज भी 'कोलादजी' में है और 'नामदेव का कुँआ' कहलाता है। उत्तरभारत की यात्रा से लौटकर ज्ञानेश्वर ने आलदी मे समाधि ले ली। उस समय नामदेव भी उन्हीं के पास थे। उन्होंने ज्ञानदेव के वियोग का बड़ा ही हृदय-स्पर्शी चित्र अपने अभगों में खींचा है। अपने प्रिय मित्र के समाधिस्थ हो जाने के बाद उनका मन 'पढरपुर' से उचट गया। वे महाराष्ट्र से बाहर उत्तर पंजाब की ओर चले गये। पजाब के 'घोमान' नामक स्थान पर आज भी नामदेव का मदिर विद्यमान है। यह स्थान गुरुदासपुर जिले में है। इस गाँव

मे नामदेव-सम्प्रदायी लोगों की ही बस्ती है। 'घोमान' के स्मारक को 'गुरुद्वारा बाबा नामदेवजी' कहा जाता है। उनके पंजाबी शिष्यों मे विष्णुस्वामी, बहारेदास, जालतोसुनार, लध्धा खत्री और केशो कलाधारी मुख्य हैं। उन्होंने ८० वर्ष की आयु मे सन् १३५० मे पंढरपुर के विट्ठल मंदिर के महाद्वार पर समाधि ले ली। उनके शिष्य 'परिसा भागवत' का इसी प्रसंग का एक अभग है—

> 'आषाढ शुक्ल एकादशी।
> नामा विनवी विठ्ठलासी।
> आज्ञा व्हावी हो मजसी।
> समाधि विश्रान्तिलागी।'

(नामदेव ने आषाढ़ शुक्ला एकादशी को विट्ठल से प्रार्थना की कि मुझे चिर विश्रान्ति के लिए समाधि लेने की आज्ञा दो।)

सन्तों के चरित्रों मे अनेक चामत्कारिक घटनाओं का समावेश होता है। नामदेव का चरित्र भी उनसे शून्य नहीं है। सुल्तान की आज्ञा से मरी हुई गाय जिलाना, आवढ्या नागनाथ मदिर के सामने जब ब्राह्मण पुजारी ने कीर्तन नहीं करने दिया तब उनके पश्चिम की ओर जाकर कीर्तन करना और स्वय मदिर के दरवाजे का पश्चिमाभिमुख हो जाना, आदि घटनाएँ उनके जीवन के साथ सम्बद्ध हैं और उनका उल्लेख उनके पदों मे भी है।

ज्ञानेश्वरकालीन नामदेव के अतिरिक्त महाराष्ट्र मे पाँच नामदेव संत और हो गये हैं। पुणे के श्री आवटे ने 'सकळ संत गाथा' मे नामदेव के २५०० अभंग दिये हैं। उनमें नामदेव नाम के साथ ५००-६०० से अधिक अभंग नहीं हैं। शेष 'विष्णुदास नामा' के नाम से हैं। प्रश्न यह है कि क्या विष्णुदास नामा और नामदेव दो भिन्न व्यक्ति हैं अथवा एक ही हैं? विष्णु (विठ्ठल) के दास होने से हो सकता है, नामदेव ने कभी अपने नाम के साथ विष्णुदास भी लगाया हो। इस संबंध में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहासकार वि. का. राजवाड़े का कथन ध्यान देने योग्य है। वे लिखते हैं कि, नामा शिंपी का काल शके ११९२ से १२७२ तक है। विष्णुदास नामा, जो भिन्न व्यक्ति हैं, शके १५१७ मे जीवित था। इसका प्रमाण आवटे की 'गाथा' मे 'विष्णुदास नामा' का शुकाख्यान (पृष्ठ ५३४-५५७) है। उसकी अन्तिम ओवी है—

> 'ऐसे शुकदेव चरित्र। अगाध आणि विभिन्न।
> विष्णुदास नामा विनवीत। भक्ताप्रती।
> मन्मथनाथ सवत्सर पौष्य मासी।
> सोमवार अमावस्येचा दिवशीं।
> पूर्णता आली ग्रथासी। श्रोते सावकाशी परिसीजे।'

इस ओवी मे उल्लिखित मन्मथनाथ सवत्सर की पौष अमावस्या सोमवार शके १५१७ को पड़ती है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह कवि एकनाथ का समकालीन था। अतएव विष्णुदास नामा के अभंगों को नामदेव के साथ छापना उचित नहीं है।'[1]

---

१. इतिहास संशोधन मंडलाचा, शके १८३३ ची अहवाल, पृष्ठ—१२२।

नामदेव की गाथा में ऐसे अभग हैं जिनमें मीरा, कबीर, नरसी मेहता आदि का उल्लेख है जो निश्चय ही नामदेव के न तो पूर्ववर्ती हैं और न समकालीन ही। वे निश्चित ही नामदेव के बाद पैदा हुए हैं। नामदेव ने किसी भी अपने अभंग मे इनका उल्लेख नहीं किया।

प्रोफेसर रानडे ने भी अपने ग्रथ मे राजवाडे के मत का समर्थन किया है।[1] श्री राजवाड़े ने विष्णुदास नामा की एक 'बावन अक्षरी' प्रकाशित की है जिसमे 'नामदेव राय' की वन्दना है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं और भिन्न समय मे हुए हैं।

श्री चादोरकर ने एक महानुभावी 'नेमदेव' को भी खींच-तान कर नामदेव शिंपी (दर्जी) के साथ जोड़ दिया है।[2] इस 'नेमदेव' का महानुभावों के 'लीलाचरित्र' के 'विट्ठल बीरु कथन' प्रकरण मे उल्लेख है जिसे कोली जाति का कहा गया है। इसने महानुभाव मार्ग में दीक्षा ग्रहण की थी। परन्तु वास्तव मे इस 'नेमदेव' का वारकरी नामदेव से तनिक भी सबंध नहीं है।[3] नामदेवकालीन एक महानुभावमार्गी नामदेव और है। वह भी अपने को 'विष्णुदास नामा' कहता है। इसने 'महाभारत' पर ओवीवद्ध ग्रथ लिखा है। कर्ण पर्व हरिभाऊ आपटे, सभापर्व देशपाडे और आदि पर्व और भीष्मपर्व के कुछ पृष्ठ स्वय पागारकर ने पढरपुर में देखे थे। पागारकर कहते हैं कि यदि यह 'नामा' महानुभावी होता तो उसके ग्रथ के पृष्ठ पढरपुर की पुरानी पोथियों में न मिलते, पर डा० देशपाडे 'महानुभावी मराठी वाङ्मय' में लिखते हैं कि 'विष्णुदास नामा को, जिसने भागवत पर ओवी लिखी है और जिनके महानुभावी लिपि में भी ग्रथ हैं, शके ११९८ मे महानुभाव दामोदर पडित ने उपदेश दिया। इन्होंने भारत पर भी ओवीवद्ध काव्य लिखा है।'[4] अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस महानुभावी विष्णुदास का ज्ञानेश्वर के साथी सत नामदेव राय से कोई संबध नहीं है।

नामदेव संबधी एक और विवाद है।[5] पजाब के गुरु ग्रथ साहब मे नामदेव के बहुत से पद संगृहीत हैं। उन पदों के लेखक सत नामदेव कहे गये हैं। महाराष्ट्र के कुछ विवेचकों का मत है कि गुरु ग्रथ साहब के पद-रचयिता नामदेव का महाराष्ट्र के ज्ञानदेवकालीन नामदेव से कोई संबंध नहीं है। वह नामदेव की पजाबयात्रा के समय उनका कोई शिष्य रहा होगा। जिसने बाद मे अपने गुरु का नाम धारण कर हिन्दी मे पद रचे होंगे। पर यह मत निम्नलिखित कारणों से निराधार सिद्ध होता है:—

(१) नामदेव संबंधी मराठी अभगों मे दो प्रमुख जीवन घटनाएँ वर्णित हैं, प्रायः वे ही ग्रन्थ साहब के हिन्दी पद्यों मे भी आई हैं। नामदेव ने अपने अभगों मे आत्मकथा

---

१. इतिहास संशोधन मडलाचा, शके १८३३ ची अहवाल, पृष्ठ—१८५।
२. पाँच संत कवी (तुलपुळे), पृष्ठ—१४०।
३. ,, पृष्ठ—१४०।
४. मराठी वाङ्मय इतिहास (पांगारकर), खंड पहिला, पृष्ठ—५५४।
५. देखिए—लोक-शिक्षण (वर्ष अकरावें, पृष्ठ २३० से २५० और ३२५ से ३५२)।

लिखी है। (वह मराठी साहत्र मे प्रथम आत्मकथा कही जाती है) इसमें वे 'शिपिआचे कुली जन्म झाला' (दर्जी के वंश मे मेरा जन्म हुआ) लिखते हैं। हिन्दी के पदों मे भी वे अपनी जाति यही बतलाते हैं; पर उसे 'छीपे' शब्द से परिचित कराते है :—

(१) छीपे के घरि जनमु दैला, गुरु उपदेसु मैला।
संतन्ह के परसादि नामा हरि भेटुला ॥[१]

(२) हीनडी जात मेरी जातुदम राइया
छीपे के जनमि काहे कउ आइआ ॥[२]

मराठी मे दर्जी को शिंपी कहते हैं। उत्तर भारत मे उन्होंने अपने को शिंपी कहा होगा। लोगों ने 'शिंपी' की छिंपी-छीपा समझा होगा और नामदेव ने उसी शब्द को उत्तर भारतीयों को समझाने की दृष्टि से ग्रहण कर लिया होगा। उत्तर भारत मे 'छीपा' छींट छापनेवाले को कहते है।[३] यही रगरेज भी कहलाता है। नामदेव ने छींपे का प्रयोग दर्जी के अर्थ मे निस्सदेह किया है। क्योंकि वे जब पदों मे रूपक बाँधते हैं, तब अपनेको 'दर्जी' मानकर ही चलते हैं। यथा—

'मन मेरो गजु जिह्वा मेरी काती,
मपि मपि काटउ जम की फासी।
कहा करउ जाती, कहा करउ पाती।
राम को नाम जपउ दिनराती।'

और भी

'सुइने की सुई, रुपे का धागा।
नामे का चितु हरिसउ लागा ॥[४]

'शिंपी' और 'छीपा' के शब्द-भिन्नत्व को लेकर पंजाब-प्रवासी नामदेव और महाराष्ट्रीय नामदेव को दो भिन्न व्यक्ति मानने का कोई दृढ आधार नहीं है।

विठ्ठल को दूध पिलाने की घटना, मृत गाय जिलाने का प्रसंग, मंदिर के द्वार फिरने आदि की घटनाएँ मराठी और हिन्दी अभगों मे समान रूप से वर्णित हैं।

---

१. पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ—८६।
२. पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ—१२६।
३. देखिए—बृहत हिन्दी-कोश (सं २००६ संस्करण), पृष्ठ—४२४।
४. पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ—८४।

(२) मराठी और हिन्दी-पदों मे 'विठ्ठल' शब्द का समान प्रयोग हुआ है।[1] साथ ही हरि,[2] गोविंद,[3] रामु,[4] केशव,[5] माधव,[6] राम[7] आदि भी समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

(३) मराठी और हिन्दी पदों की भाव-धारा—मे भी समानता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(अ) मराठी : शरण आलियाचें न पाहसी अवगुण
कृपेचे लक्षण तुज साजे।
त्रिभुवनी समर्थ उदार मनाचा।
कृपाळू दीनाचा ब्रीद तुझे।
गजेन्द्र गणिकेची राखिली तुवा लाज।
उद्धरिला द्विज अजामिळ॥ आदि

हिन्दी : राम कहत जन कस न तरे।
तारिले गनिका बिन रूप कुबिजा
बिआध अजामलु तारिअले। आदि

(आ) मराठी : एका नामाविण काही। विठ्ठल कृष्ण लवलाही।
नामा म्हणे तरलोवाही। विठ्ठल विठ्ठल ममताची।

(विठ्ठल विठ्ठल नाम से ही मेरा उद्धार हुआ)

हिन्दी : कउन कलक रहिउ रामनामु लेत ही
पतित पवित भए रामु कहत ही।

---

१. हिन्दी पदों में . ई भै वीठलु ऊ भै वीठलु, वीठल विनु संसारु नहीं। (पंजाबातील नामादेव पृ० ८३)।
२. 'मोहन कटोरी अम्रित भरी। लै नामैं आगे धरी। (वही पृष्ठ १२६)।
३. 'दूधु पीव गोविंदराइ (वही पृष्ठ १२६)।
४. मैं बउरी मेरा रामु भतारु।' (वही पृष्ठ १२७)।
५. 'आऊ कलंदर केसवा।' (वही पृष्ठ १४३)।
६. 'पतितपावन माधऊ बिरदु तेरा।' (वही पृष्ठ ६८)।
७. राम कहत जन कस न तरे। (वही पृष्ठ ८०)।
मराठी अभंगों में " (अ) नात्राइया विठ्ठल भवसिंधु तारू' (सकळ संत गाथा नामा म्हणे नाम स्मरा श्रीरामाचें। (आवटे) नामदेव महाराजाचें अभंग पृष्ठ १९८)।
(ब) वाचे वसो सदा हरीचे नाम (वही पृष्ठ ११८)।
(स) नामा म्हणे कृपा करूनि ऐशा जीवा सोडवी केशवा माईबापा (वही पृष्ठ ११४)
(क) पर्वतप्राय पाप राशी होती दग्ध वाचेसी मुकुंद उच्चारतीं माधव हरहरी रामकृष्ण (वही पृष्ठ १२१)।
(ख) रात्री दिवस तुझा नामाचारे छंदु गोविन्द गोविन्द म्हणतसे (वही पृष्ठ १३६)।

भगवान की सर्वव्यापकता,[१] तीर्थ,[२] आदि बाह्याचारों की व्यर्थता, नाम और गुरु की महिमा के भाव, दोनों भाषाओं के अभगों और पदों मे समान रूप से विद्यमान हैं।

(५) दोनों भाषाओ के पद्यों मे प्रह्लाद, ध्रुव, अजामिल, गणिका, पूतना, अहिल्या, द्रौपदी आदि के नाम और उनके कथा-संदर्भ बराबर पाये जाते हैं। अतः इनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि पंजाब और महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वरकालीन नामदेव अभिन्न हैं।

नामदेव का काल-निर्णय

ज्ञानेश्वरी की रचना का काल ज्ञानेश्वरी की साक्ष्य से ही निश्चित हो जाता है और वह है—शके १२१२। ज्ञानदेव तथा नामदेव यादवकालीन हैं और सहधर्मी सत भी। इनका अपने समसामयिक सतों पर इतना अधिक प्रभाव था कि उन्होंने अभगों मे इनकी चर्चा की है। अतः दोनों के समकालीन होने मे शंका का कोई स्थान नहीं रह जाना चाहिए। फिर भी डा० मोहनसिंह दीवाना ने अपनी हाल की ही प्रकाशित पुस्तक 'भक्त शिरोमणि नामदेव की नई जीवनी, नई पदावली' मे नामदेव के काल को सन् १३६० , १४५० ईसवी खींचना चाहा है। अपने मत के समर्थन मे वे निम्नाकित तथ्य प्रस्तुत करते हैं:—

(१) नामदेव का मृत गाय को जिलाने का पद प्रसिद्ध है। उसमे सुल्तान, बिस्मिल की गई गऊ को जिलाने का आदेश नामदेव को देता है। प्रश्न है कि यह आदेशदाता सुलतान कौन हो सकता है? डा० मोहन सिंह कहते हैं कि 'दिल्ली का सुल्तान फीरोजशाह खिलजी १२८२ ई० मे राज्य-सिंहासन पर बैठा और १२६६ ई० मे कालवश हुआ। किन्तु ये तारीखें नामदेव से लग्गा नहीं खातीं; क्योंकि १२६६ ई० मे ज्ञानदेव की समाधि का सन् मराठी इतिहासकार बतलाते है। फीरोज तुगलक सुलतान ने दिल्ली में १३५१ ई० से १३८८ ई० तक राज्य किया। किन्तु नामदेवजी का दिल्ली आना अप्रमाणित ही नहीं, कहीं सकेत तक भी नहीं मिलता। ~ (अतः) मेरी सम्मति यह है कि

---

१. **मराठी : जिकड़े पाहें तिकडे विठोवा अबघा**
बाहरी भीतरी सर्वं निरंतरी
हे ब्रह्माण्ड पंढरी झाला मनें। (सकल संत गाथा पृष्ठ १६१)।

हिन्दी : ई भै वीठलु, ऊ भै वीठलु, वीठलु बिनु संसारु नहीं। (पंजाबातील नामदेव पृष्ठ २१)।

२. **मराठी : तीर्थासी जाऊनी काय स्या करावे, (सकळ संत गाथा पृष्ठ १८४)।**

हिन्दी : एकादशी व्रत रहै काहे कऊ तीरथ जाई...(पंजाबातील नामदेव पृष्ठ ६१)।

३. **मराठी : जन्म मरणांचे दुःख गेले, बंध मोक्षाची फिटली काळी**
नामा म्हणें माझे सर्वही साधन, खेचर चरण न विसंबे...(सकळ संत गाथा पृष्ठ १२१)।

हिन्दी : भनति नामदेव सुकित सुमति भए।
अमयति रामु कहि को को न बैकुंठे गए। (पंजाबातील नामदेव पृष्ठ ११)।

यह फीरोजशाह सुल्तान बहमनी हो सकता है, जो दक्षिण में ही रहा और सन् १४२२ में मरा। तो क्या हमे नामदेव की तारीख आगे तक बढ़ा लानी होगी?' (भूमिका पृष्ठ ३)।

(२) दीवानाजी ग्येशानन्द की हस्तलिखित पोथी का अपने उपर्युक्त ग्रंथ मे उल्लेख करते है। जिसकी रचना सन् १५५२ ई० बतलाई जाती है और जो मथुरा मे बैठकर रची गई कही जाती है। उसमें नामदेव को रामानन्द का शिष्य बतलाया गया है और रामानन्द का जन्म डा० मोहनसिंह १४२० ३० ई० के बीच नियत करते हैं और कबीर का १४५० ६० ई० के निकट। 'पोथी'-लेखक ग्येशानन्द का जन्म १५०० ई० के करीब कहा गया है। ग्येशानन्द ने अपने गुरु का नाम अनन्तानद बतलाया है। दीक्षा के समय गुरु की अवस्था ५० के निकट कही गई है। अतः अनन्तानन्द का जन्म १४७० ८० ई० के बीच ठहरता है। अनन्तानन्द कबीर से पहले हुए हैं। डा० मोहनसिंह रामानन्द की शिष्य-परम्परा इस प्रकार देते हैं :—
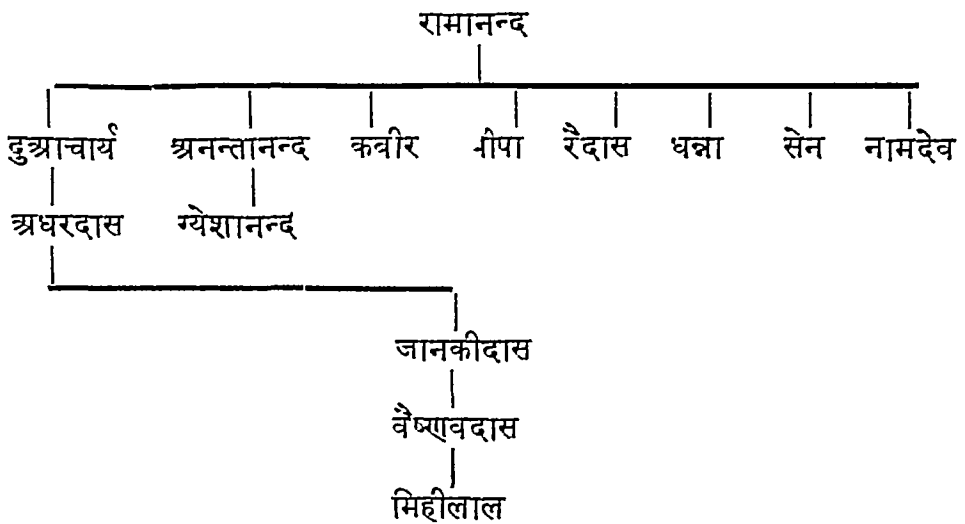
अब हम डॉ० मोहनसिंह द्वारा उपस्थित अनुमानों तथा तर्कों की परीक्षा करेंगे—

(१) नामदेव के पद में जो सुल्तान द्वारा मृत गाय को जिलाने का प्रसंग है, वह किस सुल्तान से सबध रखता है, यह विचारणीय है। डॉ० मोहन सिंह उसका संबंध बहमनी राज्य के फीरोजशाह से लगाते हैं। फीरोज का समय १३६७-१४२२ ई० है। यह बहमनी राज्य का कट्टर और धर्मान्ध सुल्तान था। वह हिन्दू राजाओं तथा मत को समाप्त करने के लिए सदा कटिबद्ध रहता था। ऐसी दशा में क्या वह हिन्दू के चमत्कारी प्रभाव को उदारता से देख और सह सकता था? और यदि देख सकता था तो उसमें हिन्दूधर्म पर थोड़ी बहुत श्रद्धा जमनी चाहिए थी, क्योंकि मरी हुई गाय को जिलाना कम आश्चर्य की बात न थी। पर इतिहास मे ऐसी कोई घटना का उल्लेख नहीं है। उसमें तो सुलतान फीरोज की हिन्दुओं के प्रति भयकर अनुदार दृष्टि की ही चर्चा है।[1]

---

1. देखिए—भक्तशिरोमणि नामदेव की नई जीवनी, नई पदावली, पृष्ठ—७४-७५।

यह ठीक है कि नामदेव ने 'सुलतान' का नामोल्लेख कहीं नहीं किया और न उनके समकालीन सतों ने ही उसका नाम लिया है; पर चमत्कारी घटना का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। हो सकता है, प्रथम बार प्रचलित हो जाने और किसी अभग मे समाविष्ट हो जाने पर परवर्ती सतों और चरित्र-लेखको ने भी उसे अपनी गाथाओं और चरित्रों में ग्रहण कर लिया हो।

फिर प्रश्न उठता है कि क्या यह घटना सचमुच घटी है या केवल सन्त का माहात्म्य प्रदर्शित करने के लिए बाद मे गढ दी गई है? यदि अंतिम बात पर विश्वास करें तो नामदेव का वह पद प्रक्षिप्त मानना पडेगा। 'श्री गुरु ग्रथ साहब' का सकलन नामदेव के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद सन् १६०४ में हुआ था। उस समय नामदेव का यह चमत्कार जनता में प्रचलित रहा होगा। फिर प्रश्न उठता है कि यदि किसी सुलतान के दरबार मे यह घटना घटी होती तो वह कहीं किसी के द्वारा अवश्य लेखबद्ध हुई होती। हम इस घटना को विशेष महत्त्व नहीं देना चाहते। हो सकता है, यह घटनावाला 'पद' भगवान विठ्ठल के नाम का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए रचा गया हो। उपर्युक्त कारणों से नामदेव का फीरोजशाह बहमनी के समय रहना सिद्ध नहीं होता।

(२) नामदेव का रामानन्द से उपदेश ग्रहण करने का कहीं उल्लेख नहीं है। रामानन्द ज्ञानेश्वर के पिता के गुरु थे, इसका भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है। नामदेव द्वारा लिखित ज्ञानेश्वर चरित्र में उसका नाम एक 'यति' लिखा है जो रामेश्वर जाते समय आळ दी मे ठहरा था और जिसने ज्ञानेश्वर के पिता को काशी मे सन्यास की दीक्षा दी थी। डा० रानडे भी इस संबंध मे अनिश्चित मत रखते हैं। वे अपने प्रसिद्ध ग्रथ Mysticism In Maharashtra में लिखते हैं, 'विठ्ठल पथ' (ज्ञानेश्वर के पिता) ने काशी मे सन्यास-दीक्षा या तो रामानन्द या उनके पथ के किसी साधु से ली होगी। भावे के मत से उनके दीक्षा-गुरु श्रीपाद स्वामी थे।[1] यदि यह मान भी लें कि विठ्ठल पंथ के रामानन्द ही गुरु थे, तो इससे यह तो सिद्ध नहीं हो जाता कि उन्हें नामदेव के भी गुरु होना चाहिए। नामदेव का विसोबा खेचर से दीक्षा लेना बहुत प्रसिद्ध है, रामानन्द से बिल्कुल नहीं। डा० मोहन सिंह ने जिस पुराने हस्तलिखित ग्रंथ का उद्घाटन किया है, उसकी प्रामाणिकता के संबंध मे उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। नामदेव के अभंगों और हिन्दी-पदों में कबीर का नाम नहीं आता। निश्चय ही कबीर नामदेव के समकालीन नहीं थे। इनके विपरीत ज्ञानदेव के समकालीन होने के अनेक प्रमाण हैं। ज्ञानदेव और नामदेव दोनों अपने अभगों मे एक दूसरे का उल्लेख करते हैं। महाराष्ट्र के नामदेवकालीन सन्तों की वाणियों मे भी उनका उल्लेख है। ज्ञानदेव का समय उन्हीं की कृति ज्ञानेश्वरी से प्रायः निर्णित ही है। और वह है—सन् १२७५ से सन् १२९६। नामदेव ज्ञानदेव की समाधि के लगभग ५० वर्ष बाद समाधिस्थ हुए अर्थात् १३५० ई० मे उनका निर्वाण हुआ। उनका जन्म सन् १२७० है। फीरोज बहमनी का समय १३९७ से १४२२ ईसवी है, जिसे नामदेवकाल नहीं माना जा सकता।

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ—१२३।

नामदेव को ज्ञानेश्वरी-रचयिता ज्ञानदेव-कालीन न मानने के पक्ष मे यह भी दलील दी जाती है कि ज्ञानेश्वरी और नामदेव के अभगों की भाषा मे बहुत अन्तर है। इस संबध मे यह स्मरण रखना चाहिए कि नामदेव-लिखित अभगों की कोई पाण्डुलिपि नहीं है। जनता द्वारा लिखे अभंगों की भाषा का समय-समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यों ज्ञानेश्वरी की भी मूल पाण्डुलिपि ज्यों-की-त्यों रक्षित नहीं है। उसपर भी समय का प्रभाव पड़ सकता है, पर ज्ञानेश्वर को धार्मिक ग्रथ का गौरव प्राप्त होने से उसकी बहुत सावधानी से नकल की जाती रही होगी। फिर भी एकनाथ महाराज को उसके पाठ को संशोधित करने की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने उसका सावधानी से संपादन किया है। दूसरी बात यह है कि ज्ञानेश्वर संस्कृत में अधिक गति रखते थे। अतः उनकी भाषा मे नामदेव से, जो अधिक पढे-लिखे न थे, संस्कृत-बहुलता स्वाभाविक है। श्रीभारद्वाज का यह कहना कि नामदेव के अभंगों मे मुसलमानों के आक्रमण का उल्लेख है और ज्ञानेश्वरी मे नहीं है, इसलिए नामदेव ज्ञानेश्वरकालीन नहीं हो सकते, विशेष तर्क-सम्मत नहीं है।

ज्ञानेश्वर के काल मे यादव राजा रामचन्द्रराय राज्य करता था और अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण पर १२९४ ई० में चढ़ाई की। ज्ञानदेव ने सन् १२९६ में समाधि ली। और नामदेव तो ज्ञानेश्वर की समाधि लेने के लगभग ५५ वर्ष तक जीवित रहे और उन्होंने उत्तर भारत मे भी काफी समय व्यतीत किया। भारत मे मुस्लिम शासन की पीड़ा से वे परिचित हो चुके थे। उन्हीं के समय दक्षिण पर भी मुस्लिम-आक्रमणों का क्रम प्रारम्भ हो गया था। अतएव उनके अभगों मे उनका उल्लेख होना स्वाभाविक था। ज्ञानेश्वर को उनकी तीव्रता इसलिए अनुभव नहीं हुई कि उनके समय तक महाराष्ट्र में मुसलमानी सत्ता जम नहीं पाई थी। शरत्कालीन मेघ के समान खिलजी की सेना का आक्रमण हुआ और वातावरण स्वच्छ हो गया।

नामदेव की 'तीर्थावली' में ज्ञानेश्वर और नामदेव की सह यात्रा का विशद वर्णन है और अभी तक इस कृति को किसी ने अप्रामाणिक नहीं माना। शके १३३५ अर्थात् १४१३ ईसवी मे गुजराती संत 'नरसी मेहता' ने अपने काव्य में नामदेव का अपनेसे पूर्व सत के रूप में उल्लेख किया है। अतएव नामदेव और ज्ञानेश्वर के युग्म को पृथक् करने का कोई प्रबल कारण प्रतीत नहीं होता।[1]

नामदेव ने मुक्ताबाई और ज्ञानेश्वर की प्रेरणा से विसोबा खेचर से दीक्षा लेने का संकल्प किया। कहा जाता है, जब नामदेव खेचर के निकट गये तो वे मदिर मे शिव की पिंडी पर पैर रखे हुए बैठे थे। नामदेव को यह दृश्य अप्रिय लगा। तब गुरु ने उनसे कहा कि तुम मेरा पैर हटाकर अलग रख दो। नामदेव जहाँ गुरु का पैर रखते, वहीं एक शिव-पिंडी खड़ी हो जाती। इस कथा का मर्म यही है कि विसोबा खेचर ने नामदेव को भगवान की व्यापकता का बोध करा दिया। उनकी सगुणभक्ति में निर्गुण ज्ञान का

---

१. मराठी वाङ्मयाचा इतिहास (पांगारकर), भाग १, पृष्ठ—८११।

समावेश हो गया, जिससे उनकी दृष्टि व्यापक हो गई। उनके भगवान व्यापक हो गये। पंढरपुर के मंदिर से निकलकर सारे विश्व में छा गये।[1]

नामदेव की गुरु-परम्पराः—
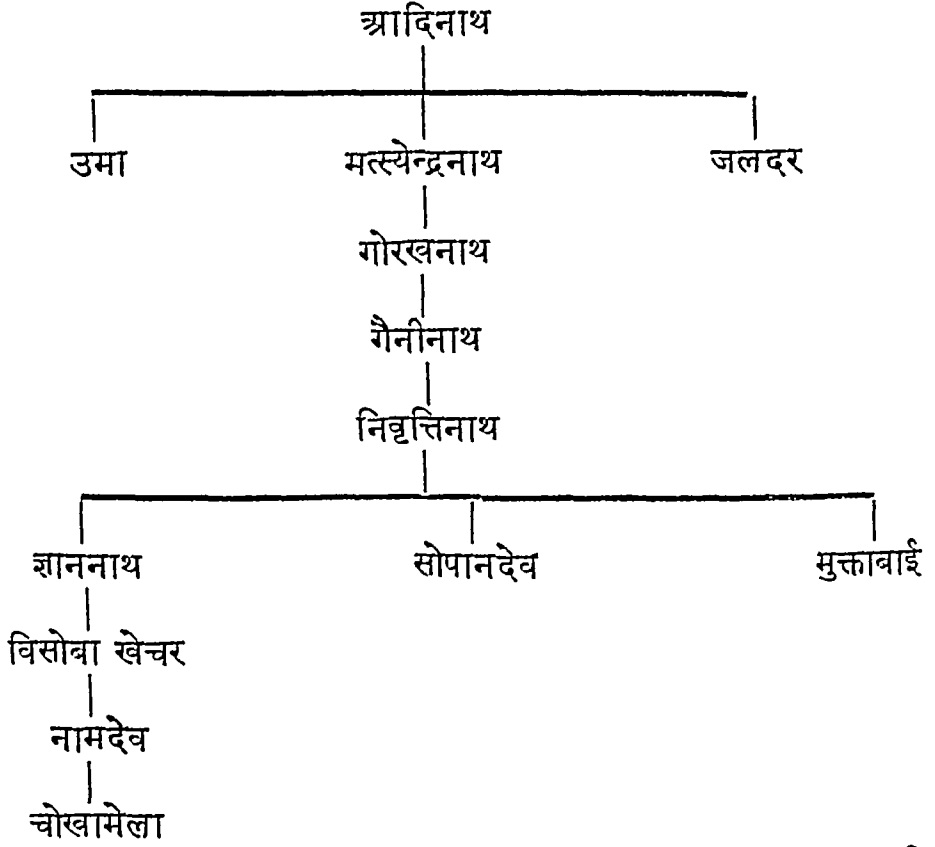
नामदेव के पदों में भक्त की भगवान के प्रति मिलन-उत्कंठा की मधुर अभिव्यक्ति है। इसे वे 'तालाबेली' शब्द से परिचित कराते हैं, जिसका अर्थ व्याकुलता है, पर ऐसी व्याकुलता जिसमें तीव्रता है—आतुरता है। वे कहते हैं—

'मोहि लागति तालाबेली ॥
बछरे बिनु गाइ अकेली ॥
पानीआ बिनु मीनु तलफै ।
ऐसे रामनामा बिनु बापुरो नामा ॥'

यह तालाबेली उस प्रकार की है, जिस प्रकार की गाय को बछड़े के बिना होती है और मछली को पानी के बिना होती है।

नामदेव प्रेम की तीव्रता का भान लोकानुभूत उदाहरण देकर कराते हैं—

'जैसे बिखैहेत पर नारी,
ऐसे नामे प्रीति मुरारी।'

जिस प्रकार विषयी पर-नारी से प्रेम कर तड़पता है, उसी प्रकार की तालाबेली मेरी तुम्हारे प्रति है। 'परकीया' में प्रीति की विह्वलता अधिक मुखरित होती है। तभी वल्लभ

1. जिकडे पाहे तिकडे विठोबा, अवघा भीमाचक्र भागा पुंडलीक बाहेरी भीतरीं सर्वनिरंतरीं, हे ब्रह्माण्ड पंढरीं झाली मद। सकल सं. गा., पृ०—१६१।

सम्प्रदायियों ने 'राधा' और 'गोपियों' की सृष्टि कर परकीया प्रेमभक्ति की छटपटाहट व्यक्त की है। एक पद मे 'राम' के प्रति प्रीति की सघनता का इसी प्रकार का उदाहरण दिया है—

'कामी पुरख कामनी पिआरी। ऐसी नामे प्रीति मुरारी।' (पृष्ठ १३०)

अपने राम की बावली वधू बनकर उसे रिझाने के लिए 'नामा' सिंगार करते हैं—

'मैं बउरी मेरा राम भरतार
रचि रचि ताकउ करऊ सिंगार।'

कबीर ने भी कई पदों में नामदेव की भाँति कान्ताभाव से अपने 'राम' की कामना की है और विरह में विना जल की मछली के समान तड़पने की व्यथा व्यक्त की है। उनकी एक पंक्ति तो बिलकुल नामदेव की ही जान पड़ती है—

'मैं बउरी मेरे राम भरतार
ता कारण रचि करौं स्यंगार।'

× × × ×

'हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव।'

'हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया।
किया सिंगार मिलन कै ताई
काहे न मिलौ राजा राम गुसाई॥'

'जैसे जल बिन मीन तलफै
ऐसे हरि बिन मेरा जिया कलकै।'[1]

'दुलहिन गावहु मगलाचार।
हम घरि आये, हो राजा राम भरतार।'

× × ×

'बाल्हा आव हमारे गेह रे
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहे तुम्हारी नारी,
मोको इहै अदेस रे।

---

१. कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ—१६४।

एकमेक ह्वै सेज न सोवै,
तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै नींद न आवै,
ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यू कामी को काम पियारा
ज्यूं प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपगारी
हरि सूं कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये है,
बिन देखे जीव जाइ रे।[1]

'राम' से मिलने की जो तालाबेली नामदेव मे है, वही कबीर मे है और वही दादू मे भी—

'राम बिछोही बिरहनी, फिरि मिलन न पावे,
दादू तलफै मीन ज्यूं, तुझ दया न आवै।

दादू तो तालाबेली की कामना भी करते हैं; क्योंकि उसी से 'दरसन' के रस मे मिठास आती है।

'तालाबेली प्यास बिन क्यों रस पीया जाय,
बिरहा दरसन दरद सों हमकों देहु खुदाय।'
कहा करौ कैसे मिलै रे तलपै मेरा जीव,
दादू आतुर बिरहनी कारण अपने पीव।

सत रज्जब की कसक भी उसी कोटि की है—

'बिरहिण व्याकुल केसवा, निसिदिन दुखी बिहाय,
जैसे चंद कुमोदिनी बिन देखे कुम्हलाइ।
खिन खिन दुखिया दगधिये बिरह विथा वन पीर,
धरी पलक मे बिनसिये ज्यूं मछरी बिन नीर।'[2]

धर्मदास अपना 'दरद' बुझाते हैं—

'कहौं बुझाय दरद पिया तोसे,
तन तलफै हिय कछु न सुहाय।
तोहि बिन पिय मोसे रहत न जाय।[3]

---

१. संत-सुधासार (पृष्ठ ४२८)।
२. वही (पृष्ठ ५१६)।
३. संत-सुधासार—दूसरा खण्ड (पृष्ठ ८)।

गरीबदास की 'विपत' है—

'जब जब सुरति आवती मन में तब तब विरह अनल परजारै,
नैननि देखौं बैन सुनौ कब यहु वेदन जिय मारै।
सुनि री सखी यहु विपत हमारी बिन दरसन अति विरहा वारै
गरीबदास सुख तबहीं लेखौं जबहीं ज्योतिहि ज्योति निहारे।

नामदेव को अपने प्रिय से मिलते समय लोकनिंदा का भय नहीं है। वे तो 'निसान बजाई : (डंके की चोट पर) मिलना चाहते हैं। यह भाव मध्यकालीन वृन्दावन की गोपियों के समान जान पड़ता है जिसमें 'कोउ कहो कुल्टा, कुलीन, अकुलीन कहो' की गूज है।

'भले निंदऊ भले निंदऊ भले निंदऊ लोगू,
तनु मनु राम पिआरे जोगू।
बादु बिवादु काहू सिउ न कीजै,
रसना रामु रसाइनु पीजै।
अब जीउ जानि ऐसी बनि आई,
मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई।
उसतुति निंदा करै नरु कोई
नामें श्रीरंगु भेतल सोई।

कबीर मे भी इसी भाव की प्रतिध्वनि सुन पड़ती है—

'भलै नींदौ भलै नींदौ लोग,
तन मन राम पिआरे जोग।'

अपने 'राम' 'हरि,' 'केसव,' 'बीठुला,' 'माधव,' 'गोविन्द,' आदि के एकत्व को नामदेव जलतरंग न्याय के अनुसार विश्व-भर में अनुभव करते हैं—

'एतु अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।
याइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई॥
सभु गोबिंदु है, सभु गोबिंदु है, गोबिंदु बिनु नहीं कोई।
सूतु एकु मणि सत सहस जैसे उतिपोति प्रभु सोई॥
जलतरग अरु फेन बुदबुदा, जलते भिन्न न कोई॥
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई।
मिथिला भरमु अरु सुपनु मनोरथ सति पदारथु जानिआ॥
सुकित मनसा गुरु उपदेसी, जागतही मनु मानिआ॥
कहत नामदेऊ हरिकी रचना देखहु रिदै बिचारी॥
घट घट अतरि सरब निरतरी केवल एक मुरारी॥'

कबीर ने भी इसी प्रकार भिन्नत्व में एकत्व अनुभव किया है—

'हम तौ एक एक करि जाना ।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नाहिन पहिचाना ।।
एकै पवन एक ही पानीं, एक जोति संसारा ।
एक ही खाक घडे सब भाँडे, एक ही सिरजनहारा ।।

और भी—

खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रहयौ समाई ।
(कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १०४)

'जैसै जलहि तरंग तरंगनी, ऐसै हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर, हंसहि हंस मिलावहिंगे ।।
(कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १३७)

वारकरी-मत में एक देवोपासना का ही महत्त्व है। भूत, भैरव, शीतला आदि के पीछे दौडनेवाली जनता को प्रबुद्ध कर 'नामा' कहते हैं—

'भैरव भूत सीतला धरकै ।
खरवाहन अहु, छार उडाकै
हउ तउ एक रमइआ लेअऊ ।'
आन देव बनला बलि देअऊ ।'

नामदेव अपने 'रमैया' के बदले में सब देवताओं को बदलावनी में दे सकते हैं, उन्हें उनकी चाह नहीं है।

नामदेव के पूर्व नाथ-सम्प्रदाय के प्रेरक सिद्धों ने बहुदेवोपासना, व्रत, तीर्थ आदि बाह्याडंबरों की व्यर्थता प्रचारित की है।[1] महाराष्ट्र संतों का संपर्क नाथों से रहने के कारण उन्होंने भी बाह्याडंबरों के प्रति उदासीनता व्यक्त की है।

नामदेव के पदों में सिद्ध और नाथों का स्वर सुन पड़ता है—

राम संगि नामदेव जनकेऊ प्रति सिया आई ।
एकादसी व्रतु रहै काहे कऊ तीरथ जाई ।
भनति नामदेव सुक्रित सुमति भए ।

---

1. किन्तः तित्थ तपोवण जाइ, मोक्ख कि लाभइ पाणीं न्हाइ। (संत सुधासार पृष्ठ ६)।
(तीर्थ सेवन और तपोवनवास तथा जलस्नान से कहीं मोक्ष लाभ होता है ?)
सिद्ध तिल्लोपाद कहते हैं—
देव म पूजहू तिरथ ण जावा, देव पूजहिं ण मोक्ख पावा। (संत सुधासार पृष्ठ १०)।
(न देव-पूजा करो न तीर्थ जाओ, देवपूजा से मोक्ष प्राप्त नहीं करोगे)।

सुन्दरदास कहते है—

मेघ सहै शीत सहै शीश परि घाम सहै,
कठिन तपस्या करि कन्द मूल खात है,
जोग करै जज्ञ करै, तीरथऊ व्रत करै,
पुण्य नाना विधि करै मन में सिहात है।
और देवी देवता उपासना अनेक करै,
आँबन की हौस कैसे अकड़ोडे जात हैं।
सुन्दर कहत एक रवि के प्रकाश बिन
जैगने की जोति कहा रजनी मिलात है।[१]

दादू कहते हैं—

दादू कोई दौड़े, द्वारिका केई कासी जाहि,
केई मथुरा कों चलै साहिब घट ही माहि।[२]

गुरु तेग बहादुर कहते हैं—

तीरथ करै विरत पुनि राखै,
नहिं मनुआ बसि जाको,
निहफल धरम ताहि तुम मानो,
सॉचु कहत मैं याको[३]

कबीर कहते हैं—

पीपर पत्थर पूजन लागे, तीरथ बर्त्त भुलाना,
माला पहिरे टोपी पहिरे छाप तिलक अनुमाना,
साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना[४]

पाहन—पूजा पर नामदेव ने भी व्यग्य किया है

एकै पाथर कीजै पाऊ, दूजै पाथर धरिए पाऊ
जै इहु देऊ तऊ उहु भी देवा
कहि नामदेव हम हरि की सेवा।[५]

नामदेव गुरु के अनुग्रह की आवश्यकता अनुभव करते है क्योंकि—

"जऊ गुरदेऊ न मिलै मुरारी।
जऊ गुरदेऊ न उतरै पारि॥

---

१. संत सुधासार (वियोगी हरि, प्रथम संस्करण) पृष्ट ६२२—६२३।
२. वही पृष्ट ४८१।
३. वही पृष्ट ३५२।
४. वही पृष्ट १०४।
५. पंजाबातील नामदेव पद संख्या ७

जऊ गुरुदेऊ न वायु टिडावै ।
जऊ गुरदेऊ न यह दिस धावै ॥
जऊ गुरदेऊ त ससा टूटै ।
जऊ गुरदेऊ त जमते छूटै ॥"

नामदेव के गुरु-माहात्म्य की अनुभूति अन्य संतों मे बराबर प्रतिध्वनित हुई है—

"सतगुर की महिमा अनत, अनत किया उपगार ।
लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावनहार ।
कहै कबीर गुरु एक बुधि बताई
सहजसुभाय मिलै रामराई ।"

—कबीर

दादू पड़दा भरम का रह्यो सकल घटि छाइ ।
गुरु गोवियद कृपा करै तो सहजै ही मिट जाई ।
दादू साचा गुरु मिलै, सम्मुख सिरजनहार ।

—दादू

गुरु बिनु ऐसी कौन करे ?
माला तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै ।
भवसागर तै बहुत राखै, दीपक हाथ धरै ।
सूर स्याम गुरु ऐसी समरथ छिन मे ले उधरै ।
—सूर (सूरसागर-सार, साहित्य भवन लिमिटेड—प्रथम संस्करण पृष्ठ १२)

गुरु परसाद भई अनुभौ मति विप्र अंतिम सम धावैगा ।
कहि रैदास मोहे आपन पर तब उठि ठौरहि पालेगा ॥

—रैदास

सहजो गुरु परसन्न है मेट्यो सब सन्देह
गुरु बिना नहिं पार उतरै, करौं नाता भेष

—सहजोबाई ।

नाम-स्मरण से भ्रमों का नाश होता है, उसका नामोच्चार ही उत्तम धर्म है। नामदेव कहते हैं—

'हरि हरि करत मिटे सभि भरमा ।
बरिके (हरिके) नाम, ले ऊतम धरमा ।
प्रणके नामा ऐसो हरी
जासु जपत भै अपदा टरीं ॥'[1]

नामदेव को जाति-पाँति से कुछ मतलब नहीं है। वे तो राम-नाम को ही सर्वस्व समझते है—

कहा करउ जाती, कहा करउ पाती
राम को नामु जपउ दिनराती ।[2]

---

१ पंजाबातील नामदेव (जोशी—१९४० संस्करण) पृष्ठ १०८ ।
२ वही—पृष्ठ ८४ ।

राम-नाम की बराबरी तप, दान और तीर्थ नहीं कर सकते—

'बानारसी तपु करै उलटि तीरथ मरै,
अगनि दहै काइया कलपु कीजै
असुमेध जगु कीजै सोना गरभदानु
दीजै राम नाम सरि तऊ न पूजै।"[1]

नाम की महिमा का नामदेव के उत्तरकालीन सभी संतों ने बखान किया है, क्योंकि परमार्थ-आध्यात्मिक-पथ मे सभी को समान अनुभव होते हैं—

मन रे जब तैं राम कह्यौ
पीछे कहिबै कौ कछु न रह्यौ।
रसना राम गुन रमि रस पीजै
गुन अतीत निरमोलक लीजै।
विष तजि राम न जपसि अभागे
का बूड़े लालच के आगे

—कबीर

राम नाम जिनि छाडैं कोई
राम कहत जन निर्मल होई—
रहै निरन्तर रामसौं अन्तरि मति राता,
गावै गुण गोविंद का दादू रसि माता

—दादूदयाल

'हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत न कबहू, आवत गाढैं काम।
बैकुंठनाथ सकल सुख दाता, सूरजदास सुखधाम'

—सूर (सूरसागर-सार (साहित्य भवन लिमिटेड) पृष्ठ १२)

गुरु-अनुग्रह से जब राम का नाम हृदय की धड़कन बन जाता है, तब साधक को किस प्रकार का अनुभव होने लगता है, इसकी झलक नामदेव देते हैं—

"जब देखा तब गावा ॥
तउ जन धीरजु पावा ॥
नादि समाइलो रे सतिगुर भेटिले देवा ॥
जह झिलिमिलि कारु दिसता ॥
वह अनहद सबद बजता ॥
जोति जोति समानी ॥ मै गुर परसादी जानी ॥
रतन कमल कोठरी ॥ चमकार बिजुल तही ॥
नेरै नाही दूरि ॥ निज आतमै रहिआ भरपूरि ॥

---

१ पंजाबातील नामदेव—पृष्ठ ११७।

जह अनहत सूर उजारा ॥ तह दीपक जलै छंछारा ॥
गुर परसादी जानिआ ॥ जिनु नामा सहज समानिआ ॥"[१]

सद्गुरु की कृपा से भगवान् से भेंट हो गई । इससे मुझे धैर्य बँधा और झिलमिल प्रकाश दिखाई देने लगा । वहाँ अनहद नाद बज रहा था । मेरी आत्मज्योति उस परमात्मज्योति में समा गई । अन्तःकरण की कोठरी रत्न के प्रकाश से जाज्वल्यमान हो उठी । वहीं बिजली भी चमकने लगी । भगवान् की दूरी नहीं रह गई । आत्मा उसी से आपूर हो गई । असंख्य दीपक की ज्योति को मंद करनेवाले सूर्य का प्रकाश छा गया । नामा उसी मे सहज समा गया ।

उन्मनी अवस्था मे 'लय योग' की नामदेव को कितनी स्पष्ट अनुभूति हुई है ! उसी प्रकार की झलक और भी देखिए:—

अणभडिआ मदलु बाजै,
बिनु सावन घनहरू गाजै ॥
बादल बिनु बरखा होई ॥
जउ ततु बिचारै कोई ॥
मोकउ मिलिउ राम सनेही ॥
जिह मिलिऐ देह सुदेही ॥
मिलि पारस कचनु होइआ ॥
मुख मनसा भइआ भ्रमु भागा ॥
गुर पूछे मनुपति आगा ॥
जल भीतरि कुभ समानिआ ॥
सभ रामु एकु करि जानिआ ॥[२]

(पद स. ११)

एक बार यह अनुभव हो जाने पर तो सब कुछ त्याग कर 'उसी' को बार-बार प्राप्त करनेकी 'तालावेली' जाग उठती है—

'वेद पुरान सासत्र आनता गीत कवित न गावऊगो ॥
अखड मंडल निरंकार महि अनहद बेनु बजावऊगो ॥
बैरागी रामहि गावऊगो ॥
सबहि अतीत अनाहदि राता, आकुलकै घरि जाऊगो ॥
इडा पिंगुला अउरु सुखमना पऊनै बधि रहाऊगो ॥
चदु सूरजु दुइ समकरि राखऊ ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगो ॥
तीरथ देखि न जल महि पैसऊ जीअ जन्त न सतावउगो ॥
अठसठि तीरथ गुरु दिखाए घटही भीतरि नाऊगो ॥
पंचसहाई जनकी सोभा भलै भलै न कहावऊगो ॥
नामा कहै चितु हरि सिऊ राता सुन्न समाधि पावऊगो ॥[३]

---

१ पंजाबातील नामदेव—पृष्ठ ८९
२ वही, पृष्ठ ९१
३ वही, पृष्ठ ११४

योग की साधना में 'सुन्न समाधि' का बड़ा महत्त्व है। 'गोरख-शतक' मे प्रश्न है—

'षट्चक्र षोड़साधार त्रिलक्ष व्योमपचकम्
स्वदेहे मे न जानन्ति कथ सिद्धयन्ति योगिनः ?'

(जो योगी छः चक्र, सोलह आधार और तीन लाख नाड़ी तथा पाँच व्योमों को, जो उसके शरीर मे ही हैं, नहीं जानता वह कैसे योग मे पूर्णता प्राप्त कर सकता है ?)

पहला मूलाधार चक्र, दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र, तीसरा नाभिस्थित मणिपूरक चक्र, चौथा हृदयस्थित अनाहत चक्र, पाँचवाँ कठस्थित विशुद्धाख्य चक्र, छठवाँ भ्रूमध्यस्थित आज्ञा-चक्र है और मस्तक मे शून्य चक्र की स्थिति मानी गई है।

तीन लाख नाड़ियों मे दस नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गाधारी, हस्तजिह्वा, पुषा, यशस्विनी, अलभुषा, कुहुष और शखिनी मुख्य कही गई हैं। परन्तु कुडलिनी या लय-समाधि के लिए बाई ओर स्थित इडा, दाहिनी ओर स्थित पिंगला और रीढ़-मध्यस्थित सुषुम्ना का विशेष महत्त्व है।

कुडलिनी-योग द्वारा आत्मज्योति का ब्रह्मज्योति से मिलन होता है। योगी प्राणायाम, मुद्रा आदि द्वारा कुडलिनी-शक्ति को जाग्रत कर रीढ़ के मध्य भाग मे स्थित सुषुम्ना के मार्ग से मस्तक की ओर जहाँ ब्रह्मरध्र है, ले जाता है। कुडलिनी प्रत्येक चक्र को बेधती हुई ऊपर गतिशील होती है। अन्तिम चक्र तक पहुँचने पर जीवात्मा को वे सब अनुभव प्राप्त होते हैं जिसका वर्णन नामदेव ने किया है। नामदेव के परवर्ती सत कवियों ने भी इस कुडलिनी-योग की चर्चा की है

'गगन गरजि मघ जाइये, तहा दीसै तार अनत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषि हैं, तहा भीजत हैं सब सत रे ॥[1]

कबीर।

उन्मनि चढ़्या मगन रस पीवै, त्रिभवन भया उजियार।
सुषमन नारी सहजि समानी पीवै पीवनहारा।
दोइ पूड़ जोड़ि भिगाई माठी, चुभा महारसभारी।
काम क्रोध दोइ किया बलीता, छुट गई ससारी।
सुनि मडल में मदला बाजै, तहा मेरा मन नाचै।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछै।''[2]

—कबीर।

उत्तर-भारत मे जब नामदेव ने भ्रमण किया तो उन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में धार्मिक और सामाजिक कट्टरता दिखायी दी। अतएव उन्होंने उन दोनों को बोध-बाणों से छेदने की चेष्टा की—

'पाडे तुमरी गाइत्री लोधेका खेत खाती थी ॥
लैकरि ठेगा टगरी तोरी लागत लागत जाती थी ॥

१. कबीर ग्रथावली, पृष्ठ ८८
२. वही पृष्ठ ११०

पाडे तुमरा महादेऊ धऊले बलद चढ़िया भावत देखिआ था ॥
मोदी के घर खाणा पाका वाका लड़का मारिआ था ॥
पाडे तुमरा रामचंदु सो भी आवतु देखिआ था ॥
रावन सेती सरबर होइ घरकी जोइ गवाई थी ॥
हिंदू अंधा तुरकू काणा दोहा ते गिआनी सिआणा ॥
हिंदू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत ॥
नामे सोई सेविआ जह देहुरा न मसीत ॥

(पंजाबातील नामदेव पृष्ठ १११)

पोथी पढ़न्ते पाडे के प्रति जिस प्रकार नामदेव की खीझ है उसी प्रकार कबीर की भी है—

तू राम न जपहि अभागी
वेद पुरान पढ़त तउ पाडे, खर चंदन जैसे भारा
राम नाम तत समझत नाहीं, अन्त पड़ै मुख छारा ॥

साथ ही वे मुल्ला का भी मान मर्दन करते हैं—

काजी कौन कतेब बपाने,
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गर्त कै नाहीं जाने,
मुल्ला कहा पुकारै दूरि, राम रहीम रहया भरपूरि
यह तो अल्लह गूंगा नाही देखे खलक दुनी दिल माही।

नामदेव के विशिष्ट शब्द-प्रयोग

नामदेव ने कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्दों को प्रयुक्त किया है जो प्रायः सभी निर्गुणियों की कृतियों मे पाए जाते हैं। यथा—खसम, भर्तार, (भरतार) निरंजन, बीठुला, नाद, अनहत और सुन्न।

खसम, भरतार, और निरजन शब्द हमे सातवीं शताब्दी मे सिद्धों की रचनाओं में भी मिलते हैं।

खसम : अरबी, खस्म से बना है जिसके अर्थ १. शत्रु, दुश्मन, २. स्वामी, मालिक, ३. पति, शौहर होते हैं।[1] इसकी विवेचना डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी कबीर नामक पुस्तक मे की है। उन्होंने ख = आकाश, सम = समान अर्थ लेकर यह प्रतिपादित किया है कि मन की वह अवस्था जो सगुण और निर्गुण से परे हो।

सिद्ध सरहपाद ने आठवीं शताब्दी मे खसम का प्रयोग संभवतः उसी अर्थ में किया है जिसकी ओर डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी का संकेत है। उनकी पंक्तियाँ है—

'सव्व रुअ तहि खसम करिज्जै,
खसम कहावै मणवि धरिज्जै।
(सर्व रूप तह खसम करीजै)[2]

---

१. देखिए, उर्दू-हिन्दी-कोश (रामचन्द्र वर्मा, १९५३ संस्करण) पृष्ठ ९२

२. हिन्दी-काव्यधारा (राहुल) पृष्ठ १२

सरहपाद बौद्ध सिद्ध थे। उन्होंने महायान दार्शनिकों की परिभाषा मे ही सभवतः 'ख' का व्यवहार किया है। पर नामदेव और कबीर आदि सतों ने भी सभी स्थलों पर इसी अर्थ मे प्रयोग किया है, यह कहना कठिन है।

'भगति करउ हरि को गुन गावउ।
आठ पहर अपना खसमु धिआवऊ।

यहाँ स्पष्ट ही नामदेव ने 'खसम' का प्रयोग 'स्वामी' अथवा मालिक के अर्थ मे किया है, जो समस्त जगत् का स्वामी है, उसका आठों पहर ध्यान करने का उपदेश है। 'भरतार' का प्रयोग भी सरहपाद मे मिलता है—

'एक्कु खाई अवर ऊणा विपोड़ई, बाहिर गई भत्तारइ लेउइ'[1]
(एक खाइ अरु अधहि फोडै, बाहर जाइ भतोरे लौडै।)

यहाँ भतार का प्रयोग पति के अर्थ मे हुआ है। नामदेव मे भी इसी अर्थ मे यह प्रयुक्त हुआ है।

'मै बउरी मेरा राम भतारु।'
(पजाबातील नामदेव पद—सख्या ४१)

निरंजन : नाथ-पथियों मे बहुत प्रचलित शब्द है जिसका भिन्न-भिन्न अर्थों मे प्रयोग हुआ है। गोरखनाथ ब्रह्म के अर्थ मे 'आरती' गाते है—

'नाथ निरजन आरती गाऊ, गुरु दयाल अग्या जो पाऊ।'
(यदि दयालु गुरु की आज्ञा पाऊ तो
परब्रह्म निरजन नाथ की आरती गाऊ।)
'सकल भवन उजियारा होई, देव निरजन और न कोई।'[2]

कबीर ने ब्रह्म और विशिष्ट प्रकार के जोगियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है। यथा—

(१) कहै कबीर जो हरि रस भोगे, ताकू मिल्या निरजन योगी।
(२) एक निरजन अल्लह मेरा, हिन्दू तुरक दुहू नहि तेरा।
कहे कबीर भरम सब भागा, एक निरजन सू मन लागा।

नामदेव निरजन को अपने गोपाल राई का विशेषण बनाते हैं—

सेवीले गोपाल राइ अकुल निरजन।
भगति दान दीजै जाचहि सत जन।

गोपाल राई की, जिनका कोई कुल नहीं है और जो अजन रहित है अर्थात् निराकार हैं, सेवा करनी चाहिए। निरजन शब्द का नामदेव ने हिन्दी-पदों मे एक बार ही निराकार ब्रह्म के लिए प्रयोग किया है।

---

१. हिन्दी-काव्यधारा (राहुल) पृष्ठ १२।
२. गोरख-बाणी (बड़थ्वाल) पृष्ठ १४७।
३. कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ ८८।

वीठुला, विट्ठलु, विट्ठल—का हिन्दी-पदों में संभवतः नामदेव द्वारा ही सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है। उत्तर-भारत में विष्णु का विट्ठल नाम उन्हीं के द्वारा प्रचलित हुआ है। नामदेव ने विट्ठल शब्द पढरपुर की विट्ठल-प्रतिमा और व्यापक ब्रह्म दोनों अर्थों मे प्रयुक्त किया है। परन्तु इस संबध मे यह ध्यान देने योग्य है कि हिन्दी-पदों में विट्ठल प्रायः सर्व-व्यापी ब्रह्म के अर्थ मे प्रयुक्त है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि विसोवा खेचर से दीक्षित होने के पूर्व नामदेव की भक्ति पढरपुर के मंदिर मे स्थित विठोबा की मूर्ति मे ही केन्द्रित थी। अतएव मराठी अभंगों मे विट्ठल की मूर्ति के चरणों मे बार-बार जन्म लेकर समर्पित होने की उत्कट भावना है। परतु खेचर के जगाने के उपरान्त उनकी यह भावना व्यापक हो गई। चारों ओर उन्हे विट्ठल के दर्शन होने लगे—

'ई भइ वीठल ऊ भइ बीठल, बीठल बिन संसारु नहीं'

उत्तरभारत की यात्रा के समय नामदेव खेचर से दीक्षित हो चुके थे। अतएव उस समय रचित हिन्दी-पदों मे स्वभावतः 'वीठलु' व्यापक ब्रह्म के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ। नामदेव के पद उत्तर भारत मे इतने अधिक प्रचलित हो गये थे कि उनके भावों की प्रतिध्वनि हमे उनके परवर्ती संत-कवियों मे बार-बार सुन पडती है। उत्तर भारतीयों को सर्वप्रथम निर्गुण भक्ति का मधुर रस पान कराने का श्रेय इसी महाराष्ट्रीय सत कवि को है। सिद्धों और नाथों ने तो भक्तिविरहित निर्गुणमत का ही प्रचार किया था।

कबीर ने भी विट्ठल, और वीठुला का नामदेव के समान निराकार ब्रह्म के अर्थ मे प्रयोग किया है—

(१) गोकल नाइक वीठुला, मेरो मन लागौ तोहि रे
बहुतक दिन बिछुरे भए तेरी औसरि आवै मोहिरे ॥

(२) मन के मोहन वीठुला, यहु मन लागौ तोहिरे
चरन कवल मन मानिआ और न भावै मोहिरे ॥[1]

कुण्डलिनी, अनहत नाद, सुन्न—कुण्डलिनी के सबध मे 'गोरख-शतक' मे चर्चा है—

कुण्ड अर्थात रीढ़ के निम्न भागस्थित स्वयंभू लिंग के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति आठ तह का कुण्डल बनाकर अपने मुख से ब्रह्मद्वार को नित्य ढाँप कर पड़ी रहती है। इड़ा (बाँई नाड़ी) और पिंगला (दाँई नाड़ी) का जब सुषुम्ना (रीढ़ के मध्य स्थित नाड़ी) से बहनेवाली प्राणवायु के साथ प्राणायाम आदि द्वारा मेल होता है तब कुण्डलिनी जाग्रत होती है और उसकी ऊर्ध्व गति होती है। वह षट्-चक्रों को वेधती हुई सहस्त्राधार अथवा ब्रह्म-रंध्र मे प्रवेश करती है, जहाँ अमृत झरता है और जीवात्मा उसका पान करती है। इसी अवस्था मे 'अनहत नाद' सुनाई पड़ता है, 'प्रकाश' दिखाई देता है। आत्म-ज्योति परमात्म-ज्योति से एकाकार हो जाती है। यहीं पहुँचने पर समाधि की अवस्था सिद्ध होती है। इसी को कुण्डलिनी-योग अथवा लय-योग कहते हैं।

---

१. कबीर-ग्रन्थावली (हरिऔध द्वारा सम्पादित नागरी प्रचारिणी सभा-संस्करण) पृष्ठ ८८।
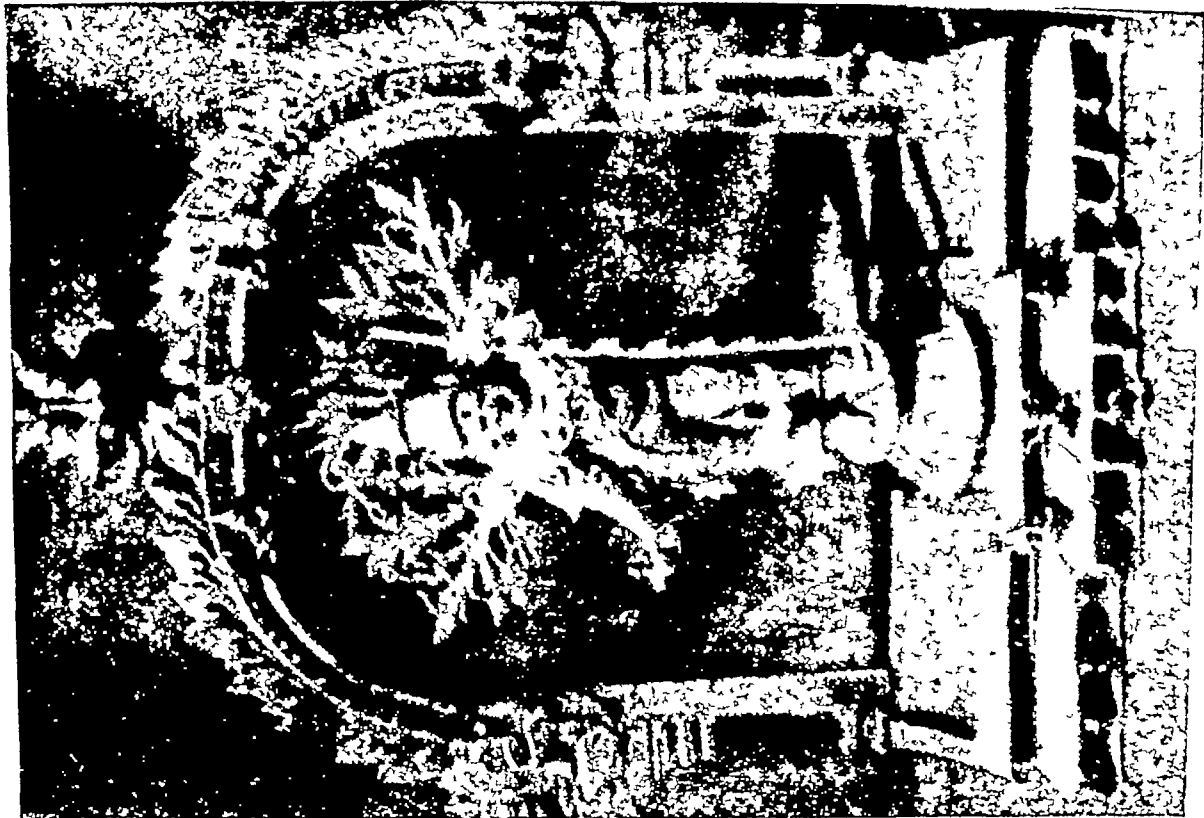
सज्जनगढ़ में श्रीराम की प्राचीन प्रतिमा
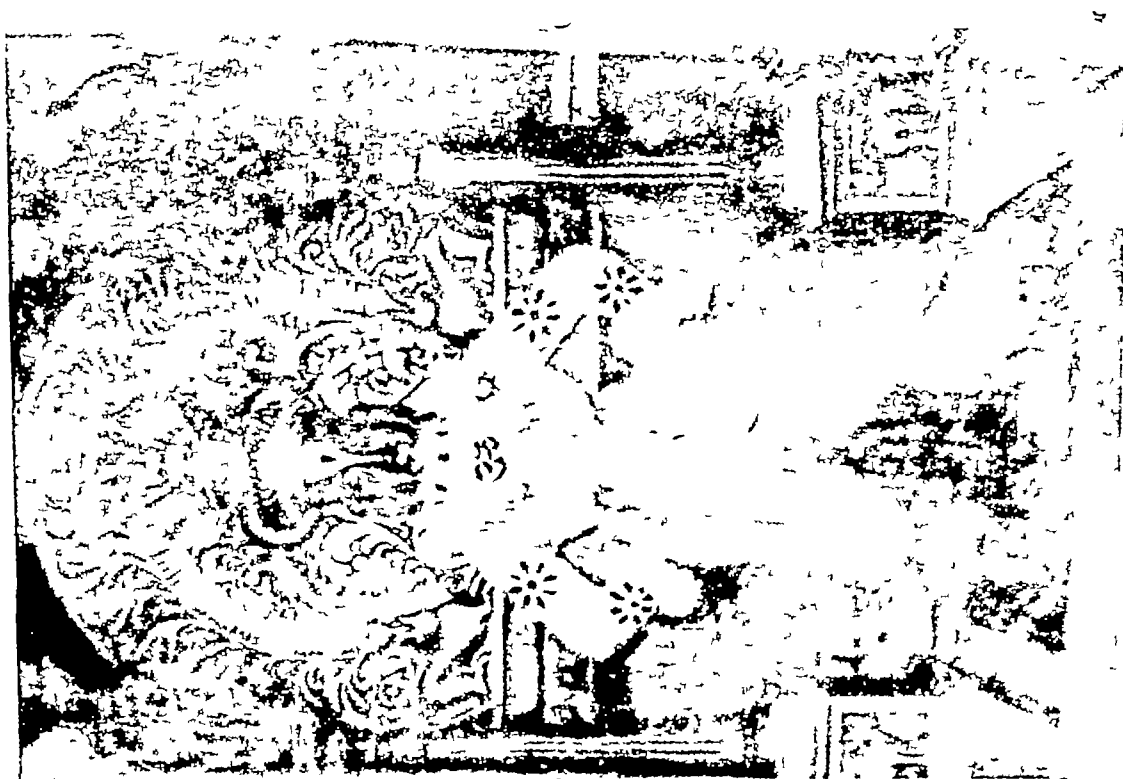
वारकरी-सम्प्रदाय के आराध्य पंढरपुर के 'विठोबा' की मूर्ति

नामदेव कहते हैं—

अखण्ड मण्डलु निराकार महि, अनहत वेनु वजाऊगो
इड़ा पिंगला अउरु सुखमना पउनै बाधि रहाउगो ।
चद्र सुरज दुई सम करि राखउ, ब्रह्म ज्योति मिलि जाउगो ।

इड़ा और पिंगला नाड़ियों को ही चद्र और सूर्य-नाड़ी कहा जाता है ।[1]

नाथ-मत मे कुण्डलिनी योग-साधन का बड़ा महत्त्व है । ब्रह्म-रध्र को गगन-मण्डल, सुन्न-मण्डल और सुन्न-महल भी कहा गया है ।[2]

योगी विसोबा खेचर से दीक्षा लेने के उपरान्त प्रतीत होता है, नामदेव कुण्डलिनीयोग-साधना में प्रवृत्त हुए और तभी से उनके पदों तथा अभगों मे उसका उल्लेख आने लगा ।

जह अनहत सूर उजारा, तह दीपक जलै छ्छारा
गुरु परसादी जानिआ जनु नामा सहज समानिया ।

(पजावातील नामदेव पद-सख्या ६)

नामदेव की भाषा

अध्ययन की समस्या—नामदेव के पदों की मूल पाण्डुलिपि अप्राप्य है । उनके बहुत से हिंदी-पद सिक्खों के 'गुरु ग्रथ साहिब' और थोड़े से आवटे द्वारा सकलित 'सकळ संत गाथा' तथा यत्र-तत्र मठों की पोथियों में मिलते है । 'गुरु ग्रथ साहिब' का सकलन सन् १६०६ ई० के आस-पास नामदेव के समाधिस्थ होने के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद हुआ है । इस अवधि मे मूल पदों में थोड़ा बहुत अतर स्वभावतः आगया होगा । यों जनता सतों की वाणी मे दैवी शक्ति को मान कर उनका शुद्ध पाठ रखने का प्रयत्न करती है । फिर भी, लेखन-त्रुटि और श्रवण-भ्रान्ति के कारण यहाँ-वहाँ अक्षरों और शब्दों मे भेद पड़ ही जाता है । आवटे की गाथा के पदों में भी मूल की रक्षा सदिग्ध है । मुद्रण-कला के आविष्कार के बाद तो 'दोषों' की सख्या की कोई सीमा ही नहीं रह गई है । पहले तो जब ग्रथ हाथ से लिखे जाते थे तब लिपिक की थोड़ी बहुत रुचि मूल पुस्तक की भाषा की रक्षा के प्रति जागृत रहती थी और पुस्तक का प्रायः एक ही लिपिक होने से भाषा की एकरूपता भी रक्षित रह जाती थी । परन्तु मुद्रणालय में तो एक पुस्तक को 'कम्पोज' करनेवाले अनेक व्यक्ति होते है जो न तो विषय का ज्ञान रखते और न भाषा पर अधिकार ही । वे 'मक्षिकास्थानेमक्षिका' रखकर अपनी मजूरी पूरी करते है । यदि कोई अन्वेषक ही मुद्रणालय मे सावधानी से बैठ कर किसी ग्रंथ को मुद्रित कराए तो सभव है कि मूल भाषा की रक्षा हो सके । श्रीआवटे

---

१. षोड्स कलावाली नाड़ी इड़ा में चन्द्रमा का प्रकाश है ।
द्वादशवाली पिंगला में भानु का । (गोरखबानी-बड़थ्वाल) पृष्ट ३३

२. सुन्नि मंडल में मंदुला वाजै तहाँ मेरा मन नाचै
(कबीर-वचनावली) पृष्ठ ११०
अवधू गगन मण्डल घर कीजै ।
(कबीर-वचनावली) पृष्ठ ११०

का शोधक स्वभाव भले ही रहा हो, पर वे आधुनिक ढग के अन्वेषक नहीं रहे हैं, जो भाषा के रूप की रक्षा मे अत्यधिक सावधान रहते है। मराठी-पदों की भाषा सभवतः थोड़ी बहुत वे ठीक रख भी सके हों, पर हिन्दी-पदों के प्रति वे भाषाधिकार के अभाव मे उतनी ही सतर्कता रख सके होंगे, इसमे संदेह है। ऐसी स्थिति मे हम नामदेव के पदों की सूक्ष्म वैज्ञानिक परीक्षा करने मे असमर्थ हैं। हम उसके प्राप्य रूप से कतिपय स्थूल निष्कर्ष ही निकाल सकते है।

नामदेव की भाषा की सामान्य विशेषताएँ

वर्णमाला और वर्ण-प्रक्रिया आदि—पदों की भाषा मे संस्कृत-वर्णमाला के प्रायः सभी स्वर और व्यजन विद्यमान हैं। अपवाद है ॠ, लृ, ॡ, श, ष, क्ष और ज्ञ। ॠ के स्थान पर रि, श के स्थान पर स और ष के स्थान पर ख, क्ष के स्थान पर ख तथा ज्ञ के स्थान पर गिअ का प्रयोग मिलता है। यथा—

हृदय	रिदय
एकादशी	एकादसी
खुशखबरी	खुसखबरी
वर्षा	बरखा
प्रेक्षण	पेखण
ज्ञान	गिआन

कहीं-कहीं ओ के स्थान पर 'उ' और ए के स्थान पर 'इव' मिलता है। यथा—

(१) राम को नाम *जपउ* दिनराता

(२) पच जना सिउ (से) बात बतउआ।

अ का उ मे परिवर्तन—शब्दान्त की अ ध्वनि प्रायः उ मे परिवर्तित पाई जाती है। यथा—

विठलु, ससारु, गोविन्दु, ब्रतु, खुदु, बेदु, मुरखु, परपंचु

संस्कृत तत्सम शब्दों के दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व और ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ रूपों की प्रचुरता है। कहीं-कहीं शब्दान्त अ का इ मे भी आदेश हुआ है। यथा—

खड़ी बोली शब्द	नामदेवी रूप
झिलमिल	झिलमिलि
बाहर	बाहरि

ब के स्थान पर भ का आदेश—

सब	सभ

क के स्थान पर ग का आदेश—

सकल	सगल
भक्ति	भगति

न के स्थान पर ण का आदेश और इसके विपरीत ण के स्थान पर न का आदेश—

कौन कवणु

तृष्णा त्रिस्ना

म के स्थान पर ज का आदेश—

यम जम

कतिपय वर्णों का आगम भी हुआ है। यथा—

शब्द मे वर्ग के तृतीय वर्ण के बाद ओ और ना के आने पर उसके मध्य य का आगम—

जाना ज्याना

जो ज्यो

लाना ल्याना

संयुक्त स के पूर्व इ का आगम—

स्नान इस्नान

विभक्ति-वैशिष्ट्य—सप्तमी के लिए इ और ए और मो प्रत्यय पाए जाते हैं—

मनि (मन में)

आकासै (आकाश मे)

द्वारै (द्वार पर)

गगन मडल मो (गगन मडल में)

कहीं-कहीं संबंध कारक में 'च' का प्रयोग—

तुमचे पारसु हमचे लोहा

(इस च प्रत्यय के सबध में प्रथम अध्याय में पर्याप्त चर्चा हो चुकी है।)

क्रिया-प्रत्यय—भूतकालिक 'इल' प्रत्यय नामदेव के पदों मे अधिक पाया जाता है। यथा—

आनीले, भराइले, भैला, लाइले

यह मराठी मे ही नहीं पूर्वी, हिन्दी मे भी प्रयुक्त होता है। सातवीं शताब्दी के सरहपाद और धर्मपाद मे भी इस भूतकालिक प्रत्यय का प्रयोग मिलता है—

सरह भणइ वण। उजुवट *भइला*[1]

डाह डोम्बिधरे *लागेलि* आग्गी[2]

नामदेव की भाषा में किसी कृत्रिम एकरूपता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। वे सत थे। उन्हें अपनी बात कहनी थी, भाषा का रूप-प्रदर्शन उनका ध्येय न था। अतएव भाषा में कबीर के समान थोड़ी विविधता भी है। जिस प्रान्त के व्यक्तियों से उनका सम्पर्क आया उसी प्रान्त के शब्द उन्होंने ग्रहण कर लिये। अतः उसमें खड़ी बोली के साथ ब्रज, पूर्वी हिन्दी और पजाबी का भी समावेश हो गया है। उनके काल तक मुसलमानों का शासन फैल चुका था। अतः विदेशी, (अरबी-फारसी) शब्द स्वभावतः उनकी भाषा में समा गये। परन्तु एक बात विशेष रूप से दर्शनीय है कि उनके प्रत्येक पद मे विदेशी

---

१. हिन्दी-काव्य-धारा, पृष्ठ ६१८।

२. वही, पृष्ठ ६१८।

शब्द नहीं आए है। 'गुरु ग्रथ साहिब' मे संकलित पदो मे ही थोडे बहुत अरबी-फारसी के शब्द है, उदाहरणार्थ, आमदकुना, खुशखबरी, यारा, आलम, मसकीन, दाना, बखसद, बिसमिल, खुदकार कलदर आदि। शेष पद्य इनसे सर्वथा अछूते है।

इस प्रकार नामदेव ने अपने सारे पदों मे भाषा की विदेशी खिचड़ी नहीं पकाई है। यद्यपि नामदेव के समय मे मुसलमानों का ससर्ग दक्षिणापथ मे प्रारम्भ हो चुका था, तो भी उनका इतना प्रभाव नहीं बढ पाया था कि जनता की भाषा के परम्परागत रूप मे विशेष परिवर्तन आ गया हो। उत्तरभारत मे परिवर्तन की क्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी जिसकी छाया नामदेव के चार-पॉच पदों मे ही दिखाई देती है। उन पदों की रचना उनके पजाब मे रहने के काल मे होनी चाहिए। उनकी भाषा से खड़ी बोली के उस रूप का आभास मिलता है जो उनके समय मे मध्यदेश और पजाब में विकसित हो रही थी।

नामदेव के पदों में कविता

नामदेव मे निर्गुण-भक्ति का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ है। उनमे कहीं अपने विट्ठल के, जिसे वे 'रामु', 'माधो', 'गोविन्दु', 'हरि' आदि से सम्बोधित करते है, मिलन-सुख का उल्लास है, कहीं उनसे मिलने की 'तालावेली' है। इसलिए उनके पदों मे शात, वात्सल्य और करुण रस का प्राधान्य है। उनमे उत्कट भावना की हिलोर है। अपने अनुभवों को बोधगम्य बनाने के लिए उन्होंने उपमा, रूपक, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति, उदाहरण और विभावना अलकारों का विशेष प्रयोग किया है। उनमे शब्दाडम्बर नहीं है। अपने 'सुआमी' के प्रति उनकी प्रीति की तीव्रता किस प्रकार की है, इसे समझाने के लिए कितने सरल शब्दों मे 'उदाहरण' प्रस्तुत करते है—

जैसे भूखे प्रीति अनाज
त्रिखावत जल सेती काज
जैसे मूढ कुटुम्ब परायन
ऐसे नामे प्रीति नाराइन ॥

और भी 'जैसे पर पुरखारत नारी
लोभी नरधन का हितकारी
कामी पुरुष कामनी पिआरी
ऐसे नामे प्रीति मुरारी

सासारिकता मे काया (काइया) डूबी जा रही है। उसकी स्थिति का 'रूपक' द्वारा परिचय देते है—

'लोभ लहरि अति नीझरु बाजै,
काइआ डूबै केसवा।
संसारु समुदेतारि गोविंदे
अनिल बेड़ा हऊ
तेरा पारु न पाइआ बीठुला
तू मोकउ बाह देहि बाह दोह बीठुला ॥'

'काल' हमारे सुख का कभी भी अत कर सकता है। मछली पानी मे रहती है। समझती है कि सुरक्षित और सुखी है, परन्तु अचानक जालरूपी काल मे फॅस जाती है। उसका सुख तिरोहित हो जाता है। इसे *उदाहरण* से स्पष्ट करते है—

'जैसे मीनु पानी मे ही रहै
काल जाल की सुधि नहीं लहै।'

ससार में धन आदि का सचय भी व्यर्थ है। इसका लौकिक व्यवहार मे दिखाई देनेवाली घटनाओं का *उदाहरण* देकर समझाते हैं—

'जिउ मधुमाखी सचै अपार
मधु लीनो मुखि दीनी छारु।'
'गऊ वाछकऊ सचै खीरु
गला वाधि दुहि लेहि अहीरु।'

मधुमक्खी मधु का सचय करती है, क्या वह उसका उपभोग ले पाती है?

गाय अपने बछडे के लिए क्षीर (दूध) का सचय करती है—चुरा लेती है, पर क्या वह उसके बच्चे को मिल पाता है? अहीर गला बॉध कर उसे दूह लेता है। इसीलिए 'नामा' कहते हैं कि अपने या अपने कुटुम्बियों के लिए धन-सचय करने मे क्यों अपने जीवन को गॅवाते हो? निर्भय होकर भगवान् का भजन करो। कितने अनुभूत और सूझभरे उदाहरण हैं! प्रत्यक्ष जीवन से उन्होंने उदाहरण लिए है—मारवाड़ी को जैसे पानी प्यारा है, उसी तरह मुझे मेरा विट्ठल प्यारा है।

इड़ा और पिंगला नाड़ियों के लिए योग-ग्रथों मे उल्लिखित 'चदु' और 'सूरज' शब्दों का प्रयोग किया गया है। ब्राह्मण और शूद्र भगवान् के ही बनाए हुए है, उनमे भेद नहीं है। इसे समझाने के लिए उन्होंने कितना स्वाभाविक 'उदाहरण' दिया है—

'नाना वर्ण गवा (गाय) उनका एक वर्ण दूध।'

गगन-मडल (मस्तक) के सहस्राधार मे, प्राणों के पहुँचने पर अनहत-नाद का और अमृत के झरने का कैसा अनुभव होता है, इसे विभावना द्वारा समझाते हैं—

'अडमडिया मदलु वाजै
विनु सावन वनरस गाजै
वादल विनु वरखा होई।'

विना मढ़ा मृदग वजता है, विना सावन के विना वादल के वर्षा होती है। सचमुच नामदेव के अलकार अनुभूति को रूप देने के लिए हैं—हृदयगम कराने के लिए हैं। इनमे कहीं चमत्कारिकता नहीं है। कवीर के समान नामदेव मे कहीं उलटवासियॉ नहीं हैं। उन्हें जनता पर आतक जमाना अभीष्ट नहीं था। वे तो उन्हे अपने हृदय मे न समा सकनेवाले भक्ति-भाव-प्रेम-रस से सरावोर करने को आतुर थे।

नामदेव के पदों की कविता के सम्बन्ध मे स्वर्गीय प्रोफेसर वासुदेव बलवन्त पटवर्धन ने बम्बई-विश्वविद्यालय की विल्सन फिलालॉजिकल व्याख्यानमाला में ये उद्‌गार प्रकट किये थे—

"Here we have the Romance of a light that never was on sea or land, of a dream that never settled on the world of clay, of love that never stirred the passion of sex. Here is the Romance of the piety ; of faith and devotion, of surrender of human soul in the love, the light and the life of the ultimate being It is a Romance of Bhakti or spiritual love that we have here. It is the heart's song to the heart. It is the outburst of the contents of the heart under excitement when the heart is touched or stirred, or thrilled or roused into passionate life "[1]

(भावार्थ—नामदेव की कविता में हमें उस प्रकाश के रोमाञ्च का अनुभव होता है जो समुद्र या धरती पर कभी नहीं उतरा, उस स्वप्न के दर्शन होते है जो इस मिट्टी की धरती पर कभी नहीं झलका। उस प्रेम की प्रतीति होती है जिसने कभी वासना को उत्तेजित नहीं किया। उसमे तो करुणा, विश्वास और भक्ति का 'रोमाञ्च' है तथा मानव-आत्मा का प्रेम तथा परमात्म-शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण है। उसमे हम भक्ति अथवा आध्यात्मिक प्रेम का रोमाञ्च, हृदय का हृदय के प्रति सगीतमय निवेदन, और उद्वेलित भावातुर हृदय के उद्‌गार पाते हैं।)

उनके समकालीन प्रसिद्ध सत ज्ञानेश्वर महाराज ने भी उनकी कविता के सबध मे कहा है—'नामा मे कथन मात्र नहीं, कवित्व है—उसका रस अद्‌भुत और निरुपम है।'[2]

तात्पर्य यह कि नामदेव अपने काल के लोकप्रिय सत थे। उनके मराठी अभगों और हिन्दी-पदों मे जनता के हृदय को स्पर्श करने का गुण है।

नामदेव और कबीर

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि नामदेव और कबीर की विचारधारा एक ही भूमि पर प्रवाहित हो रही है। नामदेव चूँकि कबीर के पूर्व हुए है, इसलिए कबीर की वे निश्चय ही प्रेरक शक्ति रहे हैं। इतना होने पर भी हिन्दी के प्रसिद्ध विवेचक नामदेव को निर्गुण मत का प्रवर्तक नहीं मानते। स्वर्गीय डा० बड़थ्वाल लिखते हैं, '(निर्गुण) पंथ को प्रारम्भ करने का श्रेय कबीर को ही देना होगा।'[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है, 'जहाँ तक पता चलता है निर्गुण-मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे।'[2] नामदेव कबीर से

---

१. श्री नामदेव चरित्र (माधवराव अप्पाजी मुले ; सन १९१२ संस्करण) प्रस्तावना, पृष्ठ ८४—८५।

२. 'परी नामयाचें बोलणें नव्हे हे कवित्व। हा रस अद्‌भुत निरोपमु।'—वही, पृष्ठ ८६।

३. देखिए हिन्दी काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय (बड़थ्वाल) पृष्ठ २१

४. देखिए हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७०

पूर्व हुए, उन्होंने निर्गुण भक्ति का उत्तर मे वर्षों प्रचार किया। फिर भी उन्हे उस पथ का प्रवर्तक मानने में विद्वानों को क्यों झिझक होती है ?

इस प्रश्न का उत्तर क्या प० परशुराम चतुर्वेदी के इस कथन मे ढूँढा जा सकता है कि 'नामदेव मे उत्तरी भारत के सत मत की सारी विशेषताएँ नहीं मिलतीं ?' क्या इसीलिए 'वे अपने क्षेत्र तक सीमित रह जाते हैं।'[1] चतुर्वेदी जी यह भी लिखते हैं कि नामदेव के पद मे 'माइया मोहिया' शब्दों से यह ध्वनि निकलती है कि सत नामदेव को अपने गार्हस्थ्य जीवन के प्रति कदाचित् पूर्ण विरक्ति नही रही।[2] क्या इसीलिए उन्हे उच्च पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया गया ? हमारा निवेदन है कि चतुर्वेदी जी के निष्कर्षों मे सशोधन की आवश्यकता है। वे तथ्य को ठीक ठीक प्रस्तुत नहीं करते। पहले हम उनके प्रथम मत पर विचार करते है। वे कहते है कि 'उत्तरी भारत' के सतमत की विशेषताएँ नामदेव मे नहीं मिलतीं।

उत्तर भारत के सतमत की विशेषताएँ उन्हीं के ग्रथ में निर्दिष्ट हैं। वे हैं—

(१) प्रत्यक्ष अनुभव से सत्यान्वेषण
(२) सद्गुरु-महत्व-प्रतिपादन।
(३) 'सुमिरन' या नाम-स्मरण का आग्रह
(४) बाह्याडबर की व्यर्थता।

अब हम सिद्ध करेंगे कि नामदेव के पदों मे उत्तरी भारत के सत-मत की उपर्युक्त विशेषताएँ विद्यमान हैं।

(१) नामदेव इस जगत में सत्य का अन्वेषण करते है—
'कहत नामदेउ हरि की रचना देखेउ रिदै बिचारी
घट घट अतरि सरब निरतरि केवल एक मुरारी। (पद-सख्या २)

नामदेव 'रिदै' (हृदय) मे विचारने पर जोर देते हैं। आत्मानुभव की ओर सकेत करते हैं:—

(२) सदगुरु के विना सत्य का अनुभव भी कैसे हो सकता है ?
वे कहते हैं—
'सफल जनमु मोकउ गुरु कीना,
गिआन अजनु मोकउ गुरु दीना।'

(३) नाम-स्मरण पर भी नामदेव का आग्रह है। पहला ही पद है—
'देवा, पाहन तारिअले।'
राम कहत जन कस न तरे (पजाबातील नामदेव, पद-संख्या १)

और भी—

'भगति करउ हरि के गुन गावउ
आठ पहर अपना खसमु धिआवउ।

१. देखिए उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पृष्ठ १०
२. देखिए वही, पृष्ठ ११८

(४) बाह्याडंबर, वेद-पाठ आदि की अनावश्यकता भी प्रतिपादित करते है—

(१) 'पंडित होइकै वेदु बखानै। मूरखु नामदेव नामहि जाने'

(२) 'अन्तरबाहरि काज बिरुधी चितुसु बारिक राखीअले।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि नामदेव मे उत्तरी भारत के सत-मत की सारी विशेषताएँ विद्यमान है। इसीलिए हम उन्हे उत्तर भारत मे निर्गुण भक्ति-मत का प्रथम प्रचारक और प्रवर्तक तथा कबीर आदि संतों का पथ-प्रदर्शक मानते है। यह सत्य है कि कबीर के पूर्व सिद्धों और नाथों ने इसी दिशा मे कार्य किया है पर नामदेव और सिद्धों-नाथों के निर्गुण मत-प्रचार मे यह अन्तर है कि सिद्धों और नाथों मे जहाँ शुष्क 'ज्ञान' और 'योग' है वहाँ नामदेव मे ज्ञान और योग के साथ भक्ति का सरस मेल भी है। वारकरी-मत मे भागवत-मत का समावेश होने से उसमे प्रवृत्ति-भाव आ गया है। नामदेव वारकरी-मत के प्रमुख सत है। अतएव उनमे ज्ञान और भक्ति का मणि-काचनसंयोग सध गया है।

अब चतुर्वेदीजी के दूसरे मत पर विचार किया जायगा जिसमे वे नामदेव को अत तक 'माइया मोहिया' मे फँसा हुआ बतलाते हैं। इस मत का आधार संभवतः नामदेव के पदों मे 'झूठी माइया देखिकै भूला रे मना'[१] जैसे उद्गार है।

परन्तु पदों मे 'माइया मोहिया' आने से ही उनका 'मायावश' होना सिद्ध नहीं होता। तुलसी, सूर आदि प्रसिद्ध भक्तों की वाणियों मे 'माइया मोहिया' के भाव-व्यंजक शब्दों की क्या कमी है? सत तो माया-मोह से निर्लिप्त रहने के लिए बार-बार अपने हृदय को टटोला करते हैं और उसमे अहकार उत्पन्न न होने देने के लिए बार-बार कहा करते हैं 'मो सम कौन कुटिल खल कामी?' और आर्तनाद करते है 'माया नटी लकुटी कर ली है, कैसे तव गुन गावै?' हिन्दी के अधिकाश सन्तों के उद्गारों मे इस प्रकार के भावों की व्यञ्जना मिलती है। इनसे भक्त या संत के जीवन के धागे-डोरे नहीं पकड़े जाते। इनमे तो भक्ति की दैन्य-भावना की चरम सीमा ही देखी जा सकती है। नामदेव के हृदय मे अपने 'विठ्ठल' के प्रति जब 'तालाबेली' जाग उठी है तब उसे गृहस्थी की माया कैसे खींच सकती है? वह तो यही गा सकता है 'मनु पंछीया मत पड़ पिंजरे, संसार माया जालु रे।'[२] इसके अतिरिक्त नामदेव के प्रकाशित जीवन-चरित्रों मे कहीं भी यह उल्लेख नही है कि वे अत तक 'माया-मोह' मे फँसे रहे। सत्य तो यह है कि वे सासारिकता से सदा उदासीन रहे। उनका मन घर-द्वार के कामों मे रमा ही नहीं। मराठी में रचित नामदेव की माता 'गोणाई नामदेव याचा सवाद' नामक अभग मे कहा गया है—

"गोणाई म्हणे नाम्यावचन माझे ऐक।
पोटीचे बालक म्हणोती सागे ॥१॥

---

१. पंजाबातील नामदेव, पद-संख्या ६।

२. परिशिष्ट में संगृहीत अतिरिक्त पद-संख्या ५।

३. श्री नामदेवरायांची सार्थगाथा (भाग तिसरा, सुबंध), पृष्ठ ८६।

महीमेचा संसार सागेनी आपुला ।
सग त्वा धरिला निःसगाचा ॥२॥
या काय मागसी तो काय देईल ।
शीहर ची नेईल बैकुठासी ॥३॥
सवित्या की लेंकुरे वर्ततातो कैसीं ।
तू मज झाला सी कुल क्षय ॥४॥
धनधान्य पुत्र कलत्रे नादती ।
तुज अभाग्याचे चित्तीं पाडुरंग ॥५॥
शिवरण्या टिपण्या घातलें से पाणी ।
न पाहासी परतोनी घराकडे ॥६॥
कैसी तुजी भक्ती लौकिका वेगलो ।
संसाराची होली कयाली नाम्या ॥७॥"

(भावार्थ—गोणाई कहती है कि नामदेव तू मेरे पेट से उत्पन्न पुत्र है, इसीलिए तुझसे कहती हूँ कि तूने ससार त्यागकर निःसग का साथ किया है। तू उससे क्या माँगता है और वह तुझे देगा भी क्या? वह तुझे शीघ्र ही वैकुठ ले जायगा। देख, पड़ोसियों के लड़के अपने गृहस्थ-जीवन का किस प्रकार निर्वाह करते हैं और तू कुल का नाश करनेवाला पैदा हुआ है? तुझ अभागे का चित्त पाडुरग मे लगा हुआ है। तूने सीने-पिरोने का काम त्याग दिया है और घर की ओर देखता ही नहीं! यह तेरी कैसी भक्ति है? घर-गृहस्थी को तूने आग में झोंक दिया है!)

ऐसे और भी अभग हैं जिनमे नामदेव की घर-गृहस्थी के प्रति विरक्ति प्रकट की गई है।

निष्कर्ष यह कि नामदेव के पदों मे 'माइया मोहिया' का प्रयोग उनके जीवन-चरित्र का प्रकाशन नहीं, उनकी दैन्य-भक्ति का निदर्शक है। यह सत्य है कि कबीर के समान नामदेव की हिन्दी रचनाएँ प्रचुर मात्रा मे नहीं मिलती, परन्तु जो कुछ प्राप्य हैं उनमे उत्तरभारत की सत-परम्परा का पूर्व आभास मिलता है और उनके परवर्ती सतों पर निश्चय ही उनका प्रभाव पड़ा है जिसे उन्होंने मुक्त कठ से स्वीकार किया है। ऐसी दशा में उन्हे उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्त्तक मानने मे हमे कोई झिझक नहीं होनी चाहिए। संभवतः हिन्दी-जगत् तक उनके सबध में पर्याप्त जानकारी न पहुँच सकने के कारण उन्हे वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका, जिसके वे अधिकारी है।

नामदेव की साहित्यिक और सांस्कृतिक सेवा

नामदेव का व्यक्तित्व सचमुच महान् था। उन्होंने उत्तर भारत मे प्रवेश कर जनता को बहुदेवोपासना, कृत्रिम आचार-विचार, जाति-भेद आदि के प्रति सजग किया। क्योंकि भारत में जो विदेशी सस्कृति का प्रवेश हो गया था, वह उसके इन्हीं 'दोषों' से लाभान्वित हो अपना विस्तार कर सकती थी। अत: उन्होंने अपने उपदेशों मे, जैसा कि ऊपर कहा गया है, कबीर और अन्य परवर्ती संतों का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

नामदेव ने जहाँ उत्तर भारत मे युगानुरूप विचारों से क्राति की चिनगारी प्रज्ज्वलित की वहाँ हिन्दी साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली के पद्य को विभिन्न राग-रागिनियों की पद-शैली भी प्रदान की। सक्षेप मे नामदेव हिन्दी के अपने समय के (१) निर्गुण भक्ति के प्रथम प्रचारक और (२) हिन्दी मे गीत-शैली के प्रथम गायक कहे जा सकते हैं। नामदेव की लोकप्रियता का प्रमाण इसी से मिल जाता है कि निम्न परवर्ती सत कवियों ने श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण किया है—

गुरु परसादी जैदेव, नामा। भगति के प्रेम इन्हहि है जाना।[१]
(कबीर)

नामा, कबीर सुकौन थे कुन राँकावाँका
भगति समानी सब धरनि तजि कुल कानाका।[२]
(रज्जबजी)

जैसे *नाम* कबीरजी यौ साधु कहाया
आदि अंत लौ आइकैं राम राम समाया॥[३]
(स्वामी सुन्दरदास)

नामदेव—कबीर जुलाहों जन रैदास तिरै
दादू वेगि बार नहिं लागै, हरि सौ सबै सरै॥[४]
(दादू दयाल)

ध्रू, पहलाद, कबीर, *नामदेव*, पाषंड कोई न राख्या॥
बैठि इकंत नाव निज लीया वेद भागोत यूं भाख्या॥[५]
(वषनाजी)

नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना सैनु तरै
कहि रविदास सुनहु रे संतो, हरि जीउ ते सभै सरै॥[६]
(रैदास)

इसमें सदेह नहीं, नामदेव की वाणी ने हिंदी-भक्ति-साहित्य मे एक अपूर्व मिठास भर दी है।

---

१. कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ३२८
२. संतसुधासार, पृष्ठ ५२०
३. वही, पृष्ठ ५६०
४. वही, पृष्ठ ४५१
५. वही, पृष्ठ ५४३
६. वही, पृष्ठ १८३

गोंदा महाराज

गोंदा महाराज का समय लगभग शके १२७२ (ईसवी सन् १३५१) के मध्य है। ये नामदेव के पुत्र हैं। इनकी भी कुछ रचनाएँ मराठी और हिन्दी मे मिलती हैं। महाराष्ट्र सारस्वतकार का यह कथन ठीक है कि इनके अभगों मे पिता के प्रतिभा-चिह्न दृष्टिगोचर हों, ऐसी बात नहीं है। कवित्व तो बिल्कुल ही नहीं है। उदाहरणार्थ—

गजानन गौरी खूब लाल अग पर अमूल ।
तरे मुरख वचनामृत उस जमदूत भागत है ॥
त्रिभा भई तन्दुल पेट उसपर साप की लपेट ।
विघ्नन करत है चपेट पकड़ फेंट कालि की ॥

यह है गोंदा महाराज का गजानन-वर्णन ! मराठी का अभग छद इन्होंने हिन्दी मे प्रयुक्त किया है, यही इनकी विशेषता कही जा सकती है। सगृहीत अभगों मे इन्होंने अपने पिता नाम्देव के जीवन की कुछ झलक दी है।

सेनानाई

सिक्खों के 'आदि ग्रथ' में सेनानाई का एक पद है जिससे सिद्ध होता है कि 'सेना' की सतों में ख्याति रही है। प्रश्न यह है कि 'सेना' कहाँ का रहनेवाला था और उसकी जीवन-लीला कहाँ समाप्त हुई ?

स्वामी रामानद के शिष्यों मे सेनानाई का उल्लेख है। सिक्खों के 'आदि ग्रथ' मे सेना के सकलित पद में 'रामानद' नाम आया है। पद इस प्रकार हैं—

'धूप दीप घ्रित साजि आरती, वारने जाऊ कमलापती
मगला हरि मगला नित मगलु, राजा राम राई को
उत्तम दीअरा निरमल बाती, तू ही निरजन कमलापती
रामा भगति रामानद जानै, पूरन परमानंद बखाने
मदन मूरति मैं तारि गोविंदे, सैनु भणै भजु परमानदे ।'

सेना के मत से 'राम भगति' रामानद ही जानते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि सेना रामानद के पश्चात् या उन्हीं के काल में हुआ है। डा० रानडे सेना का समय शके १३६६ (सन् १४४८) निश्चित करते है।[२] उनके मत से वह बिदर के बादशाह के यहाँ नौकर था। महिपति बोवा ने 'भक्ति विजय' में 'सेना न्हावी' की कथा दी है[३] और उसे एक यवनराजा के यहाँ होना बतलाया है। अधींच राजा अविंध दुर्जन

१. देखिए महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ १७६
२. Mysticism in Maharashtra, पृष्ठ
३. देखिए भक्तविजय कथामृत, पृष्ठ १४०

(पहले ही राजा यवन और दुर्जन था) । दूसरा मत यह है कि वह बाधवगढ़ के राजा के यहाँ नौकर था । इसके अतिरिक्त उसे महाराष्ट्रेयेतर मानने का भी आग्रह है । इसका कारण यह दिया जाता है कि सेना का पथ उत्तर भारत मे प्रचलित है । यह मत श्री जोशी ने अपने 'पजाबातील नामदेव' मे पुरस्सर किया है ।[1] उन्होंने संभवतः 'इन्साइक्लोपीड़िया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स' के आधार पर सेन-पंथ को उत्तर में प्रचलित माना होगा पर हाल ही में प्रकाशित 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' मे परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, 'सेन-पथ के अनुयायियों अथवा उनके मत का कोई पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है ।' (पृष्ठ २३३)

हमारे मत से सेनानाई उत्तर भारत का नहीं है । उसने नामदेव के समान उत्तर भारत मे यात्रा की होगी । सेन-पंथ का उत्तर भारत मे प्रचार नहीं है । उसका पंथ कभी चला भी हो तो नामदेव के उत्तर भारत मे प्रचलित पथ के समान ही हो सकता है । अतः उत्तर मे सेना-पंथ के चलन से भी वह उसी प्रकार उत्तर भारतीय सिद्ध नहीं होता, जिस प्रकार पंजाब में नामदेव-पंथ के चलनमात्र से नामदेव का उत्तर भारतीय होना सिद्ध नहीं होता । दूसरी बात यह है कि उसका यवन राजा के यहाँ नौकर होने का उल्लेख है बाधवगढ़ के राजा 'यवन' नहीं थे । अतः वह विदर के मुसलमान बादशाह के यहाँ ही सेवक रहा होगा । महिपति की 'भक्त विजय' की कथा से भी यही अनुमान निकलता है । उसमें लिखा है कि एकदिन सेना जब पूजा मे लीन था तब बादशाह के दूत ने उसे शीघ्र आने का संदेशा दिया । उसने कहा, पूजा के पश्चात् आ रहा हूँ । इस पर यवनराज क्रुद्ध हो गया । उसने उसे बाँध कर नदी मे फेंक देने का आदेश दिया । आज्ञा पाते स्वयं सेना के रूप मे बादशाह के पास गए और उसकी सेवा की । (भक्तविजय पृष्ठ ४६-५१) । सेना को रामानद का शिष्य कहा जाता है, पर यह संभव नहीं जान पड़ता । रामानंद का समय विक्रम-सवत् १४२५ से १४५६ कहा जाता है ।[2] और प्रो० रानडे के अनुसार सेना का समय विक्रम स० १५०५ है । हो सकता है, कोई दूसरा सेनानाई रामानंद का शिष्य रहा हो । भीतरी साक्ष्य से भी उसका महाराष्ट्रीय होना अधिक संभव जान पड़ता है । उसके मराठी अभगों की भाषा और भाव से उसका महाराष्ट्रीय जीवन से अत्यधिक परिचय सिद्ध होता है । उसके लगभग १५० अभग मराठी मे उपलब्ध है ।

अतएव निष्कर्ष यही निकलता है कि सेनानाई महाराष्ट्रीय था । सेना की मराठी रचनाएँ ही अधिक उपलब्ध हैं । उनमे उसकी 'गौलण' शीर्षक रचनाएँ अत्यन्त सरस बन पड़ी हैं । सेना के ग्रंथ साहित्य मे उद्धृत पद से ज्ञात होता है कि उसपर नामदेव की भाषा का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है और उसने उत्तर भारत की यात्रा की थी ।

---

१. देखिए पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ २९

२. देखिए हिन्दी साहित्य का इतिहास (शुक्ल), पृष्ठ १०२

सेना का एक पद हम श्रीसमर्थ वाग्देवता मदिर की एक जीर्ण पाण्डुलिपि मे और प्राप्त हुआ है जिसे हम परिशिष्ट मे दे रहे है। उसकी कुछ पक्तियाँ हैं—

(धनासरी राग)

"वेदहि झूटा, शास्त्रहि झूटा,
भक्त कहा से पछानी
ज्या, ज्या, ब्रह्मा तू ही झूटा,
झूटी साके न मानी।
गरुड़ चढे जब विष्णू आया,
साच भक्त मेरे दोही,
धन्य कबीरा, धन्य रोहिदास,
गावे सेना न्हावी ॥"

महाराष्ट्र में सेना के मराठी पद अधिक प्रचलित रहे हैं। अतः उसके हिन्दी-पदों को संकलित करने की ओर विशेष ध्यान नहीं गया। उत्तर भारत में सेना का एक ही पद मिला है। यदि वहाँ उसका पथ ठीक तरह से चला होता तो पथानुगामी उसके हिन्दी पदों को सचित करने की अवश्य चिंता करते।

भानुदास महाराज

एकनाथ महाराज ने अपनी पितृ-परम्परा भानुदास से प्रारंभ की है। एकनाथ का जन्म शके १४७० है। उसके लगभग सौ वर्ष पूर्व भानुदास का जन्म-शके निश्चित होता है। महाराष्ट्र मे भानुदास अपनी विट्ठल-भक्ति के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि जब मुसलमानों के भय से विजयनगर के राजा कृष्णराज ने पढरपुर से विट्ठल की मूर्ति अपने राज्य में मँगा ली थी तब भानुदास के कारण ही वह पुनः पढरपुर लौटा दी गई। हो सकता है, भानुदास जैसे विश्रुत भक्त की प्रार्थना भक्त राजा से न टाली गई हो। यह घटना सत्य प्रतीत होती है, क्योंकि विजयनगर मे आज भी श्रीविजय विट्ठल का मदिर तो है पर उसमें विट्ठल की मूर्ति नहीं है। महिपति लिखते हैं कि 'भानुदास के वश में विट्ठल-भक्ति पुरातन काल से चली आ रही थी।' इस पर आलोचना करते हुए महाराष्ट्र सारस्वतकार लिखते हैं कि, 'एकनाथ लिहितो कि आपले कुलात कृष्ण भक्ति पूर्वी पासून चालत होती।'[1] (एक नाथ लिखता है कि हमारे कुल में कृष्ण भक्ति पूर्वसे ही जारी थी।) हमारा कहना है कि महिपति और एकनाथ दोनों के कथनों मे विरोध नहीं है। विट्ठल कृष्ण का ही तो नाम है। एकनाथ का समर्थन भानुदास के प्राप्त हिन्दी-

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ २४२

पदों से भी हो जाता है। दोनों श्रीकृष्ण पर ही हैं। प्रातः यशोदा कृष्ण को प्रभाती गाकर जगा रही है—

'उठो तात मात भये प्रात रजनी सो तीमीर गई
मीलत बाल सकल गुवाल सुदर कन्हाई ॥१॥
जागो गोपाल लाल जागो गोविन्द लाल जननी बलि जाई ॥२॥
संगी सब फिरत बिमन तुम बीन नही छुटत दयन ।
त्यजो शयन कमल नयन सुदर सुखदाई ॥३॥
मुखते पट दूर कीजौ, जननी कु दर्प दीजो ।
दधी खीर माग लीजो, खीर खाड मिठाई ॥४॥
जपत-जपत शाम राम सुदर मुख सदा राम
थाटी की छुट कछु भानुदास पायी ।

(२)

जमुना के तट धेनु चरावत
राखत है गैया, मोहन मेरो सैया
मोर पत्र सिर छत्र सुहाये, गोपी धरत बहिंया
भानुदास प्रभु भगत को बत्सल, करत छत्र छइया ।

एकनाथ के सौ वर्ष पूर्व होनेवाले भानुदास की हिन्दी भाषा मे कितनी स्वच्छता है ! छन्द मे कितना प्रवाह है ! प्रतीत होता है, ब्रजभाषा मे भानुदास की अच्छी गति रही है। सभव है, कृष्ण-भक्त होने के नाते उन्होंने मथुरा- वृन्दावन की यात्रा भी की हो और वहाँ कुछ समय व्यतीत किया हो। तभी भाषा मे इतनी प्रौढ़ता है ।

संत एकनाथ

'सज्जन मन सुमेरु गुणनिधि एकनाथ ।
परम पुरुख परम भागवत अवतरे ॥'

—संत अमृतराय

मराठी में जनाबाई ने अपने एक अभंग मे महाराष्ट्र में भागवत धर्म का एक 'प्रासाद' खड़ा किया है। ज्ञानदेव को उसकी 'नींव' और एकनाथ को उसका 'स्तम्भ' कहा है। ज्ञानेश्वर और एकनाथ मे लगभग तीन सौ वर्ष का अन्तर था, पर 'एकनाथ' ने ज्ञानेश्वर की कृतियों का इतना गहन अध्ययन किया था कि उनकी और ज्ञानेश्वर की अन्तरात्मा एकाकार हो गई थी। तभी जनता उन्हे ज्ञानेश्वर का अवतार मानती है। यह सत्य है कि जिस कार्य का श्रीगणेश ज्ञानेश्वर ने किया था, उसी को अग्रसर करने में उन्होंने अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया था।[१] इस दुःखपूर्ण जग को 'आनन्दवन भुवन' किस प्रकार बनाया जा सकता है, इसका मत्र उन्होंने जनता को प्रदान किया।

---

१. एकनाथ ने कई स्थलों पर स्वीकार किया है कि ज्ञानेश्वर उन्हें स्वप्नों में आकर कार्य का निर्देश करते थे। एक स्वप्न का उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट वर्णन किया है—'श्री ज्ञानदेवें ये सुनि स्वप्नांत, मागितली मात मजलागी।'

जिस समय एकनाथ का प्रादुर्भाव हो रहा था, महाराष्ट्र का स्वातन्त्र्य-सूर्य अस्त हो चुका था—जनता अज्ञान के अंधकार में भटक रही थी—किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही थी। विदेशी सत्ताधारियों के अत्याचारों से त्रस्त हो रही थी। समाज की वर्ण-व्यवस्था के 'मुख' और 'बाहु' बिक चुके थे—उनसे दासता का स्वर निकलता था, दासता की रक्षा हो रही थी। धार्मिक क्षेत्र मे लफंगों का दौर-दौरा था—तपी, तीर्थों, जती, मलगों, जोगियों का आडम्बर फैल रहा था। 'धर्म की ग्लानि' हो रही थी। ऐसे सकट-काल मे जनता के निराश हृदयों में आशा की ज्योति जगाने के लिए मानों 'एकनाथ' का जन्म हुआ।

एकनाथ का जन्म और समाधि-काल

एकनाथ ने किस शके मे जन्म धारण किया और कब समाधि ली, इस सबध मे मतैक्य नहीं है। सहस्रबुद्धे-जन्म-शके १४७० और भावे शके १४५५ मानते हैं तथा समाधि-शके के सबध मे कोई १५२१[1] और कोई १५३१ प्रतिपादित करते है। हम डा० रानडे के अनुसार उनका काल शके १४५६ से शके १५२१ अथवा ईसा सन् १५३३ से सन् १५९९ के मध्य मान लेते है। आधुनिक सत-साहित्य-शोध-कर्त्ता श्री तुलपुले भी यही काल निश्चित करते हैं।[2]

एकनाथ का जन्म पैठण मे हुआ था और ऐसे प्रदेश मे हुआ था जो भगवद्भक्ति के लिए प्रसिद्ध रहा है। उनके पूर्वज भक्त भानुदास की यह ख्याति है कि उन्होंने अपनी भक्ति के बल से पढरपुर के विठ्ठल की मूर्ति को, जिसकी विजयनगर के राजाने अपने नगर के मदिर मे प्रस्थापना की थी, पुनः पढरपुर मे लाकर आसीन कर दिया था। एकनाथ की पितृ-परम्परा इस प्रकार है—

एकनाथ की माता का नाम रुक्मिणि था। जिस प्रकार तुलसीदास मूल नक्षत्र मे होने के कारण माता-पिता के लिए 'सकट' बन गए थे, उसी प्रकार एकनाथ ने भी उसी नक्षत्र

एक तेजपुंज मदनाचा पुतला, परब्रह्म केवल बोलत से।
अजात वृक्षाची मुली कंठासी लागली, येऊन आलंदी काढीं वेगीं ॥"
(ज्ञानदेव ने मुझे स्वप्न में कहा कि आलंदी में मेरी समाधि को अजानवृक्ष की जड़ घेरे हुए है। उसे जाकर शीघ्र निकाल डाल।)

१. पांगारकर यही शके मानते हैं। देखिए मराठी वाङ्मय या इतिहास (दुसरे खंड) पृष्ठ २३७।

२. देखिए Mysticism In Maharashtra-Page—215 और पांचसंत कवि, पृ० ११२।

मे जन्म ग्रहण किया और वे बचपन मे ही माता-पिता के सुख से वन्चित हो गए। अतएव उनका लालन-पालन उनके आजा चक्रपाणि ने किया। बचपन से ही उनकी रुझान भगवान् की भक्ति की ओर थी। अतः वे बाहर से किसी भी पत्थर को उठा लाते, उसे 'देवता' कह कर घर मे कहीं प्रतिष्ठित कर देते और उसके सम्मुख बैठ कर संतों का चरित्र और पुराणों का पाठ करते। यह उनका दैनिक खेल था। सामाजिक प्रथा के अनुसार उनके आजा ने उनका छठे वर्ष मे यज्ञोपवीत-संस्कार कर दिया। इसी समय से उनका नियमित विद्याध्ययन प्रारम्भ हो गया। जब वे बारह वर्ष के थे तभी एक दिन ऐसा भासित हुआ कि उन्हे देवगढ़ के संत जनार्दन से दीक्षा लेनी चाहिए क्योंकि 'गुरु बिन होइ न ज्ञान', यह प्राचीन संतों का पिष्टपेषित कथन है। एकनाथ ने प्राचीन संत-वाणियों का कई बार पारायण किया था। अतः आत्मिक प्रेरणा के अनुसार वे देवगढ़ गए जहाँ उन्हें अपने गुरु से 'अनुग्रह' प्राप्त हुआ। उन्हीं के चरणों मे बैठ कर उन्होंने ज्ञानदेव की 'ज्ञानेश्वरी' और 'अमृतानुव' का सविधि अध्ययन किया। ज्ञानेश्वर की कृतियों का विशेषकर ज्ञानेश्वरी का एकनाथ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। ६ वर्ष तक गुरु की सेवा मे रहने के पश्चात् उन्होंने उन्हीं के आदेश से तीर्थ-यात्राएँ कीं। वे काशी मे भी काफी समय तक रहे। यहीं उन्होंने हिन्दी सीखी और फारसी मे अच्छी गति प्राप्त की। मराठी के प्रति तो उनकी अगाध ममता थी ही।

तीर्थ-यात्रा से लौटनेपर गुरु के आदेश से उन्होंने पैठण मे जाकर गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किया और आध्यात्मिक जीवन-क्रम को पूर्ववत् जारी रखा। प्रवृत्ति और निवृत्ति का ऐसा सुन्दर समन्वय शायद ही किसी सन्त से साधित हुआ हो। नामदेव और तुकाराम भी गृहस्थ थे पर उनका मन कभी गृहस्थी मे नहीं रमा। वे सदा उचटे-उचटे रहे। उनका झुकाव सर्वथा परमानंद की ओर रहा। पर एकनाथ ने गृहस्थाश्रम को अपने आध्यात्मिक पंथ का कंटक कभी अनुभव नहीं किया।

एकनाथ का दैनिक जीवन-क्रम अत्यन्त आदर्श कहा जाता है। वे नित्य ब्राह्म मुहूर्त मे उठते, कुछ समय भगवान् के ध्यान मे बिताते, फिर नदी मे स्नान करने जाते, लौटने पर भागवत और गीता पढ़ते, फिर अतिथियों के साथ बैठकर दोपहर का भोजन करते। अपराह्न मे भागवत और ज्ञानेश्वरी पर प्रवचन करते और रात को कीर्तन करते-करते सो जाते। यह उनके जीवन का अखंडित नियम रहा है। कहा जाता है कि गोदावरी मे समाधि ग्रहण करने के पूर्व भी उन्होंने कीर्तन किया था।[1]

संतों के जीवन से जिस प्रकार चमत्कारिक घटनाएँ संबद्ध रहती है, उसी प्रकार एकनाथ के जीवन मे भी उनका होना बतलाया जाता है :—

'श्री एकनाथ सदनीं माधवजी सर्वकाम करितो।
स्वकरे चंदन घासी, गंगेचे पाणी कावडीं भरितों।'

भगवान् एकनाथ के घर मे 'कॉवड़' से गगा का पानी भरते, चदन घिसते और सब

१. Mysticism In Maharashtra (Ranade), पृष्ठ २१६।

काम करते थे। कहा जाता है, समाधि-अवस्था में साँप फन उठाकर उनके मस्तक पर छाया करता था।

ग्रन्थ-रचना

एकनाथ के समय में संस्कृत भाषा का महत्त्व था। लोग उसे 'देववाणी' कहकर पूजते थे। पर एकनाथ को अपनी मातृभाषा से अखंड प्रेम था। वे अपनी एकनाथी भागवत में लिखते हैं—

'संस्कृत वाणी देवे केली।
प्राकृत काय चोरा पासोनि जाली ?'

(संस्कृत तो देवताओं ने निर्मित की, पर क्या प्राकृत (लोकभाषा मराठी) चोरों ने बनाई है ?) अतः संस्कृत में पाण्डित्य प्राप्त करने पर भी उन्होंने प्राकृत में अर्थात् मराठी में ग्रन्थ-रचना की। उनके प्रमुख ग्रन्थ हैं—

(१) चतुःश्लोकी भागवत, (२) श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध पर टीका, (३) भावार्थ रामायण और (४) रुक्मिणि स्वयंवर। इनके अतिरिक्त उन्होंने हस्तामलक, स्वात्मसुख, शुकाष्टक, आनन्दलहरी, चिरंजीवपद और असंख्य अभंगों, भारुड़ों तथा पदों की रचना की। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके पूर्व जहाँ मराठी वाङ्मय में एकाङ्गीपन छाया हुआ था, शांत और भक्तिरस की शीतल फुहार और लोकातीत के गहन गंभीर उद्गार मात्र थे, वहाँ एकनाथ ने भक्ति के साथ शृंगार, रौद्र, वात्सल्य, करुण, वीर आदि रसों की भी अवतारणा की। उनके भारुड़ों में तो व्यंग्य की बड़ी सुन्दर व्यंजना मिलती है। पथभ्रष्ट जनता को उसी की भाषा में, जीवन से गृहीत रूपकों द्वारा चेतावनी देने की कला उन्हें खूब सध गई थी। एकनाथ वास्तव में संत थे और लोकाभिमुख कवि भी थे। वे असामान्य बात को सामान्य ढंग से सामान्य जनता तक पहुँचाना जानते थे। यह उनका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य कहा जा सकता है। उनकी प्रमुख कृतियों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

(१) चतुःश्लोकी भागवत

यह उनका प्रथम ग्रन्थ है जिसमें १०३६ ओवियाँ हैं[1]। इसकी कथा इस प्रकार है, 'एक बार जब ब्रह्मा को सृष्टि-निर्माण की चिंता हुई तब क्षीरसागर से वाणी सुन पड़ी कि 'तू तप कर—तेरी चिंता दूर होगी।' ब्रह्मा का संदेह तब भी दूर नहीं हुआ। अतः एक तेजधारी चतुर्भुज मूर्ति के उन्हें दर्शन हुए और उसने उन्हें ब्रह्मज्ञान बता दिया। यह ज्ञान ब्रह्मा से नारद मुनि और नारद मुनि से व्यास महाराज को प्राप्त हुआ। व्यास ने उसे शुक्राचार्य को प्रदान किया। शुक्राचार्य ने अपने श्रीमद्भागवत ग्रन्थ के द्वितीय स्कन्ध में यह ज्ञान चार श्लोकों में एकत्र कर जगत् को अर्पित कर दिया। एकनाथ ने इसी ज्ञान

---

१. ओवी लक्षण के लिए देखिए 'महाराष्ट्र में प्रचलित छन्द और काव्यप्रकार' शीर्षक अध्याय।

को मराठी-भाषी जनता के लिए सुलभ कर दिया। इस प्रथम कृति से एकनाथ को सन्तोष हुआ। उन्होंने इसे 'सतों की कृपा' कहकर हर्ष व्यक्त किया।

(२) श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध पर टीका

इसका प्रारम्भ प्रतिष्ठान (पैठण) मे हुआ तथा इसकी समाप्ति पवित्र क्षेत्र काशी के मणिकर्णिका घाट पर हुई। कवि ने समाप्ति का समय दिया है—

'शालिवाहन शक वैभव। सख्या चौदाशे पंचाण्णव
श्रीमुख संवत्सराचे नाव।' (विक्रम-सवत् १६३०)

सस्कृत मे रचित श्रीमद्भागवत के रस को जनसामान्य करने का श्रेय एकनाथ को ही है। दक्षिणापथ का दण्डकारण्य एकनाथ के कारण ही 'आनन्दभुवन' बन गया। श्रीकृष्ण की वाणी के आधार पर उन्होंने अपनी 'टीका' को सुबोध और सरल बनाने का प्रयत्न किया है। महाराष्ट्र मे एकनाथी भागवत की बड़ी प्रतिष्ठा है, बड़ी कीर्ति है। कहा जाता है, अप्रत्यक्ष रूप से यह ज्ञानेश्वरी पर ही विस्तृत भाष्य बन गई है।

(३) रुक्मिणी स्वयंवर

यह 'नाथ' की तृतीय कृति है जिसमे अठारह अध्याय हैं और उनमे ओवियों की संख्या दो हजार है। यह पौराणिक कथा-काव्य कवि की कीर्ति के अनुरूप है। इसमे भी ब्रह्मज्ञान का रस झर रहा है। मराठी मे इतना व्यापक रूपक दुर्लभ है।

(४) प्रह्लाद-चरित्र

इसमे १७६ ओवियों मे प्रह्लाद का चरित्र वर्णित है।

(५) शुकाष्टक

इसमे १४४ ओवियाँ हैं।

(६) स्वात्मसुख

यह अद्वैत पर महत्त्वपूर्ण रचना है।

(७) रामायण

एकनाथ की अन्तिम अपूर्ण रचना 'रामायण' है। यह भी कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह 'भावार्थ रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रथम पाँच काण्ड और छठे के ४४ अध्याय ही पूर्ण हो सके है।

इसमे राम-कथा की ओट मे एकनाथ ने अपने काल की दुर्दशा का बडा सजीव चित्र अंकित किया है।

एकनाथ ने अपने आदर्श संत ज्ञानेश्वर की समाधि का ही नहीं, उनकी ज्ञानेश्वरी का भी जीर्णोद्धार किया। मराठी साहित्य के वे प्रथम ग्रंथ-संपादक कहे जा सकते हैं। अपने समय में प्रचलित अनेक प्रतियों का संकलन कर उनका परस्पर मिलान करने के

उपरान्त जो 'पाठ' उन्हे ज्ञानेश्वर की प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुकूल जॅचता, उसे वे स्वीकार कर निर्धारित करते थे। उन्होंने इस संबध में लिखा है—

'ग्रन्थ पूर्वीच अतिशुद्ध
परि पाठान्तरीं शुद्धाबद्ध।'

यह कार्य शके १५०६ में सम्पन्न हुआ। एकनाथ महाराज ने अनेक अभगों मे जहॉ भक्ति और नीति का अमृतपान कराया है वहॉ भारुड़ों के द्वारा समाज के पाखडियों पर बड़ी चुभती हुई चुटकियॉ ली है—जो हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं मे गुम्फित हैं।

आध्यात्मिक साधना के संकेत

एकनाथ ने अपने मराठी अभगों और भागवत में आध्यात्मिक साधना के कई व्यावहारिक सकेत दिए हैं। यद्यपि एकनाथ गृहस्थ थे तो भी उन्होंने साधकों को स्त्री से दूर रहने का उपदेश दिया है। वे कहते हैं, न जाने कब कामना रूपी घृत स्त्री रूपी अग्नि के स्पर्श से पिघल जाय और साधक मार्ग ही में रह जाय (एकनाथी भागवत २७, २४१, २४४)। ज्ञानमार्ग के पथिक को भोग-वस्तुओं से विरक्त रहना चाहिए। त्याग ही श्रेयस्कर है (एकनाथी भागवत २०, ७४, ७६)। परमात्मा के प्रेम का नाम ही भक्ति है। जब साधक का मन दिन-रात भगवान् के लिए व्याकुल दिखाई दे तब समझो कि उसमें भक्ति जाग्रत हुई। जो बाहर पूजा-पाठ करता है और भीतर उसके फल पाने की कामना रखता है, वह भक्त नहीं है। जिसके हृदय में 'उसके' प्रति अगाध प्रेम है, वह दैनिक कर्म न भी करे तब भी कोई आपत्ति नहीं। क्योंकि ऐसा साधक तो कर्म के परे हो जाता है। ज्ञानी से आशय वेद-पुराण के अध्येता से नहीं है, परन्तु उससे है जिसने 'ब्रह्म' का साक्षात्कार कर लिया है (एकनाथी भागवत २८, २२१, २२४)। यद्यपि सगुण-निर्गुण मे एकनाथ भेद नहीं मानते तो भी तुलसी के समान वे भी निर्गुण की अपेक्षा सगुण को सहज साध्य समझते हैं। क्योंकि दृष्टिगोचर वस्तु पर मन आसानी से केन्द्रित हो सकता है। इसलिए प्रारम्भिक अवस्था मे मूर्ति-पूजा उपयोगी है। जब साधक ब्रह्म की सत्ता को सब जगह देखने लगता है तब मूर्ति-पूजा की आवश्यकता नहीं रह जाती। क्रमशः साधक ऊॅची भूमिका मे प्रविष्ट हो जाता है (एकनाथी भागवत २७, २५१, २५२, ३७१)।

जो कनक और काता मे चित्त नहीं देता, वही परमार्थी है 'नाथ' ने काव्य या साहित्य पर भी अपने विचार व्यक्त किये है, सत्य की वाचा जहॉ फूटती है वहीं साहित्य है, कविता है। कितनी आधुनिक व्याख्या है!

सच्ची समाधि शरीर को कड़ा कर स्थिर होने मे नहीं, सासारिक कर्मों के मध्य सतत ब्रह्म की सर्वव्यापकता की अनुभूति मे है (एकनाथी भागवत २, ४२३, ४३२)। इन विचारों मे 'नाथ' अपने युग के प्रगतिशील विचारक के रूप मे प्रकट होते है।

एक हिन्दी पद मे कहते हैं—

'दील को हमने पछाना वे,
काय कु सोंग बताना वे।
जीदर उदर देखो भरीयो सब घटा
अल्ला अल्ला कर कर खावन मागे मीठा।
एका जनार्दन[1] पग धरत है कहो वीठल वीठल अल्ला।'

(हमने दिल को पहचान लिया, परमात्मा यहाँ-वहाँ सर्वत्र घट-घट में समाया हुआ है। विट्ठल-विट्ठल और अल्ला-अल्ला कहने ही मे सार है और ढोंग करने से क्या लाभ ?)

तात्पर्य यह कि साधक को नाम-कीर्तन के द्वारा ब्रह्म की सर्वव्यापकता का अनुभव प्राप्त करना चाहिए। यही साधना का चरम लक्ष्य है।

एकनाथ के हिन्दी-पद

अन्य मराठी सन्तों के समान एकनाथ ने भी हिन्दी मे रचनाएँ की है जो स्फुट हैं। दक्षिण मे जब उत्तर के तीर्थयात्री आते रहे होंगे तब वे स्वभावतः प्रसिद्ध संतों के दर्शनों को जाते रहे होंगे और उन्हे संतोष देने के लिए मराठी-सन्त हिन्दी मे भी उपदेश देते होंगे। इसी प्रकार मराठी संतों को उत्तर-भारत की तीर्थयात्रा करते समय जनता को उपदेश देने के लिए हिन्दी मे पद-रचना करनी पड़ती होगी। 'एकनाथ' तो तीन वर्ष तक मणिकर्णिका घाट पर निवास कर चुके थे। अतएव उनका हिन्दी मे पद-रचना करना आश्चर्य की बात नहीं है। हिन्दी मे उनकी 'गौलण', 'मुंडा', 'नानक', 'भारुड़' आदि नामक पदों की संख्या पर्याप्त है। उनकी भाषा संतों की 'अटपटी बानी'-रूप है। उसमे एकरूपता भी नहीं है। उसमे मराठी के साथ-साथ गुजराती की भी छटा है। फिर भी सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण के संत हिन्दी मे उपदेश देने की परम्परा जारी रखे हुए थे, यह तथ्य तो इनके पदों से स्पष्ट हो ही जाता है। पदों मे छन्द की शुद्धता की खोज भी व्यर्थ है। वे संगीत की राग-रागिनियों मे बँधकर शब्दों के अशुद्ध ह्रस्व-दीर्घ-रूपों के बावजूद भी गा लिये जाते हैं। सतों को यही अभीष्ट रहा है। एक 'गौलण' की पंक्ति है—

'मै दधी वेचन चली मथुरा,
तुम केंव थारे नंदजी के छोरा।'

इसमे दधि के स्थान पर दधी, चली के स्थान पर 'चलि', क्यों के स्थान पर केंव, ठाढे के स्थान पर थारे रूप मिलते हैं। इस प्रकार 'तुकबन्दी' का भी गठित रूप प्रायः नहीं मिलता—

'अहंकार का मोरा गरगा फोरा,
व्हाको गोरस सब ही गीरा।'

---

१. एकनाथ अपने नाम के साथ अपने गुरु जनार्दन का नाम भी जोड़ते हैं।

'फोरा' के साथ 'गीरा' की तुक बेतुकी-सी लगकर खटक उठती है। उनके हिन्दी पदों मे ऐसी अनेक तुकें है। सभवतः सत्रहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र मे नरसी मेहता के पदों का व्यापक चलन होने से एकनाथ के हिन्दी-पदों मे गुजरातीपन अधिक आ गया है। यथा—

'देखे देखे गे जशोदा माय छे।
तोरे छोरिया ने मुजे गारी देव छे।
जमुना के पानीया मे ज्याव छे।
वीच भक्ति के घरीया फोड छे।'

कहीं तो 'छे' गुजराती के समान 'है' का अर्थ देता है। यथा—

'देखे देखे मोरी घागरिया लाल छे'

और कहीं 'से' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यथा—

'मैं कहूगी तोरे मात छे,
माखन चुरावत अपने हाथ छे।'

यदा कदा 'छे' मराठी 'चे' के परिवर्तित रूप मे भी आ गया है। यथा—

'चरण पकरु मो तुम छे।' (तुमचे)

मराठी के कई सतों ने अधिकरण 'में' के अर्थ में 'मो' का प्रयोग किया है, पर एकनाथ ने प्रथम पुरुष सर्वनाम 'मैं' के अर्थ मे भी उसे प्रयुक्त किया है। व्रजभाषा का संबधकारक एक वचन 'मोरे' का खूब प्रयोग है—

'तू खोरी मत कर मोरे लाल छे।'

कर्म और सम्प्रदान मे 'कू' का प्रयोग सर्वत्र है—

'मेरे यह राम दाता कू शरण जा।'

(१) 'झ' का 'ज' (२) 'थ' का 'त' (३) 'ड' का 'ढ' (४) 'प' का 'फ' (५) 'भ' का 'ब' (६) 'ठ' का 'ट' (७) 'छ' का 'च' और कहीं कहीं (८) 'न' का 'ण' मे परिवर्तन 'नाथ' की भाषा मे सामान्य रुप से लक्षित होता है। यथा—

(१) 'मुजेगारी देव छे,'
(२) 'ज्याके (जाकर) हातेपकर छे।'
(३) 'भूटमूट चिपीच लढे।'
(४) 'ससार मो तो **फत्तर** है।' (नानक)
(५) 'वो **बी** लकडा ***सूटा*** है।' (नानक)
(६) 'रोहिदास चमार सब **कुच** जाणे।'

समाज के निम्न स्तर मे भीख माँगने और विविध मनोरजन करनेवाले फकीर, भोंड़, मुडों और भारुड़ी पर एकनाथ ने खूब प्रहार किया है—

मुंडा से वे कहते हैं—

'गुरुका मुडा बड़ा गुंडा,
चीपकी[1] कहे बात ।
सुननेवाले बेहरे
बात दिनकी करे रात ।'

मुंडों के गुंडेपन और उनकी लफ्फाजी पर कैसा प्रहार है ! 'अलख निरंजनों' पर उनकी तीखी दृष्टि गई है । वे कहते है—

'नाथपंथ को मुद्रा डाली, जग मे सिंगी बजावत है,
सिंगीनाद कू औरत भूला, वो बी लडका भूटा है ।'

साधु-संन्यासियों की जिह्वा-लोलुपता पर उनका कथन है—

'सन्यास लिया आशा बढ़ाया, मीठा खाना मंगता है ।
भूल गया अल्ला का नाम यारो, ज्यम का सोटा बजता है ।'

महाराष्ट्र मे महानुभावों को जनता सन्देह और उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी । उसकी झलक भी एकनाथ के पदों मे है—

'मानभाव बनके माला पैने, छान कर पानी पीता है ।
आत्मज्ञान कू चोर लूटत है, वो बी सच्चा गद्धा है ।'

एकनाथ के हिन्दी-पदों मे मुख्यतः गोपी-प्रसग, परमार्थ-चेतावनी और मुडा, फकीर आदि स्वागधारियों पर व्यंग्योक्तियाँ और नीति-उपदेश हैं। ये व्यग्योक्तियाँ भारुड़ (बहु रूढ) कहलाती हैं । 'नाथ' गोपी-प्रसंग मे भी आध्यात्मिक रूपक बाँधने का यत्न करते हैं । यथा—

'मै दधि बेचन चली मथुरा, तु कँव थारे नंदजी के छोरा ।
भक्ति का आचला पकड़ा हरी, मत खेचो मोरी फाटी चुनरी ।
अहंकार का मोरा गगरा फोरा, व्हाको गोरस सब ही गोरा ।
द्वैतन की मोरी अंगिया फारी, क्या कहू मैं नगी नार उघारी ।'

ग्वालन जमुना मे 'पानिया' भरने को जाती हैं । बीच मे कृष्ण मिल जाते हैं और गागरी फोड़ देते है । वह उनका हाथ पकड़ती है । यहाँ तक तो लौकिक राग-रग दिखाई देता है, पर अंत में जब 'एका जनार्दन' यह निष्कर्ष निकालते हैं कि गोपी यहाँ 'फेर जनम नहीं आवछे ।' तब सारा भाव ही प्ररिवर्तित हो जाता है । गोपिकाएँ यशोधरा से उसके पुत्र की ऊधम की, नटखटपने की शिकायत करती हैं । बस, इससे अधिक गोपी-प्रसंग का स्पर्श एकनाथ ने नहीं किया । वे जनता से आदि पुरुष निर्गुण निराकारी 'परवर दिगार' की याद करने को कहते है, सन्त महन्त की याद करने को कहते हैं—श्री भगवंत की याद करने को कहते है । साथ ही 'वीट' (ईट) पर खड़े विठोबा का भी स्मरण करने को कहते है । इस प्रकार एकनाथ मे निर्गुणबोध और सगुण प्रेम का सुन्दर समन्वय दिखलाई देता है । 'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा' को उन्होंने खूब

---

१. छिपकर

अनुभव किया है और नाम-संकीर्तन के साथ सत्संग का माहात्म्य भी उन्होंने वर्णित किया है। संत को वे गंगाजल के समान शांत और करुणा की साक्षात् मूर्ति मानते हैं। 'गुरु' के प्रति उनकी अटूट भक्ति है। वे गुरु को 'देव' मानते हैं—

'गुरु हाच माझा देव।' (गुरु ही मेरा देव है)—(एकनाथी गाथा १७१७, १२२१, २४६४, ७०)।

'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए' की प्रतिध्वनि एकनाथ की इन पंक्तियों में सुन पड़ती है —

'अल्ला रखेगा वैसा भी रहना।
मौला रखेगा वैसा भी रहना।'

क्योंकि समय एक सा नहीं जाता। जीवन मे कभी सुख की छाया रहती है, कभी दुःख की धूप। नियति का ही तो यह खेल है कि :—

'कोई दिन सीर पर छता उडावै
कोई दिन सीर पर घड़ा चढ़ावै,
कोई दिन तुरंग ऊपर चढ़ावै,
कोई दिन पाव में खासा चलावे,
कोई दिन राजा बड़ा अधिकारी,
एक दिन होवे कंगाल भिकारी।'

संसार मे माया का विचित्र खेल चलता रहता है। इससे छुटकारा तभी हो सकता है, जब हम 'भगवान् की याद' करें—उसकी शरण मे जायें। एकनाथ के हिन्दी-पदों मे काव्य की साज-सज्जा नहीं है, उपदेशों की ऊबड़-खाबड़ बहार है। कभी-कभी उपदेश देते समय वे अधिक उग्र भी हो जाते हैं। भाषा सामाजिक मर्यादा को लाँघ जाती है। वे माया और मायाग्रस्त जन पर फूहड़-अश्लील-गाली की बौछार करने मे तनिक भी नहीं झिझकते। चूँकि एकनाथ फारसी के ज्ञाता थे, इसलिए उनकी हिन्दी-रचनाओं मे विदेशी शब्दों की प्रचुरता है। उनके समय में महाराष्ट्र मुस्लिम सत्ता के आधिपत्य से ग्रस्त था। इसलिए बहुत से अरबी-फारसी शब्द जनता की भाषा में आ रहे थे। मराठी भाषा पर उनका प्रभाव पड़ रहा था।

एकनाथ और तुलसीदास

दोनों के जीवन मे घटनाओं की प्रायः समानता हम देख चुके हैं। उनके भावों मे भी समानता पाई जाती है। एकनाथ 'रामायण' में तुलसी की रामचरितमानस के साम्य भाव के उदाहरण मिलते हैं। इसका कारण यह नहीं कि एकनाथ ने मानस का पारायण किया था, वरन् यह है कि दोनों के स्रोत प्रायः एक हैं। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, योगवासिष्ठ आदि संस्कृत कृतियों से दोनों ने लाभ उठाया है। एकनाथ

और तुलसीदास के भावों मे कहीं और किस रूप में साम्य है, इसके उदाहरण श्री जगमोहन लाल चतुर्वेदी ने अपनी 'एकनाथ व तुलसीदास' नामक पुस्तक मे संकलित किए है।[1]

जिस प्रकार तुलसी ने लोक-कल्याण की भावना से लोक भाषा का आश्रय लिया, उसी प्रकार एकनाथ ने भी लोक भाषा को 'माझी मराठी भाषा चोखड़ी' कहकर गौरवान्वित किया। उनकी दृष्टि अँगरेजी-कवि की 'स्काईलार्क' के समान सर्वथा गगनोन्मुख न होकर 'वर्डस्वर्थ' की 'स्काईलार्क' के समान गगन और भूमडल दोनों पर रहती थी। इसलिए उनके समाधिस्थ होने मे चार सौ वर्ष बाद भी उनकी कृतियाँ जनता के हृदय को 'आनन्द-वनभुवन'[2] बनाए हुए है।

अनन्त महाराज

इनके काल के विषय मे निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। इनके अप्रकाशित पद हमे औरंगाबाद से श्री भालचद्रराव तेलंग से प्राप्त हुए है। हमने जब उनसे उनके जीवन के सबध मे जानकारी चाही तो उन्होंने अपने ता० २०-११-५४ के पत्र मे यही लिखा कि 'अनन्त महाराज अहमदनगर के रहनेवाले थे। बाद मे पैठण मे आकर रहे और वहीं उन्होंने ये कविताएँ की हैं। पैठण के एकनाथ-मदिर मे उन्होंने सुंदर चित्र भी बनाए हैं। उनके जन्म-संवत् के विषय में कुछ प्राप्त नहीं हुआ। इतना ही कहा जाता है कि 'वे (संभवतः) अबसे १०० वर्ष पूर्व हुए हैं। अधिक परिचय नहीं मिलता।'

हमने जब अनन्त महाराज के हिन्दी-पदो को ध्यानपूर्वक देखना प्रारभ किया तो हमे दो तीन स्थलों पर उनके गुरु का नामोल्लेख मिला। वे पद नीचे दिए जाते है—

(१) आली रिजे नहिं सावरो जिस मेरा (मन) आज भयो बावरो
भयि मति वयरागी अनुतापें सदाचारी भेद तु रयो
सेवकारो भव भावेरी अभीमान घनी त्यजि भाव प्रेम संग तिजो
लोक लाज आच तु रयो नेह बावरो
अनन्त मती नित्य मान ***एका जनार्दनी*** ज्यान
स्वातम सुखारथ मानि गुरु पियारो।'

(२) अघोर निज मो सोह मोह विसारी आगमचारी
काम कु भाव नहीं निज गति आत्मनाथ जनार्दन एकाएक सही
अनतबानी निरमल पानी शाती ठौर यही।

इस भीतरी साक्ष्य का समर्थन महाराष्ट्र सारस्वत की पुरवणी से भी हो जाता है। तुका विप्र नामक एक कवि शके १७ वीं शताब्दी में हो गए हैं। उनका जन्म-समय अर्वाचीन

---

१. देखिए एकनाथ संशोधन मंडल, पैठण-प्रकाशन

२. मराठी में इस शब्द के जन्मदाता स्वयं एकनाथ हैं।

कोशकार के अनुसार शके १६६२ है और डा० हर्षे के अनुसार शके १६५१ है। तुका विप्र का सबध एकनाथ से जुड़ता है। नीचे उनका मातृवश दिया जाता है—

मूल पुरुष { (१) भानुदास के पिता, (२) भानुदास, (३) चक्रपाणि, (४) सूर्य, (५) एकनाथ, (१) श्रीपति, (२) केशव, (३) गोविद, (४) माधव, (५) यादव, (६) गोविंद, (७) अनन्त (एकनाथ के साम्प्रदायिक वारिस), (८) विट्ठल, (६) विप्रनाथ, (१०) चिमणी, (११) तुका विप्र।

इससे सिद्ध होता है कि एकनाथ के भागवत सम्प्रदायी उत्तराधिकारी उनके चचेरे घराने के भतीजे के पुत्र अनन्त बुआ थे। उन्हीं के वंश में तुका विप्र हुए हैं।[1] पैठण के एकनाथ-मदिर मे अनन्त महाराज का एकनाथ का चित्र बनाना भी उनकी एकनाथ के प्रति भक्ति प्रकट करता है।

अतएव अनन्त बुआ अथवा अनन्त महाराज का एकनाथ से 'अनुग्रह' प्राप्त होना बहुत संभव जान पड़ता है। एकनाथ का समय शके १४७० और शके १५२१ के मध्य है। अतएव अनन्त महाराज का समय एकनाथ के पश्चात् शके सोलहवी शताब्दी माना जा सकता है।

अनन्त महाराज की विचारधारा और हिन्दी-कविता

इनकी विचारधारा ज्ञानमार्गी संतों के समान है, परन्तु उसमे भक्ति का भी पुट मिला हुआ है। ये सोते-जागते अपने 'प्रीतम' को देखते रहते हैं। फिर भी उसके विरह को अनुभव करते हैं—

है मन मोहन मन सों न्यारो भाव भगति को प्यारो
भावत है पर नजर न आवै अजर अमर गम निरधारो।
अन्दर बाहिर प्रीतम प्यारा जागत सोवत होत न न्यारा
अनन्त लागि लय निज नैनी नैन को नैन सुहावत बैनी ॥

जो मनमोहन व्यापक है, वह मेरे मन में भी समाया हुआ है। मुझे अब वही भाता है। संसार की प्रीति मैं तोड़ चुका हूँ (लेखक की हस्तलिखित प्रति मे पद-सख्या २४) सगुणियों की तरह ये भी गाते हैं—

मो घर मो मोहन पावना,[2] आया भाव संभावना
अब मै हरि बिन नहीं न्यारी हूँ नहीं दुविधा भावना।

इनके मन मे भी अपने श्याम से मिलने की तालावेली जाग उठी है। कहते हैं—

मेरा मन तुम बिन सूख नहीं भावै।[3]
पूरन काम सरन धाम। (परिशिष्ट में संकलित पद-सख्या ३६)।

---

१. देखिए—महाराष्ट्र सारस्वत पुरवणी, पृष्ठ ६७२।
२. पावना = पाहुना।
३. तुम्हारे बिन मेरे मन को सुख नहीं भाता।

अन्य संतों की तरह ये भी सद्गुरु का महत्त्व अनुभव करते हैं—

सद्गुरु घर का भयो गुलाम
तब से नेह सलाम।

जब से मैंने सद्गुरु के चरणों की सेवा स्वीकार की है तब से मैंने संसार के नेह को सलाम कर लिया है और संसार के येलम (इल्म) को भी कलम कर डाला है; क्योंकि सद्गुरु की कृपा हो जाने पर फिर और किसी ज्ञान को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

संतों के प्रति भी इनका श्रद्धाभाव है—'सातीं (साथी) संतन अन्त हटो, माया पंथ कटो।'

संतों का साथ हो जाने पर माया-पंथ कट जाता है और हृदय को सान्त्वना मिलती है। ये सतों को लक्ष्य करके कहते हैं—

सुन सुन सतों वैन तुम्हारा
धन जग मो मन होत हमारा
बोध तुम्हारो अजरामर को
भावत मोको सुखकर नीको।

अनंत महाराज निवृत्ति की ओर अधिक झुके हुए प्रतीत होते हैं। कई पदों मे उन्होंने इसी भाव को दोहराया है।[1] यद्यपि उन्होंने राम, गोपाल, मोहन, माधव आदि शब्दों का प्रयोग किया है तथापि ये सब अजर, अमर, निर्गुण, निरंजन के ही प्रतीक है। इनकी भक्ति मे तालावेली की कौध भले ही झलक उठे, पर नामदेव या तुकाराम के समान हृदय मे उथल-पुथल मचा देनेवाली बेचैनी नहीं। नामदेव और कबीर के समान इन्होंने भी आत्मा के साथ प्रियतम और प्रेयसी का कान्ताभाव व्यक्त किया है। आत्मा प्रेयसी है और परमात्मा प्रीतम है।

इनकी भाषा अपने समसामयिक संतों की अपेक्षा कुछ अधिक स्वच्छ है, जिसमे यत्र-तत्र मराठी की महक भी पाई जाती है। कहीं-कहीं शब्द-योजना भी अनुप्रास लिये हुए है—कर्णमधुर है, पर छन्दभंग पद-पद पर पाया जाता है। यथा—

बोध तुमारो अजरामर को भावत मोको सुखकर नीको।
भगति गावत प्रेम लगावत मन समुझावत आवत जावत।

और भी—

अलख निरंजन दिन जनरजन, भव सुख भजन विचार भंजन
अपने मन मो मो मिलवाया अनंत माया निशि विलमाया।
(परिशिष्ट-पद-संख्या २०)

और भी—

अविनासी की प्रेम विनासी हूँ अभिलासी नित दासी
होत न बासी प्रीत मनासी।[2]

---

१. (क) जनम मरन कुछ डर न मोर। नेह न मोरो इह जगत मो। (परिशिष्ट-पद संख्या २०)
(ख) सुध नइ पिय बुध माही न
भव मो नही रुचि प्रीति साही मों! (परिशिष्ट-पद-संख्या १४)

२. मनासी (मराठी) = मनसे

अलंकारों में अनुप्रास, यमक और विरोधाभास की अच्छी योजना है। अनुप्रास और यमक के दो उदाहरण लीजिए—

(१) नहि जन मन मो मन मोहन मन मो,
धामन मोहन है जिह तन मो। (परिशिष्ट-पद-संख्या १२)

(२) सुध बुध सबही हरि हरि मोरी,
तन धन जन की प्रीती तोरी
व्यापक सायीं सब ठोर सोही
सो मन मोहन मों मन मोही। (परिशिष्ट-पद-सख्या २७)

विरोधाभास

न्यारी न होके न्यारी मै हूँ, न्यारी न्यारी भव न्यारी हूँ। (परिशिष्ट-पद-सख्या २१)

अनन्त महाराज ने गेय पदों के अतिरिक्त चौपाई छद का भी प्रयोग किया है। संभवतः इस छन्द का प्रयोग करनेवाले ये प्रथम मराठी संत-कवि हैं।

श्यामसुंदर

इनका समय ठीक निश्चित नहीं हो पाया। अनुमान है कि शके १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ये रहे होंगे। इनके फुटकल मराठी में अभंग, पदादि उपलब्ध हैं। हिन्दी का भी एक पद मिला है जो नीचे दिया जाता है। पद की भाषा व्रज और खड़ी बोल का मिश्रित रूप है। पद गेय होने से छद की बदिश से मुक्त है।

रामचद्र महाराज जय जय रामचंद्र महाराज (ध्रुव पद)
द्रुपद सुताकू चीर बढ़ायो कियो भक्तन के काज,
राजा बभीखन लंका पाये बड़े गरीब नवाज।
जय जय रामचंद्र महाराज।
दैत्य कू मारके मान राखियौ, गजेन्द्र पशु की लाज
गणिका पतित उधारे, किये भक्तन के काज
जय जय रामचन्द्र महाराज।
सुदामाजी ने चुडवे दीये वाकू किये सिरताज,
नाम तुम्हारो यहि एक जानो, ताल विना पखवाज।
जय जय रामचन्द्र महाराज।
श्याम सुंदर कू तुम बिन कोउ नहीं और रघुराज।
दो कर जोरे बिनति करत हूँ, राखो मेरी लाज।
जय जय रामचन्द्र महाराज।

संत जन जसवंत

ये महाराष्ट्रीय संत रामचरितमानसकार तुलसीदास के शिष्य कहे जाते हैं। इनके सबंध मे बहुत कम शोध-कार्य हुआ है। मैंने धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता मंदिर मे इनके हिन्दी पद तथा जीवन-सबंधी कुछ सामग्री जीर्ण-शीर्ण स्थिति मे देखी है। मराठी के 'प्रसाद' मासिक-पत्र मे, इन्हीं के एक सम्बन्धी ने, एक लेख प्रकाशित किया था। मैंने संतजनजसवत के एक रिश्तेदार से जो 'शास्त्री' कहलाते हैं, भेट भी की है। उनका कहना है कि उनके घर मे नित्य तुलसी की आरती परम्परा से गाई जाती है। प्राचीन संत चरित्र-ग्रंथ, भक्त विजय और भक्तलीलामृत मे इस संत के संबंध मे अल्प परिचय दिया गया है। अनेक स्रोतों से जो सामग्री मुझे प्राप्त हुई है, उसीके आधार पर इनका परिचय यहाँ दिया जाता है। शिवाजी के उदय के पूर्व शके १५३० के लगभग नाशिक जिले मे बागलाण प्रदेश में प्रतापशहा नामक राजपूत राजा शासनारुढ़ था। वर्तमान खानदेश, बुरहानपुर, बागलाण आदि भाग उसके अधीन थे। राजा की राजधानी मुल्हेर के पहाडी किले पर थी। देशस्थ शुक्ल यजुर्वेदी ब्राह्मण जनार्दन पंत इस राजा के पुरोहित थे। ये राजा को राजनैतिक मामलों मे परामर्श भी देते रहते थे। जसवंत इन्हीं का पुत्र था। जसवंत का बाल्यकाल किस प्रकार व्यतीत हुआ, इसकी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। दस वर्ष के होने पर इनका विवाह कर दिया गया था। कहा जाता है कि ये प्रारंभ मे कुछ समय तक तुलसीदास के समान विषयान्ध बने रहे। फिर एक घटना घटी, जिससे इनके नेत्र खुल गये। एक बार मुल्हेर के निकटवर्ती गणपतिधुर नामक गाँव मे दो योगी आये। जसवंत उनकी ओर आकर्षित हुए। अपनी पत्नी से तैयार कराकर दही-भात लेकर नित्य प्रातः उनके पास जाने लगे और दोपहर का बहुत सा समय उन्हीं की सेवा मे बिताने लगे। यह क्रम वर्षों तक अखंडित रूप से चलता रहा। एक दिन जब ये नित्य क्रम के अनुसार दही-भात लेकर गणपतिधुर जा रहे थे, तब मार्ग मे दो बटुक शिला पर बैठे दिखलाई दिये। उन्होंने इनसे कहा कि हम बहुत भूखे हैं, हमे यह दही-भात दे दो। जसवंत ने कहा, 'यह भात मैं साधुओं को देकर आता हूँ और घर जाकर तुम्हारे लिए ताजा भात तैयार कराकर लाता हूँ। तब तक तुम यहाँ से मत हिलना।' जब जसवंत भात लेकर साधुओं के मठ मे गये तब इन्हें वहाँ साधु नहीं दिखलाई दिये। जसवंत ने उनकी बड़ी खोज की; पर उन्हें नहीं पा सके। अंत में निराश होकर अपने घर लौट पड़े। मार्ग में ये बटुकों को दही-भात देने का विचार करते जाते थे; पर जब उनके स्थान पर पहुँचे तो वे भी वहाँ से अदृश्य थे। यह दृश्य देखकर जसवंत व्याकुल हो गये। इन्हे ऐसा भासित हुआ कि बटुक के रूप में राम-लक्ष्मण ने ही दर्शन दिये थे। यह कल्पना मन मे आते ही ये राम-लक्ष्मण के दर्शनो के लिए पागल हो गये। इनकी भूख-प्यास जाती रही। घर छोड़कर ये वन मे चले गये और राम की खोज करने लगे। छह दिन तक इन्होंने एक गुफा मे बैठकर राम की प्रार्थना की। सातवे दिन इन्हे उन्हीं बटुकों का पुनः साक्षात्कार हुआ। उन्होंने कहा कि 'पंचवटी मे जाकर एकात मे पुरश्चरण करो। वहाँ रामचन्द्र के दर्शन होंगे।' जसवंत पंचवटी मे जाकर रहने लगे। वहीं हरि-कीर्तन करने लगे।

वहाँ एक गुफा मे जप, ध्यान आदि साधना करने लगे। जब पुरश्चरण समाप्त हुआ तब इन्हे राम के दर्शन हुए। राम ने इनसे जब वर माँगने को कहा तब इन्होंने ये पक्तियाँ कहीं—

शेष से सुरेश से तुमेरे देखे दीन है
काबीर कनोद कर्नाटक दच्छन
चारों देश के राने मेरे लेखे तृण है ।
बैकुण्ठ तो वलाय जाय, स्वर्ग की तो पतवार नाय।
और जब सुख छिन्न है ।
कछु कहावे न भावे न मनमो आवे ।
श्री जानकी-जीवन जल और जसवंत मीन है ।

भक्त के उपर्युक्त उद्‌गार सुनकर, कहा जाता है कि भगवान ने इन्हें यह उपदेश दिया कि 'ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती और गुरु के विना ज्ञान नहीं होता। अतएव तू उत्तर में जाकर गोस्वामी तुलसीदास को अपना गुरु बना और उनसे ज्ञान प्राप्त कर।' भगवान की यह आज्ञा मानकर जसवंत मुल्हेरी लौट गये और वहीं से सकुटुम्ब काशी की ओर रवाना हो गये। मार्ग में स्थान-स्थान पर हजारों स्त्री-पुरुष जसवत के दर्शन के लिए आते और जसवंत हिन्दी भाषा में कीर्तन कर सबको प्रसन्न करते। काशी पहुँचने पर इन्होंने विश्वनाथ-मंदिर के दर्शन ओर गगास्नान करने के पश्चात् तुलसीदास से भेंट करने की तैयारी की। उस समय तुलसीदास किसी गुफा में एकात-वास कर रहे थे और आत्म-चिंतन में अपना समय व्यतीत कर रहे थे। लोगों से विशेष नहीं मिलते थे। जसवंत के आने की बात उन्हें स्वप्न मे भगवान की प्रेरणा से विदित हो गई थी। अतः जसवत के पहुँचते ही उन्होंने इन्हें गुरु-मंत्र दिया। जसवंत ने अपने परिवार को विदा कर दिया और गुरु की सेवा मे अकेले रहने लगे। कहा जाता है कि अपने गुरु तुलसीदास के साथ इन्होंने मथुरा की यात्रा की। मार्ग में दोनों गुरु-शिष्य भजन-कीर्तन करते जाते थे। मथुरा पहुँचकर जब जसवत ने तुलसीदास से श्रीकृष्ण के दर्शन की प्रार्थना की, तब तुलसीदास ने यह कहा—

मेरो नेम सुनो जसवता
मेरो मन और नम्रि लुभंता
राम बिना दर्सू नहिं कोई, राम बिना पर्सू नहिं कोई
फोरु नयन ओर जो दर्सू, काटूं कर ओर जो स्पर्सू ।

इसपर जसवत ने मराठी में उत्तर दिया—

'जो राम तो कृष्ण असे, यात कांही संशय नसे।

(जो राम है वही कृष्ण है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।)

मैं आपको श्रीकृष्ण के मंदिर मे ही राम के दर्शन कराऊँगा।'

ऐसा कहकर जसवंत तुलसीदास को कृष्ण-मदिर मे ले गये, जहाँ जाकर जसवत ने यह प्रार्थना की—

मोर मुकुट नीचे धरो, (और) किरिट मुकुट धरो शीस ।
धनुक बाण करमो धरो, (गुरु) तुलसी नमावत शीस ॥

जसवंत की प्रार्थना स्वीकार हुई और श्रीकृष्ण और राधा ने क्रमशः श्रीराम और सीता का रूप धर कर तुलसीदासजी को दर्शन दिये। इसके पश्चात् गोकुल, वृंदावन, जगन्नाथपुरी आदि स्थानों के दर्शन कर गुरु और शिष्य अयोध्या पहुँचे जहाँ चार महीने रहकर पुनः काशी लौट गये। कुछ समय बीतने पर तुलसीदास ने इन्हे अपने घर लौट जाने की आज्ञा दी और अपने गले की माला तथा हनुमान की एक पंचधातु की बनी हुई मूर्ति भेंट की।[1] गुरु-प्रसाद लेकर जसवंत अपने घर लौट आये। मार्ग में अनेक चामत्कारिक घटनाएँ भी घटीं। जब ये मुल्हेर लौटे तो जनता ने उत्साह के साथ इनका स्वागत किया और वहाँ इनके अनेक शिष्य बन गये।

एक बार मुल्हेर के राजा प्रतापशहा ने इन्हें अपने दरबार मे बुलाकर इनसे अपनी स्तुति मे जब कुछ सुनना चाहा तब इन्होंने स्पष्ट कह दिया—

'नर गुण गाई खर मुख होई,
तू भूपति जैसो करे तैसो होई।'

और—

'मी तो केला राम धनी
त्या विन वर्णी न कोणासी।'

(मैंने तो राम को अपना स्वामी बनाया है। उसके अतिरिक्त मैं किसी का वर्णन नहीं करता।)

राजा ने क्रुद्ध होकर इन्हे नजरबन्द कर दिया। थोड़े दिन के पश्चात् इन्होंने अपना जन्म-स्थान त्याग दिया और पश्चिम खानदेश में ताप्ती नदी के किनारे बोरठे नामक गॉव में जाकर बस गये। वहाँ के गूजरों ने एक राममंदिर भी बनवा दिया। वहीं सवत् १६७४ (शके १५३९) के फाल्गुन महीने की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को समाधि ले ली। इस संबंध मे वहाँ निम्नलिखित दोहा प्रचलित है—

'संवत् सोलसो चौओतरा रवितनया के तीर।
फाल्गुन शुद्ध अष्टमी जसवंत त्यजे शरीर॥'

×		×		×

धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता-मंदिर में जन जसवंत-संबंध सनदें है, उनकी नकल नीचे दी जाती है—

(१) श्री वालेर माहावीखम दूरंग महाराज अध्यराज महाराणा श्रीदूरंगवाजी बिजराज आदेशा मोजे आकलकुवो गाम दादाजी जसवंतजी ने राजे कृष्णार्पण कीधू छे जालगेवाले रनु राज रहे अम्हारा वंश महे गाम लो पोतेनीया उफेरे गधडो जाय छे।

संवत् १६५६ ज्येष्ठ शुद १३ खेड (रविवार)

(यह सनद गुजराती में है। इसमें उल्लिखित वालेर राज्य कुछ समय पूर्व बुधावल राज्य के नाम से पहिचाना जाता था। शके १७४० में यह राज्य चंद्रसिंह के आधिपत्य

---

1. यह मूर्ति अभी भी 'कुकुरमुंडी' ग्राम में जन जसवंत के वंशजों के पास है।

में था। इस सनद के द्वारा सन्त जसवत को आकलकुर्वो ग्राम दान में दिया गया है। यह ग्राम कुकुरमुंड़ी ग्राम के पश्चिम की ओर तीन कोस के अतर पर है। यह सनद श्री समर्थ वाग्देवता मदिर धूलिया में संग्रहित हस्तलिखित पोथी क्रमसंख्या १४४० में है।)

(२) ॥ श्रीराज आदेशा + खपशी

श्रीमाजोग्य + + वष्णुदासजी ने पूये गाम आपूछे जेगाम कोड थारो छे माटे आज पूठि हे गाम कोडनपुर पूत य बाब जे होये + नलिया जे अवाब शर्त साथे आपूछे माटे हे गाम तफत पाटन फरणीका ॥

वदे १० स १६७६ ली

(यह सनद उपर्युक्त मंदिर की हस्तलिखित पोथी क्रम-संख्या १८४० में नत्थी है। इसमें भी संत जसवंत के पुत्र विष्णुदास को एक ग्राम दान में देने का उल्लेख है)

(३) श्री दीवान महाराजा धीरराज महाराणा श्री दुरंगबाजी पटे ऐनायत वीस्णदास तम्होने चर्ण चाल स्वस्ती वचन कारी मौ पाणीवास आपुछे चद्राकं लगे तुम्हे खाबु देखील कुल बाब दीधु छे।

कार्तीक सुद १ सं १६७८ मु—वेज

(कुकुरमुंड़ी के तीन कोस के अतर पर पाणीकारू नामक ग्राम है और उसीके पास वेज नामक ग्राम है। यह सनद सन्त जन जसवंत के पुत्र विष्णुदास के नाम पर है। शासक ने पाणीवारू नामक ग्राम उन्हें दान मे दिया है। यह भी गुजराती भाषा में लिखी गई है।)

तीन सनदें मराठी भाषा में लिखी हुई प्राप्त हुई हैं, जो नीचे दी जाती हैं।

॥ श्री ॥

(१) वेदमूर्ति राजश्री राजभट बीन यदुपति भट हली वस्ति किले मजकूर स्वामीचे सेवेसी सेवक बालाजीराम सुभदार तालुके कुकरमुढे नमस्कार सु॥ इसने आशेरमया तैन व अलफ तुमचे संवस्थान निभ्फरेस होते दग्यामुले किले मजकुरीं येऊन राहिला त्यास साल गुदस्ता सरकारातून दिल्हे देवाचे पूजा साहित्य व नैवद व तुमचा कालक्षेप चालला पाहिजे याज करिता मौजे कोंठरज येशील जमीन सेन गोसावीवाले परतने ५ पाच धर्मार्थ सरकारातून दिल्हे आहे त्यास कीर्द करोन उपभोगकरीत जावा सदरहू पाच परतन जमीन

\+ + + +

(इस सनद मे जन जसवत के वंशज यदुपति के पुत्र रामबाबा अथवा रामभट को सूबेदार बालाजी राम द्वारा मौजा कोटरज की जमीन देवालय की व्यवस्था और पूजा-अर्चा के लिए दान में दी गई।)

(२) श्रीरामभक्त परायण राजमान्य राजश्री जन जसवन्त बालकृष्ण राम बाबा वस्ति कुकुर मुढे यासी उमेद लक्ष्मण पाडवी मा। कांठी मुकाम कुकुरमुढे परे सुलतानपुर। सु॥

सन १२५६ फसली कारणे इनाम पत्र लिहून दिल्हे ऐसी जे तुम्हास पेशजी पासून गाव दिले होते परंतु आमचे वहिरीस आज परियंत न्होते। हाली आपणास आमचे स्व संतोषाने श्रीराम व मारूतीये आर्चन पूजन करूण आपण गाव मौजे बोरी आकलकुवा हे देवा प्रित्यर्थ धर्म केले आहे जल तुण झाड़ जमीन सर्व उत्पन्न कपाली सुधा तुम्हीं घेत जावी। वौष परंपरा उपभोगघेत जावा आपचे वौषात कोन्ही या गावाबदल दावा करणार नाही तुम्ही आमचे अभिष्टचिंतन करून गाव-सदरहू पुर्वि प्रमाणे जमीन असेल व गावाची सीमा असेल त्याची उत्पन्न घेत रावी (जावी) आमचे कडून वावगा उपसर्ग लागणार नाहीं हे इनामपत्र लिहून दिल्हे सही दस्तुर—पाडुरंग बलाल मु० कुकुरमुढे सके १७७१ सौम्यनाम सवछरे माहे पौष वा १ संवत १६०६ साल दीपावली

साक्ष

(१) मल्हार रामचंद्र गुमास्ते
जमीदार पो। मार मु
कुकुरमुढे दस्तुर खुद

सही

सही उमदे लक्ष्मन
पडवी सा कठी
दसतुर खुद

(इस सनद मे जन जसवंत के वंशज बालकृष्ण रामबाबा को—जिनके विषय मे कहा जाता है कि ये कुकुरमुढ़ा ग्राम मे बस गये थे—शके १७७१ में काठी रियासत के उमेद लक्ष्मण पाडवी ने मंदिर की पूजा के लिए बोरीगाव का दान-पत्र लिख दिया है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि बोरठे ग्राम मे जहाँ जनजसवंत रहते थे, आज भीलों की दसबीस झोपड़ियाँ ही शेष रह गई है। रामबाबा के समय से ही यह ग्राम उजड चला होगा। तभी वे कुकुरमुंडा या कुकुरमुढा आ गये होंगे। रामबाबा के पुत्र अन्याबुवा ही श्रीशंकर श्रीकृष्णदेव के अनुसार बालकृष्णबाबा कहलाते थे।)

(३) इनामपत्र श्रीरामचंद्र भक्त परायण राजमान्य राजश्री बालकृष्ण बाबा देवस्थान कुकुरमुढ़ेकर श्रीरामचंद्र शेवेसी तापर राणा भगवानसिंगजी सा। बुधावलगड वाल्हेर सु॥ सन १२४६ कारणे धरमपत्र लिहून दिल्ही ऐसीजे श्रीरामचंद्र उछव चैत्र शु ॥६ स होतो वदल टके १८ वर्षांत संवस्थान मारीहून पावत होते ते मधे बंदजाले होते त्याजवरून हाली मौजे सामोवल ता। बुधावल येथली जमीन परतन १॥ दीड तुम्ही आपले वौष परा घेत जावी आणि राज्यास अभिष्ट चिंतन करीत जावी आमचे वंषात कोन्ही याजविसी हरकत करणार नाही ठिके परतन १॥ खुण कमान खेडुवाल्या ने दिल्हे असे जाणिजे ६-७ माहे रवि लाखर उर्फ आषाढ़ प्रमाण शु ॥६ दुरमुख नाम संवछर मोर्तब सुद दस्तुर पाडुरंग दलाल कारकून नि॥ राणाजी सदर—सेताची चतुःसीमा पुर्वेस लवण दक्षणेस मछपाभटचा इनाम पश्चमेस सरकारी सेत उतरेस गाव।

(अन्याबुवा को जो रामबाबा के पुत्र हैं और जो बालकृष्णबाबा कहलाते थे। राणा भगवानसिंगजी ने रामनवमीके उत्सव के निमित्त सामोअल ग्राम की डेढ़ एकड़ जमीन दान मे दी थी। यह उसीका दानपत्र है।)

उपर्युक्त हस्तलिखित पोथी में जन जसवंत का वंशवृक्ष भी अंकित है, जो इस प्रकार है—
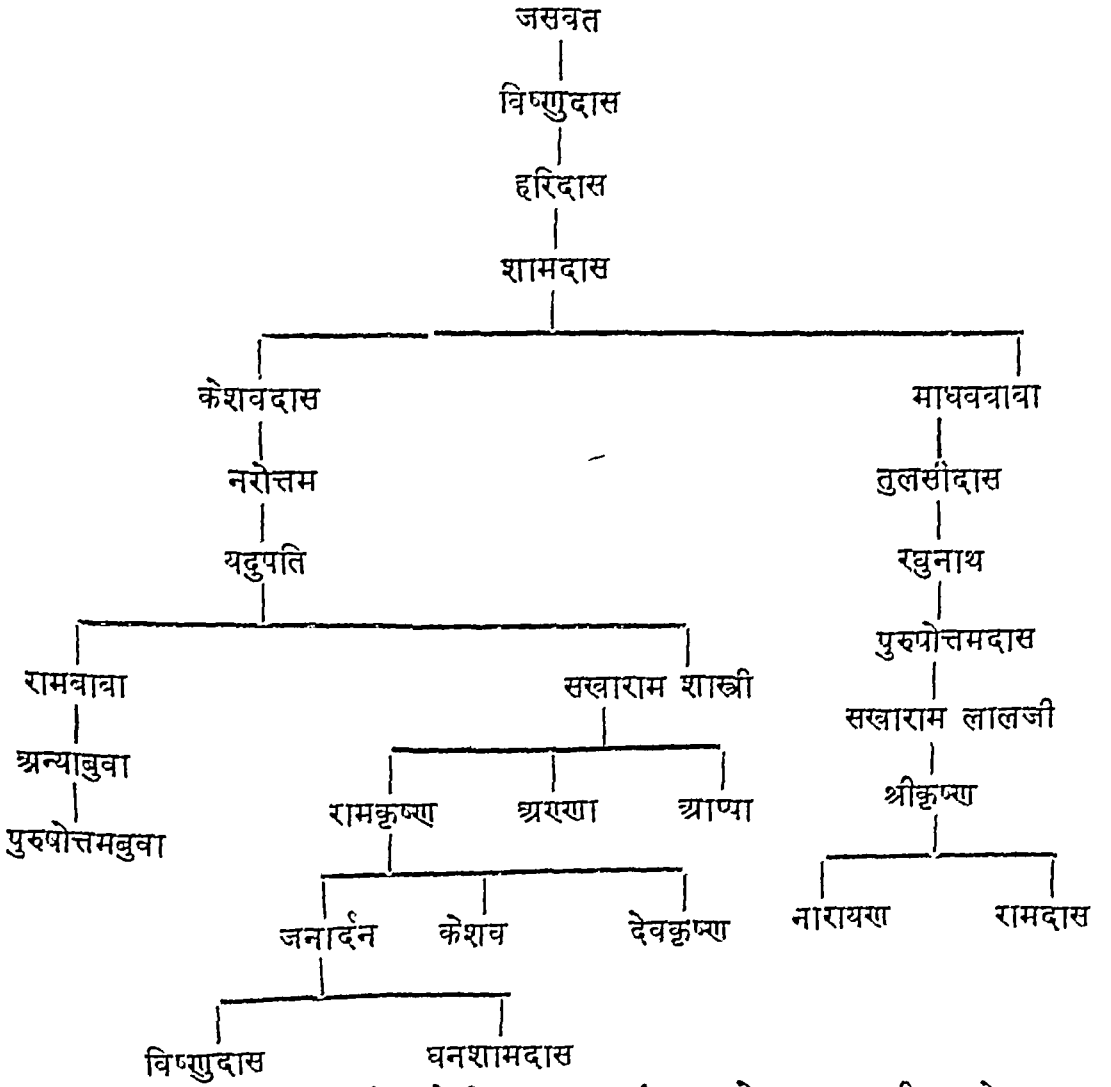
वंश-वृक्ष से यह भी सिद्ध होता है कि जन जसवंत अपने गुरु तुलसीदास के समान अपने पुत्र-पौत्रों के नाम के आगे 'दास' लगाने में गौरव अनुभव करते थे। वंश में एक का नाम 'तुलसीदास' भी रक्खा गया था।

जसवंत की हिन्दी-रचनाएँ नमूने के तौर पर नीचे दी जाती हैं—

(१)

कोई वन्दो कोई निन्दो कोई कैसो कहो रे।
रघुनाथ साथे प्रीत बाँधी होय जैसो होय रे॥ ध्रु०॥
कमलम्याने मोट बाधी नीर था भरपूर रे।
रामचद्र ने कूर्म होकर राखलीनी पीठ रे॥१॥
चंद्र सूर्य जीनी जोत स्तम्भ बिन आकाश रे।
जलउ पर पाषाण तारे क्यू न तारे दास रे॥२॥
जपत शिव सनकादि मुनिजन, नारदादिक सत रे।
जन्म जन्म के स्वामि रघुपति दास जनजसवत रे॥३॥

(२)

साचा उपदेश देत भली भली मति देत
समता सम बुद्धि देत कुमती को हरत है ।
मार्ग को दिखाव देत भाव देत भक्ति देत ।
प्रेम की प्रतीत देत आभार भर भरत है ॥
गुमान देत ध्यान देत, आत्म को विचार देत
ब्रह्म को वताय देत, ब्रह्ममय करत है ।
मूढमति कहे जसवंत नहि जन कछु देत ।
श्रीगुरु निशिदिनि देत की देवो ही करत है ॥

(३)

धन धन धन आज को दिन । प्रकट भये स्वामी ।
पूर्ण ब्रह्म प्रगट भये । सकल अंतरज्ञानी ॥१॥
चैत्र मास शुद्ध नवमी । शुभग पेहर दोउ ।
प्रकट भये ताही समे । रामचद्र दोऊ ॥२॥
सुवर्णश्रृंगी रोप्यखुरी अनेक धेनु आनी ।
विप्र को बुलाय दिनीं । हेमतुलसी पानी ॥३॥
नाम धरयो श्याम राम । शुभ निशाण बाजे ।
जनजसवंत भाग्य बड़ो, बंदीजन गाजे ॥४॥
राम जन्म सुनी नाचत मुनीजन । नाचत गणगंधर्व किन्नर ।
नाचत धरणी नाचत शेष । नाचत उमया सहित महेश ॥१॥
नाचत मघवा पुष्पहि वरखत । नाचत भानु मगमो हरखत ।
नाचत विधि और नाचत ईश । नाचत अमर सहित तेतीस ॥२॥
नाचे तरु बंशी दडक बनमो । नाचत जसवत प्रफुलित मनमो ॥३॥

(४)

परम भगत हनुमान मेरो । परम भगत हनुमान ॥ ध्रु० ॥
प्रतिमणि तीन्हों लोकका मोल । मानते तृणसमान ॥१॥
कुटि कुटि मणि भीतर देखे । ताहां नहीं रामनिधान ॥२॥
कोप कर प्रभु कपि प्रति बोले । तेरे तनमे काहा भगवान ॥३॥
काढी खाली नखसु दिखलाने । ताहा प्रगट रामनिधान ॥४॥
रघुनाथ सेवक स्तुति बखाने जनजसवंत को प्राण ॥५॥

जसवंत के पद खानदेश मे ही नहीं, महाराष्ट्र के अन्य स्थानों मे भी जनता द्वारा गाये जाते हैं। इनकी हिन्दी-रचनाएँ नीति और भक्ति-पूर्ण हैं। तुलसीदास के समान रामभक्त होने पर भी इनमें साम्प्रदायिक असहिष्णुता लेशमात्र भी नहीं है। तुलसीदास के जीवन का अध्ययन करनेवाले शोधकों ने उनके इस महाराष्ट्रीय शिष्य का कहीं उल्लेख नहीं किया। इनकी मराठी रचनाएँ कम होने के कारण मराठी के प्रसिद्ध इतिहास-ग्रथ महाराष्ट्र सारस्वत में भी इनका उल्लेख नहीं है। तुलसी-जीवन और साहित्य के अन्वेपण-कर्त्ताओं को इस उपेक्षित महाराष्ट्रीय सत कवि की ओर ध्यान देना चाहिए।

चौथा अध्याय

तृतीय खंड

मुसलमान-वर्चस्व के ह्रासोपरान्त (शिवाजी कालीन) मराठी संतों की हिन्दी-वाणी

तुकाराम

वारकरी संतों मे ज्ञानेश्वर, नामदेव और एकनाथ के पश्चात् कालक्रम से तुकाराम की प्रतिष्ठा है। पर तुकाराम ने अपने अभंगों की अजस्र धारा से कालक्रम की रेखाओं को बहा दिया है। आज वे महाराष्ट्र के प्रत्येक गृह में अपने तीखे, परमार्थ और व्यवहार-परक अभगों से मूर्धन्य बने हुए हैं। डा० तुलपुले ने एकनाथ को 'लोकोन्मुख कवि' कहा है[1] पर हम तुकाराम की लोकाभिमुखता को एकनाथ से भी अधिक व्यापक मानते हैं। एकनाथ मे ब्राह्मणत्व की तेजस्विता और प्रखरता है, तुकाराम मे सामान्य जन की नम्रता और शालीनता है। एकनाथ में संस्कृत का पाण्डित्य है। तुकाराम मे प्राकृत-मराठी का भोलापन है। जनता के हृदय मे अपनी सहज उक्तियों से जो स्थान तुकाराम ने प्राप्त किया है, वह कदाचित् ही किसी महाराष्ट्र-सत को प्राप्त हुआ हो। जनाबाई ने उन्हे वारकरी-मत-मन्दिर का 'कलश' कहा है और उचित ही कहा है।

जन्म और समाधि-तिथि

अत्यधिक लोकप्रियता के बावजूद भी इनकी जन्म-समाधि और दीक्षा-तिथि के सबध मे निश्चित रूप से कहना कठिन है। जन्म-स्थान देहू के संबंध में कोई मतभेद नहीं है; परन्तु जन्मकाल के संबध में निम्नलिखित विभिन्न मत तथा उल्लेख मिलते हैं:—

(१) जनार्दन के अनुसार वे शके १५१० (ई० स० १५२८) में पैदा हुए।

(२) देहू और पंढरपुर में प्राप्त तुकोबा की वंशावली में उनका जन्म-समय शके १५२० माघ सुदी ५ गुरुवार अंकित है।

---

१. देखिए—तुकाराम (तुलपुले) पृष्ठ —१।

(३) प्रसिद्ध इतिहासकार राजवाड़े ने प्राचीन वशावली के आधार पर शके १५६० को जन्मकाल माना है।

(४) सत-चरित्रकार महिपति बोवा ने तुकोबा के प्रथम इक्कीस वर्ष की आयु का जीवनक्रम दिया है और अन्त मे लिखा है कि 'पूर्वार्ध सपले एचे रीती' (इस प्रकार यहाँ पूर्वार्ध समाप्त हुआ)। महिपति ने तुकोबा की प्रयाण-तिथि शके १५७१ दी है। इस प्रकार शके १५७१ मे ४२ वर्ष घटा देने पर जन्म-शके १५२६-१५३० आता है।

उपर्युक्त मतों पर विचार

१. जनार्दन ने शके १५१० को जन्म-समय निर्धारित करते हुए अपने निष्कर्ष का कोई आधार नहीं दिया। अतएव इसपर विचार करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

२. तुकाराम के जन्मस्थान देहू और पढरपुर में प्राप्त वंशावलियों की पाण्डुलिपियों में जन्म शके १५२० अकित है। श्री पागारकर ने इन बहियों का परीक्षण किया है। इनके मत से ये बहियाँ ५०-७५ वर्ष से पुरानी नहीं हैं। इनमें जन्म-शके १५२० माघ सुदी ५ गुरुवार लिखा है। परतु शके १५२० की माघ सुदी पचमी के गुरुवार नहीं, रविवार पड़ता है और माघ बदी ५ को भी गुरुवार नहीं, सोमवार पड़ता है। अतः बहियों की तिथि निराधार है।

३. शके १५६० को राजवाड़े ने तुकाराम का जन्म-समय माना है। उनका आधार वाई के करजखोण से प्राप्त वशावली मे दिया हुआ शके है। इससे तुकोबा की आयु ८० वर्ष की होती है। पागारकर ने इस मत का खडन किया है और उन्होंने महिपति बोआ के चरित्र को मान्यता दी है, जिसके अनुसार तुकोबा की आयु बयालीस वर्ष की निर्धारित होती है। कहा जाता है कि तुकोबा की समाधि के समय उनकी पत्नी जीजाई गर्भवती थीं। पागारकर कहते हैं[1] कि राजवाड़े के मतानुसार यदि तुकोबा अस्सी वर्ष के थे तो जीजाई ७५-७६ वर्ष की अवश्य रही होंगी। इतनी बड़ी आयु में स्त्री पुत्रोत्पत्ति के योग्य नहीं रह जाती। महिपति ने 'भक्त लीलामृत' के अध्याय अठारहवे मे तुकोबा की इक्कीस वर्ष की आयु में पड़नेवाले अकाल का वर्णन किया है। महाराष्ट्र मे इतना भयंकर अकाल कभी नहीं पड़ा। यह ऐतिहासिक घटना है। अब्दुल हमीद लाहौरी ने जो तुकोबा का समकालीन था, शाहजहाँ के प्रथम बीस वर्ष के कार्यकाल का इतिहास लिखा है। उसमे उसने सन् १६३० मे दक्षिण प्रान्त और गुजरात के भीषण अकाल का हृदयद्रावक वर्णन किया है। पूना गजेटियर भाग ३ पृष्ठ ४०३ मे भी इसका उल्लेख है। इसी अकाल में तुकोबा की एक पत्नी 'अन्न, अन्न' चिल्लाती हुई परलोकगामिनी हुई।[2] इससे महिपति

---

१. देखिए—श्री तुकाराम चरित (पृष्ठ ३४)।

२. 'दुकाले आटिलें द्रव्य, नेला मान, स्त्री एकी अन्न अन्न करितां मेली।' तुकाराम का एक अभंग

चरित्र और तुकोबा की आत्मकथा की कड़ी जुड़ जाती है। महिपति ने तुकोबा के शिष्य होने के नाते अपने गुरु की जीवन-गाथा को सावधानी से ही लिखा होगा।

तुकोबा के गुरु और उनके उपदेश-ग्रहण का समय

तुकोबा की शिष्या बहिणाबाई ने अपने गुरु की परम्परा इस प्रकार दी है—

आदिनाथ—मच्छेंद्रनाथ—गोरखनाथ—गहिनीनाथ—निवृत्तिनाथ—ज्ञानेश्वरनाथ—सच्चिदानंदबाबा—विश्वेश्वर—राघवचैतन्य—केशवचैतन्य—बाबाजी—तुकोबा—बहिणाबाई

पागारकर ने शिउर से प्राप्त कागजों से नीलोबा की गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है—

महाविष्णु—हंस—नारद—व्यास—राघव—चैतन्य—केशव चैतन्य—तुकोबा—नीलोबा।

नीलोबा और बहिणाबाई दोनों तुकोबा के शिष्य हैं। दोनों एक ही गाँव मे रहते थे। परंतु दोनों ने अपनी गुरु-परम्परा मे भिन्न-भिन्न नाम दिये है। बहिणाबाई की परम्परा नाथ गुरुओं से प्रारम्भ होती है और नीलोबा की चैतन्य सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा को लेकर चलती है। फिर भी राघव और केशव चैतन्य दोनों मे समान हैं। बहिणाबाई ने तुकोबा के गुरु का नाम 'बाबा' बतलाया है। इसमें सदेह नहीं कि तुकोबा के गुरु बाबाजी चैतन्य हैं और इन्होंने स्वप्न मे 'राम कृष्ण हरी' का उन्हें मंत्र दिया। संत अहंकार से बचने के लिए गुरु को स्वीकारते हैं। कबीर ने रामानद को उनके जाने विना ही 'गुरु' मान लिया था। इसी प्रकार तुकोबा ने स्वप्न मे ही बाबा चैतन्य से मंत्र की दीक्षा ले ली। ये 'बाबा' कौन थे? इस संबध मे 'चैतन्य-कथा-कल्पतरु' नामक ओवीबद्ध ग्रन्थ मे लिखा गया है। इसके रचयिता कोई निरंजन बुवा कहे जाते हैं। शके १७०६ मे इसकी रचना बतलाई जाती है; पर इसे बहुत प्रामाणिक नहीं माना गया।[1]

'बाबा चैतन्य' और 'बाबा' दो व्यक्ति हैं अथवा एक, इस सम्बन्ध मे भी विवाद है। तुकोबा का एक मराठी अभंग है :—

> "सद्‌गुरुराये कृपा मज केली।
> राघव चैतन्य केशव। सागीतली खूण मालिकेची।
> बाबाजी आपुले सागितले नाम।
> मंत्र दिला रामकृष्ण हरी।"[2]

इस अभग से गुरु का नाम 'बाबाजी' जाना जा सकता है और बाबाजी को केशव चैतन्य से भी जोड़ा जा सकता है। निरंजन रघुनाथकृत 'चैतन्य विजय' के अध्याय ३ ओवी ११४ मे लिखा है

> "सर्व जण म्हणती केशव चैतन्य
> भाविक म्हणती बाबा चैतन्य, दोन्हीं नामे एकची जाण।"

---

१. देखिए—शं० गो० तुलपुले कृत 'पांच संत कवि', पृष्ठ—२०२।

२. सद्‌गुरु ने मुझपर कृपा की और उन्होंने गुरुवंश-परंपरा राघव चैतन्य केशव द्वारा अभिज्ञेय बताई। अपना नाम बाबाजी बतलाया तथा 'राम कृष्ण हरी' मंत्र दिया।

(सब लोग केशव चैतन्य बोलते हैं, भावुक कहते है बाबा चैतन्य। दोनों एक ही के नाम जानो।)

रामकृष्ण गणेश हर्षे लिखते हैं, "केशव चैतन्य के पूर्वाश्रम का नाम विश्वनाथ बाबा राजर्षि था और सब उन्हे बाबाजी कहते थे। 'राजर्षि'-परिवार से जो लेख सामग्री मिली है, उसमे यह बात उल्लिखित है। अतः इस विवाद को समाप्त समझना चाहिए।"[1]

साराश यह कि तुकोबा के अभंग मे 'बाबाजी' से आशय केशव चैतन्य से जान पड़ता है। भावुक होने के नाते उन्होंने अपने गुरु को 'बाबाजी' से ही संबोधित किया होगा। ऐसा अनुमान है कि तुकोबा ने माघ सुदी १० शके १५५४ को गुरु से उपदेशग्रहण किया।

प्रयाण-तिथि

इस संबध मे भी निम्नलिखित मत हैं—

(१) शके १५७२ फाल्गुन बदी २ दिन सोमवार को तुकोबा ने सदेह बैकुंठ प्रयाण किया। यह लेख तुकोबा के अभंग-लेखक संताजी जगनाड़े के पुत्र बालाजी जगनाड़े के हाथ से अकित है जो तलेगाँव मे आज भी विद्यमान है।

(२) शके १५७१ फाल्गुन बदी सोमवार का प्रयाण-समय देहू मे देहूकर की पूजा की, एक बही में लिखा है।

(३) भक्तलीलामृत में महिपति ने यही समय अर्थात् १५७१ फाल्गुन बदी २ सोमवार दिया है। (इसी समय को बहुमान्यता प्राप्त है।)

(४) इतिहासकार राजवाड़े ने शके १५७०, फाल्गुन बदी द्वितीया सोमवार को प्रयाण-काल माना है।

निष्कर्ष

फाल्गुन बदी द्वितीया सभी लेखों में समान है। वारकरी-सम्प्रदाय मे इसी तिथि को तुकोबा की प्रयाण-तिथि का उत्सव मनाया जाता है। अतः फाल्गुन बदी द्वितीया एक प्रकार से निर्णायक तिथि है। पर यह फाल्गुन बदी द्वितीया किस शके की है?

शके के सबध में तीन मत हैं। (१) १५७०, (२) १५७१ और (३) १५७२। आश्चर्य यह है कि इसमें से किसी भी वर्ष की फाल्गुन बदी द्वितीया को सोमवार नहीं पड़ता। पागारकर ने १५७१ फाल्गुन बदी २ शनिवार प्रातःकाल को तुकोबा का प्रयाण-दिन माना है और इसे ही बहुमान्यता प्राप्त है।

तुकोबा की जीवन-घटनाएँ

तुकोबा ने एक अभंग मे अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कर दिया है। अतएव उनपर विवाद उठने का कोई कारण नहीं रह जाता। वे कहते है—"मेरा जन्म

---

१ तुकाराम, पृष्ठ ३४-३६।

शूद्रवंश मे हुआ। मैंने वंश-परम्परा से चले आये हुए व्यवसाय को ग्रहण किया। ससार मे मैंने बहुत दुःख झेला। माता पिता का देहान्त हो गया, अकाल पडा, पास का पैसा चला गया, पत्नी अन्न-अन्न चिल्लाकर मृत्यु को प्राप्त हुई। दैन्यावस्था से मुझे लज्जित होना पड़ा। व्यापार में घाटा ही होता था। देहू ग्राम का मंदिर जीर्ण हो गया था, उसका जीर्णोद्धार होना चाहिए था। पहले अध्ययन की ओर मेरी रुचि नहीं होती थी। बाद में एकादशी उपवास और कीर्तन करने लगा। श्रद्धा-विश्वास से सतों की रचनाएँ पढ़ने लगा। कहीं कोई कीर्तनकार जब खड़े होकर गाने लगता था तब मैं उसका साथ देने को तत्पर हो जाता। सब लाज शर्म छोड़कर मैं संतों के चरणों का 'तीर्थ' लेने लगा। कष्ट उठाकर मुझसे जितना परोपकार हो सकता था, करने लगा। संबधियों की बातों पर मैंने ध्यान नहीं दिया। सत्य और असत्य का निर्णय अन्तःकरण की प्रवृत्ति से करने लगा। बहुमत को मैंने बहुत मान नहीं दिया। स्वप्न मे गुरु ने जो मंत्र दिया, उसीका दृढ़ विश्वास से 'स्मरण' करता रहा। पाण्डुरंग के चरणों मे मन के जम जाने पर मैंने कुछ काव्य-रचना भी की। मैं शूद्र हूँ। अतएव सस्कृत का ज्ञान प्राकृत (मराठी) मे कहता हूँ। इसलिए कुछ लोगो ने मेरा विरोध भी किया। इससे मुझे उदासीनता ने आ घेरा। लोगों ने मेरी कविताओं की बहियाँ (पोथियाँ) इन्द्रायणी नदी मे फेक दीं। मैं नदी के किनारे बैठा रहा। पाण्डुरग ने उन बहियों का रक्षण कर मेरा 'समाधान' किया और भी बहुत सी बाते है। यदि मैं उन्हें विस्तार से कहने लगूँ, तो विलम्ब हो जायगा। बस, आज की स्थिति ऐसी है। कल क्या होगा, यह देव (भगवान) जानें। नारायण अपने भक्त की उपेक्षा नहीं करता। वह कृपालु है। इस संबध में मेरा विश्वास हो चुका है।" (मराठी अभग का रूपातर)[1]

उपर्युक्त अभंग मे जीवन-धारा का स्पष्ट सकेत है; पर विस्तार नहीं है। तुकोबा का वंश-परम्परा इस प्रकार है—

विश्वंभर बोवा—हरि बोवा—विठोवा—पदाजी—

शकर बोवा—कान्हा—बोल्हो बोवा

साजी | तुकाराम | कान्होबा

(तुकाराम) — पत्नी (१) रखूबाई | पत्नी (२) जीजाई
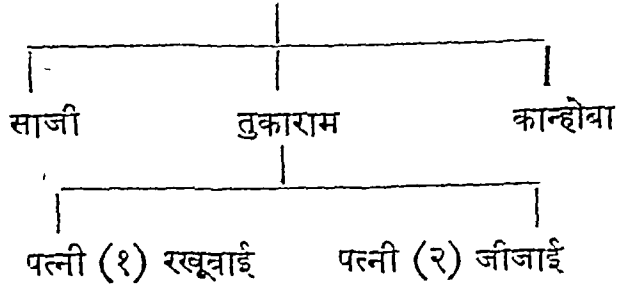
उनके परिवार मे धार्मिक भावना प्रारम्भ से रही है। जब उनके बड़े और छोटे भाई तीर्थाटन पर चले गये, तब गृह-कार्य-भार उन्हीं पर आ पड़ा। चार वर्ष तक कार्य ठीक तरह चलता रहा। फिर धन-जन-हानि का तॉता सा बँध गया। प्रथम पत्नी की मृत्यु, पुत्र की मृत्यु, दूसरी पत्नी का कर्कश स्वभाव, इन सबने तुकोबा को विरक्त कर दिया।

---

१. देखिए—संतश्रेष्ठ तुकाराम (आजगांवकर) पृष्ठ १ और २।

उन्होने 'घर गिरस्ती' का कार्य कान्होबा पर छोड अपना समय विट्ठल-कीर्तन मे बिताना आरम्भ कर दिया और एकादशी व्रत, कथा-कीर्तन, सत्संग, परोपकार—ये चार आधारसूत्र ग्रहण कर लिये। तुकोबा के अभंग-गान से ग्राम के भट्ट रामेश्वर झुँझला उठे। उन्होंने उन्हे देहू छोड़ देने को कहा और अभग गाने को भी मना कर दिया। 'तुका' ने ब्राह्मण देवता को प्रसन्न करने के लिए अपने अभंग इन्द्रायणी नदी मे बहा दिये। तुकोबा बिठोबा के मदिर मे १३ दिन और १३ रात भूखे पडे रहे। भगवान ने बालरूप में दर्शन दे उन्हें अभंग गाने का आदेश दिया। रामेश्वर भट्ट का शरीर जलने लगा। ज्ञानेश्वर ने उसे स्वप्न देकर कहा कि तुम तुकोबा से क्षमा मॉगो। उसने यही किया। यही ब्राह्मण शूद्र संत तुकोबा का पहला शिष्य बना। तुकोबा के शिष्यों में संताजी तेली, गबर सेठ, शिवबा कसार, रामेश्वर शाक्त, बहिणाबाई आदि विविध जाति और मत के व्यक्ति थे। कहा जाता है कि तुकोबा के कीर्तन सुनने के लिए शिवाजी भी आया करते थे। किंवदन्ती है कि शिवाजी पर तुकोबा के अभंगों का इतना प्रभाव पड़ा कि वे 'स्वराज्य'-कार्य से विरक्त से रहने लगे। राजमाता जिजाबाई ने तुकोबा से जब यह बात कही तब उन्होंने एक कीर्तन मे शिवाजी को वर्णाश्रम-धर्मपालन का उपदेश दिया। इससे शिवाजी को कर्तव्य-बोध हुआ। इस आख्यायिका में सत्याश कितना है, यह जानना कठिन है। इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, पर अनुमान है कि श्रद्धालु शिवाजी जहाँ रामदास जैसे सत की पूजा करते थे, वहाँ अपने निकट रहनेवाले प्रसिद्ध भक्त तुकोबा के दर्शन न करे, यह संभव नहीं है। रामदास और तुकोबा की भेंट पंढरपुर मे १५६६ और १५७१ के बीच मे कभी हुई होगी, ऐसा अनुमान है।[1]

तुकाराम की रचनाएँ

तुकाराम विशेष पढे-लिखे न थे, पर उन्होंने ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवत का खूब पाठ किया था। पुराणों की आख्यायिकाएँ भी संभवतः हरि-कीर्तनों मे सुनी होंगी। उत्तर और दक्षिण बीजापुर मे मुसलमानी राज्य होने के कारण तत्कालीन हिन्दुई अथवा हिन्दी भाषा से भी उनका परिचय था। ये सारे तथ्य उनके अभंगों और पदों से ज्ञात होते है।

अनुमान है कि तुकोबा को शके १५४६ के लगभग काव्यस्फूर्ति हुई होगी और तबसे पच्चीस वर्ष तक उनके मुख से अभंगोंका अखंड स्रोत झरता रहा है। कहा जाता है, लगभग पॉच हजार अभग उन्होंने रचे होंगे। उनके एक अभंग मे यह आया है कि नामदेव ने उन्हे स्वप्न में उनके सात करोड़ अभंगों के संकल्पों को पूरा करने का उपदेश दिया।[2] विष्णु चिपलूणकर तुकोबा के अभंगों की सख्या ४०१,३४००० बतलाते हैं। उनका आधार यह अभंग है—

> "चार कोटि एक लक्षाचा शेवट। चौतीस सहस्र स्पष्ट सागितले।
> सागितले तुका कथोनिया, गेला बारह अभंग सोडू नका॥"

---

१. देखिए—तुकाराम (हर्षे) पृष्ठ ६१ से ६६।

२. ,, वही ,, ,,

पर आज जो अभग प्राप्त है, उनको संख्या लगभग पॉच हजार हैं। काशीनाथ मराठे और नेल्सन फ्रेजर ने तीन भागो मे तुकोवा के अभग प्रकाशित किये हैं।

इस समय तुकोवा की तीन गाथाएँ अधिक प्रसिद्ध है। पहली गाथा सरकारी सहायता से शकर पाडुरंग पंडित ने तैयार की है जो 'इंदु प्रकाश' संस्करण के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरी गाथा वारकरी-संप्रदाय के आचार्य विष्णु वोवा ने ई० स० १६०६ में सम्पादित की। तीसरी गाथा वि० ल० भावे ने ई० स० १६२० मे 'तुकारामाची अस्सल गाथा' के नाम से प्रकाशित की। यह तुकोवाजी के शिष्य संताजी जगनाडे के हाथ की लिखी 'वहियों' के आधार पर है। इसकी मराठी भी शिवकालीन है और उसमे ग्राम-भापा का पुट भी है। प्रसिद्ध इतिहासकार राजवाडे ने इस संस्करण को प्रामाणिक माना है।

कई अभंगों मे 'तुकाह्मणे' पद आये है। तो क्या ये सब पद तुकोवा के ही है? 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' 'मीरा कहे' आदि टेक के कई हिन्दी-पद और साखी प्रचलित है, पर वे सभी कवीर और मीरा के नहीं हैं। इसी तरह 'तुकाह्मणे' सहित कई अभग भी क्षेपक हो सकते है।

तुका के अभगो का क्रम निश्चित करना भी कठिन है। पर विशेषज्ञो का अनुमान है कि विठोवा के वालक्रीड़ा सवंधी अभंग उनकी प्रथम रचनाएँ हो सकती है। ये रचनाएँ आरती, अभंग, पद, ओवी, और श्लोक में हैं। पर उनके अभंग ही प्रधान है। तुका के अभंगों मे वारकरी सम्प्रदाय की छाप होने पर भी उनमे कवित्व की कमी नहीं है। वे आत्म-परक है। उन्होंने स्वयं कहा है—

'तुका म्हणे मनासी सवाद
आपुलाचि वाद आपणास।'

(तुका तो अपने मन से वाते करता है। उसके अभगों मे स्वय से किया गया स्वय ही का वाद है।) उनकी वाणी में बड़ा लोच है, वह प्रसंगानुसार कोमल और परुष बन जाती है। सूत्र-रूप मे जो उपदेश पिरोये जाते हैं, वे बड़े प्रभावोत्पादक होते है।

तुकोवा के रूपक भी प्रसिद्ध हैं—'आपुलें मरण पाहिले म्या डोला' (मैंने अपनी आँखो ही अपनी मृत्यु देखी।) नामक अभग महाराष्ट्र भर मे प्रसिद्ध है। कितना भाव-व्यंजक है!

मैंने अपने सासारिक जीवन को समाप्त कर दिया है, इसे विशेषोक्ति द्वारा व्यक्त किया गया है। हरिदासों के कीर्तन तुकोवा के अभगों के विना पूरे होते ही नहीं। तुकोवा के

---

१. किंवदन्ती है कि नामदेव ने सौ करोड़ अभंग लिखने की प्रतिज्ञा की थी। वे अपने जीवनकाल में ६६ करोड़ अभंग ही रच सके। शेप चार करोड़ नामदेव के अवतार कहे जानेवाले तुकोवा ने पूरे किये। लोग संतों के चरित्रों को अतिशयोक्ति से रंजित कर देते हैं। हो सकता है कि नामदेव और तुकाराम ने प्राप्त अभंगों की अपेक्षा अधिक अभंग भी रचे हों; पर काल के कठोर आघात से वे नष्ट हो गये हों।

अभंगों की भाषा घरेलू है—देहाती है। अभगों का विषयवार इस प्रकार विभाजन किया गया है—(१) आत्मचरित्रात्मक-आत्मपरीक्षक, (२) आत्म निवेदनात्मक, (३) उपदेशात्मक, (४) संतचरित्रवर्णनात्मक, (५) पौराणिक कथात्मक, (६) पाडुरंग स्तुतिपरक, (७) पंढरपुर स्तुतिपरक और (८) विविध।

तुकोबा के उपदेश

तुकोबा के उपदेशों मे कहीं-कहीं विरोधी कथन मिलते हैं। कहीं मूर्तिपूजा का निषेध है, कहीं समर्थन। वर्ण-व्यवस्था के प्रति उनमे द्वेष नहीं है। अभक्त ब्राह्मण का वे मुँह अवश्य जलाना चाहते हैं, पर ब्राह्मण जाति के प्रति उनका मन आदर से भरा हुआ था। वे जग को 'विष्णुमय' समझकर भेदाभेद को 'अमगल' मानते थे। ढोंगी कथाकार, मलग, फकीर, नकली संत और कवियों पर उन्होंने गहरा कटाक्ष किया है। साथ ही कबीर, और तुलसी के समान शाक्तों पर उनकी भी वक्र दृष्टि पडी है। भक्तिविहीन पाडित्य उन्हे दभ जान पडता था। (वह ज्ञान, वह चतुराई जल जाय जो विठ्ठल के चरणों मे अनुराग नहीं पैदा करती।)[1]

तुकोबा के वचनों में तीखापन—जो कभी-कभी गाली की सीमा पर पहुँच जाता था—अधिक है। इस सबध मे उनकी उक्ति है—

'तुम्हारा हित हो, इसलिए मै तीखे वचन बोलता हूँ। कड़वे काढे से ही ज्वर उतरता है।'

तुकोबा भी भाग्यवादी है। तुलसी के समान वे भी कहते हैं—

> 'ठेविले अनते तैसेहि रहावें।
> चित्तीं असों द्यावे समाधान।'[2]

(अनत (भगवान) जैसे रखे, वैसे ही रहो। चित्त मे इसी तरह सतोष रखना चाहिए।) उन्होंने ससार त्यागने का कहीं उपदेश नहीं दिया। वे कहते हैं, काल सर पर सवार है। नाशवान देह नष्ट होनेवाली है। इसका प्रतिपल विचार करो और परमार्थ करते रहो। ससार को बाहर से नहीं, भीतर से त्यागो।

तुकोबा ने एक बात मजे की कही है। उन्होंने सत्संग करने को तो कहा है, पर संतों के साथ अधिक सहवास मे रहने का निषेध किया है। क्योंकि ज्यादा साथ रहने से उनका कोई-न-कोई दोष साथ लग जायगा। दोष से छुटकारा पाना कठिन हो जायगा। अतः संतों को दूर से नमस्कार करना चाहिए। वे 'नाम'-स्मरण को मोक्ष से भी श्रेष्ठ मानते हैं। कीर्त्तन को लोकोद्धार का साधन मानते हैं, क्योंकि उसमे देवता, भक्त और नाम तीनों का 'त्रिवेणी-सगम' होता है।

---

१. जलो ते जाणीव जलो ते शहाणी
राहो मात्र भाव विठ्ठल पायीं ॥—तुकाराम

२. जाहि बिधि राखे राम ताहि बिधि रहिए ॥—तुलसी

तुकोबा के हिन्दी-पद

साराश यह कि वारकरी सम्प्रदाय के सिद्धातों के अनुरूप ही तुकोबा ने उपदेश दिये हैं। ज्ञानेश्वर, एकनाथ और तुकोबा के उपदेशों मे समानता है। क्योंकि तुकोबा के उपदेश, ज्ञानेश्वर और एकनाथ के ग्रथों के ही सूत्ररूप है, पर उनमे तुकोवा का व्यक्तित्व पृथक् से चमक उठा है। तुकोवा की विचार-धारा पर उत्तर भारतीय संतों की भी छाप है। कवीर का प्रभाव तो वहुत ही स्पष्ट है। तुकोवा के युग मे महाराष्ट्र मे कवीर के दोहा-साखी वहुत प्रचलित हो गये थे।

महाराष्ट्रीय अन्य संतों की भाँति तुकोवा ने हिन्दी मे भी रचनाएँ की है। ये रचनाएँ विषय की दृष्टि से निम्नलिखित श्रेणियों मे विभाजित की जा सकती हैं—

(१) गोपी-प्रेम, (२) पाखंड-उद्घाटन, (३) नीति और भक्ति-उपदेश।

गोपी-प्रेम के अन्तर्गत उनकी वे रचनाएँ आती हैं जो मराठी काव्य मे 'गोलण' के नाम से प्रसिद्ध है। इनमे कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया जाता है। यथा—

'हरि विन रहिया न जाए जिहिरा
कव की थाडी देखे राहा।
क्या मेरे लाल कवन चुकी भई
क्या मोहि पासिती वेर लगाई।
कोई सखी हरि जावे बुलवान,
वारहि डारूँ उस पर ये तन।
तुका प्रभु कव देख पाऊँ
पासी आऊँ फेर न जाऊँ।

गोपियाँ गोरस वेचने 'हाट' मे जाती हैं। मनमोहन आँखों मे झलक जाते है। वेचारी, सव कुछ 'विसर' जाती हैं। जहाँ पग रखती हैं, जहाँ दृष्टि जाती है, वहीं मूरत खड़ी दिखाई देती है। वे चकित हो जाती हैं; परन्तु 'मन का धोका' भाग जाता है। 'तुका' की 'गौलण' का यही सात्विक प्रेमभाव है। उनमें वृन्दावन की कुंज गलियों के लता—वितानों में श्लथ विहार की कहीं भी झलक नहीं है।

समाज में 'दरवेश', मलग आदि फकीर और भगवाधारी साधु भोली जनता को ठगते थे और आज भी ठगते है। उन्हे लक्ष्य कर जो पद कहे गये हैं, वे 'पाखंड उद्घाटन' के अन्तर्गत आते हैं। जव तक मन मे भगवान नहीं आ पाये है, तवतक 'भगवा' धारण करने से क्या लाभ ?[1]

---

1. 'तुका वस्तर (वस्त्र) वीचारा क्या करे,
ज्या को चीत भगवान होय।'

(अस्सल गाथा, पृष्ठ—१५१)

'सच्चा' 'दरवेश' वही है जो नर को बूझे।[१] अर्थात् जो मानव को पहचाने। यहाँ मानववाद की कितनी सहज अभिव्यक्ति है! इसी प्रकार जबतक 'ईछा' (इच्छा) नहीं मरी, 'लड़के, जोरू, कुटुम्ब' छोड़कर सिर मुड़ाने से क्या लाभ है?[२]

बाज़ारों मे शरीर को कष्ट देनेवाले 'सिरफोड़' फकीर और साधुओं पर भी 'तुका' ने व्यंग्य वर्षा की है—

तू तन भंजाता है, शरीर को कष्ट देता है, सिर काटता है, मूड़ कूटता है, तेरे ऐसे कृत्यों से लोग डरते हैं। पर क्या तूने एक बार भी हृदय से 'अल्ला' कहा है?[३] आँख खोलकर विश्व को देखा है? उसे पहचाना है? अल्ला को एक बार 'हाक' (पुकार) दे।[४]

तृतीय श्रेणी मे तुका के वे पद आते हैं जो नीतिपरक और भक्तिपरक है। वे कामनाओं को नष्ट करने का उपदेश देते हैं—

'तुका ईछा मिट गई तो काहा करे जट षाक'

(यदि कामनाएँ मिट गई हैं तो फिर जटा बढ़ाने और शरीर पर भस्म रमाने की क्या आवश्यकता है?) जिसमें मन से मन मिलता है वही 'भला' है।

ऊपर-ऊपर (का मिलना) तो माटी (शरीर) का घर्षण ही हुआ। उसमे स्नेह की क्या बड़ाई है?—

'तुका मीलना तो भला मन सु मन मील जाये,
उपर-उपर माटी धषणी नेह की कौन बराई।'[५]

तुकाराम संग उन्हीं का करना चाहते हैं जिनसे सुख दूना होता है—

'तुका संग तीन्हसुं करीये जीनथे सुष दुनाये।'
दुर्जन तेरा मुष काला थीता प्रेम घटाय।'[६]

'तुका' सन्तों के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु हैं। वे कहते हैं—

ज्याका चीत लागा मेरे राम को नाम।
कहे तुका मेरा चीत लागा त्याके पाउ।[७]

---

१. 'जिकिर करो अल्ला की बाबा, सबत्यां अंदर भेस,
कहे तुका जो नर बुझे, सोहि भया दरवेस।' (संत तुकाराम पृ० २१६)।

२. 'तुका कुटुम्ब छोरे लड़के जोरु सीर मुड़ाये'
जब ये ईछा नहीं मुई, तब तु कीया काये। (अ. गा. पृ० १५२)।

३. संत तुकाराम पृ० २२०।

४. अस्सल गाथा पृ० १५२।

५. वही पृ० १५३।

६. वही पृष्ठ १५३।

७. वही पृष्ठ १५३।

(जिनका चित्त मेरे राम के नाम के साथ लगा हुआ है, उन्हीं के चरणों मे मेरा चित्त लगा है।) वे इसी भाव को दूसरे शब्दों मे व्यक्त करते हैं—

'मेरे राम को नाम ज्यो लेवे वारंवार।
त्याके पाउं मौ तन के पैज्यार।'[1]

वे मनुष्य के 'तन' की जात-पॉत की परवा नहीं करते। वह चाहे 'वेड चंभार' कोई भी हो, यदि राम-भक्त है तो वंदनीय है।[2]

संसार मे परोपकार ही करना चाहिए। जो व्यक्ति केवल आत्मसाधनारत है, उसके प्रति 'तुका' की सहानुभूति है। वे कहते है, प्रकृति भी परोपकार में रत रहती है। भूमि 'भार' क्यों ढोती है ? दुधारू गाय अपना दूध कभी चखती है ? मेघ बरसता है, वृक्ष फलता है। चॉद सूरज क्यों 'फेरे' देते है ? वे क्षणभर भी विश्राम नहीं लेते। पारस स्पर्श देकर धातु को कंचन क्यों बनाता है ? यह सब परोपकार के लिए ही न ?[3]

तुका तो अपनी मृत्यु को अपनी आँखों से देखनेवाले साधक है। जिससे ससार डरता है, वही उन्हे मीठी लगती है ; क्योंकि उसी के द्वार से वे अपने 'जीवनप्यारे ठाकुर' के चरणों मे पहुँचने की आशा रखते है—

'कव मरुँ पाउं चरन तुम्हारे,
ठाकुर मेरे जीवन प्यारे।
जेग डरे ज्याकु सो मोही मीठा,
मणि उर अनंद माही पैठा।' (अ. गा. पृष्ठ १५१)

तुका के चित्त मे राम ने किस प्रकार घर कर लिया है, उसका अनुभव लीजिए—

'लोभी के चीत धन बैठा,
कामीन के चीत काम।
माता के चीत पुत बैठा,
तुका के चीत राम।'[4]

उसीसे वे और किसी से 'काज' न रख 'राम-राम' ही कहना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि एक वार 'उससे' अन्तर मे मिलन हो जाता है तब दुनियादारी के घर मे कोई भी पीछे लौट नहीं सकता।[5]

---

१. असलगाथा पृष्ठ १४३।

२. वही पृष्ठ १४३।

३. आप तरे त्याकी कोण बराई, आउरणु कुं भलो नाव धराही।
काहे भूमि येतना भार राखे, दुभत धेनु नहीं दुध चाखे॥
बरसत मेघ फलत है बीरख, कोण काम आपणी उन्होती रीषा॥
काहे चंदा सुरीज पावे फेरा, बीन येक बैठ नहीं-नहीं पावत छोरा।
(अ. गा. पृष्ठ १४३)

४. वही पृष्ठ १४४।

५. वही पृष्ठ १४४।

संसार मे कोई किसी का नहीं है. सब मायाजाल है—

'कवण की काया, कवण की माया'
येक राम बीन, सब ही जाया ।'

यद्यपि मराठी अभंगों मे 'तुका' के हृदय की 'तलमल' (व्याकुलता) अधिक हृदयस्पर्शी है तो भी हिन्दी-पद उससे सर्वथा रिक्त नहीं है । 'साखी' और 'दोहरों' मे उन्होंने अपने सारे आध्यात्मिक और नैतिक विश्वास भर दिये हैं । 'साखी और दोहरों' मे कबीर का अनुकरण लक्षित होता है, परन्तु उनमे उनकी अनुभूति का अंश भी कम नहीं है । उनमे छन्दोभंग जो पल-पल पर दिखाई देता है—इसका कारण यह है कि तुकोबा को मराठी अभंगों के रचने का अभ्यास अधिक रहा है और अभगों मे मात्रा की क्रम-रक्षा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । वे स्वच्छंद छन्द हैं । इसी कारण हिन्दी मे उपदेश देते समय वे छन्द-रक्षा का स्मरण नहीं रख सके । सच बात तो वे स्वयं कहते हैं—

'गीरीधरलाल तो भाव का भुका ।
राग कला नहीं जानत तुका ।'

अतः संतों की वाणी को किसी शास्त्रीय कसौटी पर नहीं कसा जा सकता । उनका लक्ष्य 'कला-शृंगार' न होकर ज्ञान-संचार होता है, आत्मनिवेदन होता है । फिर भी तुकोबा की रचना मे रूपक, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण अलंकारों का अनायास प्रवेश हो गया है । कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

'तुका रामसुं चीत बाँध राखु तैसा आपणी हात,[१]
धेनु बछरा छीर ज्याव प्रेम न छुटे सात ।'[२]

अर्थान्तरन्यास—

'चीत मीले तो सब मीले नहीं तो फोकट सग,
पाणी पत्थर येक ही ठोर को रण भीजे अग ।'

रूपक —

'प्रेम रसड़ी बाँधीगले, ऐंच च्यले उधर ।'[३]

हिन्दी-पदों मे एक विशेष बात यह द्रष्टव्य है कि तुकोबा ने अपने साम्प्रदायिक आराध्यदेव 'विठोबा' का उनमे कहीं भी उल्लेख नहीं किया । उन्होंने गोपाल (१५२), (१५४, १५५), रघुराज (१५३), गोविन्द (१५४), हरी (१५४), का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है ।[४] इसका कारण यह जान पडता है कि हिन्दी-पद उन्होंने हिन्दी भाषी जनता को लक्ष्य कर गाये है जो 'विठ्ठल' नाम से बहुत कम परिचित रही है ।

---

१. हाथ
२. साथ
३. ऐंच (खीच)
४. नामों के आगे 'अस्सल गाथा' के पृष्ठों की संख्या दी गई है ।

तुकाराम बुआ की 'असल गाथा' की हिन्दी-भाषा

तुकोबा ने मराठी मे धारावाहिक गति से अभंगों की रचना की है पर कभी-कभी लहर आ जाने पर उन्होंने तत्कालीन बोल-चाल की हिन्दी मे भी अभंग और दोहरे कहे हैं। सौभाग्य से श्री विनायक लक्ष्मण भावे ने 'तुकाराम बुवाची अस्सल गाथा' प्रकाशित की है। उसमें 'महाराजा के टालकरी व लेखक संताजी तेली जगनाडे' की वहियो की हू-ब-हू नकल है। संताजी ने तुकोबा के मुख से निःसृत वाणी को उसी समय उसी रूप मे लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया है, ऐसा भावे का विश्वास है। इसी से वे इस गाथा को 'निर्मल (अमिश्रित) प्रसाद' कहते हैं। अन्य अनेक गाथाओं मे सम्पादकों ने इस प्रकार की वैज्ञानिक सम्पादन-दृष्टि नहीं रखी।[1] जो हिन्दी के पद इस 'गाथा'[2] मे संकलित किये गये है, उनमें शब्द-रूपो की एकता कदाचित ही कहीं भंग हुई हो। इसलिए इससे महाराष्ट्र क्षेत्र मे सत्रहवीं शताब्दी मे दूसरी भाषा के रूप मे बोली जानेवाली हिन्दी के अध्ययन की सहज सुविधा प्राप्त हो गई है। भाषा का रूप सहसा परिवर्तित नहीं होता। अतएव तुकोबा की भाषा की प्रवृत्तियाँ उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती बहुत से महाराष्ट्रीय संतों की हिन्दी-भाषा मे भी देखी जा सकती हैं। इस दृष्टि से भी 'गाथा' की भाषा का अध्ययन आवश्यक है।

ध्वनि-प्रणाली

'गाथा' के हिन्दी पदो मे निम्न ध्वनियाँ पाई जाती है—(१) स्वर—अ, आ, ई, उ, ए (ये), ऐ, (यै), ओ, (ॐ), औ (यौ) अं।

ह्रस्व इ और दीर्घ ऊ ध्वनि-चिह्न नहीं मिलते। ह्रस्व इ और दीर्घ ऊ का काम क्रमशः दीर्घ ई और ह्रस्व उ से लिया गया है। इ के संबंध में केवल एक अपवाद है।

यथा—

चित→चीत (गाथा पृष्ठ १५२)

बापू→बापु

अपवाद—कहे तुका सो हि मुढा

ए, ऐ को ये, यै लिखा गया है। उदाहरणार्थ—येक, यैसा।

---

1. तुकाराम के अभंगों की ग्यारह गाथाएँ (भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा सम्पादित) प्रकाशित हुई हैं। पर भावे की अस्सल गाथा को छोड़कर किसी ने भी मूल भाषा की रक्षा का ध्यान नहीं रखा। बहुतों ने तो उसे शुद्ध कर अशुद्ध ही कर दिया है। शिवकालीन भाषा और लिपि में तथा आज की भाषा और लिपि में थोड़ा-बहुत अंतर अवश्यंभावी है।
2. देखिए—'तुकाराम बुवांची अस्सल गाथा' भाग १—२। (विनायम लक्ष्मण भावे शके १८४१ का 'आर्यभूषण प्रेस' संस्करण।)

ओ को एक स्थान पर उ के समान लिखा गया है। गोरखनाथ के मराठी 'अमरनाथ संवाद' मे भी ओ को उँ के समान लिखा गया है। यह ग्यारहवीं शताब्दी का लेखन-प्रकार माना जाता है।[1]

लाल कबली उढे पेनाये।

उढे मे ओ का उच्चारण उ और ओ के बीच की ध्वनि-सा हुआ है। अवरण (औरण) कुं भलो नाव धराई (अस्सल गाथा-पद ८०२)। बोलचाल की खड़ी बोली हिन्दी में भी आज्ञार्थक क्रिया के अन्त मे ओ का व के समान उच्चारण होता है। क्योंकि बलाघात उसके पूर्व वर्ण पर होता है।

उदाहरणार्थ—जाव, खाव, लाव,

तुलना—मराठी मे—धाव।

कहीं-कहीं औ का उच्चारण ओ के समान भी मिलता है। खड़ी बोली हिन्दी कौन→कोन; तुलना मराठी—कोण।

अपभ्रंश में भी और के स्थान पर ओ का उच्चारण मिलता है। बात यह है कि बोलचाल की हिन्दी में कौन को कऊन न बोलकर कोन और कौन, के बीच की ध्वनि उच्चारित की जाती है। 'औ' सयुक्त स्वर-ध्वनि मध्य भारतीय आर्य-काल मे विलुप्त हो गई थी, उसके स्थान पर 'ओ' स्वर-ध्वनि आ गई थी। अपभ्रश-ग्रथों मे यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। उदाहरणार्थ—यौवन→जोबन। ('ऐ' ध्वनि भी इसी प्रकार ह्रस्व हो गई है)। मालवी, बुंदेली में आज भी औ का उच्चारण प्रायः ओ के समान होता है। उदाहरणार्थ—खड़ी बोली हिन्दी सौ—मालवी सो। 'गाथा' में 'औ' को 'यौ' के रूप मे भी लिखा मिलता है। उदाहरणार्थ—और→यौर। कहीं-कहीं शब्दारंभ की अ ध्वनि ए के समान उच्चरित हुई है।

यथा—

चरन—चेरन (पृष्ठ १५१)

जग—जेग (पृष्ठ १५१)

कहीं-कहीं ए का उच्चारण ई के सदृश हुआ है। यथा :—

ले जावे—ली ज्यावे (पृष्ठ १५१)

व्यंजन :—

(१) क, ख, ग, घ — क वर्ग

च, छ, ज, झ — च वर्ग

ट, ठ, ड, ढ — ट वर्ग

त, थ, द, ध — त वर्ग

प, फ, ब, भ — प वर्ग

य, र, ल, ळ, व, स, ह

(२) अनुनासिक:

ण, न, न्ह, म, म्ह,

---

1. देखिए—भारतीय इतिहास संशोधन मंडळ, पुणे, अहवाल ११ पृष्ठ ३८ और महाराष्ट्र-सारस्वत, पृष्ठ ४४।

क—वर्ग का द्वितीय वर्ण वर्तमान नागरी-लिपि मे 'ख' 'चिह्न' से लिखा जाता है। परन्तु प्राचीन पाण्डुलिपियों मे महाराष्ट्र मे ही नहीं, उत्तर भारत मे भी 'ख' के स्थान पर ष ही मिलता है।

मराठी मे ख वर्ण का ष से चिह्नित होना शिवकालीन लिपि-प्रणाली कही जाती है। उदाहरण—षाते सोवते पाट (अस्सल गाथा पृष्ठ १५३)।

'गाथा' मे ड़ ध्वनि-चिह्न नहीं है।

अनुनासिक न के अतिरिक्त न्ह, म्ह, म चिह्न भी मिलते है।

मराठी मे ल सबंधी दो ध्वनियाँ वर्तमान है। उदाहरण बालक की ल ध्वनि और *तळमळ* की ल और ड के बीच की ळ ध्वनि[1]।

संताजी की बही में 'ल' ध्वनि को 'ल' के समान और ळ को ळ चिह्न से अंकित किया गया है।

अस्सल गाथा मे ड़ ध्वनि का काम ड से लिया गया है। यथा—पड़े=पडे (पृष्ठ १५४)

श, ष, स, इन तीनों ऊष्म-ध्वनियो का काम स से लिया गया है[2]। पालि, शौरसेनी और महाराष्ट्री मे श का स्थान स ने ले लिया। बोलचाल की हिन्दी मे ष तो लुप्त ही हो गया है, 'श' भी साहित्यिकों और पोथी-पुराण-पंडितों तक सीमित रह गया है।

'गाथा' में ष़ ध्वनि भी नहीं है। ष चिह्न ख और ष़ दोनों ध्वनियों को प्रकट करता है।

'गाथा' मे ह्रस्व इ के दीर्घीकरण के असंख्य उदाहरण मिलते हैं; क्योंकि गाथा की लिपि मे जैसा कि कहा जा चुका है, ह्रस्व इ है ही नहीं। उदाहरण :—

इच्छा—ईछा
मिलना—मीलना
हरि—हरी (पृष्ठ १५४)

---

१. मराठी में मूर्धन्य ळ ध्वनि कहाँ से आई है, इस संबंध में मतभेद हैं। वैदिक ळ और मराठी ळ का संबंध नहीं है। मैक्समूलर के मत को मानते हुए डा० तुलपुले (यादवकालीन मराठी भाषा, पृष्ठ ३१ में) कहते हैं "वैदिक ऋग्वेद ब्राह्मणों के पाठ में जो 'ल' है, उसका उद्गम ड से है। ऋक्, प्रातिशाख्य में ड और ढ की ल लह प्रक्रिया कही गई है। ळ ध्वनि द्राविड़ी भाषाओं से आई जान पड़ती है।" ज्ञानेश्वरीकाल में 'ळ' ध्वनि मिलती है। अतएव प्रतीत होता है कि १४ वीं शताब्दी में मराठी में ळ ध्वनि प्रचलित हो गई थी। यह ध्वनि पंजाबी, गुजराती, उड़िया और कुछ हिमालय की पहाड़ी बोलियों में भी पाई जाती है।

२. अस्सल गाथा में लिपिकार द्वारा श के प्रयोग का एक ही उदाहरण मिला है। इसे हम उसकी या प्रेस की असावधानी कह सकते हैं।

चित्त—चीत
सम्पत्ति—संपती (पृष्ठ १५४)
कठिन—कठीण
शिर—सीर (पृष्ठ १५५)

दीर्घ ऊ के ह्रस्वीकरण के अनेक उदाहरण मिलते हैं; क्योंकि लिपिकार ने दीर्घ ऊ को अपनी वर्णमाला में स्थान ही नहीं दिया।

उदाहरण—खड़ी बोली हिन्दी	ऊपर—गाथा हिंदी	उपर
,,	भूल ,, ,,	भुल
,,	हिन्दू ,, ,,	हींदु
,,	छूटे ,, ,,	सुटे

ह्रस्व उ के पश्चात् सयुक्त स ध्वनि आने पर उ का व में परिवर्तन पाया जाता है—

उस्ताद→वस्ताद

निम्नांकित महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राण ध्वनियों में परिवर्तन पाया जाता है—

(१) झ के स्थान पर ज

उदाहरण— मुझे→मुजे
तुझे→तुजे
समझ—समज

प्रो० दिवेटिया और प्रो० कुलकर्णी का कहना है कि संस्कृत य वर्ण से गुजराती और मराठी में 'ज' और 'झ' वर्ण आये हैं। डा० तुलपुले ने इस नियम के समर्थन में जो मराठी उदाहरण दिये हैं, वे हिन्दी मे भी लागू होते हैं। यथा—

कार्य→काज,
वध्या→बोझ
द्यूतकार→जुआरी[1]

मराठी में इनका संस्कृत तालव्य उच्चारण भले ही न रहा हो, पर हिन्दी में वह विद्यमान है।

(२) ख के स्थान पर क का आगम। यथा—

भूख→भुक
(सस्कृत बुभुक्षा से मराठी भूक)

(३) ठ के स्थान पर ट का आगम। यथा—

झूठ→झुट

(४) फ के स्थान पर प का आगम। यथा—

सफेद→सोपेत

---

१. देखिए—यादवकालीन मराठी, पृष्ठ २८।

(५) थ के स्थान पर त का आगम। यथा—

हाथ—हात

(संस्कृत हस्त→प्रा० हत्त→मराठी हात)

(६) ध के स्थान पर द का आगम। यथा—

उधर→उदर

(७) छ के स्थान पर च का आगम। यथा—

बिच्छू→बिच्चु तुलना—मराठी—विंचू

कहीं-कहीं ग के स्थान मे क का आदेश मिलता है। उदाहरण—

हिन्दी लोग→लोक; संस्कृत लोक→मराठी—लोक

(मराठी में कई तत्सम शब्दों के अन्त्य व्यंजन-रूप सुरक्षित रह गये हैं।)

जब शब्द के अन्त में द आता है तब द का त मे परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

पसंद→पसंत

शब्दान्त और कहीं-कहीं मध्य न का ण में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

कौन→कोण (तुलना—मराठी—कोण)

पानी →पाणी

अपना→अपणा

खाना →षाणा

कठिन→कठीण

(तुलना—मराठी—कठीण)

जानत→जाणत

शब्द में जब द्वितीय वर्ण ह आता है, तब प्रथम वर्ण एकारान्त हो जाता है और प्रायः ह का लोप भी हो जाता है। यथा—

पहनना→पेनना

दक्खिनी हिन्दी में भी मालवी के समान यही प्रवृत्ति पाई जाती है। यथा—

कहना के स्थान पर केना, रहना के स्थान पर रेना, महना के स्थान पर मेना आदि बोला जाता है।

कहीं-कहीं ह का भ में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

दुहत→दुभत

साहित्यिक हिन्दी मे जहाँ एक ही शब्द में दो मूर्धन्य ध्वनियाँ निकट-निकट आ जाती हैं, वहाँ 'गाथा' की हिन्दी मे प्रथम ध्वनि दन्त्य हो गई है —

साहित्यिक	हिन्दी	टूटे	गाथा—हिन्दी		तूटे
,,	,,	ठंडी	,,	,,	थंडी
,,	,,	देड़	,,	,,	घेड़

'गाथा' में ड़ के स्थान पर र ध्वनि मिलती है यथा—

झोपड़ी→झोपरी

बछड़ा—बछरा

छोड़—छोर

चमड़ी—चमरी

कहीं-कहीं र के स्थान पर ड भी मिलता है। यथा—

रसरी—रसड़ी (पृष्ठ १५२)

छ के स्थान पर स ध्वनि-रूप मिलता है। यथा—

छूटे—सुटे

पूछत—पुसत

विधि-क्रिया में श द के ज और य के मध्य य ध्वनि का आगम पाया जाता है। यथा—

जाये—ज्याये

जाओ—ज्याव

वजाय—वज्याये

अनुनासिक व्यंजन-ध्वनियों के निकटवर्ती स्वर अनुनासिक हो गये हैं। यथा—

खड़ी	बोली	हिन्दी	काम—गाथा	हिन्दी	काम
,,	,,	,,	राम— ,,	,,	राम
,,	,,	,,	जिनसे—,,	,,	जीन्हसु
,,	,,	,,	तुम्हारे—,,	,,	तुम्हारे
,,	,,	,,	नहीं— ,,	,,	नंही

संयुक्त र के पूर्ण वर्ण होने के उदाहरण मिलते हैं। यथा—

व्रत—वरत

वस्त्र—वस्तर

गर्व—गरव

शर्म—सरम

य का ज में परिवर्तन मिलता है। यह प्रवृत्ति अन्य प्रदेशों में भी पाई जाती है। यथा—

अन्तर्यामी—अंतरज्यामी (पृष्ठ १५३)

व का ब में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

विदेश—बीदेस

एकाध स्थल पर द का ड में परिवर्तन पाया जाता है।

खड़ी बोली हिन्दी दाग—डाग (पृष्ठ १५५)

(तुलना—मराठी—डाग)

संज्ञा-रूप की कतिपय विशेषताएँ—

संज्ञा मे खड़ी बोली के समान ही एकवचन और बहुवचन पाये जाते हैं।

बहुवचन प्रायः ए प्रत्यय लगाकर बने हैं; पर कहीं न और ओ प्रत्ययों से भी बनाये गये हैं। यथा—

एक प्रत्यय से बने हुए बहुवचन संज्ञा-शब्द—

छोरा—छोरे
लरका—लरके
गोता—गोते
राजा—राजे

न प्रत्यय के बहुवचन रूप—

संत—संतन[1]
कामी—कामीन[2]

ओ प्रत्यय से बना बहुवचन रूप—

जग—जगो

कहीं-कहीं सब जोड़कर भी बहुवचन बनाया गया है—सब लोक

व्यंजनान्त पुंलिग-संज्ञा का एकवचन और बहुवचन-रूप प्रायः समान पाया जाता है—

एकवचन		बहुवचन
लोक	—	लोक

यथा—पढ़ीया लोक रिसाये

कर्तृवाच्य संज्ञा

कर्तृवाच्य संज्ञा का एक रूप मिलता है—

कहे तुका सब चलन्हारा

बोलचाल में ह्रस्व न का उच्चारण हलन्त न् सुना जाता है—

~ क्या गाउ कोण सुननवाला

छोटा भाव दिखाने के लिए अकारान्त संज्ञा-शब्द मे डी प्रत्यय लगा मिलता है—

नाव—नावडी

---

१. *संतन* पन्हंयां जे पडा रहुंग ···द्वार—अस्सल गाथा पृ० १५५।
२. लोभी के चित धन बैठा *कामीन* के चीत काम—वही पृ० ,, ।

कारक (परसर्ग-चिह्न)

कर्ता—कोई चिह्न नहीं मिलता

कर्म—कुं—उदाहरण—असंतन कुं सत न माने

करण—सुं, थें

उदा० -सुरा सोही लडे हमसुं, छोडे तन की आस (पृष्ठ १५४)।

मोसु हरी थें कैसे बनाये (पृष्ठ १५४)

सम्प्रदान—कुं

अपादान—सुं

संबंध—का, के, की

उदा०—कवण का मंदीर (पृष्ठ १५४)

माता के चीत (पृष्ठ १५५)

कवण की माया (पृष्ठ १५४)

अधिकरण—मे, माही

उदा०—मनमे एक ही भाव (पृष्ठ १५१)

अनदमाहीं पैठ।

सम्बोधन—रे, हो

उदा०—तुकाराम बहुत मीठा रे भर राखु शेरीर। (पृष्ठ १५५)

सर्वनाम

पुरुषवाचक	एकवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष कर्त्ता—	मैं, हूँ	हम
कारण—	मुज से मोसुं	—
सम्प्रदान—	मुजे, मेरे को	—
मध्यम पुरुष कर्त्ता	तु, तुं	तुम्ह
सम्प्रदान	तुम्हें	
अन्यपुरुष	सो (पृष्ठ १५४)	

मैं—खड़ी बोली हिंदी—मैं, संस्कृत मया—प्राकृत मइ, मए—अपभ्रश—मइँ—मराठी—मी।

बंगला—मइ, उड़िया—मु

उदा०—कहे तुका *मैं* ताको दास

हूँ—सस्कृत अह—शौरसेनी अहमं, अहऊ—अपभ्रश—हमुं, हउ, व्रज—हौं—निमाड़ी—हउ, हूँ, गुजराती—हुँ

उदा०—चेलते पीछे हु फीरू फीरू रज उड़ते लेउ सरीर।

मुजे—खड़ी बोली हिंदी—मुझे, महाराष्ट्री प्राकृत—मज्झ

हम की उत्पत्ति—प्राकृत अम्हे, म्हे (ह और म के स्थान परिवर्तन से हम)।

तु, तुं की उत्पत्ति—संस्कृत त्वया अथवा त्वम्—प्राकृत तुम, तुऊं—अपभ्रंश—तुहं, खड़ी बोली हिंदी—तू, मराठी—तूं, उड़िया—तुं।

उदा०—अल्ला येक तु नबी येक तुं।

तुम्ह, तुम्हे—संस्कृत तुभ्यं—प्रा० तुम्हे—अपभ्रंश तुम्हइं—खड़ी बोली हिन्दी में तुम्हें। 'गाथा' मे एक जगह तुम्हे सम्प्रदान के रूप मे नहीं, कर्ता एकवचन के रूप मे प्रयुक्त हुआ है—

उदा०—काहे सषी तुम्हें करती सोर।
(सखी तुम क्यों शोर करती हो?)

निर्देशवाचक सर्वनाम—वो, सो, ओ
सो—संस्कृत—सः—प्राकृत—सो

उदा०—सुरा सोही लडे हमसुं छोडे तन की आस।

निजवाचक—अपणा, आपणा
प्राकृत—अप्पाणो—अपभ्रंश—अप्पाणु—खड़ी बोली हिन्दी—अपना

प्रश्नवाचक—कोण, कवन, किया (क्या)
संबंध—काहेका, क्यों, किउ, काहे।

संस्कृत—कः पुनः—प्राकृत कवन, कवण, कोउण—ख. बो. हिं. कौन (मराठी—कोण)।

संबंधवाचक—जो, जिस, जिन (को); जो संस्कृत यः→प्राकृत यो, जो; जिसः सं० यस्य→प्राकृत जस्स—हिन्दी—जिस।

सर्व-बोधवाचक सर्वनाम—सब, सबही सबः, संस्कृत सर्व→प्रा०—सब्ब

निश्चयवाचक—(१) निकटवर्ती—ये, उत्पत्ति संस्कृत—एते
(२) दूरवर्ती—उस, संस्कृत अमुष्य—प्राकृत—अउस्स

अनिश्चयवाचक—कुच—सं० कश्चित् किछु, संस्कृत किंचिद् प्रा० किछि ख. बो. हिंदी—कुछ।

गुणवाचक सर्वनाम विशेषण—ऐसा, तैसा, कैसा, कइसा।

"गुणवाचक विशेषण रूपों का संबंध सं० यादृश, तादृश आदि रूपों से जोड़ा जाता है। जैसे संस्कृत—कीदृश—केरिसा—ख. बो. हिं—कैसा।"[१]

संख्यावाचक शब्द—'गाथा' मे ख. बो. हिन्दी के समान बहुत से संख्यावाचक शब्द हैं, पर वर्तमान मराठी में प्रचलित कुछ शब्द भी मिलते हैं—

खड़ी बोली हिन्दी—दो के लिए दोन—मराठी दोन
" " " —पच्चीस के लिए पंचीस—मराठी पंचवीस
" " " —तैंतीस के लिए तेहतीस—मराठी तेहतीस

---

१. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ २८७।

क्रिया-संबंधी विशेषताएँ

वर्तमान काल— एकवचन बहुवचन

	एकवचन	बहुवचन
१.	हु, (उं और उ प्रत्यय)	हे (ए प्रत्यय)
२.	हे, (ए ,,)	हो, ओ ,,
३.	हे, (ए, अत ,,)	है, ऐ ,,

उदाहरण (१) रहुं—(मैं रहता हूँ)
खेलु—(मैं खेलता हूँ)
लेउ—(मैं लेता हूँ)
जानता— जानत—जानता है।
(२) फोरे—(वह) फोड़ता है।

भूतकाल—या प्रत्यय उदाहरण दीया
ई प्रत्यय ,, मुई
भविष्य— ए प्रत्यय ,, मीले
आज्ञार्थक—उ प्रत्यय ,, चाखु
तुलना—अवधी मे भी यही प्रत्यय लगता है।

'गाथा' की भाषा में विदेशी शब्द

तुकोबा सत्रहवीं शताब्दी मे हुए हैं और इस समय महाराष्ट्र में मुसलमानी सत्ता छाई हुई थी। अतएव अरबी-फारसी शब्दों का प्रचलन क्रमशः जनता मे हो रहा था। 'तुकोबा' के पदों में उनका प्रवेश स्वाभाविक तो है, पर अधिक नहीं है। 'अस्सल गाथा' मे निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग मिलता है—

जीकिर (जिक्र—अरबी)
दीदार (फ़ारसी) नफा (अरबी) काफर (काफिर अरबी)
दुनिया (दुनिया अरबी) आला (अरबी) कमतरीन (अरबी)
हजुर (हुजूर अरबी) अवल (अव्वल अरबी)
बाज्यार (बाज़ार फारसी)

कान्होबा

ये तुकाराम महाराज के छोटे भाई और परमार्थ-मार्गी शिष्य हैं। जिस समय तुकोबा ने बैकुठवास लिया, उस समय इनके मुख से जो अभग निःसृत हुए, उनमें करुणा की अत्यधिक आर्द्रता है। वारकरी-सम्प्रदाय में कान्होबा के अभगों की प्रतिष्ठा है। श्रीरामचन्द्र भालेराव ने उनकी एक हिन्दी-रचना प्रकाशित की है। वह इस प्रकार है—

'चुरा-चुराकर माखन खाया ग्वालिन का नंदकुमार कन्हैया
काहे बड़ाई दिखावत मोही
जानत हू प्रभु मन तेरो सब्ही

श्रौर बात सुन ऊखल सो गला बाध लिया तूने अपना गोपाला
फिरता बन-बन गाय चरावत कहे तुकया बंधु लकरी ले-ले हाथ।
(कोशोत्सव स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ ६७)

समर्थ रामदास

समर्थ का समय ईसा की सत्रहवीं शताब्दी था। उस समय राजनीतिक क्षेत्र में मुसलमानों का आतंक छाया हुआ था। महाराष्ट्र दो टुकड़ों मे—आदिलशाही और मुगलाई मे बॅट चुका था। पुणे का भाग स्वतंत्र था। अतएव उसके आसपास की जनता सुख की सॉस ले रही थी। परन्तु उत्तर भारत से मुगलों की सेनाओं के आक्रमणों के कारण शेष जनता सशंक रहती और समय-समय पर उनके अत्याचारों का शिकार होती रहती। इतना होने पर भी मुसलमानों के साथ तीन शताब्दी तक रहते-रहते हिन्दू जनता भी क्रमशः उनके साथ सामाजिक संबंध बढ़ाने लगी थी।

धर्म के क्षेत्र मे वारकरी संतों ने 'भेदाभेद भ्रम-अमंगल' की भावना प्रचारित कर मानवता की प्रतिष्ठा कर दी थी। वे सभी मतों के प्रति उदार थे। इसका परिणाम यह हुआ कि 'मुसलमान फकीरों की यात्रा मे हिन्दू जनता जाती थी और मुसलमान भी हिन्दुओं के धार्मिक उत्सवों का विरोध नहीं करते थे। इतना ही नहीं, अब अनेक मुसलमान भी वारकरी संतों के भागवत्-सम्प्रदाय के अनुगामी बन रहे थे।...शेख सल्ला साधु पूना मे थे। स्वयं धर्मान्तरित मुसलमान होते हुए भी उन्होंने अनेक हिन्दुओं को मुसलमान होने से बचाया। शेख मुहम्मद भागवत-सम्प्रदाय मे शामिल हो गया। 'हिन्दू भी मुसलमान स्त्रियों के साथ व्यवहार करने लगे थे। "हिन्दू-मुसलमानों मे ही नहीं, हिन्दुओं की भिन्न-भिन्न जातियों में भी वैवाहिक संबंध सहानुभूति के साथ बढ़ रहे थे।....धार्मिक दृष्टि से धर्म-व्यवस्था नहीं रह गई थी।' [1] ब्राह्मणों का पतन हो चुका था। शाहजी की जागीर मे भले ही हिन्दू सुखी रहे हों, पर महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्रों में उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। ऐसी परिस्थिति में रामदास और उनके शिष्य शिवाजी का प्रादुर्भाव हुआ।

समर्थ की जीवनी

समर्थ रामदास ने, जिनका मूल नाम नारायण था, जाम्भ ग्राम में चैत्र शुक्ल नवमी शक-संवतसर १५३० को जन्म धारण किया। उनके पिता सूर्याजी पन्त अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के पुरुष थे। सूर्योपासक थे। कहा जाता है कि वे प्रतिदिन सूर्य-नमस्कार और गायत्री का जप किया करते थे। सूर्यनारायण की कृपा से संतति होने के कारण उसका नाम 'नारायण' रखा गया था। नारायण के एक ज्येष्ठ बन्धु और थे जिनका नाम गंगाधर था। 'रामदास' के जीवन-वृत्त को जानने के लिए, उनके समाधि-ग्रहण के चार दिन पश्चात् उनके निकटतम शिष्य दिवाकर गोसावी द्वारा लिखाये गये 'वाके निशी प्रकरण', उसके कुछ वर्ष पश्चात् गिरिधरकृत' 'समर्थ प्रताप' और रंगो लक्ष्मण मेढे की शक सं० १७१५ में

---

१. मराठी संतों का सामाजिक कार्य (डा० कोलते), पृष्ट ११३-११६।

लिखित तथा १७४० में परिवर्धित 'हनुमंत स्वामीची बखर' मुख्य साधन हैं। 'वाकेनिशी प्रकरण' सबसे प्राचीन और लगभग समर्थकालीन होने से अधिक प्रामाणिक है। उसी के आधार पर उनके जीवन की मुख्य घटनाओं को प्रस्तुत किया जाता है।

जब रामदास सात वर्ष के थे, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया था। पर पिता के समय में ही उनकी प्रतिभा का चमत्कार प्रकट होने लगा था। चार वर्ष की अवस्था में वे दिये हुए किसी भी पाठ को कंठस्थ कर लेते थे। शक संवतसर १५४२ में जब उनकी माता ने उनका विवाह करना चाहा और मंडप में ज्यों ही लग्न के समय 'सावधान' सुना, वे सचमुच सावधान हो गये और भाग गये। भटकते-भटकते नाशिक के निकट टाकळी पहुँच गये जहाँ उन्होंने बारह वर्ष तक गोदावरी नदी के मध्य एक पाँव पर खड़े होकर गायत्री के कई पुरश्चरण किये और तेरह करोड़ 'श्रीराम जय राम जय-जय राम' का जप किया। इसी अवधि में कहा जाता है, उनका भगवान राम से साक्षात्कार हुआ और वे उन्हीं के द्वारा दीक्षित हुए। बारह वर्ष तक तपस्या करने के उपरान्त बारह वर्ष उन्होंने देश-भर के तीर्थ-क्षेत्रों की यात्राएँ कीं। इससे उन्हें अपने देश की स्थिति का अच्छा ज्ञान हो गया और उन्हें धर्म-स्थापना की स्फूर्ति प्राप्त हुई। शक स० १५७० में चाफळ में उन्होंने राम की मूर्ति स्थापित की। शक १५७१ में शिवाजी और स्वामी रामदास की प्रथम ऐतिहासिक भेंट होने का उल्लेख 'वाकेनिशी' में मिलता है। इस तिथि के संबंध में महाराष्ट्र के विद्वानों मे पर्याप्त मतभेद है। श्री राजवाडे और देव 'वाकेनिशी' की तिथि को मान्यता देते हैं और श्री भाटे तथा चादोरकर इसका विरोध कर शक सं० १५६४ में इस भेंट का होना प्रतिपादित करते हैं। दोनों लेखक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। भाटे और चादोरकर अपने पक्ष-समर्थन में दो पत्रों का उल्लेख करते हैं। पहला पत्र केशव गोसावी का है जो दिवाकर गोसावी के नाम है। उसमें लिखा है कि 'शिवाजी भोंसले रामदास से मिलने आ रहे हैं, राजा प्रथम बार वहाँ आ रहे हैं।' दूसरा पत्र भास्कर गोसावी का है जिसपर 'शके १५८०' अंकित है। यह भी दिवाकर के ही नाम पर है जिसमें लिखा है कि 'मैं जब शिवाजी के पास गया तब उन्होंने मुझसे मेरे बारे मे पूछा और यह भी पूछा कि कहाँ से आये हो? जब मैंने कहा कि मैं रामदासी हूँ तब उन्होंने पुनः पूछा कि रामदास कहाँ रहते हैं वे मूलतः कहाँ के रहनेवाले हैं?'

प्रथम पत्र में उल्लेख है कि शिवाजी प्रथम बार रामदास के यहाँ जा रहे हैं। दूसरे पत्र से ज्ञात होता है कि 'शके १५८०' तक शिवाजी को रामदास के संबंध में यह भी ज्ञात नहीं था कि वे कहाँ रहते हैं। इन्हीं आधारों पर श्री भाटे और चादोरकर का निष्कर्ष है कि शके १५७१ में शिवाजी और रामदास की भेंट नहीं हो सकती। इस संबंध में श्री राजवाडे और देव का कहना है कि उपर्युक्त दोनों पत्र जाली प्रतीत होते हैं। वे मूल नहीं हैं। उन्हें मूल की नकल कहा गया है। उनमें जो तारीखें दी गई हैं, उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि वे जाली न भी हों, तब भी उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि शिवाजी और समर्थ में उन तिथियों के पूर्व भेंट ही नहीं हुई। हो सकता है, राजा ने आर्थिक सहायता देने के पूर्व व्यक्ति की परीक्षा लेना ठीक समझा हो कि वास्तव में वह

'समर्थ' के आश्रम का प्रतिनिधि है अथवा ठग है। समर्थ और शिवाजी की भेंट की प्रथम तिथि ही मान्य होनी चाहिए। तभी हम शिवाजी के पीछे रामदास की प्रेरक शक्ति की कल्पना कर सकेंगे।

रामदास और राजनीति

क्या रामदास केवल संत थे या शिवाजी के माध्यम से समय की राजनीति में भी हाथ बँटाते थे ? यह प्रश्न भी विवादास्पद है। उन्होंने जो शहापुर, मसूर, चाफळ, उम्ब्रज, माज़गाव, बाहे, मनपॉडले, पारगाव शिरदले, और शिगणवाड़ी में हनुमान की स्थापना की, उसमे भी उनकी राजनीतिक दृष्टि बतलाई जाती है। उस समय ये प्रमुख स्थान समझे जाते थे। सामान्य धारणा तो यही है कि शिवाजी को स्वराज्य स्थापना के लिए प्रेरित करनेवाले रामदास ही हैं। इसके विपरीत दूसरा मत यह है कि 'रामदास का शिवाजी की राजनीति से कोई संबंध नहीं रहा। यदि रामदास न भी होते तब भी शिवाजी का 'स्वराज्य-स्थापन' आन्दोलन चलता। रामदास केवल संत थे। इस मत के पुरस्कर्ताओं में प्राध्यापक माटे भी हैं।

समर्थ ने प्रत्यक्ष राजनीति में भाग भले ही न लिया हो, पर वे अपने युग के उत्पीड़न से सर्वथा तटस्थ नहीं रहे, उनके 'साधन चतुष्टय' का दूसरा अङ्ग 'राजकारण' (राजनीति) हैं।[1] उन्होंने 'दासबोध' में स्पष्ट संकेत किया है कि चलवल (आन्दोलन) में ही सामर्थ्य है। परन्तु आन्दोलन ऐसा चाहिए जिसमें 'भगवन्त का अनुष्ठान' हो। स्वराज्य का आन्दोलन जिसमें असंख्य जनता का सुख निहित है, क्या भगवन्त के अधिष्ठान से रहित है ? अतएव रामदास ने लोक-कल्याण की दृष्टि से यदि शिवाजी में स्वराज्य की प्रेरणा भरी हो तो इससे उनका संतत्व घटा नहीं, प्रत्युत बढ़ा ही है।

तुकाराम और समर्थ रामदास

तुकाराम समर्थ रामदास के समसामयिक सन्त रहे हैं। अतः दोनों की पंढरपुर की यात्रा के समय कभी भेंट हुई होगी। महाराष्ट्र में इन दोनों संतों के गुरु-शिष्य सम्बन्ध होने की चर्चा भी चली थी। तुकोबा के शिष्यों (रामेश्वर भट्ट, निलोबा आदि) ने कहीं भी यह नहीं लिखा कि तुकोबा ने समर्थ से गुरुमंत्र प्राप्त किया। परन्तु समर्थ के शिष्यों और भक्तों ने यह प्रतिपादित किया है कि (१) समर्थ ने तुकोबा को तारक मत्र का उपदेश दिया और (२) उनका 'तुका' 'तुकाप्पा' नाम बदल कर 'तुकाराम' नाम रखा'।[2]

इस सम्बन्ध में प्रथम ध्यान देने योग्य बात यह है कि तुकोबा ने 'बाबाजी' को अपना

---

१. साधन चतुष्टय—"मुख्य हरिकथा-निरूपण। दुसरें तें राजकारण तिसरें सावधानपण। सर्व विषई। चौथा अत्यन्त सापेक्ष।" (दास बोध) ११, ५, ४,

२. देखिए—'रामदास आणि रामदासी' भाग १०, पृष्ठ ३७०।

गुरु कहा है।[1] उन्होंने कहीं भी समर्थ रामदास के तारक मंत्र का उल्लेख नहीं किया। प्रोफेसर दाडेकर का यह कथन उचित है कि तुकोबा और समर्थ-शिष्यों की परमार्थ कल्पना में भेद है। तुकोबा भगवान के किसी भी नाम और मंत्र को 'तारक' मानते हैं, परन्तु समर्थ शिष्यों का विश्वास है कि 'तारक मत्र' के विना कैवल्यपद की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त समर्थ शिष्यों की धारणा है कि मुमुक्षु को जहाँ तक संभव हो, 'ब्राह्मण को गुरु बनाना चाहिए।' यह वृत्ति तुकोबा की नहीं रही। वे स्वयं अब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मणों के गुरु थे।[2] इस प्रकार भीतरी प्रमाण से तुकोबा और समर्थ का गुरु-शिष्य-सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। बाह्य साक्ष्य से भी तुकोबा और समर्थ का गुरु-शिष्य सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। तुकोबा का काल शके १५२९-३० से शके १५७२ और समर्थ का जन्म शके १५३० है। बारह वर्ष की आयु मे समर्थ घर से निकल गये। बारह वर्ष तक उन्होंने तपस्या की, बारह वर्ष तक तीर्थाटन किया। शके १५६६ में वे लौटकर अपनी माता से मिले। अतः तुकोबा ने जब शके १५७२ में समाधि ली, तब छः वर्ष के भीतर उन्होंने समर्थ को गुरु बनाया हो, यह सभव नहीं प्रतीत होता। यदि ऐसा होता तो समाधि के पूर्व तुकोबा अपने किसी अभग मे इस क्रातिकारी घटना का उल्लेख अवश्य करते। गुरु का महत्त्व प्रतिपादित करने में सन्तों ने कभी झिझक प्रदर्शित नहीं की। अतः निष्कर्ष यह है कि रामदास और तुकोबा मे कभी भेंट हुई होगी; पर उनमें कभी गुरु शिष्य-सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ।

समर्थ की कृतियाँ

समर्थ की रचनाओं की सख्या अधिक है। परन्तु उनमें (१) दासबोध (२) मनाचें श्लोक (३) करुणाष्टक और (४) विभिन्न मराठी छोटे-बड़े ग्रंथ तथा स्फुट अभंग और हिन्दी पद उल्लेखनीय हैं। दासबोध की रचना शके १५८१ में हुई है। इसमे अध्यात्म-उपदेश के अतिरिक्त अपने समय की स्थिति का अत्यन्त सजीव वर्णन किया गया है। इसका हिन्दी रूपान्तर स्व० माधवराव सप्रे ने किया है। 'मनाचें श्लोक' में मन को प्रबुद्ध करनेवाले २०५ श्लोक हैं। इसमें अद्वैत तत्त्वज्ञान का सार भरा हुआ है। इसका हिन्दी मे पद्यबद्ध रूपान्तर डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने किया है। करुणाष्टक में रामदास के हृदय की भगवान के प्रति मिलन-उत्कंठा की भावनाएँ व्यजित हैं। इस आत्मपरक काव्य में भावना की सूक्ष्मता और उत्कटता दर्शनीय है। समर्थ के नाम पर लघु और दीर्घ रामायणें भी प्रसिद्ध है। लघु रामायण में सुन्दरकाण्ड तथा दीर्घ रामायण में सुन्दर और युद्धकाण्ड हैं। उनके नाम पर एक 'किष्किन्धाकाण्ड' भी मुद्रित है। पर उसे मराठी के शोधक विद्वान् प्रामाणिक नहीं मानते।

एकनाथ के अनुकरण पर उन्होंने मराठी में 'भारूड़' भी लिखे हैं।

---

१. देखिए—रामदास आणि रामदासी, पृष्ठ ३७१—'बाबाजी सदगुरूदास तुका' 'बाबाजी आपुले सांगीतलें नाम।'

२. वही, पृष्ठ ३७१।

समर्थ के हिन्दी-पद

'समर्थ-गाथा' तथा धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता मंदिर की जीर्ण पाडुलिपियों तथा अन्य स्रोतों से जो रामदास के हिन्दी-पद प्राप्त हुए हैं, वे राग रागिनियों मे भी गाये जा सकते हैं। (परिशिष्ट मे मैंने समर्थ के कई अप्रकाशित हिन्दी-पद विभिन्न हस्तलिखित पोथियों के पाठान्तर के साथ दे दिये हैं।) उनमें मराठी संतों का 'परमात्मा की सर्व व्यापकता का भाव' ध्वनित हुआ है। समर्थ राम के भक्त थे। अतएव प्रत्येक स्थल पर अपने आराध्य को देखते थे। वे अपने 'राम' को 'मोहन नागर', 'सॉई' आदि नामों से भी अभिहित करते हैं। वे कहते हैं—

जित देखो उत राम हि रामा।
जित देखो उत पूरण कामा
तृण तरुवर सातो सागर
जित देखो उत मोहन नागर।
जल थल काष्ठ पषाण-अकासा।
चंद्र सुरज नच तेज प्रकासा।
मोरे मन मानस राम भजो रे।
रामदास प्रभु ऐसा करो रे।

यदि मन मे राम नहीं समाया है तो धन-दौलत, राज्य-लाभ, तीर्थव्रत, स्नान, योग-साधन से क्या होगा?

राम न जाने नर तो क्या जी।
धन दौलत सब माल खजीना
और मुलुख[१] सर किया तो क्या जी
गंगा गोमति रेवा तापी
और बनारस न्हाया[२] तो क्या जी।

हिन्दू और मुसलमान नाम से दो 'मजहब' भले ही चले हों; पर दोनों का सर्जनहारा तो एक ही है, वही सृष्टि को चलाता है—

'हिन्दू मुसलमान मजहब चले सरजनहारा
साहेब अलम कुं चलावे सो अलम थी[३] न्यारा।'
घट घट साहिया रे अजब अला मिया रे।
ये हिन्दू मुसलमाना दोनों चलावें पछाने सो भावे।

जिसकी 'परमार्थ' के प्रति लगन है, वह 'अल्ला मिया' को प्यारा है। संसार मे सभी वस्तुएँ क्षण-भंगुर हैं, परन्तु 'गैबी' (परमार्थ-साधक) नहीं—

'देहरा तुटेगा मशीदी तुटेगा
तुटेगा सब हम सों
तुटत नहीं फुटत नहीं गैबी सो कैसी रे भाई।

---

१. मुल्क २. नहाया ३. थी (गुजराती) = से।

वह अलख-निरजन कैसा है? कहा नहीं जा सकता—वर्णनातीत है। वह [illegible] भला करता है, वह सब की भलाई बुराई देखता है। अतएव सबको 'भलाई' [illegible] चाहिए। इस भाव की लगभग ८४० पंक्तियाँ हमें धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता [illegible] की हस्तलिखित पोथी क्रमाक ६६८ में प्राप्त हुई हैं। यह पोथी लगभग दो सौ वर्ष प्राचीन है। उसकी भाषा तत्कालीन जन-भाषा प्रतीत होती है जो खड़ीबोली का दक्षिण में व्यवहृत बाजारू रूप है। उसकी कतिपय पंक्तियाँ[1] नीचे दी जाती हैं—

"हरा ना पिला रग काला नहि रे
सिफेदी नहीं क्या कहु में इसे रे।
सबे रंग से वो नियारा खुदा हि।
मु से हि कहे सा नाहि वो ईलाहि ॥"

(उसका रग न हरा, न पीला और न काला है। वह न सफेद ही है। (अतः) मैं क्या कहूँ? वह खुदा सभी रगों से न्यारा है। वह इलाही मुँह से कहने योग्य नहीं है अर्थात् मुख से उसका वर्णन नहीं हो सकता।)

पवन पर च्यले चंद तारा हमेशा
सुरिज्बी चले वो बड़ा हे तमाशा
गगन्मो च्यले मह्नु वो हि पवन सो
पवन बी नहि रे कहे रामदासो ॥

(पवन पर चंद्रमा और तारे हमेशा चलते हैं, सूरज भी चलता है। बड़ा तमाशा है। गगन में मेह उसी पवन से चलते हैं, पर रामदास कहता है, वह पवन भी नहीं है)

गले मोहि कफ्नि हातो म्यान तस्बि
खुदा क्या हि बाता मुं से वोहि गैबि
कहे बात वैसा राहा से च्यले सो
ईनो कि ही कफ्नि कहे रामदासो ॥

(गले में न कफनी है और न हाथ में तसबीह (माला) है। जिसके मुँह से केवल खुदा की बात निकलती है, वही गैबी (परमार्थ-साधक) है। जो जैसी बात कहता है, उसी प्रकार (उसी तरह चलता है) आचरण करता है, उसीका वास्तव में कफनी धारण करना सार्थक है।

उपरिनिर्दिष्ट पाण्डुलिपि में लगभग २४० पंक्तियाँ रामदास के नाम से अंकित हैं परन्तु उसी संस्था में संग्रहीत अन्य हस्तलिखित पोथी क्रमाक १८४० में वही रचना कतिपय पाठान्तर के साथ 'देवदास' के नाम पर लिखी मिलती है। यह पाण्डुलिपि सन् १९२७ में दादा सा० करन्दीकर को पुणे के पुराने बाजार में प्राप्त हुई थी। इसकी नकल सन् १९३२ में की गई। लिपिकारों ने, प्रतीत होता है, यत्र-तत्र भाषा-शुद्धि की है। 'नहि' के 'हिं' को प्रत्येक स्थल पर दीर्घ 'हीं' कर दिया गया है। अन्य स्थलों पर भी खड़ी बोली का शुद्ध रूप मिलता है। अब प्रश्न यह है कि उपर्युक्त रचना वास्तव में किसकी मानी जाय—समर्थ रामदास की या देवदास की? देवदास नाम के दो सतकवि

---

१. **पूरी रचना परिशिष्ट में देखिए।**

महाराष्ट्र मे प्रसिद्ध हैं। एक समर्थ-शिष्य है और दूसरा चैतन्य-शिष्य है।[1] समर्थ शिष्य देवदास की रचनाओं मे तेजी है और मुसलमानों की भर्त्सना भी। उदाहरणार्थ—

अहा रे अहा तूं मुसलमान वेडा
मसीदींत जावून का हाक फोड़ा[2]

(अरे तू पागल मुसलमान ! मस्जिद मे जाकर क्यों चिल्लाता है ?)

हिन्दी की विवाद्य रचना में देवदास की तेजी और छन्दगति तो है; पर मुसलमानों के प्रति भर्त्सना का भाव कहीं नहीं है। प्रत्युत हिन्दुओं की पत्थर-पूजा की भी निन्दा है—

आज्य बसा महज्यव हिन्दु दिवाना
फतर्कि पुज्या क्या कहुँ कोन माना
फतर्कि मूरत तुहि ने बनाई
बना कर्तुहि ने वाहों नेत ल्हाई ॥
सबो से हि यारि करो सब्दुन्या मे
× × ×
जिन्हों से तिन्हों से भलाई ज्यनों मे
ईसि मोहि रे भला फायदा हि
भला हे भला हे कहेगा सबो हि

देवदास की जो अन्य रचनाएँ मिली हैं, उनमे व्यंग्य और प्रहार अधिक है। वह दार्शनिक गहनता या भक्ति का तादात्म्य नहीं है जो रामदास की उपर्युक्त रचना मे पाया जाता है।

एक देवदासी 'गारूड़ी' की झलक देखिए :—

अवल याद करू वस्ताद की
पीर पैगम्बर नबी की
साधु संत महंतों की
जीने ये मंडान पैदा किया।
और मैं देवदास गारोडी
खेलने की बाजी करूं खडी
इसमें आडी तीडी उस लंडी का काम नहीं ॥

देवदास की रचनाओं के उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि (१) उनमें रामदास के समान उदार भाव नहीं हैं। (२) उनमें आध्यात्मिक चिन्तन की गहनता नहीं है और जो पंक्तियाँ पाण्डुलिपि क्रमाक ६६८ मे रामदास के नाम पर है, उनमे रामदास की आध्यात्मिक साधना और उदार दृष्टि की स्पष्ट छाया है और वे दो सौ वर्ष प्राचीन हस्त लिखित पोथी में पाई गई हैं। अतः उनका उन्हीं के द्वारा रचा जाना अधिक सभव है। पाडुलिपि क्रमाक १८४० की रचना में 'देवदास' नाम जाली जान पड़ता है।

---

1. देखिए—महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ ५०३-५०४।
2. वही पृष्ठ ५०३।

रामदास के कतिपय हिन्दी-पद 'दास फकीरा' के नाम से भी मिले हैं। उपर्युक्त संस्था की पाण्डुलिपि, क्रम-सख्या १८८८ में, एक पद यह है—

सबघट भाई रे खुदाई।
खाली जागा नई रे खुदा बिना ज्यानत नाई रे
झुट कहे सो झुट दिवाने खबर न पाई रे
दास फकिरा—कहे इतनाहि अतर भाई रे

समर्थ के समय मे मुसलमानों का महाराष्ट्र जीवन से सम्पर्क बढ़ गया था। अतएव समर्थ का उर्दू मिश्रित हिन्दी से परिचित होना स्वाभाविक है। उन्होंने भारतवर्ष की तीर्थ-यात्राएँ भी की थीं। इस कारण भी उनका उत्तर की भाषा से सहज परिचय हो गया था। तुकाराम की हिन्दी भाषा मे उच्चारण और वर्ण-प्रक्रिया की जो विशेषताएँ पाई जाती हैं, वे रामदास की भाषा में भी विद्यमान हैं, क्योंकि दोनों एक ही समय में हुए हैं। रामदास के हिन्दी-पदों मे संतोचित काव्य रस है। यह हिन्दी के लिए क्या कम गौरव की बात नहीं है कि महाराष्ट्र मे अपूर्व क्रान्ति का सचार करनेवाले कर्मयोगी सत ने उसे राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर उसमे उपदेश दिये?

रंगनाथ

रामदास पचायतन मे श्री रगनाथ स्वामी का नाम आता है। पचायतन के अन्य चार सत जयराम स्वामी, आनदमूर्ति, ब्रह्मालंकार, केशव स्वामी भागानगरकर और स्वयं समर्थ स्वामी रामदास की गणना होती है। रगनाथ स्वामी आनंद सम्प्रदायी कहे जाते हैं। स्व० विनायक लक्ष्मण भावे ने इस सम्प्रदाय की परम्परा इस प्रकार दी है:—

विष्णु — विधि — अत्रि— दत्त—सदानद—रामानद—अमलानंद— गभीरानद—ब्रह्मानंद—सहजानद—पूर्णानद।

पूर्णानद के दत्तानद, निजानद, चिदानंद और सदानद नामक चार शिष्य हुए। दत्तानंद के ब्रह्मानद और ब्रह्मानद के श्रीधर शिष्य हुए। निजानद के शिष्य रंगनाथ स्वामी हैं। इनका जन्म शक सं० १५३४ मार्गशीर्ष शुक्ल को हुआ था। अपनी चौदह वर्ष की अवस्था में ये घर से निकलकर बद्रिकाश्रम पहुँच गये और वहाँ कुछ समय ज्ञान सम्पादन कर लौट आये। यहाँ आने पर इन्होंने अपने पिता निजानद से ही गुरु-दीक्षा ली। इनके सबध में एक रोचक घटना 'महाराष्ट्र सारस्वत' मे वर्णित है।[1] एक बार एक स्त्री इनसे एकात में मिलने आई और इनसे प्रेयसी-भाव से मिलन-कामना का हठ करने लगी। स्वामी जी ने अनेक प्रकार से समझाया, पर उसे इनकी कोई भी बात समझ में नहीं आई। अन्त में स्वामीजी ने उससे कहा कि मैं तुझसे अमुक समय मे मिलूँगा। ज्यों-ज्यों समय बीतता

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत (आवृत्ति चौथी) पृष्ठ ४४०

जाता, वह व्याकुल होती जाती। व्याकुलता में वह इतनी तन्मय हो गई कि उसे भान ही न रहा कि कब रंगनाथ बुआ आकर उसके पास बैठ गये। जब उसकी दृष्टि महाराज पर पड़ी, तब उसका सारा विकार चला गया और वह स्वस्थ हो गई। रंगनाथ स्वामी ने उसे अपनी शिष्या बना लिया। इनका एक हिन्दी-पद मिला है—

देखा नाथ गोपाला जग मो (ध्रुवपद)
कुलयुग स्थाने ले अवतार, आप रूप अविनाशी
चारो मुक्ती सेवा करती, होकर उनकी दासी
घट पर घट मो आप रमे है, आप गुरु आप चेला
जोग जुगत मे हमेशा खेले, झूठे घर मे झूले
छह अठरा का विचार लेकर, पडत होकर भूले १
सब संतन मो नाथ रंगेली।
रंगनाथ जन गुरु बन ले, आप दुजा नहि कोई
अंदर बाहिर भज ले भाई, रूप रेखा नाही।
गुरु नाम का धोंसा वाजे, निरगुन खेल खेला जग मो॥

वामन पंडित (रामदासी)

इनके जन्मकाल के संबंध मे कुछ भी ज्ञात नही। वाई के निकट भोगॉव मे इनकी समाधि बनी हुई है, जिसपर जन्म शके और समाधि-शके अंकित हैं।

जनमशके १५ १ (स्पष्ट नही)
समाधि शके १६१० ,,

ये रामदास महाराज के समकालीन थे। रामदासी परम्परा के लेखकों ने इनका कई जगह उल्लेख किया है। रामदासी सम्प्रदाय के विश्वकोष (श्रीदास विश्राम धाम) मे भी इनका उल्लेख है। यह अच्छे हरि-कीर्तनकार थे। इनकी एक हिन्दी-रचना दी जाती है।

तो मै हरिका भगत कहावूॅ (ध्रुवपद)
हरिका रूप सब जग देखूॅ। और न कोई को जावूॅ।
गीतोयो सब भगत बराई। हरि भगत को सुनावूॅ।
वामन कहे दुजा देव न मानू। सब देव हरि रूप भाउॅ।

समर्थ शिष्य कल्याण

समर्थ के शिष्यों मे कल्याण का स्थान बहुत ऊॅचा है। इनका जन्म बायुल या भोगूर नामक स्थान मे हुआ। इनके पिता सन्यासी हो गये थे। वे (कृष्णाजी पंत) भोगूर के कुलकर्णी (पटवारी) थे। विवाह के उपरान्त उन्हे एक पुत्रलाभ हुआ।

उसके बाद पत्नीऋण से मुक्त हो वे ससार से निवृत्त हो गये और तीर्थयात्रा को निकल गये। उत्तर की यात्रा समाप्त कर जब ये दक्षिण मे कोल्हापुर मे जगदम्बा के मदिर मे ठहरे हुए थे, उसी समय पारगॉव के बखाजी पत भी वहॉ व्यापार के लिए आये हुए थे। वे मदिर मे दर्शनार्थ गये। कृष्णाजी का भजन हो रहा था। दोनों ने परस्पर को पहचान लिया। बखाजी कृष्णाजी को अपने घर ले आये। उनकी एक बहिन थी। वह अविवाहिता थी। उन्हे स्वप्न हुआ कि उसका विवाह कृष्णाजी से कर देना चाहिए। कृष्णाजी को भी उसी रात यह स्वप्न हुआ कि यदि तू बाबाजी की बहिन से विवाह नहीं करेगा तो तुझे उसी के लिए पुन. जन्म लेना होगा। सवेरे जब कृष्णाजी तुलसी वृदावन के ओटले पर बैठे भजन कर रहे थे तब बखाजी ने उनके पास जाकर उन्हे अपना स्वप्न कह सुनाया। कृष्णाजी ने भी अपना स्वप्न (दृष्टान्त) बतलाया। कृष्णाजी विवाह के लिए राजी हो गये। धूमधाम से विवाह हुआ। बखाजी की बहिन का नाम रखमाबाई रखा गया। वे धार्मिक वृत्ति की थी। पुत्र के लिए उन्होंने अम्बा की मानता मानी कि मुझे 'विजयवत, शहाणा (चतुर) पुरुपार्थी, उभयकुलतारक, गुरुभक्त, सुकृती पुत्र प्राप्त हो।" अत. जब प्रथम पुत्र प्राप्त हुआ तब उसका नाम अम्बाजी—अम्बादास—रखा गया। दूसरा पुत्र दत्तात्रय की मानता से हुआ। अतः उसका नाम दत्तात्रय रखा गया। दो भाइयों के बीच एक बहिन भी थी। कृष्णाजी पत पुनः विरक्त हो गये और सन्यास ग्रहण कर काशी-यात्रा के लिए निकल गये। उनकी पत्नी रखमाबाई सतति सहित अपने भाई के पास चली गई। अम्बाजी बाद मे कल्याण के नाम से पुकारे जाने लगे।

कल्याण की जन्मतिथि और जन्मस्थल दोनों अनिश्चित हैं। पर समर्थ ने उन्हे शक संवत् १५६७ मे दीक्षा दी, यह निश्चित है। 'हनुमत-स्वामी की बखर' से यही ज्ञात होता है। उनकी प्रयाणतिथि शकसवत् १६३६ अधिक आपाढ शुक्ल १३ है। अतः उन्होंने ८६ वर्ष की पूर्ण आयु भोगी।

उद्धव-सुत ने 'रामदास चरित्र' में अम्बाजी पत को व्यापारी कहा है। गणेश शंकर देव कल्याण के दीक्षा-समय की आयु २६ या २७ वर्ष मानते है और जन्म शक १५४०।[1]

कल्याण की गुरु-सेवा अटल थी। वे समर्थ के साथ सतत रहते थे। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र थी और हस्ताक्षर सुन्दर थे। समर्थ बोलते जाते और कल्याण द्रुतगति से लिपिबद्ध करते जाते। इस प्रकार समर्थ के सभी ग्रथ कल्याण की लेखनी से अवतरित हुए। कल्याण ने स्वय भी मराठी और हिन्दी मे रचनाएँ की है। अष्टपदी, भूपाल, आरती, स्फुटश्लोक, विभिन्न पद आदि मिलाकर उनकी पद-रचनाओं की संख्या १४४८ है। उनकी हिन्दी रचनाएँ कम प्राप्त हुई है। एक पद है—

> आलख जागे गुरु गोरख जागे ॥धृ॥
> आलखनिरञ्जन भाव न भावे। सब घट व्यापक आलख जागे ॥
> जो कोऊ राखे गोइ हीयाकू। सो ही गोरख आलख जागे ॥
> मन की जोगिणी समजत बूझे। नाथ निरजन कल्याण जागे ॥

---

1. देखिए—समर्थ शिष्य-कल्याण—पृष्ठ २१६।

कल्याण ने 'रूक्मिणी-स्वयंवर' नामक एक कथा-काव्य भी लिखा है जो १५० वर्ष प्राचीन पाण्डुलिपि मे (धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता मदिर में) सुरक्षित है। उसी 'मंदिर' मे प्राप्त पाण्डुलिपि संख्या ५४६ मे यह आख्यान तीन सतों के नाम पर मिलता है— (१) मुकुन्दराज (२) मुकुन्ददास (३) कल्याणस्वामी। मराठी प्राचीन वाङ्मय-इतिहास मे तीन मुकुन्दराजों का उल्लेख मिलता है। एक मुकुन्दराज शके १३५० के लगभग विद्यमान बतलाये जाते है। 'स्वयंबर' की भाषा मे अरबी, फारसी के शब्दों की प्रचुरता है। इसलिए यह मुकुन्दराज की रचना नहीं हो सकती। दूसरे मुकुन्दराज मराठी के आदि कवि बारहवीं शताब्दी मे हुए हैं। तीसरे भीम स्वामी के शिष्य गोविंदबाबा के भतीजे भी मुकुन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये रामदासी हैं। पर इनका ठीक काल ज्ञात नहीं है और न इनके नाम पर कोई अन्य रचना ही मिली है। साथ ही मुकुन्ददास नामक किसी सन्त का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। हो सकता है कि मुकुन्ददास और मुकुन्दराज एक ही हों। अतः 'रुक्मिणी-स्वयंबर' को अन्य प्रमाणों के अभाव मे कल्याणकृत ही मानना चाहिए। उसकी कुछ पक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

वैदर्भ येक मुलुख। वहा कौडण्यपुर देख
दरी भीम भूप नेक।
सखि जोर जबर सारा।
दरिम्या ने महताब। जीतो सुरत की आब
हुई पैदा खुब ख्वाब। उसकू रुक्मण प्यारा॥
× + ×
हुई रुक्मिण बेजार। तपें तपती गुलनार
तुटे मोतेन के हार। छपर-पलंग लेहटती॥

पद्य की भाषा तत्कालीन महाराष्ट्र में प्रचलित और उच्चरित लोक-भाषा है।

मानसिंग

इनके संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है, परन्तु भारत इतिहास-संशोधन मडल (पुणे) ने उनका एक पद प्रकाशित किया है जो इस प्रकार है :—

राग व्याहाग (बिहाग)

बिगरी कौन सुधारे नाथ। बिगरी कौन सुधारे (ध्रु०)
बनि बने का सब कुइ साथी। दीनानाथ गुंसाई रे।
भरी सभा में लज्या राखी, दीनानाथ गुंसाई रे।
करु वेल की करु तुमरिया, सब तीरथ फिर आई रे।
गंगा न्हाई जमुना न्हाई तो बिन गई कड़वाई रे।
दया धरम का ज्याल बनाया, समुद्र बीच तिर आया रे।
कर्मी धर्मी पार उतर गये। पाप सो नाव डुबाई रे।

भली बुरी ये दोनों वहिना। परापरी सो आई रे।
नाथ जलंदर मुद्रावाले मानसींग जस गाई रे।[1]

उपर्युक्त पद की भाषा मे महाराष्ट्रीय हिन्दी रूप है। ओ के स्थान पर उ (कोई—कुइ) औ के स्थान पर ओ (कौन—कोन) ड के स्थान पर र (विगरी) भ के स्थान पर व (तोवि) की वर्ण-प्रक्रिया तथा अकारान्त सज्ञा का बहुवचन आकारान्त (वहिन—वहिना) आदि इसके उदाहरण हैं।[2] फिर भी उसमे गति है। कवि का अपने 'नाथ' मे अटल विश्वास है, क्योंकि वही 'विगरी' सुधार सकता है। मानव प्रकृति तीर्थ-यात्राओं से उसी प्रकार परिवर्तित नहीं होती जिस प्रकार कड़वी वेल की कड़वी तुमड़ी कई तीर्थों का जल भर कर भी अपनी कड़वाहट नहीं त्याग पाती। ये सब सन्त-परम्परा के अनुरूप अभिव्यक्तियां हैं। ये जलन्धरनाथ का यश गाते हैं। इसलिए इनका नाथ पथी होना सिद्ध होता है। यद्यपि इनकी अपने मत के प्रति निष्ठा है तथापि इनमे कोरा मत प्रतिपादन नहीं है, काव्य-प्रतिभा भी है। दुर्भाग्य से इनका एक ही पद मिला है। ये शिव-कालीन जान पड़ते हैं।

वहिणाबाई

ये महाराष्ट्र की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। तुकाराम की शिष्या हैं। इनके पति का नाम रत्नाकर पाठक था। ऐसा प्रतीत होता है कि इनका सौभाग्य बहुत समय तक नहीं रह पाया। वैधव्यावस्था मे इनकी वृत्ति आध्यात्म की ओर हो गई और इन्होंने तुकाराम को अपना गुरु मान लिया। महाराष्ट्र साहित्यकारों मे बहुत समय तक विवाद चलता रहा कि ये तुकाराम की शिष्या हैं या समर्थ रामदास की। क्योंकि इन्होंने तुकाराम की समाधि के पश्चात् कुछ समय रामदास महाराज के सहवास में भी व्यतीत किया था। अतः इनकी गणना रामदास की शिष्य-मडली में भी होती है। डा० तुलपुले ने महाराष्ट्र सारस्वत की पुरवणी में लिखा है कि अब इस शका के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है कि वहिणाबाई वारकरी थीं या रामदासी। क्योंकि स्व० पागारकर ने शिऊर की पोथियों को स्वयं देखकर यह निर्णय दे दिया है कि वहिणाबाई नाम की महाराष्ट्र में एक ही सत कवयित्री हुई है और वह तुकाराम की शिष्या है।[3]

वहिणाबाई की गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

आदिनाथ शंकर—मत्स्येन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गहिनीनाथ—निवृत्तिनाथ—ज्ञानेश्वर—सच्चिदानंद बाबा—विश्वभर—राघव—चेतन—केशव चैतन्य—बाबाजी चैतन्य—तुकाराम—वहिणाबाई।

---

१. देखिए—भारत इतिहास संशोधन मंडल (पुणे) शके १८३६, अहवाल पृ० ७६।

२. महाराष्ट्र में सतरहवीं शताब्दी में हिन्दी-भाषा के रूप को विस्तार से समझने के लिए देखिए इसी पुस्तक का 'तुकाराम की भाषा'-प्रकरण—पृष्ट १६८।

३. देखिए—महाराष्ट्र सारस्वत (चतुर्थ आवृत्ति) पृष्ठ ६७७।

हिन्दी-रचना

इनकी कृष्ण-सबधी रचनाएँ अधिक प्राप्त हैं, जो 'गौलण' शीर्षक के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। 'गौलण' (गोपी) का मन कृष्ण से मिलने के लिए आतुर होता है। वह सब कुछ भूलकर सकेत-स्थल पर दौड़ना चाहती है और अपने आराध्य प्रियतम कृष्ण के साथ एक प्रकार हो जाना चाहती है। उदाहरण के लिए एक 'गौलण' नीचे दी जाती है—

जमुना के तिर धेनु चरावत है गोपाल री।
गीत प्रबध हास्य विनोद नाचत है श्री हरी।
धर कानों मे कुडल लाल, सिर पर मोरपिखा नदलाल
अबीर गुलाल सबके माला, हार सुवास पिन्हाये।
जाइ जुई चम्पक कोमल चदन चोवा लाए
छंद धीमा धीमा सुनावत है हरि, बध गयो मेरो प्रान
बहिणी कह सो भूल गए मेरा हरि से लगा है मन।

इनके एक पद मे अद्भुत रस का भी समावेश है। वह कुछ कबीर की 'उलटबासी' के समान प्रतीत होता है—

अजब बात सुनाई भाई।
गरुड़ पंख हिरावे कागा लक्ष्मी चरन चुराई
ये सूरज की थींव अंधारे सोवे चबरकू भाग जलावे
राहु के गिरहो भोगी कहा रे अमृत ले भर जावे
कुवेर सोवे धनके आस हनुमान नीर मँगावे
वैसे सबहि झुठा है निंदा की बात सुनावे।
समींदर तान्हो चीरत कैसों साधु मॉगत दान
बहिणी कहे जन निंदक है रे बाको सॉच न मान॥

बहिणाबाई के अन्य पदों की भाषा मे भी व्यवस्था नहीं है। उसमे बदा, हजूर, साहेब, फिकीर, अल्ला, जिकिर, पीर, हुसीयार आदि विदेशी शब्द दिखलाई देते हैं। इन शब्दों का रामदास और तुकाराम के समय में महाराष्ट्र मे काफी संचार हो गया था। तुकाराम के पूर्ववर्ती सत एकनाथ की रचनाओं मे भी अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता है।

बयाबाई

महाराष्ट्र में बयाबाई और बाइयाबाई नामक दो स्त्री-संतों का उल्लेख मिलता है। आजगावकर दोनों को एक मानते है, परन्तु 'महाराष्ट्र सारस्वतकार' भावे दोनों को भिन्न मानते हैं। बयाबाई के मठ की उत्तराधिकारिणी संभवतः बाइयाबाई थीं, और बयाबाई रामदास की शिष्या थीं। 'समर्थ प्रताप' के रचयिता गिरिधर बाइयाबाई के शिष्य थे और उन्होंने अपने ग्रंथ में उनका उल्लेख किया है। बयाबाई का २४ वर्ष तक जीवन-लीला-क्रम चलता

रहा। इस अवधि मे उन्होंने न जाने कितने जीवों का उद्धार किया।[1] परन्तु बयाबाई तो रामदास को ही अपना गुरु कहती है—

'रामदास गुरु उन की दासी।
दास बचन फिरे देस बिदेसी।'[2]

(मै रामदास गुरु की दासी हूँ, रामदास के वचनों को देश-विदेश मे फिर कर फैलाती रहती हूँ।)

अतएव बयाबाई और बाइयाबाई दो भिन्न स्त्री सत हैं। बयाबाई के सबध मे विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। वे रामदास स्वामी की शिष्या थी, इसे वे स्वयं स्वीकारती है। अतएव उनके समय मे वे निश्चित रूप से रही हैं और 'देश-विदेश' की उन्होंने यात्रा भी की है।

रचना

बयाबाई की जो थोड़ी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, वे हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं मे हैं। उनकी रचनाओं मे आत्म-विभोरता और प्रासादिकता है। गुरु के प्रति कितनी स्निग्ध आस्था है—

'क्या कहूँ रे गुरुनाथ की बात मे (मैं)।
मस्त भया है दिल मेरा रग मे
लाल रग मे सफेद खुला है।
कोइ नहि जाने आप भुला है।
जब सद्गुरु के पग लीन होना
रामदास गुरु पथ की दासी।
दास बया फिरे देस विदेसी।'

एक गीत मे अरबी-फारसी का खूब रग चढा हुआ है—

'अल्ला हे वेफिकीर मे कहाँ जावो रे।
जाहाता वोहि खडा येहि मेरे नैनोरे।
नजर के सदर मे खल्के हजर होरे।
रात दिन जाहा नही सोहि खुदा पायोरे।
जी लिया जान लिया मेरा मुजाका नही
जब तो वेयान हुवा आज कुछ सुनता नहि रे।
पल पल के खेल न्यारे जिसके हजारो हुवे,
रगातीत मेरा साईदाम बया को मिला रे।'

---

1. कित्येक जीव उद्धारिले जाण।
चारमासी वर्षं परमार्थं केला ॥ [समर्थ प्रताप ११ वाँ, समाज]
2. महाराष्ट्र कवयित्री—पृष्ठ २०६।

दिल मे ही यह जग समाया हुआ है। यहीं अन्तर्मुख होकर 'झूले मे झूलो, जनम मरण से छुटकारा मिल जायगा—

'जायो (जाओ) सखीरी जहा गुरु बैठा
जिसके दिल में येहि जग बैठा ॥ ध्रुवपद ॥
बाग रगेला मेहेल बना है।
इस झुलने पर झुलो रे भाई।
जनम मरन की भूल न आई।

'दासबया' कहती है—

'दास बया कहे गुरु भैया ने
मुझ कू झुलाया सोहि झूलने।'

गुरु के अनुग्रह से वह हृदय के हिंडोले पर झूल कर विभोर हो सकी है। बयाबाई गुरु के उपकार बखान करते-करते तनिक भी नहीं थकतीं—

ध्याइये गुरुपग अघमोचन। सुखदायक भवाब्धितम ॥ध्रु॥
चिद् गगन में आसन खूला। जापर सद्गुरु राज रमीला ॥
सूर्यचंद वो दिवटि जलत है,
जब देखा तब डूब गई तन ॥
जाकी सत्ता जगमो भरि है जा देखो तहाँ ढाड रही है,
सो सद्गुरु किरिपा सो मिलती, सब छाड के पग जा सरन।

विद्वत्ता साथ नहीं देती, गुरु ही साथ देता है—

लिखा पढ़ा कछु संग नहि आवे,
अंतकाल मे सबही जाये।
जोरु लडके महल मजालस
यहा रहती फेरे आपत्ति जाना।
दिल का मेहर मिल गया दिल को,
तारनहारा गुरु है सब को।
दास बया कहे कछु नहि देखा
जब देखा तब उलटा नयन।

स्वर्गीय राजवाडे ने उचित ही कहा है कि बयाबाई की रामदास पर अपरम्पार भक्ति थी—इतनी अधिक कि किसी पतिव्रता स्त्री की अपने पति पर भी न होगी। संभवतः इसी कारण लोगों को फबतियाँ कसने का भी अवसर मिला हो। वह प्रेम मे इतनी भूली-भूली दीख पड़ती है कि अपने गुरु को 'भाई' तक से संबोधित कर बैठती है। मराठी अभंगों में भी इसने इसी प्रकार की बेसुधी दिखलाई है।

बया की हिन्दी मे बहुत कुछ स्वच्छता है। मुस्लिम प्रभाव से जनता में अरबी फारसी का प्रचलन हो गया था। कवि भी उन्हें अपनी रचनाओं में प्रयुक्त करने लगे थे। इसके अतिरिक्त बयाबाई ने उत्तर भारत के नगरों की यात्रा की थी, जहाँ विदेशी शब्दों का चलन लोकभाषा मे महाराष्ट्र की अपेक्षा अधिक था। अतः बया की भाषा में इनका मिश्रण स्वाभाविक ही है।

बयाबाई की देहलीला कब समाप्त हुई, इस सबध मे साहित्य के इतिहास मौन हैं। इस क्षेत्र मे शोध की आवश्यकता है।

हरिहर

ये सत कवि शक स० १६६१ (ईसवी सन् १६४०) के पूर्व हो गये है। ये कहाँ हुए हैं, यह ज्ञात नहीं है। इन्होंने हिन्दी, कन्नड़ और मराठी तीनों भाषाओं में रचना की है। इनका हिन्दी में लिखा हुआ निम्नाकित पद मिलता है, जो सभवतः शक स० १६४० में रचा गया है—

साहेब मन्न प्यारा आपे आप हुवा सारा
सबसे भरपुर होकर आखर सब सु समझय न्यारा।
मुझमे मध्य कु बेचुन[1] कर करु कुपट दिलका भारा।
उठत बैठत सोवत जागत, हरिहर पद मो थारा।

इस पद के 'सु' और 'थारा' में गुजराती और गुजराती मिश्रित निमाड़ी हिन्दी की छाया है।

केशव स्वामी

शक सवत् १६०० के लगभग केशव कवि, जो बाद में केशव स्वामी कहलाये, पैठण के आसपास कहीं हुए हैं। शिवाजी महाराज के सम-सामयिक हैं। हैदराबाद मे इनकी समाधि है। इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा 'सिद्धेश्वर→नारायण→केशव' दी है। इनके हिन्दी में पर्याप्त पद मिलते हैं, कुछ प्रकाशित हैं और बहुत से अप्रकाशित हैं। हैदराबाद की मराठवाड़ा साहित्य-परिषद् इनके पदों का सग्रह कर रही है। इनके पदों में कृष्ण की भक्ति उमड़ी पड़ती है, पर ये महाराष्ट्रीय सतों की भाँति ही निर्गुण भक्त हैं। इनका 'माधव' सगुण होकर भी 'निर्गुण' है। जब-जब ये भीतर झाँकते हैं, 'परमसुन्दर कृपामयी मूरती' दिखलाई देती है।[2] वह मूर्ति 'चंदन चर्चित है, उसके भालपर कस्तूरी का लेप है और मस्तक पर मुकुट है। वह पीत पटधारी है और गोकुल में विहार करती है। पर उसी मूर्ति मे राम भी झलकते हैं। इनका एक पद है—

'लागी हो गोविन्दा से पिरती[3]
हृदय कमल मे जब-जब देखू। परम सुन्दर पगी श्याम की मूरती।[4]

---

१. बेचैन
२. देखिए परिशिष्ट, पदसंख्या-८
३. प्रीति
४. मूर्ति

धन सुत संपति कछु नहि आवत,
निशिदिन सुखरुप हरीगुण गावत,
आदि पुरुष हरिनंद का सुत,
निरखत नयरो[1] डरे जमदुत ।[2]
आनन्द धन मन मोहन श्याम,
रहत केशव मोकुं[3] मिलाया राम ।'

ये अपने अभागी मन से कहते हैं—

'राम सुमीरण करीय अभागी,
त्रिभुवन नाथ सीतापति राघव हृदय कमल मे धरीय अभागी ।'

मोहन के गुण गाकर भी ये कहते है, 'मैं राम जपत हूँ माईरी ।'

इस प्रकार इनकी केशव-भक्ति व्यापक है। भक्ति के लिए किसी भी 'प्रतीक' के साथ तन्मय हो जाते हैं। जब मन में 'राम' भर जाता है तो भक्ति-रस भीतर समा नहीं पाता, बाहर अनुभावों के रूप मे छलक ही पड़ता है :—

'आज राम मेरो मन मे भरो रे।'
देह विदेह की सुध बिसरी रे, लोक लाज को काम सरोरे।
शाम सुंदर की रती मंकु[4] लागी, औरै कछु समजत नहीं रे।
आसन बासन सबही भुलगई, रुपनिरखि के चकित रही रे।
प्रेम नीर अंखिया झरती, रोम फरकते बुंद ठरे रे।
मैं तो पिया के दर्श मगन भई, मनमहि कोउ कैसे रहो रे।
केशव प्रभु सुं निकट दिल रही, जेल (जल) माही जैसे लवन गिरोरे।'

पानी मे नमक के गिरने से क्या दशा होती है, वही दशा उनकी हो गई। अर्थात् वे आराध्य में घुलमिल गये। कितनी तन्मयता है इनमें! संतों की चाकरी मे इन्हें आनंद आता है। ये कहते हैं—

'संतन की भई बेटी हो बाबा।
भजन दाल, ज्ञान घृत सुं खावती आनंद रोटी हो बाबा।
प्रेम निजामृत पीवती पीवती, बहुत पड़ी हम लाठी हो बाबा।' (परिशिष्ट पद-संख्या ३३)

भजन, ज्ञान और आनन्द का उपयोग उन्हीं के सानिध्य से प्राप्त होता है। संसार तो जजाल है। उसे छोड़ दीजिए।

---

१. निकट
२. यमदूत
३. मुझे
४. मुझे

फिर तो बड़ी मस्ती और विश्वास के साथ आप घोषित कर सकेंगे—

'लाल बड़ा वे, गोपाल बड़ा वे
हर वक्त हरदम मेरे दिल में खड़ा वे।' (परिशिष्ट पद-सख्या ३४)

और 'हम तो ब्रह्म भुवन के राजे—
बोध दमामा जब तब बाजे।' (परिशिष्ट पद-सख्या २४)

केशव स्वामी की अभिव्यक्ति मे बहुत स्पष्टता है और फक्कड़पन भी। अपने गुरु के संबंध में वे कहते हैं—

'अपने नजिक मुझे आजि बुलाया।
संसार बैरि मेरा मार चलाया।
हुशार दिवान मेरा नाम रखाया।
महबुब मेरा (मुझे) मुझ में बताया॥'

गुरु ने ही '*उस महबूब*' का पता दिया कि वह कहीं बाहर नहीं है, अपने भीतर ही है।

इसीलिए कहते हैं—'खबर धरो याद करो वस्ताद[1] के पाव[2]।'

क्योंकि वह 'साई' को मिलाता है। इसलिए वह शिर पर चरण धर कर भी चले तब भी स्वीकार है।

बड़ी सरल चलती भाषा मे हृदय की विभोरक स्थिति अंकित करते हैं—

'कमल नयन निरखि बिसर गइ धदा
देह थे[3] विदेह भई पाइय स्वानदा।' (परिशिष्ट में—अतिरिक्त पद स० ४)

शिवकालीन होने से इनकी भाषा में अरबी फारसी का अधिक मिश्रण है। शब्दों की वर्तनी में महाराष्ट्र के सतों ने उनके ह्रस्व-दीर्घ रूप की चिंता नहीं की। वे तो पद गाते थे। अतएव गाने में आवश्यकतानुसार उनके उच्चारण-काल को कम-अधिक कर खींच लेते थे। इनके अप्रकाशित पद 'अतिरिक्त पद' शीर्षक के अतर्गत रखे गये हैं, जो मुझे हैदराबाद के मराठवाड़ा साहित्य-परिषद के हस्तलिखित ग्रथागार से प्राप्त हुए हैं।

गोपालनाथ

ये औरगाबाद के निकट सलाबतपुर के रहनेवाले हैं। इनकी जन्मतिथि अज्ञात है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने शक स० १६८८ मे श्रावण वदी अमावस्या को त्रिपुरी मे जीवित समाधि ग्रहण की। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—नृसिंह सरस्वती—जनार्दन स्वामी—एकनाथ—नित्यानंद—कृष्णनाथ—विश्वम्भरनाथ—मुरारनाथ—रंगनाथ—गोपालनाथ।

---

१. उस्ताद
२. चरण
३. से

इनके मराठी मे ओवीबद्ध 'सिरोमणि' और 'समाधि बोभ' नामक ग्रंथ तथा अभंग एवं पद हैं।

इनका निम्नलिखित हिन्दी पद है—

कर विचार मन रे, तू क्या करे गुमान।
दो दिन के मेजवान, आखिर जायगा नादान।
क्या साथ लाया ले जायगा नहीं।
आया अकेला जब जायगा तुही।
भाइ बहिन लड़के तुज[1] काम न आवेंगे।
बाधमारे जम के दूत तुजको[2] न छुडावेंगे।
कर सवदा[3] सुकृत का तुज काम आवेगा।
जब बिच आत्माराम बिहरि है कृपाल।
साधु संग बुझले भरपूर है गोपाल।

पद मे निवृत्तिभाव और नैराश्य है। राम नाम का संबल ग्रहण करने का संतोपदेश है।

---

१. तेरे
२. तुझको
३. सौदा

चौथा अध्याय

पेशवाकालीन और पेशवाओं के पश्चात्

मध्व मुनीश्वर

हैदराबाद राज्यान्तर्गत पैठण और औरगाबाद मे मध्वमुनि की मधुस्रावी रचनाएँ अधिक संख्या में प्राप्य हैं। इनका जन्म कब हुआ, यह कहना कठिन है पर श्री राजाराम प्रासादी के अनुसार नीरा नदी के तट पर 'कलबोली ग्राम उत्तम नगरी' इनका जन्म स्थान है[1] और मूल नाम महादेव है। कवि काव्य-सूचीकार ने जन्म-शक १६११ दिया है।[2] 'मध्वमुनीश्वराची कविता' के सग्राहक ने इनका मूल नाम त्र्यबक और इन्हें नाशिक का रहनेवाला बतलाया है। पिता नारायणाचार्य देशस्थ, ऋग्वेदी और माध्व सम्प्रदायी वैष्णव थे। त्र्यबकेश्वर की कृपा से पुत्र होने के कारण पिता ने इनका नाम त्र्यंबक रखा। महाराष्ट्र सारस्वतकार भावे इनका मूल नाम त्र्यबक होने की संभावना मानते हैं। किंवदन्ती के अनुसार इन्हें स्वयं शुक्राचार्य ने उपदेश दिया और भेदाभेदातीत बना दिया। मध्वाचार्य ने इनका नाम मध्व मुनीश्वर रख दिया। तीर्थ-यात्रा करते करते ये औरगाबाद पहुँचे और वहाँ किसी 'निपट निरजन' से इनकी भेंट हो गई। वहा से ये सेंदुरवाड़ा गये जहाँ इनका अधिक काल व्यतीत हुआ। वहीं शक १६५३ मार्गशीर्ष शुद्ध पूर्णिमा को जिस समय सूर्य अस्त होने ही वाला था और अमृतराय कीर्तन कर रहे थे, इनकी देह-लीला समाप्त हो गई। इनके संबध मे डा० पोतदार लिखते हैं—"तुकाराम और रामदास की अन्तर्भेदी वाणी स्तब्ध हो गई और वाङ्मय में ककण की रुणत्कार तथा नूपुर की झणत्कार सुनाई देने लगी। ऐसे समय मे मध्व-मुनीश्वर और अमृतराय आदि ने अपना वाग्विलास किया। .....ये उत्तम कीर्तनकार रहे होंगे। इनके कितने ही पद्य मधु के समान मधुर-रस-पूरित हैं।'[3]

---

1. महाराष्ट्र सारस्वत पृष्ठ ६०१।
2. वही-पृष्ठ १०२८।
3. वही-पृष्ठ १०२६।

मध्वमुनीश्वर ने मराठी मे धनेश्वराची गोष्ट, चोलराजा ची कथा, धन-लोभ्याची गोष्ट और संभवतः प्रल्हाद चरित्र[1] नामक कथा-काव्य लिखे हैं। साथ ही स्फुट मराठी अभंग तथा संस्कृत एवं हिन्दी में रचनाएं की हैं। औरंगाबाद में रहने से इनकी भाषा मे 'मुसलमानियत' अधिक है अर्थात अरबी-फारसी शब्दों की बहार है। इनकी रचनाओं में संतों के मुख्य मत मिलते हैं। यह भी घट-घट मे एक ही 'रब' अनुभव करते है और उसे सुन्दर उदाहरण से समझाते भी हैं—

सब घटपूरन एक हि रब है,
जौ तसबी बीच तागा।

जिस प्रकार 'माला' के मणियों के बीच तागा रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक घट रूपी मणि के बीच परमात्मा है।

'उससे' मिलने की तालाबली भी कितनी तीखी है! सूफियों के समान परमात्माको माशूक कहकर पुकारते हैं। (यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि हैद्राबाद-राज्य मे मध्यकाल में सूफियों का अधिक संचार था। उनके कई हिन्दी-प्रबन्ध-काव्य फारसी लिपि मे पाये जाते हैं।

माशुक तेरा मुखड़ा दिखाव।
कपट का घुघट खोल सिताबी इष्क मिठाई चखाव॥
आशक का तेरा जियडा चातक, कर मेहर बरखाव।
दिल कागज पर सूरत तेरी, गुरु के हात लिखाव।
मध्वमुनीश्वर साई तेरा अस्सल नाम सिखाव॥

दिल के कागज पर तस्वीर अंकित करने की कल्पना अभिनव है!

लोग माया के गुलाम बन जाते हैं। इसीलिए 'साई कु सलाम' नहीं करते। अतः ये चेतावनी देते हैं —

'यारो समजोरे दो दिन की जिनगी यारो।
नंगे आना नंगे जाना काका बाबा भाई,
काकी अंमा नानी दादी कालुच देखि लुगाई।
कहाँ की संपत ऊँच हवेली कहा का खेल कबीला।
कहा की नौबद हाथी घोड़ा जहा का वहीं तबीला॥

'वंध्या के सुत के समान' सारा प्रपंच (ससार) इंद्रजाल है—झूठा है। इसलिए कहते हैं कि, 'जिन्ने तुज कू पैदा किया है, उसका सन्देशा कर', कबतक सोया रहेगा? 'इस देह कू देख तो उसमें काल कहर' की आग लगी हुई है।

अन्य सतों की नाई आत्म-शुद्धि पर भी मध्वमुनीश्वर का आग्रह है—

'जब कर दिल बिवाने पाक,
झूठी माया झूटी काया, आखर सारी खाक॥'
फजर नीकी बंदगी करना, अकल से होना च्याख,

१. यह त्र्यंबक के नाम से लिखा गया है।

कहत माधोनाथ गुसाई अपना *पानी राख।*

(प्रातः भगवान की बंदगी करो और अपने तेज की रक्षा करो। यही सार है।)

ये साधक को अपने साथ ले चलने को तैयार हैं, ससाररूपी 'पानी' में कमल पत्र के समान रहने का उपदेश देते हैं—

अब चल भाई हमारे सात;
जो कुच होना होयगा सो परमेसर हात
अपने महल को अकल से जाना, घोर अधारी रात
इस पानी मे वैसा रेना, जैसा कमल का पात।'

ग्रंथपाठ और साधनाहीन साधुवेश पर भी व्यंगोक्तियाँ हैं—

बम्हन पढा है वेद कू
समजा नहीं उसीके भेद कू
पूजे फत्तर के देव कू पंडित हुवा तो क्या हुवा ?
अंदर नहीं दिल पाक रे
सेवा जिकिर[1] कू च्याख रे
ऊपर लगावे खाक रे। जोगी हुवा तो क्या हुवा ?
माला लिई है हात में
जपता रहे दिनरात में
दिल नहीं उस बात मे। भजनी हुवा तो क्या हुवा।
फजर किताबा खोलता
मु से[2] नसीहत बोलता
अपने अमल नहिं डोलता[3]। काजी हुवा तो क्या हुवा।

शरीर का 'बगला' से रूपक बाँधा है—

'बगला जोर बनाया वे, वा मो नारायण डोले
मट्टी ऊपर पानी वा मो लगाए बत्ती
सात साल का महल बनाया खूब बसाई वस्ती
चार देहे का मठ बनाया, पचीस लगाए फत्तर
पाच तखत पर पाच बगीचे नहर चलाये अंतर।'

सतों मे 'उदाहरण' सहज साधित होते हैं। फकीर रमता ही है, एक जगह नहीं ठहरता, इसे समझाकर वे कहते है—

रुखा पीपल पात है
जैसा पवन से जात है
वैसी फकीर की जात है।
रमता नवखंड में।

---

१. नामस्मरण। २. मुँह से। ३. स्वयं आचरण नहीं करता।

कहीं-कहीं रूप-चित्रण भी सुन्दर बन पड़े हैं। 'मोहनलाल' की 'मूरत' का एक लुभावना चित्र देखिए—

'भज मन साहेब मोहनलाल
कानन कुण्डल मुगुट बिराजे, गलबीच मोतन माल
मृगमद आधो तिलक लगायो, सौंधे भीने बाल
पति लगोरी दामिनि चमके ऊपर वोढी साल
कुज गलन मे बसि बजावे गावे माधव ख्याल।'

'सौंधे भीने बाल' की व्यजना कितनी मधुर है !

अपने चारों ओर के व्यावहारिक जीवन से भी वे उदासीन नहीं है। होली का उल्लास मनाने को तो वे कहते हैं, पर संयम के साथ—

'रग बिरगी होकर जावो दो दिन की दुनिया मे
अपने मू से फजियत होते इसमें क्या सुघराई।

मध्व-मुनीश्वर की भाषा में 'दक्खिनीपन' होते हुए भी कवित्व है, जो उनके कतिपय रूपको, उपमाओं और उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। इनके कुछ हिन्दी-पदों में अमीर खुसरो की तरह दो भाषाओं का मिश्रण भी है। एक पंक्ति हिन्दी मे और दूसरी मराठी मे है। उदाहरणार्थ—

जिन्ने तुजकू पैदा किया कर उसका सदेशा रे,
इंद्रजाल तब प्रपच सारा सुत वंध्येचा जैसा रे,
तन जोबन आशक हुवा क्या पाया आराम रे
इंद्रियजन्य सुखातें भावुनी नेणसी आत्मा समरे।
क्यों गफलत में गाफल हुवा किस लालच पर प्यारे
किरण न जाणुनी भ्रमती हरणें जातीं उदका मासा रे।
किआस नहीं किये कुफर से क्यों करहि हुवा दिवाना रे
आत्मा तूं अविनाश हौऊनी मानिसी जन्मा मरणारे।

इस प्रकार की मिश्र रचनाओं को द्रविड़ भाषाओं के साहित्य मे 'मणिप्रवाल' शैली कहा जाता है।

शिवदिन केसरी

शिवदिन केसरी महाराष्ट्र की नाथ-परम्परा के प्रसिद्ध संत माने जाते हैं क्योंकि वे अपनी गुरु-परम्परा आदिनाथ से प्रारम्भ करते हैं।[1] ज्ञानमार्गी होते हुए भी उनमें ज्ञाननाथ के समान भक्तिरस का स्रोत झरता है। पैठण मे 'गंगा' के किनारे शिवदिन का वह मठ आज भी विद्यमान है, जहाँ उनके कीर्तन भजन होते रहते थे। उनका जन्म

१. गुरु परम्परा—आदिनाथ—मच्छेन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गैनीनाथ—निवृत्तिनाथ—ज्ञाननाथ (उर्फ ज्ञानेश्वर)—सत्यामलनाथ—गैबीनाथ—गुप्तनाथ—उद्बोधनाथ—केसरीनाथ—शिवदिननाथ।

शक सम्वत १६२० है और समाधिकाल माघ बदी १३ शिवरात्री शक १६९६ है। उनके गुरु केसरीनाथ राशिन में सरकारी नौकर थे, उद्बोधनाथ के ज्ञानेश्वरी के प्रवचन से प्रेरित होकर वे ससार से विरक्त हो गये और नौकरी छोड़ कर ईश्वर-भक्ति मे निमग्न रहने लगे। उनके मल्हारीनाथ और शिवदिननाथ दो प्रसिद्ध शिष्य हुए, जिन्होंने राशिन और पैठण में अपने पृथक् मठ स्थापित किये। शिवदिननाथ, जो बाद में शिवदिन केसरी के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपने समय के बड़े प्रभावशाली संत थे। वे यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम कृष्णाजी पंत था। शिवदिन केसरी ने शक १६२८ मे गुरु-मत्र की दीक्षा ली।

उन्होंने 'विवेकदर्पण' और 'ज्ञान-प्रदीप' के अतिरिक्त अन्य फुटकर रचनाएँ भी की हैं। हिन्दी के जो पद प्राप्त हैं, उनमें उनके कवित्व की अच्छी झलक मिलती है। संसार की असारता और क्षणभंगुरता, ईश्वर की सर्वव्यापकता, नर मे नारायण का वास, आडम्बर का विरोध, ये परम्परागत सत-विषय हैं, जिनपर शिवदिन केसरी ने लेखनी चलाई है।

संसार में कोई किसी का साथी नहीं है। उसमे मनुष्य अकेला आता है और अकेला ही जाता है। 'हुजुर' की पाती आई कि डेरा उठा। इसलिए मनुष्य को तन, मन, धन का गर्व नहीं करना चाहिए। वे कहते है—

"किसका कोन संघाती बाबा ॥ ध्रुवपद ॥
अकेला आवे अकेला जवे, हात हुजुर की पाती
तन मन धन जो गर्वहि मत कर, कहत पुरान की पोथी।
मति तात जोरू लरका घर होय मसान की माती
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब देख दिल भर साथी ॥[1]"

हमारा साईं सब घट में है, इसलिए सबसे प्रेम-प्रीति से रहना चाहिए।[2]

वे कहते हैं, उसका स्मरण करने के लिए माला फेरने की क्या आवश्यकता है ? जब मन में वह समा जाता है, तब अजपाजप होने लगता है—

"अजपाजप करता है, कर बिन मन मनका फिरता है।"

मन बिना हाथ के ही मनके फेरता है और इस तरह अखड जाप जारी रहता है।

'उसे' यहाँ-वहाँ देखने के लिए भटकने की क्या आवश्यकता है ?

"नैन आरसा देख दिवाने कर साहिब सो मेहेरा।"[3]

यहाँ उर्दू शायर की "दिल के आइने में है तस्वीरे यार
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली ॥"

का स्मरण हो आता है।

---

१. देखिए परिशिष्ट पद-संख्या २।
२. देखिए परिशिष्ट पद-संख्या २।
३. परिशिष्ट पद-संख्या ११।

'केसरी' संसार से कुछ नहीं चाहते, केवल प्रेम चाहते हैं, सत्याचरण चाहते हैं। वे कहते हैं—

"हम फकीर जनम के उदासी निरंजनवासी
सत की भिच्छा दे मेरी माई मन का आटा भरपूर
बार बार हम नहिं आनेके हरदम हार खुसी।
हम फकीर निरजनवासी ॥
सोना रूपा धेला पैसा ओ कुच[1] हम ना चाहें
प्रेम कि भिच्छा ला मेरी माई, हम पंची[2] परदेसी।
हम फकीर जनम के उदासी निरंजनवासी ॥"

'परदेसी निरंजनवासी' के हृदय मे प्रेम की कितनी गहरी पीर है—

वह झोली लेकर उसकी घर घर भीख माँगता है। इन सरल शब्दों मे भावों की कितनी कोमल व्यंजना है! योगियों की नाईं वे भी 'समाधि' लगाते 'अनहत सिंगी बाजा' सुनते और 'उन्मनि' अवस्था मे पहुँच कर रीझ जाते हैं।

"उलट पलट मो दर्शन गाढा
रूप रेख बिन पुरुख ठाडा।
चंद, सुरज बिन तेज उघाडा
कर्म शूल का मूल उघाडा।
समाधी लागी सहजी सहजा।
अनुहत सिंगी बाजत बाजा।
उन्मनि संगे सोमन रीझया
जाला ताहा नाहि आप विन दुजा।
चतुर्दल षडदल दशदल उलटा।
दबादशादल षोडस दल फाटा।
द्विदल पर किया चपेटा।
तब सहसदल भौरा पैठा।
अजरामर पद केसरि गुरु का।
पाया शिवदिन आदि अंत का।
अमृत पीया अर्धचंद का।
धोका नहि अब जनम मरन का ॥"

इसमें कबीर के समान कुडलिनी योग-साधना का विवरण है।

'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' (भूखा कौन सा पाप नहीं करता?) इस उक्ति की सार्थकता केसरी ने अनुभव की है। वे कहते हैं—

"देख सन्यासी देख फकीरा घर घर माँगे टूका
ईस पेट से चार (चोर) छिनाला ईस पेट से पैदा

१. कुच = कुछ। २. पंची = पंछी।

ईस पेट से ढोंग धतूरा किया पेट ने पैदा
ईस पेट से रख शिपाई राजा परजा मरते।
ईस पेट से अमीर उमराव मुलुक पर फिरते।"

'केसरी' केवल उन्मनी अवस्था में अमृत-रस ही नहीं पीते रहते थे, वे अपने समाज की स्थिति का भी निरीक्षण करते थे। अमीर-उमराव की लोकवृत्ति पर भी उनकी दृष्टि थी।

कबीर की भाँति 'केसरी' ने अपने 'अलख' का कान्ताभाव से स्मरण किया है—

"किन बइरी ने बैर कियो री
साजन को बहिराय दियो री।"

पर इस प्रतीक का अन्त तक निर्वाह नहीं हो पाया। वह 'ध्रुवपद' की 'स्थायी' पक्तियों में ही रह गया। क्योंकि उसीके बाद 'साजन' की 'बहुरिया' का रूप बदल गया है। बहुरिया के स्थान पर 'योगी' सन्मुख हो जाता है—

"पेहरी मुद्रा भस्म चढ़ाया।
कान मो कुन्डल अलख जगाया।
खादे पखारी हात मो झोली
गल बिच निर्गुण माला, सैली।"

और तब उसे 'अलख' खलक में ज्योतित दीख पड़ता है।[1]

हिन्दी-पदों में 'केसरी' का ज्ञानमार्गी सतरूप ही अधिक प्रकाशित हुआ है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि इस संत में काव्य-प्रतिभा है। उपमा, रूपक, विभावना आदि अलंकारों की अच्छी योजना सध गई है। यथा—

उपमा—सुपना सी जिंदगानी जानी (पद-संख्या ५)
विभावना—(अ) चंद सुरजबिन तेज उघाडा (पद-सख्या ८)
(आ) रूपरेख बिन पुरुख ठाडा (वही)
(इ) कर बिन मन मनका फिरता है (पद-संख्या १२)

केसरी की भाषा में मुसलमान-राज्य में बसने के कारण स्वभावतः दक्खिनी हिंदी की छटा है, पर उसमें ऐसे अरबी-फारसी शब्द नहीं हैं जो दुरूह हों, जनता की जिह्वा पर न चढ़ सकें।

अमृतराय

इनका कार्यक्षेत्र भी औरगाबाद रहा है। ये मध्वमुनीश्वर के शिष्य कहे जाते हैं, परन्तु इन्होंने स्वय 'अम्बिका सरस्वती' को अपना गुरु लिखा है। अपने एक ग्रंथ में इन्होंने माधव सरस्वती—विट्ठल सरस्वती—अम्बिका सरस्वती—इस प्रकार गुरु-परम्परा दी है। इन्हीं के एक शिष्य सिद्धेश्वर ने अपनी गुरु परम्परा 'पूर्णानंद—ज्ञाननद—अमृतराय

---

१. देखिए परिशिष्ट पद-संख्या १।

दी है। अतः यह कहना कठिन है कि इन्होंने किससे दीक्षा ली। महाराष्ट्र सारस्वत-कार का यह अनुमान ठीक है कि इन्होंने चार बार चार गुरुओं से उपदेश लिया होगा।[1] ये विदर्भ में बुलढ़ाना जिले के फत्तेखेड़ा गाँव के रहनेवाले थे। बाद मे औरंगाबाद मे जाकर बस गये। इनके संबंध मे औरंगाबाद गजेटियर में लिखा है कि "अमृतराय औरंगाबाद शहर के रहनेवाले, शक १६२० (सन् १६६८) मे पैदा हुए और शक १६७५ (सन १७५३) मे मृत्यु को प्राप्त हुए। ये ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे और सरदप्तर या मैनेजर की हैसियत से मुगल सूबेदार के यहाँ नौकर थे।" (पृष्ठ ३८३) ये प्रभावशाली कीर्तनकार भी थे। नानासाहब पेशवा इनके कीर्तन के ढंग से बड़े प्रसन्न होते थे। इनके वंशजों को उनके राज्य से जागीर बँधी हुई थी।

अमृतराय की साहित्य-सेवा—अमृतराय की मराठी के अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी में भी अच्छी गति थी। इन्होंने मराठी और हिन्दी में प्रथम बार 'कटाव' नामक नए छंद को जन्म दिया। इसमे सानुप्रासिक चरण होते हैं जिनकी शब्द-योजना से ही अर्थ झंकृत हो उठता है। एक 'कटाव' की कुछ पंक्तियों का 'नाद' सुनिए—

"श्री वृंदावन मो व्रजराज विराजत है।
सत्य लोक ते ब्रह्मदेव जब गोप भेख धर देखन आये।
गोवन के लघु रच्छपाल कर पुच्छ धरत,
सिरमोर पच्छ गर गुंजगुच्छ बिछ लच्छ
श्री वच्छ चिह्न प्रभुतुच्छ गन्योबल परिच्छिवे को
बच्छा बाल सखा सकल चुराए।
ग्रह-ग्रह की बछिया नइ-नइ अछिया,
धोरी, धुमरी, कारी, पियरी, हरी विचित्रा, कपिला बरनी,
प्रतच्छ हरनी।
रंग, चाल, खुर सिंध भाल, गोपाल बाल
सब विष्णु अवतरे॥"

इस प्रकार अमृतराय ने कविता के क्षेत्र मे 'कटाव' छद का नूतन प्रयोग कर काव्य-रसिकों को मुग्ध किया। इनके मराठी कटावों का इनके परवर्ती कवियों द्वारा अनुकरण भी हुआ; पर जो रस अमृतराय के कटावों मे है वह उनमे नहीं आ पाया।

इन्होंने शुक चरित्र, सुदामा चरित्र, द्रोपदी-वस्त्र-हरण, जीवदशा, दुर्वासयात्रा, रामचन्द्र-वर्णन, गणपति वर्णन आदि लम्बी वर्णनात्मक रचनाएँ की हैं। इनके शिष्यों मे सिद्धेश्वर महाराज और माधव कवि का नाम प्रसिद्ध है।

सिद्धेश्वर महाराज

ये अमृतराय की शिष्य-परम्परा मे आते हैं। इन्होंने स्वयं अपनी गुरु-परम्परा में पूर्णानंद और ज्ञानानंद के पश्चात् अमृतराय का नामोल्लेख किया है। इनकी कुछ

1. देखिए पृष्ठ ६०१।

हिन्दी-रचनाएँ हमें हैदराबाद मरठवाड़ा साहित्य-परिषद के हस्तलिखित ग्रंथागार से प्राप्त हुई हैं। उनका एक पद है, जिसमें शरीर रूपी 'बंगले' का योग-परम्परागत वर्णन है—

"बगला खूब बनाया वे
उसमो माधव सोया वे ॥ ध्रुव पद ॥
पंच तत्व की भीत बनाई तीन गुनन का गारा
राम नाम की छान छवाइ चानेहारा न्यहारा।
उस बगले कु नव दरवाजे बीच पवन का खंभा।
आवे जावे सब कोई देखे, यही बड़ा अचंभा।
आशा दुराशा माया नाचे मन मो ताल बजावे
सुरत निरत मिरदंग बजावे, राग छतीसा गावे
बंगला खूब बनाया वे
उसमो माधव सोया वे ॥"

भाषा में उच्चारण और वर्ण-प्रक्रिया के जो चिह्न तुकाराम की भाषा की विवेचना के समय हम देख चुके हैं, प्रायः वे ही इनकी भाषा मे भी लक्षित होते हैं। एक दो विशेषताएँ ये हैं—

ब के स्थान पर प यथा—खूब—खूप।

छ के स्थान पर च यथा—छानेहारा—चानेहारा।

सुदूर दक्षिण में बोली जानेवाली 'दक्खिनी हिन्दी' में भी छ का च उच्चारण पाया जाता है। इनकी खड़ी बोली में प्राजलता और छद में प्रवाह है।

माधव

अमृतराय के तीन शिष्यों मे 'माधव' का उल्लेख मिलता है। ये भी अपने गुरु के समान 'कटाव' लिखने में पटु थे। इनके दो हिन्दी-पद प्राप्त हुए हैं। एक में 'रामधनी' को भजने का प्रबोधन है और दूसरे में रघुवीर की जयजयकार है। दूसरा पद मधुर 'प्रभाती' में गेय है, पुष्ट ब्रजभाषा में है। उसकी कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"प्रात समय रघुवीर जगावे कौशल्या महारानी।
उठो लालजी भोर भयो है संतन को हितकारी।
बंदीजन गंधर्व गुण गावे नाचे थै थै[1] तारी।
शैल सुता शिव मारे ठाडे होत कोलाहल भारी।
सुन प्रियवचन उठे रघुनन्दन नैनन पलख[2] उघारी।
चितवन अभय देत भक्तन को मुक्त भये नरनारी।
कर अस्नान दान नृप दीन्हे गो गज कंचन थारी।
जय जयकार करत धन्य माधव रघुकुल जस विस्तारी।"

(पद-सख्या २)

---

१. दै दै।

२ पलक।

नरहरिनाथ

ये पैठणवासी प्रसिद्ध संत कवि शिवदिन केसरी के पुत्र तथा शिष्य हैं। शक संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे ये हुए हैं। इनके अनेक मराठी पद मिलते हैं। इन्होंने अपने पुत्र को भी 'दीक्षा' दी। इनका एक हिन्दी-पद दिया जाता है, जिसे पढ़ने पर इनकी मस्तवृत्ति का सहज ही बोध हो जाता है। ये नाथपंथी रहस्यवादी प्रतीत होते हैं और उन्मनी अवस्था मे पहुँचकर अमृत प्याला पीते और 'नाद' सुनते रहते हैं। पद इस प्रकार है—

"क्या बे किसी से काम, हम तो गुलाम गुरु घर के।
बेपरवाह मन मौजी राजा, हम अपने दिल के ॥१॥
नहीं किसी से दरकार, टुकडा मागकर खाते हैं।
गुरू ज्ञान के अमल नशे मे, हमेशा झूलते हैं ॥२॥
गगन मंडल मे दस नादों का, अवाज सुनते हैं।
तीनों ऊपर धुनी लगाकर, बैठे रहते हैं ॥३॥
चाँद सूरज मशाल लेकर, आगे चलते है।
अर्धचन्द्र का अमृत प्याला, भर-भर पीते हैं ॥४॥
उलटी तुरिया होगई उन्मनि, मिल गई जाकर के।
पलख में रहना अलख जगाना, कलख जलाकरके ॥५॥
हुआ दिवाना फकीर भोला, भटकत फिरता है।
झूठी माया प्रीति लगाकर, गोते खाता है ॥६॥
नाहीं रहना काम करो कुछ, डेरा गिरता है।
नरहरि मौला जल्दी आकर, हुशार[1] करता है ॥७॥"

पद में 'महाराष्ट्रीय हिन्दी' का लचीलापन देखने योग्य है। पहली दो पंक्तियों मे कवि की बेफिक्री और मनमौजीपन कितनी सरलता से व्यक्त हुआ है। 'क्या बे किसी से काम' और 'बेपरवाह बन मौजी राजा हम अपने दिल के' में कितनी अकृत्रिमता और बेतकल्लुफी झलकती है।

महीपति

ये भी शिवदिन केसरी की शिष्य-परम्परा में है। इनके गुरु का नाम नरहरि है जो शिवदिन केसरी के पुत्र तथा शिष्य हैं। महीपति ने मध्य भारत की यात्रा की और उज्जैन में अपना अधिक समय बिताया। ग्वालियर, उज्जैन, बड़ौदा आदि नगरों में भ्रमण करते रहे। वास्तव में ये पैठण के जनार्दन स्वामी के वंशज है। इन्होंने शक १४४४ को ग्वालियर मे समाधि ली। इनके बहुत से अभंग, कटाव, लावनियाँ, पद आदि प्राप्त हैं। हिन्दी में भी इन्होंने रचनाएँ की हैं। जो पद नीचे दिया जाता है, उसमें भी नाथों के समान

---

१. होशियार।

कुण्डली का वर्णन है। इन्हें 'उन्मनी' में 'अलख ब्रह्म' के दर्शन हो गये, जिससे इनका सारा भ्रम दूर हो गया। इन्होंने समाधि-अवस्था का बड़ा सजीव वर्णन किया है—

साईं अलख[1] पलख[2] मे झलके, लहलहाट बिजली चमक ॥
मन गरक[3] हुआ, मन गरक,
गुरु साईनाथ आज पाया, मुझ पकड़ दस्त[4] बैठाया,
दो अच्छर बीज पढाया, मेरे सिर पर हाथ चढ़ाया ॥
अब तू बचा गुरु का बचा, देख परीच्छा
छइ बदन जुगुत रे जखड[5]
मत डर जोर से पकड़,
जो आवे उसे दे छकड़,
आगे पीछे मोर की पाखे, लहलहाट बिजली चमके ॥१॥

नीचे धरनि ऊपर असमाना, दोऊ छोड़ बीच मे जाना,
चल सरक, आगे चल सरक,
प्यारे उलट पुलट से चलना, साहब से जुगत से मिलना,
भुकुटी ऊपर, त्रिकुटी शीखर, ध्यान लगाकर,
खूब देख नजर से अभी,
रज सोना बिखरा सभी,
मूल माया की जो छबी,
छोड़ माया स्वरूप परजख, लहलहाट बिजली चमके ॥२॥

मोतियन का मेह बरसता, सो ब्रह्मा ज्ञान विधाता,
खूब घटा, बनी खूब छटा,
तारा सो बिसन रूप सजता, पालनवाला भरमता,
गोल गुण्डाला, चकर उजाला, शिव मतवाला,
मही रूप तीनों का हुआ,
चल आगे और कुछ हुआ,
बड़ी लहर बहर बेनवा,
मन उन्मन होके गरके, लहलहाट बिजली चमके ॥३॥

---

१. अदृष्ट परमात्मा।
२. पलक।
३. गर्क।
४. हाथ।
५. जकड़।

नरहरि नाथ गुरू मेरा, मै महिपत गुलाम तेरा,
क्या कहूँ, अब क्या कहूं,
जाको वेद न जाने डेरा, वो मैने नयनन सों हेरा,
सच्चा साई, गुरु गोसाई, राह बताई,
जिससे सकल भरमना मिटी,
डोरी जनम मरन की टूटी,
कोठडी करम की फूटी,
लागी लगन मगन दिल हरखे, लहलहाट बिजली चमके ॥४॥"

कृष्णदास

इस नाम के महाराष्ट्र में बहुत से संत हो गये हैं। इनके संबंध मे कहा जाता है कि ये जयराम स्वामी बड़गॉवकर के गुरु थे। भक्त लीलामृत अध्याय ५० मे लिखा है कि भूल से इनका विवाह नाई की लड़की से हो गया था; पर इन्होंने उसके साथ अत तक 'निर्वाह' किया। परन्तु कवि जयराम स्वामी बड़गॉवकर के गुरु का नाम 'कृष्णाप्पा स्वामी' है और वे रामदास कालीन है। कृष्णदास पेशवाई के अतिम प्रहर के कवि प्रतीत होते हैं। श्री भावे के अनुसार हम उन्हें 'बाजिराव महाराज' के समय का ही मानते हैं। ये बारकरी पंथ के अनुयायी हैं[1]। इनकी एक विनोदी मराठी रचना है—

"बाजिराव महाराज अर्जि ऐकतो बायकाची
चल गडे, जाउं पुण्याशी हौस मोठी माझ्या मनाची।"

(सुनते हैं, बाजीराव महाराज स्त्रियों की 'अर्जी' सुनते हैं। चल सखी, पुणे चलें, मेरे मन में वहाँ जाने की बड़ी हौस है।)

इनका एक हिन्दी-पद प्राप्त है जो 'ध्रुवपद' मे है—

"जसोमत सुत नंदलाला, ब्रज की गैल डोले।
पीतांबर कछनी कस गव्वन के संग जात,
फेंट मुरली मुकुट शीस बैस बैन बोले।
जसोमत सुत नंदलाला ब्रज की गैल डोले ॥१॥
ग्वाल बाल संग लिये अंग अंग जोरे
हात लकुटि दूध मटकि सखियन सो जोरे ॥२॥ जसोमत ॥
वृन्दावन कुंज जात गावत हरि कृष्णदास,
या छवि न कही जात रसनामृत थोरे ॥"

इसमें कृष्ण की वृन्दावन-लीला का बड़ा सरल चित्रण है। प्रतीत होता है कि ब्रजभाषा में इनकी गति रही है, तभी वह पर्याप्त परिमार्जित है।

---

१. देखिए महाराष्ट्र सारस्वत—पृष्ठ ८१०।

देवनाथ महाराज

ये विदर्भ के रहनेवाले थे। इनका जन्म शक-संवत् १६७६ (ई० सन् १७५४) और प्रयाणकाल ईसवी सन् १८२१ निर्धारित होता है। बचपन में इन्होंने अपने ग्राम सुर्जी में अखाड़ा खोलकर कुश्ती, व्यायाम आदि के प्रति बालकों की रुचि जागृत की। बड़े होने पर ये 'मल्ल विद्या' के उस्ताद बन गये। पर, मन भीतर-ही-भीतर भगवान की भक्ति में पगा रहता। इन्होंने बल-शौर्य के प्रतीक 'हनुमान' को अपना आराध्य बनाया। कहते हैं, एक बार हनुमान ने इन्हे दर्शन भी दिये। तब से बराबर इनकी वृत्ति अन्त-र्मुखी हो गई। इनमे पूर्ण वैराग्य छा गया। नाथ-पंथी भागवत-सम्प्रदायी गोविन्दनाथ को जब यह ज्ञात हुआ कि सुर्जी में देवनाथ-नामक कोई साधक निवृत्तिमार्गी हो गया है, तब वे स्वय वहाँ गये। उस समय देवनाथ हनुमान के मदिर मे ध्यानस्थ बैठे हुए थे। जब गोविंदनाथ ने इनसे कहा कि मुझे तुम्हे दीक्षा देने की प्रेरणा हुई है, तब ये बोले कि 'मेरे तो गुरु ये हनुमान हैं।' यह सुनकर गोविन्दनाथ चले गये और वहीं नदी के किनार ठहर गये। किंवदंती है कि गोविन्दनाथ के जाने पर हनुमान ने देवनाथ से कहा कि 'तू गोविन्दनाथ के ही पास जा और उससे दीक्षा ले। यह मेरा आदेश है।' यह सुनकर देव नाथ गोविन्दनाथ के पास गये और उनसे 'दीक्षा' ली। इसके बाद ये ग्रामों में घूमते और जनता को अध्यात्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहते। कहा जाता है कि हनुमान ने इन्हे वरदान दिया था कि ये जो कुछ मुख से बोलेंगे, वह काव्य बन जायगा। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर ये पुणे, सातारा, नागपुर, ग्वालियर, काशी, रामेश्वर, द्वारका आदि स्थानों में गये। जिस समय ये पुणे पहुँचे, सवाई माधवराव पेशवा राज्य कर रहे थे। जब पेशवा की माता ने इन्हें अपने प्रासाद में निमन्त्रित किया तब इन्होंने कहा, 'श्रीमानों के दर्शन करने की मेरी इच्छा नहीं है।' पर 'माताजी' ने जब बार-बार आग्रह किया कि मैं मन्त्र-ग्रहण करने को आमन्त्रित कर रही हूँ तब ये प्रासाद मे गये। तीन-चार दिन वहीं भजन-कीर्तन करते रहे। जब स्वगृह लौटने की इच्छा प्रकट की तब पेशवा ने पालकी मे बैठालकर इन्हें घर पहुँचाया। सुर्जी मे इन्होंने अपना एक मठ स्थापित किया और एक सम्प्रदाय भी चलाया जो अब भी विद्यमान है। इस सम्प्रदाय के साधक प्रति शनिवार को भजन करते हुए भिक्षा माँगते हैं।

किंवदन्ती है कि देवनाथ के जीवन मे कई चामत्कारिक घटनाएँ घटी थीं। हनुमान से सभाषण का उल्लेख ऊपर हो चुका है। कहा जाता है कि जब ये काशी में थे तब एक दिन एक स्त्री अपने मृत पुत्र को लेकर इनके निकट आई और आर्तनाद कर रोने लगी। देवनाथ ने भगवान से प्रार्थना की और बालक मे प्राण सचरित हो गये। ग्वालियर मे जिस मंडप में देवनाथ कीर्तन कर रहे थे—उसमे आग लग जाने से इनकी वहीं देहलीला समाप्त हो गई।

देवनाथ की गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

आदिनाथ—विधि (ब्रह्मदेव)—अत्रिनाथ—दत्तात्रेय—जनार्दन—एकनाथ—नित्या

नंद—कृष्णानंद—विसोबानंद—मुरहारनाथ—रंगनाथ—गोपालनाथ—गोविन्दनाथ—देवनाथ। यह गुरु-परम्परा देवनाथ के प्रिय शिष्य सखे गोपाल के शिष्य माधव द्वारा रचित 'आरती' से ज्ञात हुई है।[1]

काव्य-रचना

इन्होंने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी काव्य-रचना की है। अभी तक इनकी सारी रचनाओं का यथावत् संकलन नहीं हो पाया है। स्व० वामन दाजी ओक ने कतिपय रचनाएँ 'कविता-संग्रह' नाम से प्रकाशित की हैं जिसमे हिन्दी-रचनाएँ भी हैं। ये पद कटिबन्ध आदि प्रकारों मे हैं और ध्रुपद ताल मे गाये जा सकते हैं। इनकी रचनाओं में भी कृष्ण-भक्ति का सरस रूप दिखलाई देता है। ये कृष्ण के प्रति अधिक आकृष्ट जान पड़ते हैं। एक पद है—

'जमुना तट पे निकट बजावे मधुर धुर्ना मुरली की
सुनत कानहू भई वावरी सूध न तन-मन की ॥
आधि रैन सुख चैन सखीरी मैं पिया संग सोई।
सुनत नाद मदमस्त धौर के विंदरावन आई ॥
कह री बजाई बंसी कान्ह ने मधुर लहर बाकी।
सुनत डार घर बार निकसी मैं बुद्ध सखी बहकी ॥
गरज-गरज के बरसे मेह बुंद बरी रखके।
आधि रात अंधियारी परी री बीच दामिन चमके ॥
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन नंदलाल कान्हा।
देख लपट रही पगसों सखी री निरख रूप नैना ॥

जब कान्ह की वंशी की ध्वनि सुन पड़ती है तब लोक-लाज बिसर जाती है और उसी ओर दौड़ पड़ने की व्यग्रता जाग्रत हो जाती है। इसी संबन्ध का एक पद है—

कैसी मोहन बंसी बजाई।
सुनत धुन मोहे सुधि नहि पाई।
भादों मासो मेघ गड़ागड़ टपके बुंदरि[2] खासी।
रुनझुम रुनझुम झुरसुर झरिया बरखत है घन रासी।
ओढि खुशाल दुशाल पिया संग रमिहि भोग विलासी।
विजली सी वंसी आई, परि मोहि मदन कुमार भगाई।
कैसी मोहन वंसी बजाई ॥

'बसी की ध्वनि' को बिजली की उपमा देना कितना भाव-व्यंजक है। जिस तरह बिजली कौंधती है, उसी तरह गोपी का हृदय कौंध उठता है, चिलक उठता है। इस प्रकार प्रत्येक मास में कृष्ण की 'बंसी' बजती है और इनकी आत्मारूपी गोपी का मन विकल

---

१. देखिए, कविता-संग्रह (वामन दाजी ओक) पृष्ठ २१-२६।
२. बुंदरि = बुन्दें।

होता है। इनके श्रृंगार का पर्यवसान भक्ति में होता है—'फागरण' मास की स्थिति का वर्णन सुनिए—

फागरण मास माहे खेलत फाग री
सब मिलिया ब्रिजनारी
ग्यान गुलाल और धान अबिर की, हाथ लिई भर जोरी
भक्ती को रग सुरंग बनायो री, प्रेम करी पिचकारी
ऐसी भई मतवारी सखि सब कान्ह को देखन आई
कैसी मोहन बंसी बजाई० ॥

इस बारामासी की अंतिम कड़ियाँ सुनिए—

आई आषाढ़ मों आस पुरी मन पूर्णानन्द भयो री
या तन कुञ्ज मो श्री गुरु गोविंद आत्माराम न्यहारी।[२]
समरस रम रह्यो मानस मो[३] वृत्ति भई अविकारी
देवनाथ प्रभु अन्तर बाहिर छाय रह्यो सब माही ॥

देवनाथ के पदों मे आध्यात्मिक होली खेलने के कई उदाहरण हैं। मराठी संतों की कृष्णलीलापरक वाणी में देवनाथ ने राधा का संभवतः प्रथम बार उल्लेख किया है—

बंसी बजावनहारे, कब करौ दया मो पर।
नंद के नंदन कंस निकंदन गौवन के रखवारे।
श्री जगजीवन व्यापक जग में, वेद कहे ललकारे।
या मनमोहन दीनोद्धारण श्यामसुत घनकारे।
वेग करोजी, देरु न लगावो, राधाजू के प्राणप्यारे।
देवनाथ प्रभु ऐसो कीजै, नयनन रूप न्यहारे ॥[४]

कृष्ण की चर्चा करने पर भी राम-भजन में इनकी लगन लगी रहती है। ये कहते हैं—

राम बिना मोही चैन परे नहिं, झूठी दिखावे धन सुत ध्यान।
झूठो भाई बद छुगाई, अवसर कोऊ आवै न काम ॥

जगत में सबके दिन एकसे नहीं जाते। जीवन में उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। इस संबंध में इनका यह पद है—

रमते नाथ फकीर। कोई दिन याद करोगे।
कोई दिन बैठे पालखि घोड़ा। कोई दिन शिरपे अबदागीर।
कोई दिन वोढे[५] शाल दुशाला। कोई दिन भगवे चीर।
कोई दिन धोती और लंगोटी। कोई दिन नगे पीर।
कोई दिन खासा पलंग बिछोना। कोई दिन जमिन पे शीर ॥[६]

---

१. देखकर २. न्यारी ३. मानस में ४. निहारे ५. ओढे ६. शिर।

भगवान जल, स्थल, वृक्ष, पाषाण—सब जगह समाया हुआ है। ये कहते हैं—

या जगमो कोई और न जानिये। पूरन भरयो भगवान हो।
जल थल ब्रिख[1] पासान बीच मो। रूप भरयो सब जान हो।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन। सब घट मान समान हो।

इनके पदों में संत-परम्परा के अनुसार गुरु-महिमा का भी बखान है। कहते हैं—

देख सुरत[2] टक लागि नैनसों नैन भेद कर दिया।
गुरू ने जोगन मुझकू किया।

इन्होंने 'अनहत नाद' का अनुभव किया है और अन्य संतों के समान ही इस अनुभव का चित्रण भी किया है—

नैनन हरबिच छूटे फवारे दीन[3] रयन सब गई
सुरजबिन चाँद उजाला सही।
लख लख तारे झमके सारे तुर्या उन्मनि भई
अंखियाँ जर्द गर्द हो रही।
खुली समाधि हरदम जोगी घट घट मो निज साई।
सच्चा गोविन्द है तुही।

इसी प्रकार दुनिया को स्वप्नवत् समझने की कल्पना भी संत-मत-सम्मत है।

याँ जग भरया तो क्या करना जी।
भाऊ[4] बंद औ पूत लुगाई। अंत न कोऊ अपना।
रैन वसे दिन उठे चले वे। दुनयाँ सब सपना।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन। निरखत पग धरना।

आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति में कितनी निर्द्वन्द्वता है, कितना फक्कड़पन है—

गुरू कृपे[5] का अंजन पाया, मेरा मैं जानूं।
आज रूप नयनों में छाया मेरा मैं जानूं।
उलट मार्ग की रहा बताई, मेरा मैं जानूं।
बुरे करम की रेख मिटाई, मेरा मैं जानूं।
चाँद सूरज बिन परा उजाला, मेरा मैं जानूं।
पिलाया अजरामर का प्याला, मेरा मैं जानूं।
जहाँ तहाँ मैं आप अकेला, मेरा मैं जानूं।
आपहि गुरु औ आपहि चेला, मेरा मैं जानूं।
गोविन्दनाथ ने यही बताया, मेरा मैं जानूं।
देवनाथ सपने में मिलाया, मेरा मैं जानूं।

---

१. वृक्ष २. सूरत ३. दिन ४. भाई ५. कृपा।

भाषा

देवनाथ ने अपने समय की प्रवृत्ति के अनुसार उर्दू और फारसी का ज्ञान प्राप्त किया था। इसलिए उनकी भाषा में अपने पूर्ववर्ती संतों की अपेक्षा अधिक सफाई और छंद में अधिक प्रवाह है; परन्तु मराठी में जिसे 'निर्भेल' (सर्वथा शुद्ध भाषा) कहते हैं, वह नहीं है। उसमें ब्रज, खड़ी बोली, मराठी और अरबी-फारसी का संगम है। संत संगम-स्नान के पक्षपाती होते ही हैं। अतः भाषा के किसी एक रूप को न पाकर भी हम उनमें हिन्दी की मधुर भाव-व्यंजना पाकर मुग्ध हो जाते हैं। सत्य बात तो यह है कि भारतीय इतिहास के मध्ययुग में ब्रजभाषा को ही काव्य-भाषा का स्थान प्राप्त होता रहा है। इसलिए प्राचीन रचनाओं में उसका अनायास समावेश होना स्वाभाविक है। देवनाथ की भाषा में वर्ण-प्रक्रिया के वे ही रूप लक्षित होते हैं जिन्हें हम पिछले संतों की काव्य-भाषा-विवेचना के समय प्रस्तुत कर चुके हैं।

देवनाथ के पदों में अनुप्रास, उपमा और रूपक अधिक पाये जाते हैं। कई स्थलों पर आनुप्रासिक पद-योजना का नाद अर्थानुगामी होने से आह्लादकारी है। वर्षा की रिमझिम का वर्णन कितना ऋतु-अनुरूप है—

भादों मासमो मेघ गडाडत टपकत बुदरी खासी।
रुमझुम रुमझुम झरझर झरिया बरसत है घनरासी॥

रूपक के एक-दो उदाहरण लीजिए—

(१) आत्मग्यान की यह तन क्यारी बीज नहीं बोया
(२) ज्यानी के जंगल मों सुसरी फनकी नाहक के घर माया
माया अधारी रात परी भेरपूर निंदभर सोया।

अलंकारों में कोई अभिनवता नहीं है, पर वे सतों की प्रतीक-भाषा के अनुरूप हैं।

दयालनाथ

ये देवनाथ के शिष्य थे। देवनाथ के देहावसान के पश्चात् सुरजी अंजनगाँव के देवनाथी मठ के यही अधिष्ठाता बने थे। इनका जन्म ईसवी सन् १७८८ और निर्वाण ईसवी सन् १८३६ में हुआ। हैदराबाद में ये समाधिस्थ हुए। इनके पिता मूर्तिजापुर (विदर्भ) के रहनेवाले थे। अल्पायु में ही अनेक सतति खो चुकने के उपरान्त इन्होंने हरि नामक पुत्र को देवनाथ के चरणों में लाकर डाल दिया। देवनाथ के गुरु गोविन्दनाथ हरि को 'दयाल्या' कहकर पुकारने लगे। बड़े होने पर उसका नाम 'दयालनाथ' रख दिया गया। गुरु ने इनका विवाह कराया और इनको संस्कृत, उर्दू आदि भाषाओं से परिचित कराया। दयालनाथ ने अपने गुरु की छत्रच्छाया में महाराष्ट्र भर में भ्रमण कर कीर्ति अर्जित की। इनमें वक्तृत्व-कला थी और कंठ में माधुर्य था। अतः ये सहज लोकप्रिय हो गये। ये प्रत्युत्पन्नमति भी थे। एक बार कीर्तन के समय 'नदाच्या नंदना नदनीरदतनु, कोमलगात्रा, दानवकुल नंदना' पद गा रहे थे। एक शास्त्रीजी ने प्रश्न

किया, संस्कृत पदों का संबोधन अकारान्त ही होना चाहिए। तुमने 'दानवकुलनंदना' कैसे कहा?' दयालनाथ ने तुरंत उत्तर दिया, 'ईश्वर को वैकुंठ से बुलाना है न? इसलिए ज़ोर से पुकारने के लिए आकारान्त प्रयोग करना पड़ा।' शास्त्रीजी ने पुनः प्रश्न किया, 'भगवान क्या 'नाथ' से दूर था जो ज़ोर से पुकारने की आवश्यकता पड़ी?' दयालनाथ ने उसी प्रकार अविलम्ब उत्तर दिया, 'निर्गुण भगवान को सगुण बनाकर लाना था न, इसीलिए मैंने इतने आक्रोशपूर्वक हाँक मारी है।' शास्त्रीजी मुग्ध हो गये और उन्होंने दयालनाथ को भुजपाश में बाँध लिया। दयालनाथ की गुरु-परम्परा देवनाथ की गुरु-परम्परा के समान ही है। इनकी गुरुभक्ति बड़ी गहरी थी। गुरु इनकी परीक्षा लेने के लिए इन्हें बारबार अपमानित करते, पर इनका भाव कभी क्षीण न पड़ता।

दयालनाथ की काव्य-रचना

नाथ-मत में दीक्षित होने पर भी इन्होंने हिन्दूधर्म मे मान्य सभी देवताओं पर रचनाएँ की हैं। इनकी मराठी मे आख्यान-कविताएँ अधिक परिमाण में हैं। हिन्दी में फुटकल पद हैं। कृष्णपरक पदों में व्रजकाव्य की छटा देखिए—

तुम देख्यो भय्या। मुरली को बजवय्या।
मोर मुकुट की लटपट न्यारी। गरे सो लपटी राधा प्यारी
कुंडल सोहवे[1] बनवारी। देखे गोपी कन्हया।
गरे मो सोहत है वनमाला। पीताम्बर प्रभु नूपुरवाला।
रास रचे नाथे अलवेला। पकरत गोपिन की बहिया।
झटपट खेलत चुंबत कान्हा। छतिया छुवावत गावत ताना।
जमुना तट मो श्री भगवान। क्रीडत व्रिज को बसय्या।
दयालु देवनाथ अलवेला। साथे व्रिजनारी का मेला।
कुंजनवन मो करत किलोला। मुनि जन गावत जगसंय्या।

इसमें शृंगार का वही रूप है जो व्रजभाषा के अधिकाश कृष्णकाव्य मे दीख पड़ता है। दयालनाथ के पदों में भ्रमरगीत-परम्परा की भी बानगी मिल जाती है। इनके 'उद्धव-गोपी-संवाद' शीर्षक पद की कतिपय पंक्तियाँ पढ़िए—

ल्यावो बनवारी उधो, ल्यावो बनवारी।
प्रेम कट्यारी तू काहेकु मारी, कहियो बात हमारी।
जसोमति नंदन ममता छोड़ी प्रीति सभी वाकू कुवरी रे।
घायल घूमे धाम मो करे न चित मन बोध।
लहु नयना टपकते विसर गई सब सुद[2]।
रूपहीन कुल जात की प्रीत करे नंदलाल।
गोपिन मोहरे डार के चाल चलावत व्रिजपाल।

---

[1] सोहे [2] सुध।

करत करि बिसरत बुरि येहि देही येहि रीत ।
किन सुख पायो ये सखि परदेसन की प्रीत ।
उधो कहो न्हा जायके मरगई ग्वालण ।
एक बार तुम छलियो अमृत जसोमतिपाल ।
वा कुबरी ने चंदन चर्चो जादू ही कर डारी ।
देवनाथ प्रभुनाथ दयालु बिन सारे हमे मारी ॥

दयालनाथ की गोपियों मे उपालम्भ की सबसे अधिक तीव्रता है । एक अन्य पद में कुब्जा पर गोपियाँ बुरी तरह टूटकर कहती हैं—

वह कुबरी ने चदन चर्चो, श्याम मूरत वहा लटकी ।
च्याम के दाम चलावे सौकन, गोपन मोह हरे खटकी ॥

गोपिकाएँ जब यमुना में जल भरने जाती हैं तब कृष्ण बीच में मिल जाते है और उनसे बरजोरी करने लगते हैं । इस पद में भी गगरिया का फूटना, चुनरी का भींजना, सास-ननद की गालों का भय आदि सभी कृष्ण-काव्य के ब्रजभाषा-कवियों के समान ही कथन है । गोपिकाएँ कृष्ण को बाँसुरी नहीं बजाने देना चाहतीं, क्योंकि वह 'ज्यालम' (ज़ालिम) है । अतएव उन सबने मिलकर कृष्ण से छीना-झपटी प्रारंभ कर दी । कृष्ण को चरणों पर झुकाने का कितना सरस और सजीव चित्रण है—

यक मुरली कर की ले भागी । एक मोतनमाला तोरी ।
पीताम्बर यक सखी ले गई । आसपास सब दे दे तारी ।
सरस बनी है नद की लरकी । कहत खिजावत सब नारी ।
राधाजू के चरण कमल पर । सीस नमायो कर जोरी ।
तब छोरू देवनाथ दयालू । कहो तुम जीते हम हारी ।

इनके कृष्ण पर रचे हुए पद सरस हैं और हिन्दी-कृष्ण-काव्य-परम्परा के अनुरूप हैं । इनके अतिरिक्त अनेक पद स्तुतिमूलक भी हैं ।

गणपति, शकर, विठोबा आदि देवताओं के साथ-साथ गुरु-स्तुति के भी दो पद हैं । संतों की तरह नाम-स्मरण और बोध देनेवाले पद भी मिलते हैं । इन पदों मे अन्य सत-कवियों के समान ही भाव व्यक्त हुए हैं ।

इनकी भाषा अपने गुरु देवनाथ के समान ही अपने समय की उर्दू मिश्रित महाराष्ट्रीय हिन्दी है ।

विष्णुदास कवि

इस कवि का सतारा में (शक स० १७६६ अर्थात् सन् १८४४) में जन्म हुआ । इनका परिवार भगवद्भक्ति के लिए प्रसिद्ध रहा है । इनके पूर्वज अहमदनगर जिले के रहनेवाले थे, पर बाद में सतारा में आकर बस गये थे । सन् १७४३ में परिवार के प्रमुख पुरुष चिन्तामणि का

---

१. बुरी । २ सौत के लिये सौकन शब्द ठेठ दक्खिनी है ।

जन्म हुआ। वे गणपति और दत्तात्रय के उपासक थे। सन् १७४५ में उनका स्वर्गवास हो गया। उनके पुत्र शिवरामजी दत्तोपासक थे। सतारा के राजघराने से इनकी जीविका चलती थी। इनके दो पुत्र हुए, एक रावजी और दूसरे भालचंद्र। दोनों भाई वंश-परंपरा के अनुसार भगवान के भक्त थे। पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर रावजी के राज्य-पुस्तकालय की कई पोथियाँ सुवाच्य लिपि में अंकित कीं। जब सन् १८४२ में सतारा राज्य अंग्रेजों के हाथ मे चला गया तब दोनों भाई राज्याश्रय से वंचित हो गये। रावजी के पुत्र कृष्णजी 'विष्णुदास' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हे बचपन से ही कृष्ण भगवान के दर्शन की पीर जाग्रत् हो गई। शिक्षा-दीक्षा के समाप्त होते ही ये गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट हो गये; पर, इनका मन 'गृह' मे कभी नहीं रमा। ये एक दिन भाग खड़े हुए, पर 'काका' इन्हे पुनः घर लौटा लाये। पत्नी अत्यंत सुशीला थी। वह अपने पति को शकर-रूप मान कर पूजती थी। एक दिन पुनः इनका मन उचट गया और ये तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। दक्षिण मे बहुत समय साधना मे बिताकर मातापुर गये जहाँ दत्त शिखर पर इन्हे 'दत्त' के दर्शन हुए। वहाँ मधुकरी माँग कर जीवन-यापन करते थे। माहूर क्षेत्र मे इनकी साधना पूरी हुई। कहा जाता है, वहाँ इन्हे भगवान का साक्षात्कार हुआ, और, तभी से ये आशुकवि हो गये। महाराष्ट्री संतों के स्वभाव के अनुसार इन्होंने हिन्दी में भी पद रचे हैं। इनके दो पद प्राप्त हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि इनमे व्यग्य की मात्रा अधिक रही है। इनमे काव्य-प्रतिभा भी लक्षित होती है। लावनी में शृंगार तो भरा ही है, हास्य की भी छटा छिटकी हुई है। अमीर खुसरो ने जिस प्रकार फारसी और हिन्दी-मिश्रित कुछ रचनाएँ की थीं, उसी प्रकार इनकी लावनी भी हिन्दी और मराठी मिश्रित है। इनकी दोनों रचनाएँ नीचे दी जाती हैं—

(चाल—जप का अजब तड़ाखा बे)

गुरूजी लिया मंत्र तेरा,
दिल तो भटक रहा मेरा ॥ध्रु०॥

अहं सोहं अजपा जप का वाजा बजत है कानन मो।
नहीं उखाड़ी पर नारी की सुरत गडी जो मन मो।
गुरुजी ... मेरा।

बैठा शिर पर जटा वढ़ा कर पीले गाँजा घोटा।
चेले जमाये जमा जमा कर अदर सट्टा बट्टा।
गुरुजी ...... मेरा।

दुनिया खातर झूटा ढोंगी बन गये जोगी बच्चा।
आत्म ग्यान जब लग नहि पावे तब लग चेला कच्चा।
गुरुजी ... मेरा।

विष्णुदास कहे वोही सच्चा पूरा मुरशद[1] कहेना।
मेरा मुजकू रूप बताये आगे पकड़कर आयना[2]।
गुरुजी ... मेरा।

---

१ मुरशिद=गुरु २. दर्पण

बनावटी ठग-साधुओं पर उपर्युक्त पद में कितना कठोर प्रहार है। नीचे की लावनी मे शृंगार ओत-प्रोत है। इसे महाराष्ट्र में पेशवा-युग की देन कहना चाहिए।

(चाल—एक दिन जाना रे भाई)

भला भला मोरिजान। खुसी से यव[1] करना दोस्ती
येथ कुणाची नाहिं कुणावर पहा जबरदस्ती[2] ॥
क्या कहू तारिफ तेरे बदन की अजब तरहा प्यारी।
जसि कमलाची कली टवटवित दिसे भर दुपारी[3]
तेरे, प्रेम के खातिर आया मैं तो बेपारी
दे तबकामधि पान तमाखू चिकणी सुपारी
ये रस्ते पर क्या खड़े रहना, आगे गस्ती ॥ येथ कुणाची० ॥
मत कर मेरे तरफ दीवाने, तेरि नजर पापी।
नाहि लागला डाग मला पर घरचा अद्यापि[4]।
छोड़ जाने दे, अब मेरे पे इतनी माफी
नको मला तू समजू उष्टया गाजाची साफी[5]
जान गई तो नहीं चढ़ने की मैं तेरे दस्ती[6]। येथ कुणाची० ॥
खुपसुरतन की चटक लगी है मेरे दो नैना
शेज मचकावर घटकाभर मला झोंप ये ना[7]
चंद्र वदन मृग नयन विराजे सुन्ने का गहिना
तुजविरण सजणे पहा घटकाभर जीव कुठें राहिना[8]।
हात पकड़कर चल बंगलेपर मत करना सुस्ती।
बदनामी से डरकर दुनिया में है रहिवासी।
हात जोड़नी तुला सागते मी सासुरवासीं[9]
बुरी बात ये हो जायेगी मालूम लोकासी[10]
फुकट माझा विपर येइल घरच्या लोकासी
जा इस वास्ते अब मत करना वे दंगामस्ती ॥
दो दिन की खुषी करना धरना क्यंव[11] हिम्मत कच्ची
नथ मोत्याची तुलजा देवून साडी भरगची।[12]
झूट बात ये नहीं होने की तेरि कसम सच्ची
कर्से ही कर पण, हो म्हण गोष्ट तुझ्या हातची।[13]

---

१. यों, २. देखो, यहाँ किसी को किसी पर जबरदस्ती नहीं है। ३. जिस तरह कमल की कली भरी दोपहरी में खिलने लगती है। ४. मुझे पर घर का अभी तक दाग नहीं लगा है। ५. मुझे तू जूठी गाँजे की साफी (चिलम का रूमाल) मत समझ। ६. हाथ में। ७. मुझे बिस्तर पर पलभर भी नींद नहीं आती। ८. सजनि, तेरे विना प्राण पल भर भी नहीं रहते। ९. मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ कि मैं ससुराल में रहती हूँ। १०. लोगों को, ११. क्यों? १२. तुझे मोतियों का नथ और जरी की साड़ी दूँगा। १३. कुछ भी कर, पर हाँ कह; यह तेरे हाथ की बात है।

दिल राजी तो क्या करती है स्टेशन की बस्ती।
आखिर दिल की दिलकू पटगई दो घड़ि मे अर्जी
खुष रंगाला रंग मिळाला, झाली खुष मर्जी
नावर तुंदर तयार दानी चली इष्कबाजी
धिमिकिट् धिमिकिट् धिलाग धागत वाजे पखवाजी
विष्णु कवि कहे, हो गई लेना बहु शक्कर सस्ती। येथ कुणाची० ॥

गुलाबराव महाराज

मध्यप्रदेश के अन्तर्गत विदर्भ जिले के माधान नामक ग्राम में शक संवत् १८०२ (सन् १८८०) में इनका जन्म हुआ। जब ये ६ महीने के थे तभी नेत्ररोग के कारण इनकी बाह्य दृष्टि चली गई थी, परन्तु इनकी प्रतिभा अलौकिक थी। अल्पायु मे ही इन्होंने साख्ययोग और वेदान्त जैसे गहन विषय आत्मसात कर लिये थे। इनकी इस अलौकिक प्रतिभा और साधु-आचरण के कारण ही ये अपने समय में ही संत रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। कहा जाता है कि स्वप्न में ज्ञानेश्वर के द्वारा मंत्र प्राप्त होने के कारण ये उन्हीं को अपनी जननी मानने लगे थे और कृष्ण को अपना पति मानकर शरीर पर मंगलसूत्र, कुंकुम आदि स्त्री-सौभाग्य-चिह्न धारण करने लगे थे। इनकी मराठी के अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी में भी अच्छी गति थी। इन्होंने समस्त भारत की यात्रा कर विविध ज्ञान सम्पादन किया था। इनके अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमे सम्प्रदाय सुरतरु, भागवत् रहस्य, व्यवहारधर्म बोध, सूक्ति रत्नावलि, पदाची गाथा आदि ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध हैं। ये मधुराद्वैत दर्शन के आचार्य कहलाते हैं। इन्होंने दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त आदि छंदों तथा विभिन्न राग रागिनियों में गेय पदों में प्रचुर हिन्दी काव्य रचना की है।

अपने गुरु के प्रति भक्ति-भावना-व्यक्त करनेवाला उनका एक काव्य-पूरित कवित्त नीचे दिया जाता है।

छाडि लोक लाज राज साज चलो आज
देखिबे को कैसे सखि नैन ललचाए है
कोऊ ठाडे छतर धारे कोऊ आये व्यजनवारे
पालकी में बैठ मेरे ज्ञानराज आए है
कमलिनि लजाय रहि, कनक श्री जाय रहि
रसाहर खाय रही रसली मिलाई है
पानी के प्रवाल की और मनि मे के लालकी
अस कामिनी के गाल की सब शोभा की भुलाई है
बीजुरी के सरि सूरज धुर धारी से
करिके सवारी छबि सारि हरि लाई है
क्या राधिका तिलक आंकी ? नाही नाही सुनारी सखि,
मेरे ज्ञान राय की पाय की ललाई है ॥

१. देखिए—सूक्ति रत्नावलि, एकादश यष्टि, पृष्ठ—२।

इनका विरह-वर्णन कुछ आधुनिकता लिये हुए है। ये कहते हैं—

प्यारे मेरे नाहि मिले सब रात
डारा न मुझे कभि अकेला जबसे लाइ बरात।
मेरे बिन वो प्रभू अकेले किस्से करेगे बात
रहा देखते भवर[1] भयी है दहा करे[2] शित वात[3]
दिन भर तो कचरी मे रहेगे बैठे है नंद तात
ज्ञानेश्वर जामात[4] बिना मम अंखिया लगत न पात ॥

ये भी कान्हा से मुरली बजाने का निषेध करते हैं; क्योंकि उसको सुनकर शरीर की 'सुध-बुध' चली जाती है और लोक-मर्यादा भी नहीं रह पाती। इन्हें भी श्याम के बिना गोकुल प्रेत-सा जान पड़ता है। यशोदा का विलाप है—

मोरे कित गये दोउ लाल।
देख्यो न उन्हें जगत पसाप्यो। आठ बरस के बाल।
नहि पहनाई मोतन लरिया। खुषि में ले बनमाल।
ज्ञानेश्वर तुम्हरे बेटिन के। अंसुवन भीगत गाल ॥

यशोदा को वह समय स्मरण हो आता है जब वे प्रातःकाल कृष्ण को पद गाकर जगाया करती थीं—

जागो लाला भवर भई।
उठि ग्वालन सीस घगरिया धरीं। पनघट सबहि गयी।
सुतिलक करिके सेवन करिये। सक्कर दूध दही।
अलकावलि पति चरण सरोरुह। सत्ता सकल सही ॥

कृष्ण-भक्त होते हुए भी इन्होंने रामचरित संबंधी पद गाये हैं। हनुमान जब लका में अशोक-वाटिका में चिंतातुर सीता के निकट सहसा खड़े हो जाते है और अपनेको राम-भक्त घोषित करते हैं तब सीता पूछती है—

सुत तैं कहाँ देखे प्रभु राम
लछमन को मैं नहि सो बोली भरमाई कुति बाम।
रघुवीर वर नर तू तो वानर कहस करेगा काम
जाकर कह रघुनायक चरना मो कु लिजाओ[5] धाम।
मारुति बोले सुनि जननि तु, सुमिर अनुदिन नाम

---

१. भोर
२. दहाकरे—दग्ध करता है।
३. शितवात—शीतपवन
४. ज्ञानेश्वर जामात—गुलाब महाराज ज्ञानेश्वर को अपनी माँ और कृष्ण को पति मानते थे, इसलिए ज्ञानेश्वर जामात का अर्थ कृष्ण हुआ।
५. ले जाओ।

एक विरह-पद और उद्धृत किया जाता है—

कौन गली सखि श्याम ।
उनको मिलन बिने नहि मोरे, पल दिल मो आराम ।
छिन छिन नयन नीर आवहि, सूझत नहि बेकाम ।
श्याम मिलन सदुपाय करित हु, ले ज्ञानेश्वर नाम ।

इन महाराज के कुछ पद तो भाव और काव्य की दृष्टि से बड़े उत्कृष्ट बन पड़े हैं। भाषा महाराष्ट्रीय संतों की नाईं मिश्रित है। अद्वैतवादी ज्ञानेश्वर के अनुयायी होने पर भी कृष्ण-भक्ति की इनमें प्रधानता है। विदर्भ-नागपुर के क्षेत्र मे इनके अनुयायियों की पर्याप्त संख्या है। फिर भी इनकी भक्ति-भावना की गहनता की बानगी हमे कुछ ही पदों मे मिल जाती है।

गंगाधर

इनका परिचय प्राप्त नहीं हो सका; परन्तु इनकी कतिपय हिन्दी पंक्तियाँ मिली हैं। पंक्तियों की भाषा से इनका समय १८ वीं और १९ वीं शताब्दी के मध्य जान पडता है। ये आत्मा में ही परमात्मा को खोजने की बात कहते हैं। इससे जान पड़ता है कि ये सिद्धान्त से नाथ-सम्प्रदायी और व्यवहार से भागवत मत के अनुयायी जान पड़ते हैं। इनका एक पद यहाँ दिया जाता है—

रसना क्यों भूली हरि नाम ॥ध्रु०॥
षड़रस भोजन स्वाद बतायो, कूर[1] कपट की खान
या नर देह को गर्व न कीजे, ज्यो बादर को घाम ।
गंगाधर के अन्तर्यामी खोजो आत्माराम ।

नरदेह को बादल के घाम की उपमा सचमुच अभिनव कल्पना है। भाषा में सफाई और पद में गति है।

गुडा केशव

ये विदर्भ के प्रसिद्ध संत हैं। इनकी जन्म-तिथि और प्रयाण-तिथि के संबंध में निश्चित जानकारी नहीं है। ये शक संवत् १७५२ (हिजरी सन् १२५०) फसली में जीवित थे। इसका प्रमाण इन्हे दिये गये एक मुसलमान अफसर के उस पत्र से मिलता है जो उसने इन्हें वार्षिक 'बलोता' देने के संबंध में अपने किसी अधीनस्थ कर्मचारी हेरवाजी नायक को लिखा था। उस पत्र मे उपर्युक्त वर्ष लिखा हुआ है। यह पत्र डा० देशमुख (नागपुर-महाविद्यालय) के पास सुरक्षित है। ये यवतमाल ज़िले के विठ्ठल नामक ग्राम के रहनेवाले थे। यह गाँव माहूर परगने मे है। वहीं इनकी समाधि भी बनी हुई है। इनके समय में विठ्ठल के पास उमरखेड़ (पूसद तहसील) संतों का केन्द्र था। ये अपने पदों के साथ गुंडा केशो और गुडाकेश लगाते है। यह इनका कल्पित नाम जान पड़ता है। इन्होंने फुटकल

1. क्रूर।

पद ख्याल आदि लिखे हैं। मुझे डाक्टर देशमुख से इनकी कृतियों की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं जो अत्यत जीर्णावस्था में हैं। कई पृष्ठ खंडित हैं। उनमें बीच-बीच में मराठी के भी पद दिये हुए हैं।

गुडाकेश के गुरु के संबंध में ज्ञान नहीं है; परन्तु उनकी हस्तलिखित प्रतियों में मुझे उनके ब्राह्मण होने तथा नाथपंथी होने के स्पष्ट संकेत मिले हैं—

"प्रभुजी तुम मेरो ज्यजमान,
अदणा ब्राह्मण तोरो चिकारि
तोकु अभिमान।

एक पद है—'हम तो दास गुरु के ***नाथ*** उपासी
ती जग ***को आदिनाथ सो साई,*** हर घट हिरदे विलासी।"

नाथ—सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा आदिनाथ से प्रारम्भ होती है। गुडाकेशव उक्त पद मे अपनीं यही परम्परा बतलाते हैं।

बाहरी साक्ष्य (किंवदन्तियों) से भी यही समर्थित होता है कि ये यजुर्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे। इनके वंशज अभी भी 'बिठ्ठल' में हैं, पर वे अपने पूर्वज के संबध में विशेष जानकारी नहीं रखते। यह कहा जाता है कि ये खूब भ्रमण करते थे और निर्द्वन्द्व-जीवन व्यतीत करते थे।

हिन्दी पद

ये अपने हिन्दी पदों को 'दिल्ल बुज्ज्य दोहरे' (मन को चेतावनी देनेवाले दोहे) पद, बैरागण, आरति और काल शीर्षक के अन्तर्गत बाँटते हैं। पर दिल्ल बुज्ज दोहरों में दोहा-छद के लक्षण नहीं मिलते। इससे प्रतीत होता है कि इन्होंने 'दोहरे' नाम उपदेश परक द्विपदियों को ही प्रदान किया है। वैरागण भी कोई छन्द का नाम नहीं है। इसके अन्तर्गत आत्मा का परमात्मा के प्रति मिलन—उत्कण्ठा और मिलन-अनुभव—वर्णित है। आरती में निर्गुण ब्रह्म की, जिसे राम भी कहा गया है, स्तुति गाई गई है। ख्याल तथा पद गेय रचनाएँ हैं जिनमें विविध अध्यात्मभाव वर्णित हैं।

विचार-धारा

ज्ञानमार्गी सतों के समान ही इनकी रचनाओं में पिण्ड मे ब्रह्माण्ड, ब्रह्म की सर्व व्यापकता, गुरु-महिमा, काल चेतावनी, जीवन की क्षणभंगुरता, संसार की असारता, तीर्थ, व्रत, पूजा आदि वाह्याडम्बर का विरोध, जाति-विरोध, भक्तिमूलक विरह और दैन्य के भाव व्यक्त हुए हैं। आत्मा और परमात्मा की क्रमशः प्रेयसी और प्रियतम की प्रतीक परम्परा नामदेव से प्रारम्भ होकर कबीर, दादू आदि अनेक सतों में बराबर चली आ रही है।

अब हम इनकी उपर्युक्त विचार-धारासमन्वित रचनाओं का रस ग्रहण करेंगे।

मनुष्य का जीवन क्षणिक है, फिर भी वह कितना बावला है कि उसमें भूलकर परमात्मा का स्मरण भुला देता है।[१] वह भूल जाता है कि संसार का धन-वैभव-स्वप्न के समान असत्य है। काल सिर पर नाचता रहता है। अतएव मनुष्य को सावधान रहना चाहिए।[२] मनुष्य को चाहिए कि वह उस परमात्मा को पहचाने जो सर्वत्र छाया हुआ है। 'उसी' की ज्योति से समस्त सृष्टि द्योतित है[३]।

परमात्मा को ढूंढने के लिए तीर्थ-स्नान की क्या आवश्यकता है? जो सब तीर्थों का आदि स्वामी है, उसी मे लगन क्यों नहीं लगाते?[४] 'उसे प्राप्त करने के लिए गँवार हिन्दू पत्थर पूजते हैं। जिसने पत्थर को पैदा किया है, उसका स्मरण करो।[५]

हृदय में खड़े हुए 'रबूब' तक पहुँचने का मार्ग गुरु ही दिखला सकता है।[६] जो यहाँ-वहाँ भटकते फिरते हैं, उनका भ्रम गुरु के द्वारा ही निवृत्त होता है।[७] भ्रम के दूर हो जाने पर हृदय में परमात्मा की तालाबेली जाग उठती है और हृदय अस्वस्थ हो जाता है।[८] उससे मिलने की बेहाली में भी एक मस्ती है जिसे भुक्तभोगी संत ही जान सकते हैं।[९] एक बार परमात्मा के प्रति प्रेम लग जाने पर उसका स्मरण जीवन का श्वास बन जाता है। फिर तो वह अपने भक्त के प्रति सदय हो उठता है और उसका उद्धार कर देता है। परन्तु हृदय मे सदा उसके प्रेम रूपी मोगरे की महक की मस्ती छाई रहनी चाहिए।[१०] गुडाकेश कहते हैं कि मेरी यह अवस्था हो गई है।

---

१. भगलज्ञ बेगरल जींदगाणि दो दिन्न की हसी को गरक याद भुला अहल्ल की।

२. सम्पन्न सि ये दौलत भुला है ज्याहान आखर कु दगा, ज्याग हिरदे सुमान।
बुरि मार ज्यंकी हुसीयार हिरदे। कहरदास गुरुडे भावल काग कर्दे॥

३. भरा है ज्यमों आसमानि ज्याहणू कहे दास गुरुडे उसकुं पछयाणू
ज्यगत का धनि येक साहेब यही है निरंज्यन निरंकार ज्योति भरी है।

४. हुआ है मनुआ सब तिरथ सपडा
सकल तिरथ को आद गुंसाई, वाकु लगन ज्यम्डा।

५. फत्तर कुं पुज्य मुरख हीदू गंव्हार।
फत्तर जीसने पैदा कीया सो विचार॥

६. गुरुजी प्रेम राहा कुं दिखायो।
ये मारग में पितम मीलियो।
मस्कुल्ल दिलज्ञ खुलायो।
दरवाज्या उलट कें ज्याना, येह मोकुं सिखलायो।

७ भटकत कोया फीरे दिल ज्यामें, गुरुमुख भ्रम निवडा।

८. लगी है प्रेम लगन कि याद पिया बिन ओयेरो कैकर जीये खुदस्ते बुनियाद।

९. बेहाली मो मस्त सदा है, सब तन प्रेम गडा।

१०. पिरय पियारे अजीज उधारे लाल से (१) ख्याल ज्यडे हैं।
मस्त सदा फुलती ज्यों कुंज्यन महक की मोगडे हैं।

जो सृष्टि में 'उसी' को भरा हुआ अनुभव करता है, उसके लिए हिन्दू और मुसलमान में भेद कहाँ रह जाता है[1] ! सच्चा फकीर वही है जो खुदा को पहचानता है और जो पाक दिल में उसका स्मरण करता है[2] ।

हठयोगियों के समान गुडाकेशव में भी कुंडलिनी योग का उल्लेख मिलता है । मीरा के समान इनके पिय की सेज भी 'गगन मंडल' में है । वहीं पहुँचकर ये उसे सजाना चाहते हैं ।

हिन्दी-भाषा

गुडाकेशव की भाषा चलती हुई खड़ी बोली हिन्दी है जिसमे व्रज की पुट और अरबी फारसीशब्दावली की भरमार है । परन्तु उन विदेशी शब्दों को जी भर कर तोड़ा-मरोड़ा गया है और-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों मे 'सधुक्कड़ी' भाषा को टकसाली बनाने का यत्न किया गया है । वर्णों को द्वित्व करने का भी प्रयास किया गया है । यथा—

भगल्ल, बेगल्ल, अहिल्ल, विन्न, लगन्न, मुसल्लमान, सपन्न आदि । जहाँ शब्दों में ज या च आया है, वहाँ उसे हलन्त कर उसके बाद य का आगम हो गया है । यथा—

जमी—ज्यमी—जहान—ज्याहाण, —सच—साच्य—चौथी—च्यवथी,—उजाला—उज्याला,—निरंजन—निरंज्यन—जहान— ज्याहान—चढ़ा— च्यढ़ा—जाको— ज्याको—जुड़ा—ज्युड़ा,—जंगम—ज्यंगम—जात—ज्यात,—जगत—ज्यगत आदि ।

पर य के आगम की प्रवृत्ति इकारान्त और उकारान्त वर्णों के साथ प्रायः नहीं पाई जाती । यथा—जीदा (जिन्दा) वजूद (वजूद)

परन्तु अव्यवस्थित भाषा के भीतर भी भावों की व्यवस्था नहीं बिगड़ पाई है । अभिव्यक्ति सशक्त और प्रासादिक है ।

माणिक

इस संत का कब जन्म हुआ, यह अज्ञात है; पर इनकी समाधि हुमणाबाद में सन् १६११ में हुई थी, यह ज्ञात है । इनके शिव, श्याम और राम पर मधुर पद हैं । एक पद की पक्तियाँ हैं—

> मैं तो वारि रे सय्या तोरे पर से ।
> सावलि सूरत रस भरी अखिया लेगि बलया दोनों कर से
> माणिक प्रभु वो नन्दलाला दर्शन पर जिया तरसे ।'

---

१ सुनो राम रहीमान ये की हिसाब, आकल में तहकीक गुरो सुख किताब हिन्दू और मुसल्लमान कर्तार बुझ सो ही सस्त गुंडे साहेब से रिझ ।

२. खुदा कु बुझया सो ही कीदा फकीर, बुजुद पास दिल से लगन्न से जीकिर

३. स्यवथीआरती भ्मारमोहिं डारो, गगन मंडल मो सेज सम्हारो । पांचवि भारति उन्मुन निद्रा, गुंडा केशो आब्बल मुद्रा ॥

और—

सावरे कान्हा ने वासुरी बजाई तो,
लोक परलोक मे सब थकित रह गए—
नन्द कुमार सावरो कान्हा वासुरी बजाई
शुक सनक व्यास मुनि ध्रुव प्रल्हाद नारद मुनि,
थम रहे स्थिर देह सूध विसराई
चकित भये सब ही देव ब्रह्म विष्णु महादेव
त्रिभुवन मो नारद भरे सुनत शेष शायी
स्थिर रहे जमुन निर, हुल भये विमानी सुर
माणिकदास मगन भये, हरि के गुण गाई ।'

भाषा सन्तों के समान अटपटी है और छन्द मे प्रवाह न होने पर भी संगीत के सहारे गा लिये जाते हैं ।

पाँचवाँ अध्याय

मराठी संतोंद्वारा प्रयुक्त विशिष्ट छन्द और काव्य-प्रकार

मराठी सन्तों की अधिकाश हिन्दी रचनाओं को छन्द शास्त्र की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। क्योंकि उनका उपयोग कीर्तन के समय होने के कारण वे प्रायः विभिन्न राग-रागिनियों मे गुम्फित हैं। फिर भी उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ ऐसे विशिष्ट छन्दों और काव्य-प्रकारों से हिन्दी-पाठकों को परिचित कराया जाता है जो महाराष्ट्र मे प्रचलित है और मराठी-सन्त-साहित्य का वैशिष्ट्य समझे जाते हैं।

ओवी छन्द

ओवी का अर्थ होता है—गुम्फित, ग्रथित। एक ओवी मे तीन चरण होते है। शब्द-योजना अनुप्रासयुक्त होती है और तीनों चरणों के अन्त मे यमक होता है। यद्यपि उसमे चौथा चरण भी होता है, पर उसकी स्थिति गाने की टेक के समान होती है। अतः मुख्यतः तीन पाद की पदावली एक भाव विशेष को गुम्फित कर 'ग्रथ' कहलाती है।

कहा जाता है कि इस छन्द का जन्म कहावतों और पहेलियों से हुआ है। चालुक्य वशीय राजा सोमेश्वर का ग्यारहवीं शताब्दी मे रचित 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' अनेक ज्ञान-विज्ञान का भाण्डार है। इसमें भी ओवी का उल्लेख है। उसमें लिखा है कि महाराष्ट्र-स्त्रियाँ धान्य कूटते समय ओवी गाती हैं। 'सगीतरत्नाकर' में इस छन्द की चर्चा है। उसमे कहा गया है कि ओवियाँ जन-मनोहर होती हैं और विविध छन्दों में महाराष्ट्रीय स्त्रियों द्वारा गाई जाती हैं। इसमे सदेह नहीं कि महाराष्ट्र की ग्रामवासिनी स्त्रियाँ अपने दैनिक व्यवहार के विविध प्रसंगों पर इसे गाती हैं। प्रातः चक्की पीसते समय, बच्चों की आँखों में नींद बुलाते समय, खेतों मे धान्य काटते समय, खलिहानों में उसे गाहते-उड़ाते समय उनके कण्ठ से 'ओवी' झरने की तरह प्रवहमान् हो उठती है। इसमे मानव-जीवन 'कल-कल' नाद करता है। इसमे भक्ति रस बहुधा नहीं होता। तात्पर्य यह कि ओवी उनके जीवन के श्रम-परिहार का मनोहर साधन है। 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' मे जब 'ओवी'

का उल्लेख है तब यह निश्चित है कि ग्यारहवी शताब्दी के पूर्व से यह छन्द प्रचलित रहा होगा।

साने गुरुजी अपने 'स्त्री-जीवन' ग्रंथ (पृष्ठ २) मे इसको ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी मे प्रचलित बतलाते है। जो हो, यह महाराष्ट्र का अत्यन्त प्राचीन लोक-छन्द है, इसमे सन्देह नहीं है। यद्यपि इसमे तीन पंक्तियाँ प्रमुख होती हैं, तथापि यह बहुत लचीला छद है। ग्रामीण नारियाँ तीन, साढे तीन, चार, साढे चार और पाँच पक्तियो तक इसे खींच ले जाती है। वे 'अग बाई, सखे, ग' आदि जोड़ कर लय मिला लेती हैं। यहाँ यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि जो ओवियाँ पुरुषों द्वारा ग्रथों मे आई है, उनमे लचीलापन कम है। ओवी और सस्कृत के अनुष्टुप छद मे समानता इस दृष्टि से है कि दोनों मे एक भाव का गुफन होता है और दोनों का मूल अर्थ ग्रथ है। अभंग और ओवी मे समानता इस दृष्टि से है कि दोनों के दूसरे और तीसरे चरण मे यमक' अलकार की चमत्कृति होती है।

अभंग छंद

यह भी सर्वथा महाराष्ट्रीय लोक-छद है। इसकी लम्बाई की कोई सीमा नहीं होती। इसीलिए यह अभग (अटूट) कहलाता है। दो से लेकर दो सौ 'चौक' भी एक अभंग मे आ सकते हैं। अभग की एक 'ओली' (पक्ति-समूह) मे चार चरण होते हैं और चार चरणों का एक चौक होता है। इन चरणों मे अक्षर, मात्रा और गण का एक भी नियम लागू नहीं होता। उदाहरण लीजिए—

मराठी—रूप पाहता लोचनी। सुख जाले वो साजणी
तो हा विठ्ठल बरवा। तो हा माधव बरवा
बहुत सुकृनाची जोडी। म्हणुनी विठ्ठलीं आवडी
सर्व सुखाचे आगरु। बाप रखुमा देवीवर। (ज्ञानदेव महाराज)
(सुमन-सचय, विदर्भ-साहित्य-सघ, अमरावती—पृष्ठ ४)

हिन्दी—नाम प्यारा है भगत्, उसे जानत है जगत्
बम्मन आया धुंडत धुंडत, लगत लगत गाव मो
बम्मन कहे नामदेव, मुजे पूजना भूदेव,
इति बात मुजे देव, वहा देव गगा मो। (गोदा महाराज)
(सकल संत गाथा, पृष्ठ—२६४)

भारुड़ और गारुड़

यह वह काव्यशैली है, जो जनता मे बहु + रूढ़ (भारुढ़) हो चुकी है। इसमे सामाजिक पाखडों और मक्कारों के प्रति व्यंग्य किया जाता है। श्री पागारकर लिखते हैं—"जिसे अँग्रेजी में Folk lyric (लोकगीत) कहते हैं, उसी प्रकार का

गायन भारुड़ कहलाता है। गारुड़ चमत्कृतिजन्य अद्‌भुत काव्य होता है। समाज की रुढ़ि के ऊपर व्यंग्य भारुड़ का मुख्य ध्येय है। व्यग्य मे बोध तो रहता है, पर कटूक्ति नहीं। खेल-खेल में मनोरजन के साथ उपदेश दिया जाता है। भारुड़ों मे इतने गुण होने से वे बहुजन समाज मे सहज ही रूढ़ हो गये हैं। इन भारुड़ों को महाराष्ट्र-शारदा का एक अजायबघर ही समझिए।[1]' भारुड़ों का प्रयोग एकनाथ के पूर्ववर्ती संतों ने भी किया है। पर एकनाथ के भारुड़ अनूठे है, तीखे हैं और सीधी चोट करते हैं।

समाज में जो आडम्बरधारी जोगी, मलग, गारुड़ी (सपेरे), फकीर आदि जनता पर आतंक जमा रहे थे और उसे सत्य आध्यात्मिक पथ से विचलित कर रहे थे, उन्हे भी लक्ष्य कर संतों ने भारुड़ और गारुड़ की रचनाएँ की हैं। एकनाथ महाराज के 'गारुड़' की कुछ पक्तियाँ देखिए—

"यारो देखो रे देखो गयबी गारुड़ी आया।
पहिला पहिला कछु नहीं देखे, निराकार निजरूपा।
अलख हात मो पलख बतावे, माया सगुन रूपा।
चल चल चल चल।
री री री री गा गा गा गा।
बा बा बा बा।"

मुंढा

वास्तव मे यह किसी छंद का नाम नहीं है। यह एक प्रकार का फकीर होता था जो समाज मे निर्द्वन्द्व होकर चक्कर काटा करता था। झाँझ के साथ भजन गाता और भीख माँगकर मौज की जिन्दगी बिताता था। तुकाराम ने इस प्रकार के मुढों को फटकार सुनाई है। मुढों पर लिखी रचनाएँ स्वय 'मुढा' कहलाने लगीं और इनकी गणना व्यग्य-काव्य के एक प्रकार में होने लगी। तुकाराम महाराज का एक 'मुढा' सुनिए—

'सब सभाल म्याने लौंडे खड़ा केऊ गुग।
मदिर थी मता हुआ भुली पाड़ी भंग।
आपसकु सवाल आपसकु सवाल, मुढे खुब राख ताल
मुथि[2] बोहि बोल नहीं तो करूँगा मैं हाल।[3]

---

1. देखिए—मराठी वाङ्मयाचा इतिहास, पृष्ठ—४२६-४२७।
2. मुंह से।
3. दुर्दशा।

अखल का तो पीछे नहीं, मुदल विसर जाय
फिरते नहीं लाज रंडी गधे गोते खाय ॥

इस तरह मुंढा में तीखा और सीधा आक्षेपपूर्ण व्यंग्य होता है।

गौलण

इसका अर्थ ग्वालिन होता है। महाराष्ट्र संतों ने 'गौलण' शीर्षक के अन्तर्गत गोपियों के कृष्ण-प्रेम को अभिव्यंजित किया है। तुकाराम की रचनाओं से गौलण का प्रवेश होता है। कई संतों ने मन की रागात्मिकावृत्ति का नाम 'गौलण' रखा है जो श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर उसीमे तन्मय हो जाती है। यही उसका आध्यात्मीकरण है। तुकाराम की एक 'गौलण' देखिए—

मैं भूली घर जानी बाट।
गोरस वेचन आई (?) हाट।
कान्हारे मन मोहन लाल
सबही बिसरुं देखे गोपाल
काहां पग डारुँ देख आनेरा
देखें तो सब वोहिन घेरा
हुं तो थकित मेरे तुका
भागारे सब मन का धोका।[1]

कटाव और कटिबंध

इसे डा० माधवराव पटवर्धन एक प्रकार का पद्य-प्रबन्ध कहते हैं। इनमें उद्धव द्विपदी के ध्रुव पद रहते है।...उसके आगे पादाकुलक में किसी एक यमक से सम्बद्ध चरण के समूह होते हैं और एक समूह से दूसरे समूह पर जाने के बीच में जो पद का अष्टमात्रक अन्तरा होता है, उससे आगे के 'समूह' का यमक साधा जाता है। कड़ी के अंत का सम्बन्ध यमक द्वारा ध्रुवपद से जुड़ा रहता है। समूह के चरणों की संख्या निश्चित नहीं रहती। गतिशील रचना का यह एक सुविधाजनक पद्य-प्रबंध है।[2] कटाव के उदाहरण में अमृतराय का एक पद दिया जाता है—

---

१. देखिए—संत तुकाराम, पृष्ठ—२११।
२. देखिए—छंदोरचना, पृष्ठ—२६२।

चली सकर की असवारी। त्रिभुवन मो बात फुकारी[1] ॥धु०॥
धवला बैल सजो है नदी, तापर बैठे संकर छदी।
किलकारते जिलिब मो बदी, लेवे साथ सुखी आनंदी,
निकसो सुखरथाट, सतसाधो का मेला बाट,
सप्त कोटि गण निकसे दाट।
साथ वेताल भूतगन खूब बजावत, सिंग तुरैया,
बजते बाजे, ढोल नगारे, धिमि धिमि धिमि धिमि,
नौबद झरकत, झल्लर झल्लर तधीं तधीं क्डा क्डा
पखवाज बाजते, खुनु खुनु खुनु खुनु ताल बोलते,
तन तन तंबुरे गर्जते, भु भु भु भु शख बाजते,
चुट चुट चुट चुट ताल चमकते, चवर चीर मोर पिच्छ उरते,
लगी निशाण जसबोब फरकते खूब चन्हाई[2] भग तारसे,
नाथ भये खुश रग, मुकुट से झुरझुर बहती गंग चले सुखकारी,
॥त्रिभुवनमो० ॥

कटिबध के उदाहरण के लिए देवनाथ की निम्नलिखित रचना दी जाती है—

'पाई गुरुकिरपाकी छाप, भाग्यो माया परमकलाप, जित देखो तित आपहि आप, आप एक अनेक एक कछु कही न जावे, अचल अमलघट, कमल कमलमो, व्याप रह्यो है, जलमो थलमो, जमालसाई, कमाल देखा अलखखलकमो,भर्‍यो खूब भरपूर चलकसो रसिकरुप अरूपरूपमो भये दग तद गुंग अनूहत, चंग बजत रह्यो नाद धुनाय, धुं धु धुं धु धुमर छाई, जोग जुगुत की रहनी पाई, आप आपस मो रग लपट रहे, निसंग अटल श्रीगुरुनाथ गोविन्दविंद सिर आप विराजे, देवनाथ के नैन बाग मो छाय रह्यो गुल्लाला.॥,

---

साषी और दोहरा

सामान्यतः साखी दोहा छन्द में लिखी जाती है। जिसका लक्षण यह है कि 'उसके विषम (पहले, तीसरे) पदों में १३ और सम पदों मे ११ मात्राएँ होती हैं। विषम के आदि में जगण (।ऽ।) न पडना चाहिए और सम के अन्त में लघु पड़ना आवश्यक है'—(काव्य-प्रदीप, २६७)। परन्तु महाराष्ट्रीय सतो की साषी और दोहरों में इस नियम का प्रत्येक स्थल पर पालन नहीं दिखाई देता। दो पक्तियों में भाव कह देना ही

---

१. पुकारी।
२. चढ़ाई।

संभवतः उनकी साखी या दोहरे की परिभाषा है। गुंडा केशो के दील्लबुज्झ दोहरे का एक उदाहरण दिया जाता है—

भरा है ज्यमां आसमानि ज्याहाणू
कहे दास गुंडे उसीकु पछ्याणू ॥

और संत तुकाराम की 'साषी' का उदाहरण लीजिए—

तुकाराम सुंचीत बाध राषु,तैसा आपनी हात,
धेनु बछरा छोर ज्याव, प्रेम न सुटे सात।

ध्रुवपद (ध्रुपद)

ध्रुवपद गायन के आविष्कर्ता ग्वालियर के राजा मानसिंह माने जाते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी से इसका चलन प्रारम्भ हुआ। संतों ने इसमे भक्ति रस के गीत गाये हैं। 'अनूपरत्नाकार' में ध्रुपद की इस प्रकार व्याख्या की गई है—

'गीर्वाण-मध्यदेशीय भाषासाहित्यराजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसम्पन्नं नर-नारीकथाश्रयम् ॥
श्रृङ्गाररसभावाढ्यं, रागालापतदात्मकम्।
पादातानुप्रासयुक्त पादानयुगक च वा ॥
प्रतिपादं यत्र वद्धमेव पादचतुष्टयम्।
उदग्राहध्रुवकाभागातर ध्रुवपद स्मृतम् ॥

'ध्रुपद मे स्थायी, अन्तरा, संचारी और आयोग ऐसे चार भाग होते हैं। ध्रुपद अधिकतर चौपाल, मुलफाक, झंपा, तीव्रा, वह्मताल, रुद्रताल इत्यादि तालों में गाये जाते हैं। ध्रुपद मे तालो का प्रयोग नहीं होता, किन्तु उसमे दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग करने की छूट है।'[1]

ख्याल

संतों ने ध्रुपद के अतिरिक्त कभी-कभी ख्याल भी गाये हैं। ख्याल फारसी का शब्द है-जिसका अर्थ होता है विचार अथवा कल्पना। 'राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या कल्पना से विभिन्न आलाप तानों का विस्तार करते हुए एकताल, त्रिताल, झूमरा, आड़ा, चौताल इत्यादि तालों मे गाते हैं। ख्यालों के गीतों मे शृङ्गार रस का प्रयोग अधिक पाया जाता है। ख्याल गायकी में जल्दतान, गिरकरी इत्यादि का प्रयोग भी शोभा देता है और स्वरवैचित्र्य तथा चमत्कार पैदा करने के लिए ख्याल में तरह-तरह की तानें ली जाती हैं। ख्याल गायन मे ध्रुपद जैसी गंभीरता और भक्तिरस की शुद्धता नहीं पाई जाती।

---

१. संगीत-विशारद, पृष्ठ—१२६।

ख्याल दो प्रकार के होते है—(१) जो विलम्बित लय मे गाये जाते हैं (बड़े ख्याल) और (२) जो द्रुतलय में गाये जाते हैं (छोटे ख्याल)। गायक जब ख्याल गाना आरंभ करता है तब पहिले विलम्बित लय में बड़ा ख्याल गाता है जिसे प्रायः विलम्बित एकताल, तीनताल, झूमरा, आड़ा, चौताल इत्यादि में गाता है, फिर इसके बाद ही छोटा ख्याल मध्य या द्रुतलय में आरम्भ कर देता है। उसे त्रिताल या द्रुत एकताल मे गाता है। छोटे-बडे ख्याल जब गायक एक स्थान पर एक समय में गाता है तब ये दोनों प्रायः किसी एक ही राग मे होते हैं, किन्तु बोल या कविता बडे छोटे ख्यालों की अलग-अलग होती हैं।"[1] सत 'गुडा केशो' का एक ख्याल नीचे दिया जाता है—

व्यातुर ज्यानत प्रेम ये मन कि
हिरे की पारख सहज दिखावे
काहे कु च्योट लगी है घनकि
बधा मृग तो क्या जाने परिमल
भवर ही ज्यानत प्रीत फुलन कि
गुन्डा केशो प्रभु अतर बाहेर
सब कुछ देखत सुर्त लगन कि।

लावनी

लावनी को मराठी में लावणी कहा जाता है। प्रतीत होता है कि इसका लवण अथवा लावण्य से सबध है। इसका मुख्य भाव शृगार है। कहीं-कहीं इसे ख्याल और मराठी गायन का पर्याय भी माना जाता है। इसे ख्याल कहा जाने का कारण यह हो सकता है कि ख्याल भी शृगार-प्रधान होता है। मराठी गायन इसलिए कहा जाता है कि इसका जन्म सर्वप्रथम महाराष्ट्र में हुआ। पेशवाओं के समय में महाराष्ट्र की जनता में विलासप्रियता की अभिवृद्धि होने से वह लावनियों की ओर अधिक प्रवृत्त हुई।

"काल्हि के कवि रीझि है तो कविताई है, नतरु राधिका गोविन्द सुमिरन को बहानो है।" कदाचित् यह सोचकर कुछ लावनीबाजों ने देवताओं को भी अपनी लावनी का विषय बनाया।

प्राचीन काल में लावनियाँ कई दलों मे प्रतिस्पर्द्धा का विषय बनी हुई थीं। उत्तर-भारत और महाराष्ट्र में लावनियों के कलगी और तुर्रा-दल बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। कलगी और तुर्रा-दलो का निर्माण कैसे हुआ, इसकी भी एक रोचक कहानी है। पेशवाओं के काल मे महात्मा तुकनगिरि और फकीर शाहअली किसी पेशवा की सभा मे गये और वहाँ दोनों ने मधुर कठ से लावनियाँ सुनाईं। पेशवा ने मुग्ध होकर अपने मस्तक का तुर्रा तुकनगिरि को और कलगी शाहअली को भेंट कर दी। कहा जाता है,

---

१. देखिए—सगीत-विशारद, पृष्ठ—१२८-१२९।

तभी से तुकनगिरि अनुयायी तुर्रावाले और शाहअली के अनुयायी कलगीवाले लावनी-बाज़ कहलाने लगे। कुछ वर्ष पूर्व तक शहरों में कलगी और तुर्रा-दल के लावनी बाज़ों की रात-रात भर प्रतिस्पर्धा हुआ करती थी और जनता रस-विभोर हो इनके दंगलो मे जमी रहती थी।

प्रत्येक लावनी मे कम-से-कम चार चरण होते हैं और उसमे दो पंक्तियों की एक टेक होती है। टेक की पक्तियों मे जितनी मात्राएँ होती हैं, प्रायः उतनी ही मात्राएँ चार चरणों मे भी होती हैं। ऐसा भी होता है कि पाँचवें चरण की तुक टेक की दूसरी पक्ति के साथ मिलाई जाती है। टेक तथा मिलन के बीच कभी-कभी दो अन्य छन्द भी आ जाते हैं। लावनी के लोकगीत होने के कारण उसके रचयिता हिन्दू और मुसलमान—दोनों होते है। अतः लावनी की भाषा सरल और अरबी-फ़ारसी की प्रचलित शब्दावली लिये हुए होती है। मराठी मे अरबी-फ़ारसी शब्दों का हिन्दी की अपेक्षा अधिक चलन है और मराठीकरण है। मराठी संतों द्वारा रचित हिन्दी लावनियाँ भक्ति और शृंगार समन्वित हैं।

परिशिष्ट

(क)

प्रमुख महाराष्ट्र संतों का हिन्दी-वाणी-संग्रह

दामोदर पंडित के पद

(रागु—धनाश्री वा आसावरि वा रामकरि)

पढो हो पंडित गुणो हो शास्त्रं अलोढो सकल पुराणा ।
उसमें कर्मकु[1] (१) हा[2] धदा उगवति गुरुमुखें खुणा[3] ॥१॥धृ"
सुन हो बाबा, सुन हो पंडित सुन बैरागी भाइ ।
हमारी साखी बीरला सुने बूझति बीरला कोइ ॥
अनंत पुरुष हो अनंत भाषा पुकारति नाना विचार ।
सबही मिलकर रहणि नैनति[4] पंथ तो अपर पार ॥२॥
सिद्धात सिद्धन सिद्धति सारे अवधुत के हंम राजे ।
सबहि व्यापिनि जग की स्वामिनि उस पर जंजीर बाजे ॥३॥
राजाधिराज हमने नहि भाषा अमर सार सुध पाया ।
नागार्जुन पुत्त[5] श्री मुख बचनी निर्मुळ का मुल खाया ॥४॥

(२)

रागु भैरव

नवनाथ कहे सो नाथपंथी जुगुत कहे सो जोगी ।
विश्व बुझे सो कहि बैरागी, ग्यान बुझे सो योगी ॥१॥धृ
सुन हो तुम्ह सिद्धात गरुवा सारा ग्यान पंथु हमारा ।
शुन्य निरसुन्य काहाके कहिजे ब्रम्हादिक नेनेति पारा ॥१॥
ये शिव शकती समा जुगतो, कवन युक्ति तुम पाया ।
ब्रम्हा विष्णु महेश चन्द्र रवि भ्रमण करत समाया ॥२॥
पुछु तोहिकें श्रोता पडित इन्द्र केतिबार आया ।
बत्तिस मुख का ब्रह्मा प्रत्यक्ख कवण जुग तुम पाया ॥३॥

---

१. पाठान्तर—कर्मकू वाटा। २. हा = यह। ३. संकेत। ४. न जानति (नहीं जानते)।
५. शिष्य के अर्थ में ।

पंच क्रिष्ल[1] खेल भाव हो ज्याकी, क्रिष्ल (ण) कन्हे न जणाया ।
कवण ते युग कवन ते थान, निज रूप काहा समाया ॥४॥
सारमसार बुझति हे बिरला, तत्त्व ग्यान जीन्हं पाया ।
कलयुग माहे बदति ग्यानी सब लोकु धंदे लगाया ॥५॥
अलेख कहिजे अपरापरु, जीव कहिजे अबिनाश ।
उत्पत्ति प्रलय नागदेव[2] कहे श्री राऊळ के दास ॥६॥

(३)

राग—रामग्रि

गयनि[3] उतपति गयनी लोरे, आपु तो गयेनीं समु[4] ।
आभाशु का भाशु तैसा बुझो सब माया का मरमु ॥१॥धृ०॥
तैसा रे ये भव बिचार रजुकेरा भुजंगु ।
गुरु पसाये[5] बुझति जोइ, न बुझे पैहो जगु ॥
सपन को आली को साचा, जेवी प्रबंधु[6] न होइ ।
निहाळित[7] भ्रिग जळरे कदळी गरभ बुझति जोइ ॥२॥
पवणु पेलितु भुमिको रजु[8] रे, जेवि गगण चढ़ाइ ।
नाथिली उत्पति स्थिति लया रे, जाहा का ताहाँ समायि ॥३॥
सार असार निर्वाळित प्रभु आदिनाथ की वाणी ।
नागदेव म्हणे[9] हमें रंगलों, चक्र स्वामिचा[10] चरणी ॥४॥

(४)

राग—सामग्री

एकु जागा एकु सुत्ता भया रे, खबना भगि चढ़िबो ।[11]
भंवरि देत सुता खान खाइ एर निहुल[12] वास पाहिबो[13] ॥१॥धृ॥
कट भूलिवो रे कट भूलिबो रे कापट मूठ बुझाइ
तत्व बीचार न जाणति जोइ, तो बिथ्या पंडित म्हनाई[14] ॥०॥
आगे नागा पाछे कंथा पहिरे, लोक लाज न धरे ।
अष्ट भोग भोगि मंगल गाई, तो न्हान यों कलसीं न्हाये रे ॥२॥
सत्त दीपू अरु सत्त पताले, व-हाड़[15] भला मिळिवो ।
काळ राति मधि मारि घालिवो, तो कोण जाग सूत धरिवो ॥३॥
आदि पति माया निच्चिया लोइ, वखाण के पढ़ियासो ।
नागदेव म्हणे चक्र सामि विन, तीहा जगु भइ भजे सो ॥४॥

---

१. पाठान्तर—किष्ण । २ नागार्जुन । ३. गगन (शब्द) । ४. समान । ५. प्रसाद ।
६. प्रबोध (जाग्रतावस्था) । ७. पाठान्तर—निहारत । ८. भूलिका । ९ कहता है ।
१०. चक्रधर स्वामी के । ११. खानेवाले को जब भाँग चढ़ी । १२. नीच । १३. देखना ।
१४. कहलाता है । १५. बरार (पंडित का निवास-प्रांत) ।

(५)

राग—रायश्री

एकु अंधा एकु पंगा भाई। एकरे एक लिया खादी।[१]
दोई पुरुष मिलिकर एकचि हुवा। तो श्रृष्टि पद्दि वेवादी रे।

शुन्य बुझे शुन्य परहि बुझो। शुन्य निरशुन्य भागे
नागदेव मुख कथन किया हो तो जीव शिव सम जोगे रे।

आया हु भाइ ब्रह्माण्ड पिंडा। सब ही का दलवाडा[२]
दो पख जाले एक पख[३] बोले तो बुझणों तथा अगडा।

लवणाधुनि तेचि नागवण[४] कंचना न दिसे कहीं।
तुटले सादी असा कैचा (कैसा) चातुर सिधु उतरिजे वाहि।

सुख दुख किया हमेचि पाया ऐसा कोई नहीं भेदा।
नागदेव कहे श्री मुख वचनी बुझ्या न कळ वेदा ॥४॥२६॥

(६)

राग—भूपाली

मुके नि[५] सपना दीठे अनुवाद करे कोण।
तैसा सुन रे भया (भैया) असे आतम ग्याम ॥१॥

बहुत मारग बोलति सिद्ध साधक जोइ।
आदिनाथ अनुभवें विन अनुवादु नाहीं[६] ॥०॥

अष्ट धातु विचित्र रूपा अनत नादं।
परेशीं लागे कनक जेवि, होय निःशब्दं ॥२॥

डुरसों (?) भेदु वादु नाहीं अम्रितपाणि।
मणासि वाचे पैसु नहिं परब्रह्म ग्यानी ॥३॥

घेता देता जावे अगोचर सचराचर।
नागदेवें दिठे पररूप चक्रधर ॥४॥

(७)

राग—बीलावर वा नाट

विषये पसारे मौन कराइ, गाइ धाउ नेदाइ।
मथिना मथिना राळि घलाइ, बैरी चीतु बंधाइ ॥१॥ ध्रु०॥

---

१. कंधे पर। २. समूह। ३. पक्षी। ४. लूट। ५. गूंगे ने। ६. पाठान्तर—न होई।

आळे जाळे वचन वीचाळे, साच न बोले कोइ ।
शुद्ध सरुप आपण होइ, सो पंथ धरोरे भाइ ॥०॥

लाळी लोळी लळित बीकासी, किसु[1] न जानसि जोइ ।
जाहा जाहा चितुवा दुड़ि दुड़ि जाइ,[2] ताहा ताहा पूठी न धाइ ॥२॥

कोइ कोइ नादे रे बीरला, बहुता सिद्धि न गाइ ।
कुळरा भावि भाकी न जाइ, ताहा सिद्धि न होइ ॥३॥

किछु न कराइ सर्वचि कराइ, सो चल कर्म कराइ ।
नागदेव भट सामि[3] पसाये, कहे हो पुकराई ॥४॥

(८)

राग—तोडी वा गौडी

नगर मध्ये पैसौ बाबा, आवड़त षडुरस गगण हमारा धवळार रे ।
नवखंड हमारा देश ॥१॥ घृ०॥
सटो सटो रे दंभ करण, याथे निम्रित नावे ।
जेता जेता दंभ करेगा, तेता बंधन पावे ॥२॥
चिथड़ा फाटा तुटा पेहरो उपरी चोर न आवे ।
येहि रहनि जे चालती , ते जंगल मध्ये सोवे ॥२॥
सटि बा झुटा बोले मिठा आशा मनसा दुइ धाधा ।
काम क्रोध जीन्हें भाजे नहीं, ते काल फाड़ फाड़ खाधा ॥३॥
ऐसे हो तुम ग्यान बैरागी, खरग धार चलाइ ।
अहंकार जीन्हे भाज्यो नहिं, पर सिद्ध कैसे पाइ ॥४॥
कहे नागार्जुन तजो अभिमान, किसकी करें हम निंदा ।
पुहुपमये सेज जीस भावे, काल फाड़ फाड़ खादा ॥५॥

"सके १५७१ विरोधनाम संवत्सरेः श्रावण मासे सुधे नवमी : वार सोमवार : तद्दीने पुस्तकसंपूर्ण (लाड़नाम तुक राजा के शिष्य अनन्त मुनि के हस्ताक्षर ।" ई० स० १६४६ शिव-काल मे उपर्युक्त पदवाली पाडु लिपि लिखी गई है ।

स्व० नेने की कृपा से यह पाडुलिपि हमें प्राप्त हुई है । इसके एक पृष्ठ का चित्र इसी पुस्तक में दिया गया है

---

१. कछु । २. दौड़-दौड़ जाता है । ३. स्वामी ।

नामदेव के हिन्दी-पद

गुरुग्रन्थ साहब तथा अन्य मुद्रित-अमुद्रित ग्रन्थों से

संकलित और सम्पादित

नामदेव के हिन्दी पद

(१)

रागु—गौडी चेती

देवा, पाहन तारिअले[1] ॥
राम कहत जन कस न तरे ॥
तारीले गनिका बिनुरूप कुबिजा—
—बिआधि अजामलु तारिअले ।
चरणबधिक जन तेऊ मुकति भए ॥
हउ बलि बलि जिन राम कहे ॥
दासी सुत जनु-बिदरु-सुदामा—
उग्रसेन कउ राज दिए ॥
जपहीन, तपहीन, कुलहीन, क्रमहीन
नामे के सुआमी तेऊ तरे ।

---

(२)

रागु—आसावरी

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई ॥
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई ॥
सभु गोबिन्दु है, सभु गोबिंदु है, गोबिंदु बिनु नही कोई ॥
सूतु एकु मणि सतसहस जैसे उतिपोति प्रभु सोई ॥
जलतरंग अरु फेन बुदबुदा, जलते भिन न कोई ॥
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई ॥
मिथिआ भरमु अरु सुपनु मनोरथ सति पदारथु जानिआ ॥
सुक्रित मनसा गुरु उपदेसी, जागत ही मनु मानिआ ॥
कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी ॥
घटघट अंतरि सरब निरतरि केवल एक मुरारी ॥

---

१. तैरा दिये ।

(३)

आनीले कुंभ भराईले ऊदक ठाकुर कऊ इसनानु करऊ ॥
बइआलीस लख जी जल महि होते बीठलु मैला काइ करऊ ॥
जत जाउ तत बीठलु भैला[1] ॥ महा अनंद करे सद केला ॥
आनीले फूल परोइले माला ठाकुर की हऊ पूज करऊ ॥
पहिले बासु लई है भवरह[2] बीठल मैला काह करऊ ॥
आनीले दुधु रीधाइले खीरं ठाकुर कऊ नैवेदु करऊ ॥
पहिले दूधु बिटारिउ बछरे बीठलु मैला काह करऊ ॥
ईभै बीठलु, ऊभै बीठलु, बीठल बिनु संसारु नहीं ॥
थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिउ तूं सरब मही ॥

(४)

मन मेरे गजु जिहबा मेरी काती[3] ॥
मपि मपि काटउ जम की फासी ॥
कहा करउ जाती कह करउ पाती ॥
रामको नामु जपउ दिनराती ॥
रागनि रागउ सीवनि सीवउ ॥
राम नाम बिनु घरीअ न जीवउ ॥
भगति करउ हरिके गुन गावउ ॥
आठ पहर अपना खसमु धिआवउ ॥
सुइनेकी[4] सुई रूपे का धागा ॥
नामे का चितु हरि सउ लागा ॥

(५)

सापु कुंच[5] छोडै विखु नहि छाडै ॥
उदक माहि जैसे बगु[6] धिआन माडै ॥
काहे कउ कीजै धिआनु जपना ॥
जब ते सुधु नाही मनु अपना ॥
सिंघच भोजनु जो नरु जाने ॥
ऐसे ही ठग देउ बखाने ॥
नामे के सुआमी लाहिले झगरा ॥
राम रसाइन पिउ रे दगरा[7] ॥

---

१. विद्यमान मिला। २. भौंरा। ३. कतरनी। ४. सोने की। ५. केंचुली। ६. बगुला।
७. दगाबाज।

(६)

पार बहमु जे चीनसी आसा ते न भावसी ।।
रामा भगतह चेतीअले अचिंत मनु राखसी ।।
कैसे मन तरहिगा रे संसारु विखै को बना ।।
झूठी माइआ[1] देखि के भूला रे मना ।।
छीपे के घरि जनमु दैला गुर उपदेसु भैला ।।
संतन कै परसादि नामा हरि भेटुला ।।

(७)

रागु—गुजरी

जौ राजु देहि त कवन बडाई ।।
जौ भीख मगावहि त किआ घटि जाई ।
तूं हरि भजु मन मेरे पदु निरबानु ।।
बहुरि न होई तेरा आवनजानु ।।
सभ तै उपाई भरम भुलाई ।।
जिस तूं देवहि तिसहि बुझाई ।।
सतिगुरु मिलै त सहसा जाई ।।
किस हऊ[2] पूजऊ दूजा नदरि[3] न आई ।।
एकै पाथर कीजै भाऊ[4] ।।
दूजै पाथर धरिए पाऊ ।।
जै उहु देऊ त उहु भी देवा ।।
कहि नामदेऊ हम हरि की सेवा ।।

(८)

भलै न लाछै पारमलो[5] परमलीउ[6] बैठोरी आई ।।
आवत किनै न पेखिऊ कवने जाने री बाई ।।
कवणु कहै किणि बूझिऐ रमईआ आकुलु री बाई ।।
जिऊ[7] आकासे पंखिअलो खोज निरखिउ न जाई ।।
जिउ जल माझै माछली मारगु पेखणौ न जाई ।।
जिऊ आकसे घडुअलो म्रिगत्रिसना भरिआ ।।
नामेचे सुआमी बीठलो, जिन तीनै जरिआ ।।

---

१. माया । २. किसे । ३. नजर । ४. भाव । (पूजा) । ५. परमात्मा । ६. सुगंध ।
७. जैसे (ज्यों) ।

(९)

राग़ु—सोरठी

जब देखा तब गावा ।। तउ जन धीरजु पावा ।।
नादि समाइलो रे सतिगुर भेटिले देवा ।।
जह झिलिमिल कारु[1] दिसता ।।
तह अनहद सबद बजंता ।।
जोती जोति समानी ।। मै गुर परसादी जानी ।।
रतन कमल कोठरी[2] ।। चमकार बीजुल तही ।।
नेरे नाही दूरि ।। निज आतमै रहिआ भरपूरि ।।
जह अनहत सूर उजयारा ।। तह दीपक जलै छीया ।।
गुर परसादी जानिआ ।। जनु[3] नामा सहज समानिआ ।।

(१०)

पाड पडोसणि पूछिले नामा, कापहि छानि छवाई हो ।।
तोपहि दुगणी मजूरी देहउ मोकऊ बेडी देहु बताई हो ।।
री बाई, बेडी देनु न जाई ।।
देखु बेडी रहिउ समाई ।।
हमारै बेडी प्राण अधारा ।।
बेडी प्रीति मजूरी मागै जऊ कोऊ छानि छवावै हो ।।
लोग कुटंब सभहु ते तोरै तउ आपन बेडी आवै हो ।
ऐसो बेडी बिरनि न साकउ सभ अंतर सभ ठाई हो ।
गूंगे महा अम्रितरस चाखिआ पूछे कहनु न जाई हो ।।
बेडी[4] के गुन सुनि री बाई जलधि बाधि ध्रू थापिउ हो ।।
नामेके सुआमी सीअ बहोरी लंक भभीखण आपिउ हो ।।

(११)

अणमडिआ[5] मंदलु बाजै ।।
बिनुसावन घनहरु गाजै ।।
बादल बिनु बरखा होई ।।
जउ ततु[6] बिचारे कोई ।।
मोकउ मिलिउ रामु सनेही ।।
जिह मिलिए देह सुदेही ।।
मिलि पारस कंचनु होइआ[7] ।।

---

१. आकार । २. मन । ३. जैसे । ४. बढ़ई । ५. बिना मढ़ा हुआ । ६. तत्व । ७. भया (हुआ)।

मुख मनसा रतनु परोइआ ॥
निजभाऊ भइआ भ्रमु भागा ॥
गुर पूछे मनु पतिआइआ ॥
जल भीतरि कुभ समानिआ ॥
सभ रामु एकु करि जानिआ ॥
गुरु चेले है मन मानिआ ॥
जब नामै ततु पछानिआ ॥

(१२)

रागु—धनासरी

गहरी करिके नीव खुदाई ऊपरि मडप छाए ॥
[1] मर्कंड ते को अधिकाई जिनि त्रिण धरि भूड वलाए[2] ॥
हमरो करता रामु सनेही ॥
काहे रे नर गरबु करतहहु बिनसि जाई झूठी देही ॥
मेरी मेरी कैरउ करते दुरजोधन से भाई ॥
बारह जाजन छत्र चलै.था देही गिरधन[3] खाई ॥
सरब सोइन की लंका होती रावन से अधिकाई ॥
कहा भइउ दरि बाधे हाथी खिनमहि भई पराई ॥
दुरवासा सिऊ करत ठगऊरी जादव ए फल पाए ॥
क्रिपा करी जन अपने ऊपर नामदेऊ हरिगुन गाए ॥

(१३)

दस बैरागनि मोहि बसि कीनी पचहु का मठनावऊ ॥
सतरि दोइ भरे अमृतसरी—बिखुकउ मारि कढ़ावऊ ॥
पाछे बहुरि न आवनु पावऊ ॥
अंम्रित बाणी घट ते ऊचरऊ आतम कऊ समझावऊ ॥
बजर कुठारु मोहि है छीना करि मिनति लगि पावऊ ॥
सतन के हम उलटे सेवक भगतन ते डरपावऊ ॥
ईह ससार ते तबही छूटऊ जऊ माइआ नह लपटावऊ ॥
माइआ नामु गरभ जोनि का तिह तजि दरसन पावऊ ॥
इतुकरि भगति करहि जो जन तिन भउ[4] सगल चुकाइए
कहत नामदेऊ बाहरि किआ भरमहु इह सजम हरि पाइए

---

१. मार्कण्डेय ऋषि की एक हजार वर्ष की आयु थी। २. बिताया। ३. गिद्ध। ४. भय।

(१४)

मारवाडि जैसे नीरु बालहा[1] बेलि बालहा करहला[2] ॥
जिउ कुरग निसि नादु बालहा तिउ मेरै मंनि रामईआ ॥
तेरा नामु रूडो[3], रूपु रूडो, अतिरंग रूडो मेरो रामईआ ॥
जिऊ धरणी कऊ इंद्र बालहा कुसम बासु जैसे भवरला ॥
जिऊ कोकिल कऊ अंबु बालहा तिऊ मेरे मनीं रामईआ ॥
चकवी कऊ जैसे सूरु बालहा मान सरोवर—हंसुला ॥
जिऊ तरुणी कऊ कंतु बालहा तिऊ मेरे मनीं रामईआ ॥
बारिक[4] कऊ जैसे खीरु[5] बालहा चात्रिक मुख जैसे जलधरा ॥
मछुली कऊ जैसे नीरु बालहा तिऊ मेरे मनि रामईआ ॥
साधिक-सिध सगल मुनि चाहहि बिरलो काहू डीठुला ॥
सगल भवन तेरे नामु बालहा तिऊ नामे मनि बीठुला ॥

---

(१५)

पहिल पुरिए पुंडरक बना[6] ॥
ताचे हंसा सगले जना ॥
क्रिसना ते जानऊ हरि हरि नाचंती नाचना ॥
पहिल पुरसा बिरा ॥ अथोन[7] पुरसा दमरा ॥ असगा असउसगा हरिका बागरा नाचै पिंधी महीसागरा ॥ नचंती गोपी जना ॥ नइआ ते बैरे कंना ॥ तरकु नचा ॥ भ्रमीआ चा ॥ केसवा बचउनी अइए, मइए, एक आनै जीऊ ॥ पिंधी उभकले संसारा ॥ भ्रमिभ्रमि आए तुमचे दुआरा ॥ तू कुनुरे ॥ मैं जी, नामा ॥ आला ते निवारण जम कारणा ॥

---

(१६)

पतितपावन माधऊ बिरदु तेरा ॥
धनि ते वै मुनिजन जिन धिआइउ हरि प्रभु मेरा ॥
मेरे माथै लागीलै धूरि गोबिंद चरणन की ॥
सुर नर मुनि जन तिनहु ते दूरि ॥
दीनका दइआलु माधौ गरब परिहारी ॥
चरण सरन नामा बलि तिहारी ॥

---

१. प्यारा । २. ऊँट । ३. सुन्दर । ४. बालक । ५. दूध । ६. कमलवन । ७. बाद में ।

(१७)

रागु—टोडी

कोई बोलै नीरवा कोई बोलै दूरि ॥ जल की माछुली चरै खजूरि ॥
काइ रे बकबादु लाइउ ॥ जिन हरि पाइउ तिनहि छुपाइउ ॥
पंडित होइकै बेदु बखानै ॥ मूरखु नामदेऊ रामहि जानै ॥

---

(१८)

रागु—टोडी

कऊन को कलंकु रहिउ रामनामु लेतही ॥
पतित पवित भए रामु कहत ही ॥
रामसंगि नामदेउ जनकऊ प्रतिथिआ[1] आई ॥
एकादशी ब्रतु रहै काहे कऊ तीरथ जाई ॥
भनति नामदेऊ सुक्रित सुमति भए ॥
गुरमति रामु कहि, को को न बैकुंठि गए ॥

---

(१९)

तीनि छंदे खेलु आछै । तीनि छुदे खेलु आछै
कुमार के घर हाडी आछै राजा के घर साडी[2] गो[3] ॥
बामन के घर राडी आछै राडी साडी हाडी गो ॥
बाणी के घर हींगु आछै[4] भैसर माथै सींगु गो ॥
देवलमधे लीगु आछै लीगु सीगु हींगु गो ॥
तेली के घर तेलु आछै जंगलमधे वेल गो ॥
माली के घर केल आछै । केल वेल तेल गो ॥
संतामधे गोबिंदु आछै गोकलमधे सिआम गो ॥
नामेमधे रामु आछै राम सिआम गोविंदु गो ॥

---

१. प्रतीति । २. ऊंट । ३. कहो । ४. है ।

(२०)

रागु—तिलंग

मै अधुले की टेक तेरा नामु खुंदकारा ॥
मै गरीब मै मसकीन तेरा नामु है अधारा ॥
करीमा रहीमा अलाह तू गनीं ॥
हाजरा हजीर दरि पेसि तू मनीं ॥
दरिआऊ तू दिहंद तू बिसिआर तू धनी ॥
देहि लेहि एकु तूं दिगर को नही ॥
तूं दानी तूं बीना मै बीचारु कियाकरी ॥
नामेचे सुआमी बखसंद तूं हरी ॥

(२१)

हले यारा हले यारा खुसि खबरी ॥
बलि बलि जाऊ हऊ बलि बलि जाऊ ॥
नीकी तेरी बिगारी आले तेरा नाऊ ॥
कुजा आमद कुजा [1] रफती कुजा मेखी [2] ॥
द्वारिका नगरी रासि बुगोई ॥
खूबु तेरी पगरी मीठे तेरे बोल ॥
द्वारिका नगरी काहे के मगोल [3] ॥
चंदी [4] हजार आलम एकल खाणा [5] ॥
हम चिनी [6] पातिसाह सावले बरना ॥
असपति [7] गजपति [8] नरह [9] नरिंद [10] ॥
नामेके स्वामी मीर मुकुंदु ॥

---

(२२)

रागु—बिलावलु

सफल जनमु मोकउ गुरु कीना ॥
दुख बिसारि सुख अंतरि लीना ॥
गिआन अंजनु मोकउ गुरु दीना ॥
राम नाम बिनु जीवनु मन हीना ॥
नामदेइ सिमरनु करि जाना ॥
जगजीवन सिउ जीऊ समाना ॥

---

१. (फारसी) कहाँ ।   २. (फारसी) कहाँ जा रहा हूँ ।
३. मुगल ।   ४. (फारसी) नौकर ।
५. सरदार (नेता) ।   ६ (फारसी) चुनी ।
७. सूर्य ।   ८. इन्द्र ।   ९. राजा ।   १०. यक्ष ।

(२३)

राग—गोंड

असुमेध जगने, तुला पुरख[1] दाने, प्राग इस्नाने,
तऊ न पूजहि हरि कीरति नामा।
अपुने रामहि भजु रे मन आलसीआ॥ गइआ पिंडु भरता॥
बनारसि असि बसता॥ मुख बेदु चतुर पडता[2]॥
सगल धरम अछिता[3]॥ गुर गिआन इंद्री द्रिडता॥
खटु करम सहित रहता॥ सिवा-सकति[4] संबादं॥
मन छोडि छोडि सगल भेदं॥ सिमरि सिमरि गोविंदं॥
भजु रामा तरसि भवसिंधं॥

---

(२४)

नाद भ्रमे जैसे मिरगाए॥
प्रान तजे वाको धिआनु न जाए॥
ऐसे रामा ऐसे हेरऊ॥
राम छोडि चितु अनत न फेरऊ॥
जिऊ[5] मीना हेरै पसुआरा[6]॥
सोना गडते हिरै सुनारा
जिऊ बिखई हेरै पर नारी॥
कउड़ा डारत हिरै जुआरी
जह जह देखऊ तह तह रामा॥
हरिके चरन नित धिआवै नामा॥

---

(२५)

मोकऊ तारिले रामा तारिले।।
मैं अजानु जनु तरिबे न जानऊ बाप बिठुला बाह[7] दे।।
नर ते सुर होइ जात निमख मै सतिगुर बुधि सिखलाई॥
नर ते उपजि सुरग कऊ जीतिउ सो अवखध[8] मैं पाई॥
जहाँ-जहाँ धूअ[9] नारदु टेके[10] नैकु टिकावहु मोहि॥
तेरे नाम अविलबि बहुतु जन उधरे नामेकी निज मति एहि॥

---

१. तोल के बराबर, । २. पढ़ता । ३. करता है । ४. पर्वती । ५. ज्यों । ६. मछुआ ।
७. बाँह दे । ८ ओषधि । ९. ध्रुव । १०. ठहरे ।

(२६)

मोहि लागती तालाबेली[1] ।।
बछरे बिनु गाइ अकेली ।।
पानीआ बिनु मीनु तलफै ।।
ऐसे रामानामा बिनु बापरो नामा ।।
जैसे गाइका बाछा छूटला ।।
थन चोखता माखनु छूटला ।।
नामदेऊ नाराइणु पाइआ ।।
गुरु मेटत अलखु लखाइआ ।।
जैसे बिखै हेत परनारी ।।
ऐसे नामे प्रीति मुरारी ।।
जैसे तापते निरमल घामा ।।
तैसे रामनामा बिनु बापुरो नामा

(२७)

हरि हरि करत मिटे सभि भरमा ।।
हरि को नामु लेऊ तम धरमा ।।
हरि हरि करत जाति कुल हरी ।।
सो हरि अंधुले की लाकरी ।।
हरए नमस्ते हरए नमह ।।
हरि हरि करत नहीं दुख जमह
हरि हरनाखस हरे परान ।।
अजैमल कीऊ बैकुंठहि थान[2] ।।
सूआ पडावत गनिका तरी ।।
सो हरि नैनहु की पूतरी ।।
हरि हरि करत पूतना तरी ।।
बाल घातनी कपटहि भरी ।।
सिमरत द्रौपत सुता ऊधरी ।।
गऊतम सती सिला निसतरी ।।
केसी कंस मथनु जिनि कीआ।
जीअ दानु काली कऊ[3] दीअ
प्रणवै नामा ऐसो हरी ।।
जासु जपत भै[4] अपदा टरी ।

१. तड़प । २. स्थान । ३. को । ४. भय ।

(२८)

राग—गोंड

भैरऊ भूत सीतला धावै ॥
खर बाहन ऊहु, छार उड़ावै ॥
हऊ[1] तऊ एक रमईआ लेहऊ ॥
आनदेव बदलावनि देहऊ ॥
सिव सिव करते जो नरु धिआवै ॥
बरद चढ़े डमरू डमकावै ॥
महामाई की पूजा करै ॥
नर सै नारि होइ अउतरै ॥
तू कहिअत ही आदि भवानी[2] ॥
मुकति की बरीआ कहा छपानी ॥
गुरमति राम नाम गहु मीता ॥
प्रणवै नामा इऊ कहै गीता ॥

---

(२९)

राग—बिलावलु गोंड

आजु नामें बीठलु देखिआ मूरख को समझाऊ रे ॥
पांडे तुमरी गाइत्री लोधेका खेतु खाती थी ॥
लैकरि ठेगा टगरी तोरी लागत लागत जाती थी ॥
पांडे तुमरा महादेऊ धऊले बलद चडिआ आवत देखिआ था ॥
मोदी के घर खाणा पाका वाका लडका मारिआ था ॥
पांडे तुमरा रामचंदु सो भी आवतु देखिओ था ॥
रावन सेती सरबर[3] होइ घरकी जोइ गवाई थी ॥
हिंदू अंना[4] तुरकू काणा दोहा ते गिआनी सिआना ॥
हिंदू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत ॥
नामें सोई सेविआ जह देहुरा ना मसीत ॥

---

१. मैं। २. दुर्गा। ३. बराई। ४. अंधा।

(३०)

राग—रामकली

आनीले कागदु काटीले गूडी अकासामधे भरमीअले ॥
पंचजना सिऊँ[1] बात बतउआ चीतु सु डोरी राखीअले ॥
मनु राम नामा बेधीअले ॥
जैसे कनिककला[2] चितु माडीअले ॥
आनीले कुंभु भराइले उदक राजकुआरी पुरंदरीए[3] ॥
हसत बिनोद बिचार करति है चीतु सुगागरी राखीअले ॥
मदरु एकु दुआर दस जाके गऊ चरावत छाडीअले ॥
पाचकोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले ॥
कहत नामदेऊ सुनहु त्रिलोचन बालकु पालन पउढीअले ॥
अंतरि बाहरि काज बिरुधी चितु सु बारिक[4] राखीअले ॥

(३१)

राग—रामकली

बेद पुरान सासत्र आनंता गीत कबित न गावऊगो ॥
अखंड मंडल, निरंकार महि अनहद बेनु बजावऊगो ॥
बैरागी रामहि गावऊगो ॥
सबदि अतीत अनाहदि राता आकुलकै[5] घरि जाऊगो ॥
इडा पिंगुला अउरु सुखमना पऊनै बाधि रहाऊगो ॥
चंदु सूरजु दुइ समकरि राखऊ ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊगो ॥
तीरथ देखि न जल महि पैसऊ जीअ जत न सतावऊगो ॥
अठसठि तीरथ गुरु दिखाऐ घटही भीतरि नहाउगो ॥
पंच सहाई जनकी सोभा भलै भलै न कहावऊगो ॥
नामा कहै चितु हरि सिऊ राता सुन्न समाधि समाऊगो ॥

(३२)

माइ न होती बापु न होता करमु न होती काइआ[6] ॥
हम नही होते तुम नही होते कवनु कहाते आइआ ॥
राम कोई न किसही केरा ॥
जैसे तरुवर पंखि बसेरा ॥
चंदु न होता सूरु न होता पानी पवनु मिलाइआ ॥
सासत्र[7] न होता बेदु न होता करमु कहाँ ते आइआ ॥
खेचर भूचर तुलसीमाला गुर परसादी पाइआ ॥
नामा प्रणवै परम ततु है सतिगुर होइ लखाइआ ॥

---

१. से। २. सुनार। ३. शहर के भीतर। ४. बालक। ५. हरि। ६. काया। ७. शास्त्र।

(३३)

बनारसी तपु करै उलटि तीरथ मरै
अगनि दहै काइआ—कलपु[1] कीजै ।।
असुमेध जगु कीजै सोना गरभदानु दीजै
राम नाम सरि तऊ न पूजै ।।
छोडि छोडि रे पाखडी मन कपटु न कीजै ।।
हरिका नामु नित नितहि लीजै ।।
गंगा जाऊ गोदावरि जाइए कुंभि ।।
जऊ केदार नाहईए गोमति सहसगऊ दानु कीजै ।।
कोटि जऊ तीरथ करै तनु जऊ हिवाले[2]
गारै, रामनाम सरि तऊ न पूजै ।।
असुदान गजदान सिहजा नारी (?)
भूमिदान ऐसो दान नित नितहि कीजै ।।
आतम जऊ निरमाइलु[3] कीजै आप ।।
बराबरि कचनु दीजै रामनाम सरि तऊ न पूजै
मनहि न कीजै रोसु जमहि न दीजै दोसु ।।
निरमल निरबाणु पदु चीन्हि लीजै ।।
जसरथ राइ नंदु राजा मेरा रामचंदु ।।
प्रणवै नामा ततु रसु अम्रित पीजै ।।

---

(३४)

राग—माली गउड

धंनि धंनिउ राम बेनु बाजै ।। मधुर-मधुर धुनि अनहत गाजै ।।
धनि धनि मेघा रोमावली ।। धनि धनि क्रिसन ऊढे कावली ।।
धनि धनि तूं माता देवकी ।। जिह ग्रिह रमईआ कवलापती[4] ।।
धनि धनि बनखंड बिंद्राबना ।। जह खेले स्री नाराइना ।।
बेनु बजावै गोधनु चरै ।। नामे का सुआमी आनंदु करै ।।

---

(३५)

मेरो बापु माधऊ तू धनु केसव सावलीऊ बिठुलाई ।।
कर धरे चक्र बैकुंठ ते आए गज हसती के प्रान उधारीअले ।।
दुहसासन की सभा द्रोपती अंबर लेत उबारिअले ।।
गौतम नारि अहिलिआ तारी पावन केतक तारीअले ।।
ऐसा अधमु अजाति नामदेऊ तऊ सरनागति आइअले ।।

---

१. कायाकल्प । २. हिमालय । ३. निर्मल । ४. कमलापति (विष्णु के अवतार कृष्ण) ।

(३६)

सभै घट रामु बोलै रामा बोलै राम विना को बोलै रे।
एकल माटी कुंजर चीटी भाजन हैं बहुनाना रे ॥
असथावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि रामु समाना रे ॥
एकल चिंता राखु अनंता अउर तजहु सभ आसा रे ॥
प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुरु को दासा रे ॥

---

(३७)

राग—मारू

चारि मुकति चारै सिधि मिलिकै दूलह प्रभ की सरनि परिऊ ॥
मुकति भइउ चउहुँ जुग जानिउ जसु कीरति माथै छत्र धरिऊ ॥
राजा राम जपत को को न तरिउ गुर उपदेसि साध की संगति
भगतु भगतु ताको नामु परिउ ॥
संख चक्र माला तिलकु बिराजति देखि प्रतापु जमु डरिऊ ॥
निरभऊ भए राम बल गरजित जनम मरन संताप हिरिऊ ॥
भगत हेति मारिउ हरनाखसु नरसिंघ रूप होइ देह धरिऊ ॥
नामा कहै भगति बसि केसव अजहूँ बलि के दुआर खरो ॥

---

(३८)

राग—भैरउ

रे जिह्वा करऊ सतखंड ॥
जौ न ऊचरसि स्री गोविंद ॥
रंगीले जिह्वा हरि के नाइ ॥
सुरंग रगीले हरि हरि धिआइ ॥
मिथिआ जिह्वा अवरें काम ॥
निरवाण पदु इकु हरि को नामु ॥
असंख कोटिअन पूजा करी ॥
एक न पूजसि नामै हरी ॥
प्रणवै नामदेऊ इहु करणा ॥
अनंत रूप तेरे नाराइणा ॥

---

(३९)

परधन परदारा परहरी ॥ ताके निकटि बसै नरहरी ॥
जो न भजते नारइणा ॥ तिनका मे न करऊ दरसना ॥
जिनके भीतरि है अतरा ॥ जैसे पसु तैसे उइ नरा ॥
प्रणवति नामदेऊ नाकहि बिना ॥ ना सोहै बतीस लखना ॥
दूधु कटोरै गडवै पानी ॥ कपल गाइ नामै दुहिआनी ॥
दूधु पीऊ गोविंदे राइ ॥ दूधु पीऊ मेरो मनु पतिआइ ॥

(४०)

नाहीं त घर को बापु रिसाइ ॥
सोइन कटोरी अम्रित भरी ॥
लै नामै हरि आगै धरी ॥
एकु भगतु मेरे हिरदै बसै ॥
नामे देखि नराइनु हसै ॥
दूधु पीआइ भगतु घरि गइआ[1] ॥
नामे हरिका दरसनु भइआ[2] ॥

(४१)

राग—भैरउ

मै बऊरी मेरा रामु भतारु ॥
रचि रचि ताकऊ करऊ सिगारू ॥
भले निदऊ भले निंदऊ भले निदऊ लोगु ॥ तनु मनु राम पिआरे जोगु ॥
बादु बिबादु काहू सिऊ न कीजै ॥ रसना रामु रसाइनु पीजै ॥
अब जीअ जानि ऐसी बनि आई ॥ मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई ॥
उसतुति[3] निंदा करै नरु कोई ॥ नामे स्रीरगु भेटल सोई ॥

(४२)

कबहू खीरि खाड घीऊ न भावे ॥
कबहू घर घर टूक मगावै ॥
कबहू कूरनु[4] चनै बिनावै ॥
जिऊ रामु राखै तिऊ रहिऐ रे भाई ॥
हरि की महिमा किछु कथनु न जाई ॥

1. गया। 2. भया (हुआ)। 3 स्तुति। 4 कूडे।

कबहू तुरे तुरंग नचावै ॥
कबहू पाइ पनहीउ[1] न पावै ॥
कबहू खाट सुपेदी सुवावै ॥
कबहू भूमि पेआरु न पावै ॥
भनति नामदेऊ इकु नामु निसतारे ॥
जिह गुरु मिलै तिह पारि ऊतारै ॥

---

(४३)

हसत खेलत तेर देहुरे आइआ ॥
भगति करत नामा पकरि ऊठाइआ ॥
हीनडी जात मेरी जादमराइआ[2] ॥
छीपेके जनमि काहे कऊ आइआ ॥
लै कमली चलिऊ पलटाइ ॥
देहुरै[3] पाछै बैठा जाई ॥
जिऊ जिऊ नामा हरि गुण ऊचरै ॥
भगतजना कऊ देहुरा फिरै ॥

---

(४४)

जैसी भूखे प्रीति अनाज ॥ त्रिखावंत जल सेती काज ॥
जैसी मूढ़ कुटंब पराइण ॥ ऐसी नामें प्रीति नाराइण ॥
तामें प्रीति नाराइण लागी ॥ सहज सुभाइ भइउ बैरागी ॥
जैसी पर पुरखा रत नारी ॥ लोभी नर धन का हितकारी ॥
कामी पुरख कामनी पिआरी ॥ ऐसी नामे प्रीति मुरारी ॥
साई प्रीति जि आपे लाए ॥ गुरपरसादी दुबिधा जाए ॥
कबहू न तूटसि रहिआ समाइ ॥ नामे चितु लाइआ सुचिनाइ ॥
जैसी प्रीति बारिक[4] अरु माता ॥ ऐसा हरि सेती मनु राता ॥
प्रणवै नामदेऊ लागी प्रीति ॥ गोबिंदु बसै हमारै चीति ॥

---

१. जूते भी। २. यादवराय। ३. मंदिर। ४. बालक।

(४५)

घरकी नारि तिआगै अंधा ॥ परनारी सिऊ घालै धधा ॥
(जैसे) सिंबलु देखि सूआ बिगसाना ॥
अतकी वार मूआ लपटाना ॥
वापी का घरु अगने माहि ॥ जलत रहै मिटवे कब नाहि ॥
हरि की भगति न देखै जाइ ॥ मारगु छोड़ि अमारगि पाइ ॥
मूलहु भूला आवै जाइ ॥ अम्रित डारि लादि बिखु खाइ ॥
जिऊ बेस्वा के परै अश्वारा[1] ॥ कापरु पहिरि करहि सींगारा ॥
पूरे ताल निहाले सास ॥ वाके गले जम का है फास ॥
जाके मसतकि लिखिउ करमा ॥ सो भजि परि है गुर की सरना ॥
कहत नामदेऊ इहु बीचारू ॥ इइ विधि सतहु ऊतरहु पारू ॥

(४६)

सडामरका[2] जाइ पुकारे ॥ पढै नहीं हमही पचिहारै ॥
राम कहै करताल बजावै चटिआ सभै बिगारै ॥
रामा नाम जपिबो करै ॥ हिरदै हरिजीको सिंभसु धरै ।
वसुधा बसि कीनी सभ राजे बिनति करै पटरानी ॥
पूतु प्रहिलादु कहिआ नही मानै विति तऊ अऊरै ठानी ॥
दुसह सभा मिलि मतर ऊपाइआ कर सह अऊध घनेरी ॥
गिरि तर जल जुआला भै राखिऊ राजा रामि माइआ केरी ॥
काढि खडगु कालु भै कोपिउ मोहि बताऊ जु तुहिराखै ॥
पीत पीताबर त्रिभवण धणी थभ माहि हरि भाखै ॥
हरनाखसु जिनि नखह बिदारिऊ सुरनर किए सनाथा ॥
कहि नामदेऊ हम नरहरि धिआवहि रामु अभैपद दाता ॥

(४७)

राग—भैरउ

सुलतानु पूछै सुनु वे नामा । देखऊ राम तुमारे कामा ॥
नामा सुलताने बाधिला । देखऊ तेरा हरि बीठुला ॥
बिसमिलि[3] गऊ देहु जीवाइ । ना तरु गरदनि मारऊ ठाइ ॥
बादिसाह ऐसी किऊ होइ । बिसमिलि कीआ न जीवै कोइ ॥
मेरा किआ कछू न होइ । करिहै रामु होइहै सोई ॥
बादिसाहु चढ़िउ अहंकरि । गज हसती दीनों चमकारि ॥

---

१. मुजरा । २. प्रह्लाद के गुरु का नाम । ३. मरी हुई ।

रुदनु करै नामेकी माइ। छोडि राम की न भजहि खुदाइ ॥
ना हऊ तेरा पूतडा न तू मेरी माइ। पिंडु पडै तऊ हरिगुन गाइ ॥
करै गजिंदु सुंड की चोट। नामा ऊबरै हरि की ओट ॥
काजी मुला करहि सलामु। इनि हिंदू मेरा मलिआ मानु ॥
बादिसाह बेनती सुनेहु। नामे सर भरि सोना लेहु ॥
मालु लेउ तऊ दोजकि परऊ। दीनु छोडि दुनिआ कऊभरऊ ॥
पावहु बेडी हाथहु ताल। नामा गावै गुन गोपाल ॥
गंग जमुन जऊ उलटी बहै। तऊ नामा हरि करता रहै ॥
सात घड़ी जब बीती सुणी। अजहु न आइउ त्रिभवणधणी ॥
पाखंतण बाज बजाइला। गरुड चडे गोबिंद आइला ॥
अपने भगतपरि की प्रतिपाल। गरुडु चडे आए गोपाल ॥
कहहि त मुई गऊ देऊ जीआइ। सभु कोई देखै पतिआइ ॥
नामा प्रणवै सेल मसेल। गऊदुहाई बछरा मेलि ॥
दूधहि दुहि जब मटुकी भरी। ले बादिसाह के आगे धरि ॥
बादिसाहु महल महि जाइ। अऊघट की घट लागी आइ ॥
काजी मुला बिनती फुरमाइ। बखसी हिंदू मै तेरी गाइ ॥
नामा कहै सुनहु बादिसाह। इहु किछु पतिआ मुझै दिखाइ ॥
इस पतिआ[1] का इहै परवानु। साचि सील चालहु सुलितान ॥
नामदेऊ सभु रहिआ समाइ। मिलि हिंदू सभ नामे पहि जाइ ॥
जऊ अबकी बार न जीवै गाइ। त नामदेव का पतीआ जाइ ॥
नामे की कीरति रही संसारि। भगति जनाले उधरिया पारि ॥
सगल कलेस निंदक भइआ खेदु। नामें नाराइनु नाहीं भेदु ॥

---

(४८)

राग—भैरउ

जऊ गुरदेऊ त मिलै मुरारि।
जऊ गुरदेऊ त ऊतरै पारि ॥
जऊ गुरूदेऊ त बैकुंठ तरै।
जऊ गुरुदेऊ त जीवत मरै ॥
सति सति सति सति सति गुरदेव।
झूठ झूठ झूठ झूठ आन सभ सेव ॥

---

१. पतबार।

जऊ गुरुदेऊ त नामु द्रिडावै ।
जऊ गुरदेऊ त दहदिस धावै ॥
जऊ गुरदेऊ पंच ते दूरि ।
जऊ गुरदेऊ त मरिबो भूरि ॥
जऊ गुरदेऊ त अम्रित बानी ।
जऊ गुरदेऊ त अकथ कहानी ॥
जऊ गुरदेऊ त अम्रित देह ।
जऊ गुरदेऊ नाम जपि लेहि ॥
जऊ गुरदेऊ भवन त्रै सूझै ।
जऊ गुरदेऊ ऊच पद बूझै ॥
जऊ गुरदेऊ त सीसु आकासि ।
जऊ गुरदेऊ सदा साबासि ॥
जउ गुरदेउ सदा बैरागी ।
जऊ गुरदेऊ पर निंदा तिआगी ॥
जऊ गुरदेऊ बुरा भला एक ।
जऊ गुरदेऊ लिलाट हि लेख ॥
जऊ गुरदेऊ कंधु नही हिरै ।
जऊ गुरदेऊ देहुरा फिरै ॥
जऊ गुरदेउ त छापरि छाई ।
जऊ गुरदेऊ सिहज निकसाई ॥
जऊ गुरदेऊ त अठसठि नाइआ ।
जऊ गुरदेऊ तनि चक्र लगाइआ ॥
जऊ गुरदेऊ त दुआदस सेवा ।
जऊ गुरदेऊ सभै बिखु मेवा ॥
जऊ गुरदेऊ त संसा टूटै ।
जऊ गुरदेऊ त जमतै छूटै ॥
जऊ गुरदेऊ भऊजल तरै ।
जऊ गुरदेऊ त जनमि न मरै ॥
जऊ गुरदेऊ अठदस बिऊहार ।
जऊ गुरदेऊ अठारह भार ॥
बिनु गुरदेऊ अवर नही जाई ।
नामदेऊ गुर की सरणाई ॥

---

(४९)

आऊ कलंदर केसवा। करि अबदाली भेसवा ॥
जिनि आकास कुलह[1] सिरिकीनी कउसै सपत पयाला।
चमरपोस का मंदरु तेरा इह बिधि बने गुपाला ॥
छपन कोटि का पेहनु तेरा सोलह सहस इजारा[2] ।
भार अठारह मुदगरु तेरा सहनक[3] सभ संसारा ॥
देही महजिदि मनु मउलाना सहज निवाज गुजारै।
बीबी कऊला सऊकाइनु तेरा निरंकार आकारै ॥
भगति करत मेरे ताल छिनाए किह पहि करऊ पुकारा।
नामे का सुआमी अंतरजामी फिरे सगल बेदेसवा ॥

(५०)

राग—सारग

साहिबु संकटवै सेवकु भजै। चिरंकाल न जीवै दोऊ कुल लजै ॥
तेरी भगति न छोडऊ भावै लोगु हसै। चरन कमल मेरे हीअरे बसैं ॥
जैसे अपने धनहि प्राणी परनु माडै। तैसे संत जना रामनामु न छाडैं ॥
गंगा गइआ गोदावरी संसार के कामा ॥ नाराइणुसुप्रसंन होइत सेवकु नामा ॥

(५१)

लोभ लहरि अति नीझर बाजै। काइआ डूबै केसवा ॥
संसारु समुंदे तारि गोबिंदे। तारिलै बाप बीठुला ॥
अनिल बेड़ा हऊ खेवि न साकऊ। तेरा पारु न पाइआ बीठुला ॥
होहु दइआलु सतिगुरु मेलि तू मोकऊ पारि उतारे केसवा ॥
नामा कहै हऊ तरि भी न जानऊ।
मोकऊ बाह देहि बाह देहि बीठुला ॥

(५२)

सहज अवलि धूडिमणी गाडी चालती ॥
पीछे तिनका लैकरि हाकती ॥
जैसे पनकत[4] थ्रूटिटि[5] हाकती ॥
सरि धोवन चाली लाडुली ॥
धोबी धोवै बिरह बिराता ॥
हरिचरन मेरा मनु राता ॥
भनति नामदेउ रमिआ ॥
अपने भगत पर करि दइआ ॥

---

१. टोपी। २. पाजामा। ३. थाली। ४. घाट। ५. आगे चलाना।

(५३)

राग—सारग

काए रे मन बिखिआ बन जाई ॥
भूलौ रे ठगमूरी खाई ॥

जैसे मीनु पानी महि रहै ॥
काल जाल की सुधि नही लहै ॥
जिहबा सुआदी लीलित लोह ॥
ऐसे कनिक कामनी बाधिउ मोह ॥
जिउ मधुमाखी सचै अपार ॥
मधु लीनौ मुखि दीनी छारु ॥
गउ बाछ कऊ संचै खीरु ॥
गला बाधि दुहि लेइ अहीरु ॥
माइआ कारन स्रमु अति करै ॥
सो माइआ लै गाडै धरै ॥
अति सचै समझै नहीं मूड[1] ॥
धनु धरती तनु होइ गइउ धूडि ॥
काम क्रोध त्रिसना अति जरै ॥
साध सगति कबहु नहि करै ॥
कहत नामदेउ ताचा[2] आनि ॥
निरभै होइ भजीऐ भगवान ॥

---

(५४)

बदहु कीन[3] होड माधऊ मोसिउ[4] ।
ठाकुर ते जनु जन ते ठाकुरु खेल परिऊ है तोसिऊ ॥
आपन देउ देहुरा आपन आप लगावै पूजा ।
जल ते तरंग तरग ते है जलु कहन सुनन कऊ दूजा ।
आपहि गावै आपहि नाचे आप बजावै तूरा ।
कहत नामदेऊ तूं मेरे ठाकुर जनु[5] ऊरा[6] तू पूरा

---

१. मूढ़ । २. उसकी । ३. क्यों नहीं बोलते । ४. मुझसे । ५. सेवक ६. अधूरा ।

(५५)

राग—सारंग

दास अनिंन मेरो निज रूप ।

दरसन निमख तापत्रई मोचन परसत मुकति करत ग्रिह कूप ॥

मेरी बाधी भगतु छुडावै बाधै भगतु न छूटै मोहि ।

एक समै मोकऊ गहि बाधै तऊ पुनि मो पै जवाबु न होइ ॥

मै गुन बंध सगल की जीवनि मेरी जीवनि मेरे दास ।

नामदेव जाके जीअ ऐसी तैसो ताकै प्रेमप्रगास ॥

---

(५६)

राग—मलार

सेवीले गोपाल राइ अकुल[1] निरंजन ॥ भगति दानु दीजै जाचहि संतजन ॥ जाचै घरि दिग दिसै सराइचा बैकुंठभवन चित्रसाला सपत लोक सामानि पूरिअले ॥ जाचै घरि लछिमी कुआरी ॥ चंदु सूरजु दीवडे कऊ तकु कालु बपुडा कीट सुकरासिरी ॥ सु ऐसा राजा श्रीनरहरी ॥ जाचै घरि कुलालु ब्रह्मा चतुरमुखु डावडा जिन बिस्व संसारु राचीले ॥ जाकै घरि ईसरु बावला जगतगुरु तत सारखा गिआनु भाखिले ॥ पापु पुंनु जाचै[2] डागीआ दुआरै चित्रगुपतु लेखीआ ॥ धरमराइ परुली प्रतिहारु ॥ सो ऐसा राजा स्री गोपालु । जाचै घरि गण गधरब रिखी बपुडे ढाढीआ गावत आछै ॥ सरब सास्त्र बहुरुपीआ अनगरुआ अखाडा मंडलीक बोल बोलहि काछे । चऊर ढूल जाचै है पवणु ॥ चेरी सकति जीति लै भवणु ॥ अंड टूक जाचै भसमती ॥ सो ऐसा राजा त्रिभवण पती ॥ जाचै घरि कूरमा पालु सहस्त्र फणी बासकु सेज वालुआ ॥ अठारह भार बनासपती मालणी छिनवै करोडी मेघमाला पाणीहारीआ ॥ नख प्रसेव जाचै सुरसरी सपत सुसंद जाँचै घडथली ॥ एते जीअ जाचै बरतनी ॥ सो ऐसा राजा त्रिभवन धणी ॥ जाचै घरि निकट वरती अरजनु ध्रू प्रहलादु अंबरीकु नारदु नजै सिध बुध गण गधरब बानवै हेला ॥ एते जीअ जाचै हटि घरी रवबि आपक अंतर हरी ॥

प्रणवै नामदेऊ ताची आणि ॥

सगल भगत जाचै नीसाणि ॥

---

(५७)

राग—मलार

मोकऊ तूं न विसारि तू न विसारि ॥

तूं न विसारे रामईआ ॥

आलावंती इहु भ्रमु जोहै मुझ ऊपरि सभ कोपिला ॥

---

१. बिना कुल का । २. जिसके ।

सूदुसूदु करि मारि ऊठाइउ कहा करऊ बाप बीठुला ॥
मूए हुए जऊ मुकति देहुगे मुकति न जानै कोइला ॥
ए पडिआ मोकऊ ढेढ कहत तेरी पैज पिछऊडी होइला ॥
तू जू दइआलु क्रिपालु कहिअतु हैं अतिभुज भइउ अपारला ॥
फेरि दीआ देहुरा नामे कऊ पंडीअन कऊ पिछ वारला ॥

(५८)

राग—कानडा

ऐसो रामराइ अतरजामी ॥ जैसे दरपन माहि वदनपरवानी ॥
बसै घटाघट लीप न छीपै ॥ बधनमुकता जातु न दीसै ॥
पानी माहि देखु मुख जेसा ॥ नामेको सुआमी बीठुला ऐसा ॥

(५९)

राग—प्रभाती

मन की विरथा[1] मनु ही जानै कै बूझल आगै कहीए ॥
अतरजामी रामु रवाई मैं उरु कैसे चहीऐ ॥
बेधिअले गोपाल गुसाई ॥ मेरा प्रभु रहिआ सरबे ठायी ॥
मानै हाटु मानै पाटु मानै है पासारी ॥
मानै बासै नाना भेदी भरमतु है ससारी ॥
गुरूकै सबदि एहु मनुराता दुबिधा सहजि समाणी ।
सभो हुकमु हुकमु है आपै निरमऊ समतु बिचारी ॥
जो जन जानि भजहि पुरखोतमु ताची अबिगतु बाणी ॥
नामा कहै जगजीवनु पाइआ हिरदै अलख बिडाणी ॥

(६०)

राग—सारंग

आदि जुगादि जुगादि जुगो जुगु ताका अत न जानिआ ॥
सरब निरतरि रामु रहिआ रवि ऐसा रूपु बखानिआ ॥
गोबिंदु गाजै सबदु बाजै ॥ आनदरूपी मेरो रामइआ ॥
बावन बीखू बानै बीखे बासु ते सुख लागिला ॥
सरबे आदि परमलादि कासट चदनु भैइला ॥
तुमचे पारसु हमचे लोहा सगे कचनु भैइला ॥
तू दइआलु रतनु लालु नामा साचि समाइला ॥

---

१. व्यथा ।

(६१)

राग—प्रभाती

अकुल पुरख इकु चलितु उपाइआ ॥
घटि घटि अंतरि ब्रहमु लुकाइआ ॥
जीअकी जोति न जाने कोई ॥
तै मै किआ सु मालूमु होई ॥
जिऊ प्रगासिआ माटी कुंभेऊ ॥
आपही करता बीठलु देऊ ॥
जीअका बंधनु करम बिआपै ।
जो किछु किआ सो आपै आपै ॥
प्रणवति नामदेऊ इहु जीऊ चितवै सु लहै ॥
अमरु होइ सद आकुल रहै ॥

टिप्पणी—उपर्युक्त पद श्री गुरुग्रन्थ साहब, खालसा गुरुमत प्रेस, अमृतसर (२३ सावन, संवत् १७६३) के संस्करण से गृहीत हैं ।

गुरुग्रन्थ साहिब में संकलित पदों के अतिरिक्त पद

(१)

ज्यो[1] कोई वसुधा दान दे आवे,
कोटी जाग करे करावे ।
तीरथ बरथ करे इस्नाना,
नाहीं नाहीं हरी नाम समाना ॥१॥

ज्यो कोई ज्यावे[2] हीमालये गले,
काशी करवत लेकर मरे ।
दसवे द्वारे काढे प्राण,
नाहीं नाहीं हरी नाम समान ॥२॥

काया कलप करेवर जीवे,
नाकुच खावे नाकुच पीवे ।
गगन मडलमों जोगध्यान,
नाहीं नाहीं हरी नाम समान ॥३॥

नाहीं आगली पिछली बात बनावे,
नेम धरम मन मुहुं पावे ।
च्यारो वेद पढे पुरान,
नाहीं नाहीं हरी नाम समान ॥४॥

सत गुरु की जब कृपा भई,
प्रेमभरात हीरदे धरलीई ।
कहे नामदेव भज भगवान,
नाहीं नाहीं हरी नाम समान ॥५॥

---

१. जो । २. जावे ।

(२)

जाहा तुम गीरीवर[1] ताहा हम मोरा[2] ,
जाहा तुम चंदा ताहा मै चकोरा ॥१॥
जाहा तुम तरुवर ताहा मै पंछी,
जाहा तुम सरोवर ताहा मै मच्छी ॥धृ०॥
जाहा तुम दीवा ताहा मै बाती,
जाहा तुम पंथी ताहा मै साती ॥२॥
बेलक पाती शंकर पुजा,
नामदेव कहे भाव नहीं दुजा ॥३॥

---

(३)

दुध पीवोरे मेरे गोवींदराय ॥धृ०॥
काला बछेरा कपीला गाय, दुध दुहावन नामा जाय ॥१॥
सुन्ने कादुरा दुधने भरीया, पिवौ नारायण आगे धरीया ॥१॥
पखान की मुरत दुध नहीं पीवत, शीर पछार पछार नामा रोवत ॥३॥
ऐसा भक्त मैं कबहु न पाया ॥ नामदेव ने देव हसाया ॥४॥

---

(४)

नामा तै भुटारे रे, तेरा पंथ भुटारे रे ।
अल्ला है आलम का साइ, सोही गुप्त चेहेरा रे ॥१॥
मुसलमान साहेब जाने, नही राम सु तोली ।
पॉच बखत निजाम गुजरी, महजब नही कै बोली ॥२॥
पादशहा नही दीवाना रे, तेरा तुही दीवाना रे ॥धृ०॥
गाइत्री सो हम वि जानी, खेतनी राना खाती ।
एक पाव तो छीनलीया मैं, तीन पावपर जाती ॥३॥
नामा तुही भुटारे ।
बकरी काटी मुरगी काटी, हलाल कहता है ।
मुरगी मे से अडा निकला, हलाल कै[3] नही होता है ॥४॥
पादशहा तुही दिवाने ।
बाबा आदम हम वी जाने, ढवळानंदी आवे ।
सीराल सेट का वेटा मारा, हराम खाना खावे ॥५॥
नामा तुही झुटारे ।
उननें मारा उननें तारा, उनने किया उधारा[4] ।
मुवा पोंगडा आप जीवावे, ऐसा राम मेरा ॥६॥

---

१. गिरिवर । २. मोर । ३. क्या । ४. उद्धार ।

पादशहा तुही दीवाने ।
दशरथ के दोनों बेटे, राम लछमण भाई ।
घर छोडके जगल बसाया, जोरू आप गमायी ॥७॥
नामा तुही झुटारे ।
जल उपर पाषाण तारे, चरन से शिला उधारी ।
रावण मारकर विभीषण थापा, लंका बकसी सारी ॥८॥
पादशहा तुही दीवाने ।
गाऊ बछवा दोनो काटे, नामा आगे डारे ।
नामदेवने हात लगाया, बछीया पीवन लागे ॥९॥
अबतों भली बनी है जी, सबका एक धनी हैजी ॥१०॥
नामा अकबर सहजी मीले, साचा झगड़ा उनका ॥
उचोनीचो करकर देखे, सोही उचानीचा ॥११॥
अब तो भली० ॥

(५)

मनु पछीया मत्त पड पिंजरे,
संसार माया जालुरे ॥१॥
धन जोबन रूप कारण,
न कर गर्व गव्हार रे ॥२॥
एकदिन मो तिन बिरिया[1],
सदा झमकत कालरे ॥३॥
कुंभ काच्या निर भरिया,
बीनसत नहि बाररे ॥४॥
कहत नामदेव सुन भई साधु,
साधु संगत धरनारे ॥५॥

(६)

पढरीनाथ विठाई बतावो, मुजे पंढरीनाथ विठाई ॥धृ०॥
माय बापके सेवा करीये, पुंडलीक भक्त सवाई ।
वैकुठसे विष्णु लाये, खडे करकर बतलाई ॥१॥
चंद्रभागा वालवटपर, कबिरा धुम चलाई ।
साधु संतकी हो गयी, गर्दी[2] भजन मिटाई खुब खाई ॥२॥
त्रिगुणामें रेनु वेनु बजावें, सागरका जवाई ।
दही दुधकी हंडी फुटगई, भरभर दुधया पाई ॥३॥
नामदेव देवके गुरु शिखावें खेंचरी मुद्रागाई ।
कृष्णजीकी बारबार गावे हरीनाम बढाई ॥४॥

---

१. एक दिन में तीन बार । २. भीड़ ।

(७)

हीन दीन जात मेरी पंडरीके राया,

ऐसा तुमनें नामा दरजी कायु कु बनाया ॥१॥

टाळ बिना लेके नाम। देऊल में गया,

पुजा करते ब्रह्मन उन्ने बाहेर ठकलाया ॥२॥

देऊलके पिछे नामा अल्लक पुकारे,

जीदर जीदर नामा उदर देउल ही फिरे ॥३॥

नानावर्ष गवा[1] उनका एक वर्ष दुध,

तुम कहाके ब्रह्मन हम कहाके सुद[2] ॥४॥

मन मेरी सुई तन मेरा धागा,

खेचरजीके चरणपर नामा सिंपी लागा ॥५॥

(८)

नर रामभजन बिन गत न तरन की

कोटि उपाव कर रे ॥ध्रुवपद॥

होम नेम व्रत तीरथ साधो

क्या हुआ बन खंड वासा रे

चरन कमल उर मा उपजे नहिं

तो लग झूठी आसा रे।

नर .... कर रे

नर तनु पायो राम नहिं गायो

भूल्यो पशू गव्हारा रे

सिर पर काल खडा शर साधे

नामदेव कहे पुकारा रे।

---

१. गाय। २. शूद्र।

गोंदा महाराज के पद

(अभंग)

गजानन गौर सूत । लाल अंगपर बभूत ।
तेरे मुख बचनामृत । उसे ज्यमदूत भागत है ॥१॥
विद्याभरी दंदुल पेट । उसपर साप की लपेट ।
विघन करत है चपेट । पकड फेट कालकी ॥२॥
नामा दर्जी जालम । विठू राजा का गुलाम ।
हुआ दुनिया में बदलाम[1] । उने[2] नाम डुबाया ॥३॥
नामा प्यारा है भगत । उसे जानत है जगत ।
बम्मन आया धुंडत धुडत[3] । लगत लगत गाव मो ॥४॥
बम्मन कहे नामदेव । मुजे पूजना भूदेव ।
इति[4] बात मुजे देव । वहा देव गंगामो ॥५॥
मानो विनंती महारज । चलो पतीतन के काज ।
नामा कहे बम्मनराज । न बाजे इत बातन सो ॥६॥
नामा नहीं माने बात । बम्मन बैठा दिन रात ।
हुकुम दिया दिनानाथ । तब संग चल दिया ॥७॥
चले मजल दर मजल । आया वेदर के मिसल ।
व्हा हुई सो नक्कल । वो सकल तुम सुनो ॥८॥
कोस आदे कोस पर । नामदेव का लश्कर ।
वादशहा बैठा निकलकर । नजर कर देखते ॥९॥
कहे कासी पंडत । लालभडे बहूत ।
पायदल जावे तहत । क्या सरयत खबर लाव ॥१०॥
करी कुरान सो सलाम । भेजो फौज वो तमाम ।
कौन क्या करेगा काम । तुम वेकाम मत रहो ॥११॥
आयी फौज किया कोट । जैसा खेत का सगोट ।
कहे कहाँ के तुम भट । थाट वाध जाहो ॥१२॥

---

१. कया । २. इमने । ३. ढूढ़ते-ढूढ़ते । ४. इतनी ।

नामा कहे सुनो भाई। येतो बम्मन गदाई।
नामदेव कौन है। वेदरशाही जानते ॥१३॥
उसे कहे नामदेव। राहा छोड़ो जाने देव।
कहे हुकुम आने देव। फेर देव जाने कू ॥१४॥
अर्जी लीखी फौजदार। ले पोंचे जिलिबदार।
जाके देव दरबार। चोपदार के कहिने ॥१५॥
कासी पंडत के पास। आन पोहोंची इतलास।
नजर गुजराई ख्यास। करे ख्यास पूछके ॥१६॥
पंडत करे जिकीर[१]। सुनो हिन्दू फकीर।
हम लोकन के पीर। पंढरपुर में रहते हैं ॥१७॥
बादशहा करे गलत। होते पीर आजमत।
बुला लाव इस बख्त्। करामत देखणें ॥१८॥
पंडत करे तसलीमात। हजरत भली नहीं बात।
नामदेव कहे मात। किसन नाथ कन्हैया ॥१९॥
उसका नाम मतलेव। उसकी रहा मत् जाव्।
मेरा कहना खातर लाव। नहीं तो नाव डूबेगी ॥२०॥
उसे करोदे बदफैल। बुरी होयेगी नक्कल।
अब जावेगी अक्कल। सकल राज डूबेगा ॥२१॥
हत्ती घोडे दौलत। दख्खन मुलख वाछायत[२]।
बेदर सरीखा तख्त। इस वक्त जायेगा ॥२२॥
बादशहा करे गल्लत। सरक चल मादर वख्त।
पंडत कहे आयी मोल। गई कुवत अक्कल की ॥२३॥
कुटल सामने सेटल। जा दूर हो निकल।
भेजो दस बीस मोंगल। बम्मन सकल पकड लाव ॥२४॥
नामा लाया दरबार। सात बम्मन दोसो चार।
सारे दरबार मों पुकार। मारामार बम्मन कू ॥२५॥
अर्जी पोंचावे हुजूर। नावदेव लाया नजर।
इसके बावे क्या मजकूर। करी अर्जी अर्ज वेगें ॥२६॥
बादशहा कहे जलदी जाव। गाई कसाई कू बुलाव।
नानदेवकुं बिठलाव। नियत पोंचावे गाव कू ॥२७॥
उसके आगे काटी गाय। बम्मन करे हाय हाय।
नामा कहे प्रभुराय। ए बलाय तुम सुनो ॥२८॥
बादशहा कहे लाव जान। नहीं तो करूँ मुसलमान।
कुटा करता है तुफान। फिर फिकर कहलावते ॥२९॥

---

१. नाव-स्मरण। २. बादशाहत।

किदर रह्या पंढरपुर । मेरा वसीला है दूर ।
कोन कहेगा हुजूर । ये जरूर हकीकत ॥३०॥
येतो पापी चंडाल । इन्नें बुरा किया हाल ।
मेरे अब्रू का काल । तुम गोपाल लाल, जलदी आव ॥३१॥
नामा रोवे झुरझूर । बहे अश्रून का पूर ।
बिठू पसिने में चूर । पंढरपुर में डूबे हैं ॥३२॥
रुकिमण चुरती[1] पग्रपाव । घबरगये बिठूराव ।
रुकिमण कहे प्रभुराव । क्या बलाय मुजे कहो ॥३३॥
देवकरे आटोप्रात । करे घबरे घबरे बात ।
नामदेव की कहत । हकीकत बुरी है ॥३४॥
रुकिमणी कहे जलदी जाव । नामदेव को मनाव ।
उस पापी को जलाव । जाव जाव सिताबी ॥३५॥
नामा लड़का अजान । बहुत हुआ हयरान ।
अभी छोड़ेगा जान । मुसलमान बेकदर ॥३६॥
अकस्मात् हुई बात । उठकर बैठे दिनानाथ ।
चल दीया उसी वख्त । मैं दिनानाथ आया हू ॥३७॥
बिठू कहे नामदेव । उस गाय को हाथ लगाव ।
जान उसकी खुलाव । जलदी जाव गाय उठेगी ॥३८॥
उठकर खड़ी रहे गाय । हरहर बोले बम्मनराय ।
नामदेव को लगाय । बिठूराय गले से ॥३९॥
नामा रोवे आलफ । उसे समझावे मा बाप ।
उसके हवेली में साप । हाका हाक पड़ी है ॥४०॥
हत्ती घोडे कू काट । लिया आदमी की पीठ ।
जिधर उधर न हाटा नाट । खर उपर खटारे ॥४१॥
बेदरशहा हुवा दंग । कासी पडत करे जंग ।
अब कैसा हुवा रग । बुरे ढग क्या हुवे ॥४२॥
बादशहा कहे जलदी जाव । काशी पंडत कू बुलाव ।
मेरे जान कू बचाव । सच्चादेव उनोका ॥४३॥
काशी पंडत प्यारे लाल । मेरे जानकू सवाल ।
पीर फकीर हकूलाल । बालोबाल गुन्हेगार ॥४४॥
कासी पंडत धरो पाव । बहोत तरहे से मनाव ।
नामदेव भगतराव । ये बला दूर करो ॥४५॥
पडत तुम बडा सुजान । तुम जानो उसका ग्यान ।
हमने किया है तुफान । अब जान बचाव ॥४६॥

१. चापती ।

काशी पंडत बहु भला। कदम कदम जा मिला।
नामदेव आन मिला। लगाया गला गलो सो ॥४७॥
बादशहा के आडे। जिधर उधर खडे।
उने हातपाव जोडे। पकडे पाव तुमारे ॥४८॥
मानो बिनंती महाराज। चलो पतीतन के काज।
नामा कहे पंडतराज। मत् बाजो इस बात सो ॥४९॥
नामदेव बडे दयाल। हासे किया जबाव सवाल।
पंडत जा रहो खुशाल। फिर वहा से चल दिया ॥५०॥
मेहेरबान नामदेव। बिट्ठराय जानदेव।
उसका राज्य उसकू देव। बुलालेव सापकू ॥५१॥
इतनी बात बोल कर। चला उनका लस्कर।
पंडत आये फिर कर। साप नजर न आवे ॥५२॥
उसकू कर कर सनाथ। नामदेव दीनानाथ।
ओ गाई लियी साथ। उस वक्त चल दिये ॥५३॥
बादशहा करे जीकीर। सच्चा हिन्दु फकीर।
ब्रह्म ज्ञानो मे तीर। रणधीर आये है ॥५४॥
गोंदा लड़का अजान। करे रात दिन ध्यान।
सरज होय मेहेरबान। दिया ग्यान बालक कू ॥५५॥

एकनाथ महाराज के पद

(१)

मैं दधि वेचन चलि मथुरा।
तुम केंव[1] थारे[2] नंद जी के छोरा ॥१॥
भक्ति का अन्चला पकड़ा हरी।
मत खेचो मोरी फारी चुनरी ॥२॥
अहकार का मोरा गरगा फोरा।
व्हाको[3] गोरस सबही गीरा ॥३॥
द्वैतन की मोरी आगिया फारी।
क्या कहू मैं नंगी नार उघारी ॥४॥
एका जनार्दन ज्यासो[4] भेटा।
लागत पगो से कबु[5] नहीं छुटा ॥५॥

(२)

मारी गावडी[6] चुकलीछै[7] भाई।
देखत देखत त्रिभुवन आई॥
उत शोधन लागछे भाई।
अब कैसी गत करूछे आई ॥१॥
मथुरा लगानीन मारो नाम छे।
गावड़ी देखत आई गॉवछे
दृष्टी देखन नहीं मन छे
कैसे भुलाय कान्हा नयानछे[8] ॥२॥
भुली भुली आई मान छे
कही मीलन मोरे ध्यान छे
एक जनार्दन से पग छे
अखंड चित्त जडे गावड़ा छे ॥३॥

---

१. क्यों। २. ठाडे। ३. उसका। ४. जिससे। ५. कभी। ६. गैया। ७. भटक गई है।
८ नयनों से।

(३)

दे दे दे मारी[1] कन्हया लाल साड़ी छे
तुम भलो नद जी नंदन लाल छे ॥१॥
मैं तो आई मथुरा हाट छे ।
बिगरी तुं क्या धरे घाट छे ॥ कन्हया ॥२॥
ज्याकर बोलुगी जशोदा नंद छे
तारी[2] खोड तोडुंगी[3] हात छे ॥ कन्हया ॥३॥
एका जनार्दन बिनती करत छे ।
दोनों हाथ जोड छे ॥ कन्हया ॥४॥

(४)

भूली भटकी आई कान्हा तोर गॉव छे ।
मारो नद नंदन चित्त जड़ो तोरे पावछे ॥१॥
चली आई परपच हाट से ।
तू केव धरीयो मेरे वाट छेव[4] ॥२॥
आव तूं नंद नंदन लाल छे ।
मैं गारी देऊँ तुज से[5] ॥३॥
एका जनार्दन नाम तोरे गॉंव छे ।
पीरीत बसे तारे चरण छे ॥४॥

(५)

हो भलो तुम नंद नंदन लाल छे ।
मुजे गावडी बताव छे ॥१॥
आगल पीछल ध्यान मे आवछे ।
मंगल नाम तोरा मै गाव छे ॥२॥
तारो सुंदर रूप मोरे मन छे,
प्रीत लगी कान्हा हम छे ॥३॥
एका जनार्दन तोरे नाम छे ।
गावत ध्यावत हृदय मे छे ॥४॥

(६)

यहाँ की वात नही मेरी आवछे ।
तोरे चरण कमल मैं ध्याव छे ॥१॥
सुंदर तु नंद नंदन लाल छे ।
गला शोभे वेजयती माल छे ॥२॥

---

१. मेरो । २. तेरी । ३. मरम्मत करूँगी (मुहावरा) । ४. तूने मेरा मार्ग क्यों रोक लिया ? ५. तुझे ।

पीत पीताम्बर घोंगरी याछे।
गोपाल नाचती तोरे सात छे ॥३॥
एका जनार्दनीं रखत गावडी छे।
चित्त जडे मोरे पावड़ी छे ॥४॥

(७)

देखे देखे गे[1] जशोदा माय छे
तोरे छोरीयानें[2] मुजे गारी देव छे[3] ॥१॥
जमुना के पनीया में ज्यावछे
बीच मील के घागरीया फोड़ छे ॥२॥
मैंने ज्याके हात पकर छे
देखे आपही रोव छे ॥३॥
एका जनार्दन गुन गाव छे
फेर जनम नहीं आवछे ॥४॥

(८)

देवरे देवरे मोरी घागरीया लाल छे
मैं बोलुगी जेसोदा माय छे ॥१॥
मत रहो नद के गाम छे
तारो भीड़ नहीं मारो काम छे ॥२॥
आकर पकरीयो मोरे ऑग छे
मैं लाजे न आइगे मा आब छे ॥३॥
एका जनार्दन नी तोरे पुत्र ने हम छे
फजीती ने मानली आइछे ॥४॥

(९)

मै ज्यावगी छोरकर तोरे गाव छे
तूं खोरी मतकर मोरे लाल छे ॥१॥
मोरे घर तू आकर लाल छे
माखन चुरावत अपने हात छे ॥२॥
मैं कहुगी तोरे मात छे
किसन ने चोरी करी मोरी घर छे ॥३॥
कहे एका जनार्दन लाल छे
चरन पकरू मी तुमछे[4] ॥४॥

---

१. री। २. छोरे ने (लड़के ने)। ३. देता है (गुजराती)। ४. तुम्हारे (यहाँ 'छे' मराठी 'चे' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(१०)

माई मोरे घर आयो शाम छे
गावढ़ी[1] छोड़ी मोरे मन छे ॥१॥
दधि दुध माखन चुरावे हम छे
छोकरीया खिलावन देव छे ॥२॥
मारी सुसोवन लागी छे
बालन उनके पकड़ लीन छे ॥३॥
एका जनार्दन थारो छोरे छे
बेड़ लगाये माई हम छे ॥४॥

(११)

हमे आपले[2] सोवते घर छे
रात आयो धागे शाम छे ॥१॥
मारी वेनी पकड़ करी हात छे
दाढ़ी बाधी गाठ छे ॥२॥
मोरी घागरीया[3] फोर छे
भागन गयो आप घर छे ॥३॥
एका जनार्दनी तोरे शाम[4] छे
मोरो संसार को नाश छे ॥४॥

(१२)

यारो देखो गयबी गारूड़ो[5] आया ॥ध्रु०॥
पहिला पहिला कछु नहीं देखे, निराकार निजरूपा ।
अलख हात मो पलख बतावे, माया सगुन रूपा ॥१॥
चल चल चल चल, री री री री, गा गा गा गा, बा बा बा बा ॥२॥
सात सैली ऊपर विवेक समला शम दम छोड़ा ।
ग्यान ध्यान सों बाधा कमाल समला सबही जोड़ा ॥३॥
अनुभव नगर ऊपर गाजे विद्या वेद पुराना ।
सोहं शब्द का बाज्या बाजे नाग सुरस नाना ॥४॥
एक दो ती (तीन) मिला के पाच पचीस का बाणा ।
बत्तीस मिलाके तेत्तीस होके उसका खाना खाना ॥५॥
तन का हुन्नेर तन मोही लाया तन मो तन जोड़े ।
ऐसा हुन्नेर कहे जनार्दन एक नाथ कु छाडे ॥६॥

---

१. गाय । २. अपने । ३. गागरिया । ४. श्याम । ५. संपेरा ।

(१३)

बाजे घर ख्याले घर ख्याले, नजर करो मा बाप ॥१॥
भाव भगत से खेल हमारा, तुम देखो सावकाश[1] ॥२॥
खेल मीठा खेल लगा है नीर धार, मीठा छोड़कर पकरा संसार ॥३॥
एका जनार्दन का बंदा, हात मो काला साप बाधा ॥४॥

(१४)

अव्वल याद करो वस्ताद की,
गुरु पीर पैगम्बर की, और याद करो करतार की
जिन्ने[2] मंडान पैदा किया है अव्वल देखो ये कथा, उसे नाम न था
नाम दरम्याने पैदा हुआ, चल चल चल,
एक सो दोन, दो सो तीन, तीन सो चार, चार सो पाच,
पाच सो पचीस, पचीस सो छतीस बनाया है
छतीस का भी एक-हया है, सो गुरु गारूड़ी की याद है।
और देखो कैसा खेल बनाया है।
चल चल चल क्रोध का विच्चु बाहेर काढ़ा
उसका बीख शिरकु चाढ़ा, जपी तपी संन्यासी की खोड़ तोड़[3]
समज के देखो रे विच्चु ने नागी मारा रे
छुनन न न कहने लगा, चल चल चल ये देखो बाहेर निकलो
काम बिषय का साप, तमाशा देखो मेरे बाप
बिनंदा तोसे काटे आपे आपे, अरे रे रे रे, काटा रे, काटा
नजर ध्यान करो रे नजर ध्यान करो
सो साप दूर करे, चल चल चल, ये देखो ममता नागन आयी रे भाई भाई
तिने लो डंख मारा रे मारा, ठ न न न न
भागो रे भाई भागो, दवड़ो रे, दवड़ो रे गुरू के चरण पर दवड़ो
तो ऐसा करूं की गुरू के पाव कवी न छोड़ो
व्हा कोई का न चले, ममता नागन का जरूर बुरा है
वो वैसी चलती है सो वड़े से बड़े लड़ते हैं।
वो न लढे ऐसी हिकमत बताऊं तुमकू सुनो रे भाई सुनो
गुरू पीर के हात का मोहरा, तुम्हारे हाथ चढे दुने दारा
तो नागन का तुटे धारा, सो कवी आवने नहीं पावे
मन। मनशा साप करो, शाती पेटारे मे वुसुकु[4] डारे रे भाई डारो
बाहेरे तो विवेक शिक्का[5] मारो,

---

१. (मराठी) आराम से। २. जिसने। ३. मरम्मत की। ४. उसको। ५. सिक्का।

ईस दोनो मु बेकु, ऐसा करो के गुरु के चरन पर,
रात और दिन खेलो, जनार्दन गुरु गारुड़ी के पास
व्हा तुम करो खेल, खेलते खेलते हो जायेगा अलख आछेल
एका हाडी बाग कुं दिया खेला, सो हो गया अलख खेल

(१५)

आदि पुरुष निराधार की याद कर
मेरे गुरु परवरदिगार की याद कर, जिन्ने अजब बनायी
उस वस्ताद की याद कर, गैबी खजीना हामना[1] दिया,
उस साहेब की याद कर, संत महंत की याद कर
गुणी गुणवंत की याद कर, जोग, जुगत का बाधा तोड़ा
शम दम का सीरपर जमला छोड़ा, समता जोही सुहावे तुरा
गुरु गारुड़ी बीर पुरा ॥
नैन चीर के पैन्ही मुद्रा, कान फाड़के खाये निद्रा,
अनुहात ध्वनी धुमक बाजे, नाग सुर धुनक गर्जे
चल चल चल चल, निरंजन जंगल के जिवड़े,
खेलना हो तो उलट दृष्टी से खेल ॥
आबी[2] करूंगा तेरा तमाशा, पैल तेरी मुंढी[3] काटुंगा
साप सब भुले बिचु किड़े प्रपंच के कोठरी में आके पडे,
बडे बड़े जनावर पाले, हारे लाल सफेत
उजले काले, पिले भले बे भला, हाडी बाग
अभिमान जिवडे, झुट मुट चिपीच लढे,
नहिं कहूं तो ब्रम्हांड काटने दौरे, देखो मिया हाय, हाय हाय । डंख मारा
बे डंख मारा, सो बड़े बडे कु नहीं उतारा
देखो मिया बाजेगिरी का खेल, हॉडी बाग बड़ा आलबेला
हात हलावे पाव हालावे भाले भोले लोक भुलावे
आवे हाडी बाग बाप बड़ा क्या बेय बड़ा
बेटे आगे बाप खड़ा, गुरु बड़ा क्या चेला बड़ा
चेले आगे गुरु खड़ा, चेला तो प्रेम महल पर चढा
धनि बड़ा क्या चाकर बड़ा, चाकर आगे धनी खड़ा

---

१. हमको । २. अभी । ३. शिर ।

(१६)

साס बड़ी क्या बहु बड़ी, बहु आगे सास खड़ी
बिबी बड़ी क्या बोंदी बड़ी, बोंदी आगे बिबी खड़ी
निराधार की लेकर छड़ी, बिबी खसम की छाती पर चढ़ी
तैं बड़ा क्या मैं बड़ा मेरे आगे तैं खड़ा
तैं नहीं मैं नहीं आलम छाया मेरे गुरु
ग्यानी कुं ग्यान लगाऊं लोभे अबे को उड़ावु
फुंक मारु तो जा जा जा, बोध के पहाड़ पर जा
बच्या जाहा आना नहीं ताहा ज्या
मेरे सद्गुरु दाता-कु[1] शरन ज्या
मेरे सद्गुरु दाता की इतनीसि लकरी
मूल अंतर हात मो पकरी
जीदर दौरा ऊदर दौरी, फेर[2] देखे तो मेरी मेरे सात
देख अबी करुंगा खबूतर का तमाशा
बिन पर से उड़ता है कैसा
खेल खेलते अविद्ये के खलिते में घुसा
बाहेर कैसा आवेगा
आव बे आव बाहेरे आव
जिसे नहीं हात नहीं पाव
जिसे नही गाव न ठाव
जिसे नहीं रूप रेखा गाव
भावना अभाव कछु नहीं
घिरे घिरे तेरा बी मतर बोलूं
लिंग देव की गाठ खोलूं
एक बार ऐसा खेल खेलू कि मेरे बडे बडे खेले थे
हा तो एक दो के तीन, तीन के चार, चार के पाच
पाच के पचीस, पचीस के छत्तीस
छत्तीस का एक
एक वी नहीं तो एका जनार्दन देख ।।१।।

---
१. दाता की। २. फिर।

(१७)

चल चल चल, निरजन जंगल का आया खिलारी
लिया हात में खेल पेटारी, काली कल वाहा भी डारी
सबक मुसा साब घुसारी, हा हा हा हा हा चुप बैठ
चुप बैठ. नहीं हूँ नही, कछु नाद बिंदु कला जोती
आदी मदी अंती कछु नहीं, चुप बैट, चुप बैठ
आपने जागा चुप बैठ, कहना तो कहना मन
ही बैठे आराम, आलख मो लख लख मो आलख
तो होना एक लख लख, ए हुन्नर मेरे गुरु पखें बताया
आहा ब्रह्म मैदान छोटे में बड़ा भारी और बाजेगर खड़ा
ठो ठो ठो ठो सोहो सोहो, ढोल पीटते हैं
नाथ गारुड़ी बीरपुरा है ! ओ खेल का वो खेल करत है
और प्रेम पोगड़ा हॉडी बाग बड़ा हार्द है।
अबे हाडी बाग तू क्या क्या बता शीको[1] है
बाबा मैंने तो खेल का खेल गट करा है।
आरे तेरे नानी का शीर[2] काला
आरे हाडौ बाग तो आया जी, तूं क्या क्या खेल सीको (शीको) है।
और कछु खेल खेलेगा, तो आहा जी
गुरु पीर पैगम्बर की याद कर
तो[3] आहा जी, नजर कर, नजर कर नजर कर
ज्याके व्हा सबके आखेर होत है।
उसमें सबकी पैदास है।
चल चल चल ये देख राधा
मावशी तेरे से नचत है। क्या क्या खेल तेरे से करत है।
ले इसे बे डारूं, और ऐसा खेल खेलूं के
हमारे बड़े बडे खेलते है
ये देखो हीरे की खानि निकलत है।
अवल्ल फतरा, फेर हिरा, फेर देखो कतरा का कतरा
तीन लोक कुं बुजे नहीं, समज पड़के गत्या होत नहीं
सौसार[4] के बाजार में बडे बड़े डूबते हैं
ये देखो रुपया बनते हैं
आवल[5] एक, एक के दोन, दोन के तीन, तीन के चार
चार के पाच, पाच के पचीस बनाया, पांच पांच मिल गये

---

१. सीखा। २. शिर। ३. वह (मराठी)। ४. संसार। ५. पहले।

(१८)

आरेल का आकेला रह्या, चल चल चल
निरंजन से बड़ा आया, ब्रम्ह मवजी बड़ा निखारत है।
फड़ाके मजथम से घुस घुस फुस फुस करत है
ले इसे वे डारू और ऐसा खेल खेलू
ओ खेल को बड़े बड़े दाता देखते है
चल चल चल चीपड़ी के पोगड़े
बड़्या बड़्या बात्या करता है, बड़े बड़े तो आगये
तेरा ही ब्रीद छीन लेऊंगा
तेरे भूपर मारूंगा, तेरी म्हातारी रोवेगी
ये तु मेदर तो देख भला, आ ल ल ल ल
सब जगों में उज्याला, मैं आप अपने से भुला
ए कछू नहीं देख, ये हुन्नेर, ये हुन्नेर तो सबसे अच्छा है।
चल चल चल, अव्वल एक, एक के दो
दो के तीन, तीन के चार, चार के पाच
पाच के पचीस, पचीस के छत्तीस
छत्तीस के चालीस, चालीस के ऐशी[1]
ए कछू नहीं देख
एका जनार्दन के पाव पकड़ कर बैठा है।
सदो दित[2] नाम गावत है।

फकीर

(१९)

भला संतन का सग
खावे बोधन की भंग
सदा अनंद मो दंग, ऐसा मलंग फकीर ॥१॥
ग्यान के मैदान खड़े
सम दम में आन लड़े
बहोता के तखत चढे ऐसा मलंग फकीर ॥२॥
किया संतन का दुमाल मेरा तुटा जंजाल
ऐसा एक नाथ कंगाल, ऐसा मलग फकीर ॥३॥

---

१. अस्सी । २. सदैव ।

(२०)

देखो रे साई, देखो रे साई
विट[1] पर खड़ा रहिया भाई ॥१॥
फकीर मौला सब दुनिया का नाम विठ्ठल साचा
बडे बडे भगत आवे, बोल बाला बाच्या
सिद्धन साधन कोइ नहीं जाणो, जाणो विठ्ठल साइ
एका जनार्दन होरी पुकारे, था के पायी ॥

---

(२१)

दिल मो याद करो रे
जनम को सारथक करोरे ॥१॥
सारे दीन करत पेट खातर धंदा
विठ्ठल नाम लेवत नहीं कॅवरे तू गधा ॥२॥
जम का सोटा बाजे पीठ पर,
कोइ नहीं आवे सात[2]
एका जनार्दन नाम पुकारे
करो हरी नाम बात ॥३॥

---

(२२)

हजरत मौला मौला,
सब दुनया पालन वाला ॥१॥
सब घटमो साई बिराजे,
करत हय बोल वाला ॥२॥
गरीब नवाजे मैं गरीब तोरा
तेरे चरन कु रतवाला ॥३॥
अपना साती[3] समज के लेना
सलील वोही अच्छा ॥४॥
जीन रुप से है जगत पसारा
वोही सल्लाल अल्ला ॥५॥
एका जनार्दनी निजबद अल्ला
आसल वोही चिर पर अल्ला ॥६॥

---

१. ईंट (मराठी)। २. साथ। ३. साथी।

(२३)

पंच तत्व का शोध करीयो
मूल बंध अंकुश खोजीओ
पाच पाच के पचीस पचीयो
ग्यान ध्यान सो धीर मच्याई ॥१॥
फकीर हय भाई ॥ध्रुव॥
गले मै सेली हात मे झोली
अनहत लंगर नाम की पोली
गुरु ग्यान मन से झोली
आशा छोड़ धीर न छोड़ीयो ॥२॥

(२४)

दील को हमने पछाना वे,
कायकु सोंग[1] बताना वे ॥१॥
जीदर उदर देखो भरीयो सब घटा,
अल्ला अल्ला करकर खावन मागे मीठा ॥२॥
एका जनार्दन पग धरत है
कहो कहो बीठल अल्ला ॥३॥

(२५)

सफेद कलदर फकीर
बाबा सफेद कलदर फकीर
काम क्रोध मद मत्सर काटो
उन्मनी ज्या घर बैठो
मारो आसन बैठो
त्रिकुट पर करतार की जिकीर ॥१॥
अंदर भगबा कियो री बाबा
जोग जुगतु भरपाई
अल्ला के नाम पर लगन लगाई
चुकी कलम पर लिखीर ॥२॥
ऐशी फकीर की छोरी
बाबा जात कूल सब तारी
जनार्दन का एका कहत हैं साधो
सीताराम गुरु पीर ॥३।

१. स्वांग।

(२६)

हुषियार बंदे हुषियार, तेरा तन खबरदार
तुझे खिलावत एक नार, बतादेव, सतरावी, घरपाई है ॥१॥

बडे बडे साधू संत, उनसे करले एकात
बतादेव सिद्धात आदि अंत उनो का ॥२॥

बड़ी तो सबसे बड़ी, जाड़ी तो धरती से जाड़ी
एकवीस[1] खन्न[2] की माड़ी,[3] गगन बीच में खड़ी है ॥३॥

दसवे हार झरोखा, देखले दिदार उनोका
नैन दीन लगावै ॥४॥

ब्रम्हा विष्णु बड़े देव, अजब गुरुग्यानी महादेव
पाहिये उनो की ठेव,[4] बैठ के जग झुलाई है ॥५॥

अलख पुरुष को धुनी, तूर्या चेत रही उन्मनी
नहीं आदि अंत पुरानी, पन्नी महाकरण रूप है ॥६॥

अहं नाद निःशब्दों यों, सोस लगाई ये चष्म यों
चुनक है मसूर यों, झक झक झकाकात है ॥७॥

लख लखाट हिरे की खान, चकचकाट को भान
निशि दिन करत न ध्यान, ग्यान बहोत आयेगे ॥८॥

दिल रिझे तो करले धंदा
एका जनार्दन का बंदा, चुप सोने सो बताई है ॥९॥

---

(२७)

मुंडा

गुरु का मुंडा, बड़ा गुंडा चीप की कहे वात
सुननवाले बहेरे बाबा, दिन की करे रात ॥१॥

सोही एक मुन्डा जेवें आप रूप धुंडा,
और क्या कहूँ जादा करो वेद लुंडा ॥२॥

आपनी आपनी राहा चले दिलकु करे पाख
तनक मनन सटोना, मुमे[5] पडेगी खाक ॥३॥

खलक म्याने मरिये खुदा नई जुदा कोय
एका जनार्दन का बंदा जनन मरन खोय ॥४॥

---

१. इक्कीस। २. खंड। ३. अटारी। ४ रुख। ५. मुँह में।

(२८)

दिल की गाठ खोलो, यारो नाम बोलो ॥१॥
कुइ नहीं आव सात, मुडे कायकु करे बात ॥२॥
जोरु लरके मा बाप, सब पसारे हात ॥३॥
हत्ति घोडे पालख मेना, नहि आवे सात ॥४॥
दो दीन का बाजार यारो, कायकु करता बात ॥५॥
झुटी काया, झुटी माया, झुटा सब दीन रात ॥६॥
एक जनार्दन बोले भाई, कोई नही आवे सात ॥७॥

(२६)

पल खम्थानें चार जुग ज्यावे
तन की नही भाई बात
देख मुडे देख, आपना नफा मुडे देख ॥ध्रु०॥
कृत नेत द्वापार का कलयुग का मोठा[1]
चार जुग मुफ्त गमावे आया, मुद्दल सो तोटा[2] ॥२॥
कलयुग में राम बीना तरला[3] कोई देखो
आलख आलख सब पुकारे
आलख नहीं कुई देखो ॥३॥
जपी तपी सन्यासी पेट खातर फिरते
आसन छाड आलख पुकारे, पेट से सब मरते ॥४॥
फकीर मौला ब्रम्हन गुंसाई
सबही आलख पुकारे
आलख में लख नहीं केंव आलख पुकारे ॥५॥
एका जनार्दन साचा कहे, आलख बिठल सार
देख मुंढे अपना नफा करो नाम उच्चार ॥६॥

(३०)

बुल बुल

लखो बुल बुल है, दावोजी मुबारखो ॥ध्रु०॥
झुटा तेरा जप, भात रोटी गप
सद गुरु में छप[4]
तुझे काल करेगा गप ॥१॥
लगो मुख लिया नाम, आदंर भरा है काम
ऐसा केव हुवा वेकाम, तुझ काहा मिलेगा राम
मोकूं आगकूं लगाया राख, दिल मो नापाक
ऐसा देखे लख, एका जनार्दनीं देख ॥२॥

1. बड़ा (मराठी)। 2. मूलधन में भी हानि। 3. तरा। 4. छिप।

जोगी

(३१)

हम तो जोगी रे बाबा संजोगी। ध्रु० ॥
बहुत दीन के पुराने
बिरला बूझे कोई लाखों में, गुरु साहेब जाने ॥१॥
जपका जोगी, तप का जोगीना, जोगी जुग जुग जीवे
हात मो प्याला लिया प्रेम का भर भर पीवे ॥२॥
जोगी कु धुंडत जोगया कीणे लखे नही पाया
एका जनार्दन कृपा सो जोगी, पकर ही लाया ॥३॥

नानक

(३२)

अलख निरंजन नानक आया
नेकी करणा आछा है ॥१॥
फेक पैसा फेक यारो, फेक के पैसा फेक ॥ ध्रु० ॥
माया झोली निरगुण सैली नाम माला जपता है ॥२॥
समकी टोपी, दमकी कफनी
त्रिगुन बभूत चढ़ाई है ॥३॥
जीव शीव दोनो कुंडल पेन्हे
अन्हत टिपरी बजावत है ॥४॥
काम क्रोध की गर्दन मारी
वोध खंडा झलकत है ॥५॥
प्रेम कटारी लियो हात में
लवंडी माया डरती है ॥६॥
वैराग्य माला पड़े उजाला
संसार मो तो फत्तर है ॥७॥
तो भवन मो सौदा वेंचे
आशा मनशा धरता है ॥८॥
फेर चौया-याशी[1] आयी यारो
भूपर जूता खाता है ॥९॥
चारो वरन मो ब्रम्हन वड़ा
घर घर कथा करता है ॥१०॥
नाम वेच कर दाम लेवे
उसकी करनी हराम है ॥११॥

---

1. चौरासी।

(३३)

फकीर होकर फिकीर करता
उसका मूं काला है ॥१२॥

नाथ पंथ की मुद्रा डाली
जग में सिंगी बजावत है ॥१३॥

सिंगी नाद कुं औरत भूला
वोबी लवंडा झूठा है ॥१४॥

सन्यास लिया आशा बढ़ाया
मीठा खाना मंगता है ॥१५॥

भुल गया अल्ला का नाम यारो
ज्यंम[1] का सोटा बजता है ॥१६॥

शेटेसावकार[2] माल खजीना
उनमे मगन रेहेता है ॥१७॥

जोरु लड़के कोई नहीं साती
आखेर भूमे मट्टी है ॥१८॥

मानभाव बने वो काला पैंने
छानकर पानी पीता है ॥१९॥

आत्म ज्ञान कूं चोर लुटत हैं
वो बी सच्चा गद्धा है ॥२०॥

शख बजावत जगम आया
घर घर लेकर फिरता है ॥२१॥

पेट खातर शिव कु वेचे
वोबी लवडा कुत्ता है ॥२२॥

गोसावी बड़ा भगवा आवे
जटा बढ़ाकर रहेता है ॥२३॥

साहा चोर कु जागा देकर
उसके फंद में फिरता है ॥२४॥

साहा फेंके सो साहु बनेगा
नहीं तो सारो गव्हार है ॥२५॥

फेक आशा फेक मनशा
निंदा फेंके सो जोगी है ॥२६॥

१, यम। २. सेठ साहूकार।

(३४)

परधन फेंक दुजी औरत फेंक
न फेंके सो चाडाल है ॥२७॥
दंभमान फेंक मोपन फेंक
न फेंके सो नकटा आधा है ॥२८॥
साही[1] शास्त्र अठरा पुराण
चारों बेद पढ़ता है ॥२९॥
मा बाप तो कासी तीरथ
उसकूं गाली देता है ॥३०॥
साधुसंत घरकु आये
उसकूं तेड़ा[2] बोलता है ॥३१॥
दीवाना उनका बाप यारो
हाथ जोड़कर रहेता है ॥३२॥
नाम अल्ला कथा सुन्ने की
वा मुरगी का सोता है ॥३३॥
काम का कुत्ता कसबीन धरम
सारी रात दीन जगता है ॥३४॥
इस दुनिया में आया बंदे
अल्ला नाम का सौदा है ॥३५॥
एक दिन आना एक दिन जाना
दो दिन का सब बाजार है ॥३६॥
इस नगरी मे सेटे[3] सावकार
बड़े मतलबी रहते हैं ॥३७॥
नाम की जोड़ी करले यारो
चोयान्याशी[4] वेड़ी तुटती है ॥३८॥
तेरे नगरी में नानक आया
पैसा टका कूच मंगता नहीं है ॥३९॥
भक्ती रोटी भाव का सालन
देना मेरे कू सच्चा है ॥४०॥
एक जनार्दनी शाही हमारा
नानक उनका बंदा है ॥४१॥
मोक्ष निशानी लिया हात मो
वैकुंठ धाम पढ़ता है ॥४२॥

---

१. छह। २. टेढ़ा। ३. सेठ। ४. चौरासी।

(३५)

सिर मे टोपी, गले में सैली, कफनी डाला देख ॥१॥
फेक दाम फेक, मुजे फेक दाम फेक ॥धृ०॥
निराकार नाम एक, हमने लिया मेक[1] ॥२॥
सोहं की वो नौबत बाजे, बिरला ज्याने एक ॥३॥
शम दम के तो सोटे बाजे, कुफर भागा देख ॥४॥
बड़ानुग्रह देता नहीं, नसकु फत्तर देख ॥५॥
बड़ा सूम बोले नहीं, जुता खड़ा देख ॥६॥
घुस आया कपड़ा जलाया, आग लगी देख ॥७॥
ग्यानोबा ग्यानो का घर, गले मो सैली सिंगी देख ॥८॥
पैठण में तो मुजे वेद, रेड़ा बुलावे देख
पैठण होकर घर कू चले, पशु कु समाद दीया देख ॥१०॥
ग्यानोबा विष्णू का अवतार, दरवाजे सुन्न का दिंदल देख ॥११॥
निवृति अवतार बाबा आदम का,
पहाड़ मो समाद लिया देख ॥१२॥
सोपान देव तो ब्रह्मा भया,
भागीर्थी लाया देख ॥१३॥
चागदेव तो मिलने आया,
दिवाल चलाया देख ॥१४॥
और नानक नामा दरजी
देव भुलाया देख ॥१५॥
और नानक कबीर हुआ,
दूजा कमाल देख ॥१६॥
बडे नानक सावता माली
पेट चिरा देख ॥१७॥
और नानक सजन कसाई,
भजने कू साल-ग्राम[2] देख ॥१८॥
गोरोवा कुंभार नानक हुवा,
हात तोड़े देख ॥१९॥
नानका घर, दादू पिंजारी,
नाम जपता एक ॥२०॥
एक नानक प्रल्हाद हुवा
बाप कु मरवाया देख ॥२१॥

---

१. वेश। २. शालिग्राम।

नानका घर बिभिषण हुवा
कुल डुबाया देख ॥२२॥
और नानक विसोबा खेचर,
तन के शाम देख ॥२३॥

बड़े शहाणे नरहरी सोनार,
सीर पर लिंग देख ॥२४॥
रोहिदास चभार सब कुछ जाने,
कठोर गंगा देख ॥२५॥

सेना नानक पूजा करिता
देवने धोकटी लिया देख ॥२६॥
चोखोबा ने देव बटलाया,
शिवाल पकड़ी देख ॥२७॥

ऐसे नानक बहुत हुवे,
अत न लागे देख ॥२८॥
ऐसे नानक नाम जपके,
बैकुंठ जावे देख ॥२९॥

कासी, गया, प्रयाग गया
कर्वत लिया देख ॥३०॥
मथुरा गया, द्वारका गया
छापा लिया देख ॥३१॥

उसका नाम लेवे नही तो,
दोश लागे देख ॥३२॥
उसके नाम चढ़के बैकुठ चढ़े देख ॥३३॥
एकनाथ तो एकहि जाने,
एका जनार्दनी देख ॥३४॥

(३६)

अल्ला रखेगा वैसा भी रहना,
मौला रखेगा, वैसा भी रहना ॥ध्रु०॥

कोई दिन सिर पर छतर उड़ावै
कोई दिन सिर पर घड़ा चढ़ावै
कोई दिन तुरग ऊपर चढ़ावे
कोई दिन पाव से खासा चलावे ॥अल्ला०॥१॥

कोई दिन शक्कर दूध मलीदा
कोई दिन अल्ला मारत गदा
कोई दिन सेवक हात जोड़ खडे ।
कोई दिन नजीक न आवे धेडे[1] ॥अल्ला०॥२॥
कोई दिन राजा बड़ा अधिकारी
एक दिन होये कंगाल भिकारी
एका जनार्दन कहत करतारी
गाफल केंव करता मगरुरी ॥३॥

(३७)

भांड

माया[2] भाड सुनो जी, आछा भाड बनोजी ॥ध्रु०॥
ब्रह्मदेव ने वेद पढ़ाया,
माया मीठी लागी
सरस्वती के गले पड़ा
उसकी कीरत भागी ॥१॥
विष्णु के पीछे लगा है माया का धदा
खेल करते फिसल पड़ी, मीठी लागी वृंदा ॥२॥
महादेव बड़ा देव, सब देवन का बाबा,
भिल्लनी के पीछे लगा करता तोबा, तोबा, ॥३॥
सीता की चोरी करी,
रावन कूं धक्का
हनूमान ने नंगी करके,
जला दी लंका ॥५॥
विश्वामित्र तप करे भये अनुरानी,
मेनका से वश भये हुवी धूलधानी ॥ ६ ॥
सोला सहस्र नारी कान्हा गोकुल में खेले,
राधिका कू छोड़के गीसनी फूं भूले ॥ ७ ॥
जनार्दन साई संग सब खेल खेला,
एक नाथ भांड होके उनका चरण मिला ॥ ८ ॥

---

१. धेड़ (एक हरिजन जाति) । २. सोंगा ।

(३८)

हुआ भाड माया छाड,
एक संग पकड़ा ।
जोरु लड़के मा बाप, सबकू बस करा ॥ १ ॥
सबसे हुवा न्यारा,
मुजे हुवा प्यारा ॥ ध्रु० ॥
खावे चिद बुंद की भंग,
मैं तो मगन हुवा दंग ।
छटक फटक टाली बाजे,
मूमे बाजे चंग ॥ २ ॥
उपर तले अंदर भीतर,
सज्जन भरा पुरा ॥ ३ ॥
चौक म्यानें आन खड़े देखत है रहा[1] ,
बड़े बड़े वे फाम धरोधर यारा ॥ ४ ॥
वेद नीती सब कोई जाने जाने किताब पुरा,
मां बेटी की सुद[2] नहीं एक सीर मारा ॥ ५ ॥
'हाम जपी, हाम जपी' चारो देश फिरा,
जमुना में लटा परी व्यास नाम धरा ॥ ६ ॥
बिसरा राम, भरा काम,
मागन लगा औरत
दौड़ों यार, किया जोर
लरकी नरकी घेरा ॥ ७ ॥
बड़े हड्डी अंग पर छाटी
एक पग खड़ा
देख माया खुसा खुसी,
डालन लागा घेरा ॥ ८ ॥
आप चले मकान कु बिसारत करे कु
भरी मजलस हासा हासी
उतार दिया कुरा ॥ ९ ॥
आप करते तप करते,
वोत्री भुल पड़ा
इतर जनकी क्या विसात
छे जन कु मारा ॥ १० ॥

---

१. रहा । २. सुधि ।

आगे आगे देख करनी
संग हुवा एका,
जनार्दन की मेहर हुवी
माधो कर धरा ॥ ११ ॥

(३६)

देख माया जद लगी
बावा आदम के पीछे,
कैलास छाड कर,
स्मशान मो बैठे ॥ १ ॥
हम तो भाड भई
माया छाड दई ॥ ध्रु० ॥
विष्णु के पिछे मायन का धदा
ब्रंदाबन मो घुसा घुसी
मिठी लागी वृंदा ॥ २ ॥
ब्रह्मा बड़ा ब्रह्म खड़ा
चारो वेद पढ़ा
अधर्म से रत हुवा एक सीर तोड़ा ॥ ३ ॥
जपीतपी जंगल में बैठे
उनसे डाले घेरा
कुत्ता कुत्ती होके सब मुलुख फिरा ॥ ४ ॥
बड़े हारी अग पर छाटी
एक पाव खड़ा
जद माया पिछे लगी
किया तड़ा तोड़ा ॥ ५ ॥
होकर भाड माया छाड
जनार्दन पाव मिला
एक जनार्दन का स्वामी सब खेल खेला ॥६॥

अनन्त महाराज के पद

(१)

गरजत माधौनिगम पुरानी,
वाजत बेनू धुन कित जानी ॥ धु० ॥
कानो माही जबसे आयी,
रूचे न तब से नेह सगायी ।
लागि लगन तब मगन भयी मति,
नीज सुहागन अगनित गनती ।
मदन अनती सुरति न भावै,
पुसकामी गित [1] समजावै ।

(२)

प्रीत न तन की भावत मन मो,
नीत हरी की परगट जग मो ।
भव मर माको कारज हरपे,
अकाम कामीं वानी तलपे ।
हयरानी[2] नहि, हय लय लागी,
दुबिधा सकल हि ममता भागी ।
अनंत अनन्य भाव भगति को,
माधो अजात मन की भूको[3] ।

(३)

धुनक परत अब मुरलि की कानी,
फनकत मन मो रित निरवानी ।
माधो महिमा लगाध साजे
निरजर मोही नाद समाजे ।

---

१. गीत । २. हैरानी । ३. भूखा ।

पार न जिनको लागत वेदा,
जागत सोही छेदन भेदा ।
निज जन माही अनत राजी,
गात बिलासक भाव सदाजी ।

(४)

कुंजबिहारी मो मन माही,
निज सुखदायी मंगल गायी ।
कुज बिहारी मो मन माही,
निसिदिन राही त्यज[1] के घायी ।
नित समुझायी दुबिधा जायी,
निज सुख दायी मंगल गायी ।
अलख कमायी विनय जगायी,
साजन सायी[2] नहि बिसरायी ।
अनंत पाया भाव सरीखो,
हरि-रस प्याला पीवत नीको ।

(५)

संसरा को सुख भावत फीको,
गम हरि को नय लागत नीको[3] ।
जिनको सज्जन गावत निशिदिन,
तिन माही मो मोहन तन मन ।
अजरपनो को ठौर बतावे,
अधोगति दीन्ही मोर सुभावै ।
अनंत जावत आवत नाही,
सोवत जागत गावत सायी ।

(६)

सुन सुन सुन सखि समता वारो,
मंगल गावत गीत सावरो ।
मुरली माही नाद जगावै,
अनुरागों की गम समजावै ।
निज बोधाविन परखनहारो,
नहि नहि जगमों नेह सावरो ।

---

१. त्यागकर । २ साईं । ३. हरि का बिरह अच्छा नहीं लगता ।

होत बावरी जीय सुधारो,
अनंत प्यारो सब से न्यारो ।

(७)

भयि मै जोगनि पिय अनुरागी,
लगन लागी तब से मति जागी ।
भव भरमो को त्यजके धायी,
निज सुखदायी निशिदिन गायी ।
मन समजायी मन के न्यायी,
कुंवर कन्हायी की गत पायी ।
आदि अंत भव खंति निवारे,
सोही ताकु पंथ सुधारे ।
अनंत आपत काल सुभावै[1],
गावत मंगल गीत प्रभावे ।

(८)

पिय के खातर मति अनुरागी,
सुख सुहागनि चैतन जागी ।
निज लय लागी भव गति भागी,
दुबिधा जग की सब ही त्यागी ।
तन की सुद[2] नहि इह संसारी,
सब से न्यारी हरि की प्यारी ।
अनंत बिघरी सोहि सुधारो,
हरि नामो की महिमा भारी ।

(९)

नहि हूं भोगी नहि हूं त्यागी,
सोवत नहि हूं नहि हूं जागी ।
नहि भव रोगी विरह वियोगी,
निजलय लागी पियसे जोगी ।
गति सम जायी अजरपनो की,
पर हूं मै अब इह परलोकी ।
अनंत गावत अपनो माही,
दुविधा त्यज के सबको साही ।

---

१. अच्छा लगता है । २. सुधि ।

(१०)

काय कु मोहन प्रीत लगायी,
सकल बिघारी जगत कमायी।
तुम बिन अबि मै बिरह बियोगी,
गावत निसिदिन नय संजोगी।
भावत नाही जग माही दूजा,
तुम बिन कौनहि सकल समूजा।
अनंत पीया होइ न न्यारो,
नेह हमारो तूं हि समारो।

(११)

जागत सोवत सो मै जानत,
सपन सुहावत सोही मानत।
तीनो पनसो है मै न्यारो,
आप आपनो माही प्यारो।
ग्यान ध्यान की मो नहि आसा,
मो मै है सब जग परकासा।
अजरामर की मो नहि जानत,
अनंत मंगल अच्युत गावत।
लाग्यो मीठो नेय पिया को,
फीको भावत भाव जियाको। (क)
दियो सुबोध सतगुरु सोही,
करत जगत सो गति निरमोही। (ख)
निज हितकारी जाकी बानी,
सुन के आसा है त्यजि जानी।
अनंत वारी जाऊ पग पर,
संत सुभाव महा है सबपर।

(१२)

नहि जन मन मो मन मोहन मो,
काम न मोहन है जिह तनमो।
त्यजि मैं आसा मोपन की सब,
किसन की छबि देख परी तब।

(क) जी को प्रवृत्ति की ओर ले जानेवाला भाव फीका लगता है।
(ख) गुरु ने वही उपदेश दिया है जो मुझे जगत से निर्मोही बनाता है।

अब नहि न्यारी होत पिया से,
अनन्य दरस सुभाव दियासे।
पिय की मै हूं पीया प्यारी,
अनंत भक्ती भाव अधारी। (क)

(१३)

नहि दुविधा की भक्ती तन मो[1],
मो[2] मन मो समतागम उगमो।
कीन्हो माधो सॅगतीको जब,
होत[3] फीको भव निज वैभव अब।
प्रापत भयउ गति अविनासी,
प्राणपिया की प्रीत बिलासी।
अनंत घटमो परघट साथी,
सब घट न्यारो निज सुख दायी।

(१४)

सुद्ध नयि पिय की बुध माही मो,
भव मो नहि रुचि प्रीत साही[4] मो।
ग्यान ध्यान नहि है मो माही,
बिरह विरागिन भाव सदाही।
अविनासी के प्रेम बिलासी,
हूँ अभिलासी निशिदिन दासी।
होत न बासी प्रीत मनासी[5],
अनंत प्रापति अनुतावासी[6]।

(१५)

सुन सुन संतो बैन तुमारा,
धन[7] जग मो मन होत हमारा।
बोध तुमारो अजरामर को,
भागत मोको सुखकर नीको।
भगती गावत प्रेम जगावत,
मन समझावत आवत जावत।

(क) अनंत भक्ति-भाव को धारण कर मैं अपने प्रिय की प्यारी प्रेयसी हो गई हूँ।
१. मैं। २. मेरे। ३. होता है। ४. साईं। ५. मनसे (मराठी) ६. अनुताप से (मराठी)। ७. धन्य।

(१६)

नहि देने को नहि लेने कू,
सौदो मन को अनन्य वन को।
जग जीवन को नेह अजर को,
कोई बिरला जानत परखो। (क)
जिनको तिनकू अनंत जगमो,
परखन हारो चेतन तनमो।

(१७)

जिय नहि पिय नहि शिव नहि सगती[1],
इह नहि तिह नहि इह गति जगती।
जगती गति इह शीव कि सगती,
पिया ताही जिय ताही तगती।
भाव भगति को परभाव[2] भयो,
सुभाव संतन को प्रेम दयो।
अविनाशी को नाम पसारो,
अनंत गावत सारासारो।

(१८)

गावत कान्हा कानन मो है,
मो मन मोहै जन सब सोवै।
नाद मचावत तीन लोक मो,
अवलोकन को आवत भव मो।
संतन मो सुद है निशि दिन मो,
आदि अंत नहि जिनके दिल मो।
जनम सुधारयो मानवपन को,
अनंत सांवरो अजपापन को।

(१६)

जनम मरन डर कुछ नहि मन मो,
नेह न मोरो इह जग मो।
लागो प्यारो सबको न्यारो,
अजित सांवरो भाव सुधारो[3]।
अलख निरंजन दिन जनरंजन,
भव दुख भजन विचार मंजन।
अपने मन मो मो[4] मिलवाया,
अनंत माया निशि विलवाया[5]।

(क) परखा हुआ (अनुभवी)। १. शक्ति। २. प्रभाव। ३. सुन्दर। ४. मुझे। ५. नष्ट कर दी।

(२०)

जान पर्यो मनमाही ग्यान को,
निगम सावरो नहि अग्यान को।
आस लगी है अतीत करारी,
पीय मिलन की आज तयारी।
न्यारि न होके न्यारी मैं हूं,
न्यारी न्यारी भव न्यारि हूं।
प्यारी दिलीकी इह परलोकी,
नयन बिलोकी नाहिं भु लोकी।
भोली मै हूं अनंत भोली,
अनन्य भगति मन मो डोली।

(२१)

निशि दिन माही नेह लगावै,
मंगल मंगल भाव जगावै।
पतित सुधारे अपनी माही,
सब मो माधो अलख गुसाही।
घट घट सोही परघट होयी,
देख देख जन लाज गमायी।
अनंत गायी गीत प्रीतसो,
विपरित मन के भाव न्यावसो।

(२२)

अकथ कहानी साजन गावै,
जग विपरित मन प्रेम लगावै।
अंदर बाहिर पीतम प्यारा।
जागत सोवत होत न न्यारा।
अनंत लागी लय निज नैनी,
नैन को नैन सुहावत वैनी

(२३)

काहे कु थोरो गावत अपनो,
माधो नहि तुम जग को सपनो।
कौन न पूछे तुज कू जगमो,
सब जगमो तुम परि नहिं उगमो[1]।
सज्जन जानत विचार तेरो,
सोही जगमो जगसो न्यारो।
अनंत गावत अभग बानी,
अजर अमर गति लय निरवानी।

१. तुम्हारे उद्गम का पता नहीं है।

(२४)

सुद बुद सबही हरि हरि[1] मोरी,
तन धन जन की प्रीती तोरी।
व्यापक सांयीं सब मो सोही,
सो मनमोहन मो मन मोही।
मोहन, मोहन को, संसारी,
सो इन नय सो लय कंसारीं।
हंसि हंसि बाता रोवत आवत,
ऐसो गावत धूंद मचावत।
अनंत पावत भावत तैसी,
नाहीं तफावत जैसी तैसी।

(२५)

जाको नाहीं ठौर ठिकाना,
ताको नय लय संत मकाना।
नाम रूप नहिं रंगत वाको,
खोज सुहावत संत सदा को।
ऐसो बांको भाव बिलासी,
जग सो न्यारो जग अभिलासी।
अनंत प्यारो बिचार लागै,
जनम मरन को डर सब भागै।

(२६)

मो, मन, धोई, भाई, हराई,
सायी खातर तनकि भराई।
नहिं हयरानी[2] भव दिलमानी,
मानत घट घट आत्म समानी।
रानि न राजा न सेट[3] न रंका,
सत गुरु वचनें मिटउं संका।
स्वातम भाती नीज प्रभातीं,
गून[4] त्रैन की निकसी राती।
अनंत साखी वेद पुरानीं,
जग चाहत है[5] मोह पुरानीं।

---

१. हरली। २. हैरानी। ३. सेठ। ४. त्रिगुणात्मक मायारूपी रात बीत गई।
५. जग चाहता है।

(२७)

चरणों की आस रही विसारत नहीं सही।
गुन गावै हरि हरि जग भावै हरि विन कौन नहीं।
मति हरि आली आधि निगम हरी भास दिखाव मही।
अनंत परमारथ अरथ विना भेट भई सुजन नहीं।

(२८)

तुम विन दिनानाथ मति अनाथ, जग वन मोहीं, माधव जी !
नर तनु पाई सार कमाई किन्ह चतुराई आतम जी।
सगुन समाजीं सहज विराजी राजी सब मो राम सजी।
चीन्ह तिन्हीं सब घट की माया भेद गती कौ काम त्यजी।
अनेक पेकीं× मिलाफ करके अनुभव बानी लाग सजी।
बाजी हारी काल कमाई गायी गिन अनुमोदन जी।
सो घनभागी अनंत उधारयौ ये आत्म प्रेम, पा कर जी।

(२९)

भजउं मना कंसातकवीर, मन समनारथ[1] धीर।
नर तनु पाके सार्थक करले छोडो भव कि फिकीर।
हरिनाम गायौ सो नर दुर्लभ, भाव भगति अब नीर।
समता पावै भ्रम हरवावै, अनंत भाग समीर।

(३०)

सातीं[2] संतन अंत हटो, माया पंथ कटो।
सगुन समाजीं भयउं न राजी रागीं रंग छुटो।
सत सुमरन से काल गमावौ वाता[3] भंग रटौ।
आतम सिद्धी अनंत बुद्धी समता कार पटौ।

(३१)

पावन भगती के परकास शाम रमै अविनास।
करम प्रभावौ अवगम त्यजियो आगम भाव विलास।
जा भव माहीं, जाग्रत मति नहिं विखय रहा अविनास।
अनंत साधन कछु नहिं जानत निजपगमों लगि आस।

(३२)

समजावौ, दिल दिलमो, दिल सो।
भरमावौ मन मत या भवसों।
जो, घट माहीं, व्यापक, सोही, घट घटमों अगसो।
दूजा नहि कोइ समजे भाई, नाम जपो हरदम सो।
ताप मिटावौ जाग्रत भवको, अनंत गीत नीज वखो[4]।

× में से। १. शमनार्थ। २. साथी। ३. बातें। ४. बको (बोलो)।

(३३)

सोहे शाम किशोर भोरा, निज अंगन मो नाच नचावें,
रहा बतलावै अघोर।
मंजुल गावै, तान सुनावै, नीगम की कीन्हीं भोर।
अनंत अनुभव स्वानंद प्रेमा, आतम गति निजठोर।

(३४)

मोहन माधवजी मनका सनकादिक न नेमित मनका।
बालमिक नारद आदर भावै लेत अनूभव जीवनका।
जाकी कीरत बेद बखानी, नाम सनातन आलमका।
अनंत चरनी[1] नीज सुभागी, निशि दिन जागत नीका।

(३५)

सतगुरु घर का भयउ गुलाम, तब से नेह सलाम।
येलम[2] अलम का कलमकर डारयो, बलभद सगुन हराम।
जागत जंगम जागरती त्यज, पाय मनोथ अकाम।
अनंत अधिपत असूर अलखित अगम अनूभव अराम।

(३६)

संतो, संतोष संग अभंग, कर लो अंत असंग।
अमूरत आतम अनुभव आगम रम्यो अरंग तरंग।
मागत मतिको मान समारथ दूर पाखंड मलंग।
अनंत कलिंदन लीन दलीन मलि, भास, करहुं, भंग।

(३७)

जाने हैं, बहुदूर मारग मिलै न सत संगति बिन, लगी मतिमो हुर हूर।
बिकट, निपटकी, कठिन कमाई, जाको लच्छ चतूर।
अनंत, पराक्रम, हरउँ, सकलही, भाव गती भरपूर।

(३८)

करुणा के सागर कौ मन तुम, भज भज मंगल गित गावौ।
छोड़ो अभिमान बिनती सुन मोरी जोरित पानी[3] समजावौ[4]।
मान तनोका मनसे जीतो भवगति सबही हरवावौ।
धीरज राखौ निढल पनोसे घट घट येकी जगवावौ।
रज करदम से[5] पार परोरे निजसुख अपना मिलवावौ।
फैर न ऐसो डाव[6] बनेगी मानव तनुको परभावौ।
अनंत शाति संत संग धत्ती बनि बनवाई समजावौ।

---

१. चरणों में (मराठी)। २. इल्म। ३. हाथ। ४. समझाता है।
५. कीचड़ से। ६. दाव।

(३९)

मोहे प्यारे, नदजि लाल, गुपाल संतन पाल ।
शाम सुंदरा मान हसी पतितन के किरपाल ।
अभेद भगती शाती सोहे गर नो है वनमाल ।
अनंत अनुभव निजको प्रेमा छूटो भव विकराल ।

(४०)

दिल की दिलमो रहि गयी बात, अवि[1] है बनि परभात ।
ग्यान रैन की रहा छुपाई, साजन की मिलकात ।
काम क्रोध मद दभ लोभ मंद निसिचर सब छुप जात ।
अनंत आतम अनुभव नीती नीगम भाव अज्ञात ।

(४१)

सोही ब्रह्म सनाथ जगाय, सब घट माहीं समाय ।
समभावन की वडि चतुराई जनम जनम की कमाय ।
आतम जोती तुर्या[2] भाती, गून निसी हरवाय ।
अनत संतन सतभावों से निज गति प्रेम नवाय ।

(४२)

जागो रे जोगिया जगमाहीं, मनको मनसे समझाई ।
मत भुल जडसो बढ़त भरम मति मोह लोभ मदधायी ।
कठन परायी निहावन भाई अंतकु दुःख मिलाई ।
अत आदि विन आतम घट घट नाम रूप विन साही ।
अनत सिंधु अनुभव लहरी सहजपनें झुलवाई ।

(४३)

भेक अनेकनमों हरि एक, नेह बनों निज लेख ।
कोहि नहिं दूजो अतर खोजो आगम रूप अलेख ।
निरगुन नहिं है सगुन नहीं है येक अनेक ।
सहजपनो का खेल अनंती आतम भाव समेक ।

(४४)

गनपत के मनमों निजध्यान सबके आगे मान ।
विघन विनासक बुद्धि प्रकासक गति जाकी निरवान ।
सुख सागर को बनी है निरमल भाव सुजान ।
अनंत आत्मा अगुना सगुना कृति मो हरि अभिमान ।

---

१. अभी । २. तुरीयावस्था ।

(४५)

सत सगत से पार परो भवमद सबहि झरो ।
जगजीवन मो उगमो निगमो अभेद भाव भरो ।
निरमल गावौ मुख से नामा अभिमति भान हरो ।
सहज पनो मो समतानंती सदचिद प्रेम झरो ।

(४६)

जगमो काल अकाल भयो जिसमन भावै समता उदयो ।
जगसो न्यारो निजनिरधारो भ्रम को नास कियो ।
आस नहीं है मनमों तनकी बिधि को भाव गयो ।
अतीकाल गति निजपगमाहीं अजरामृत प्रेम पियो ।

(४७)

हरि हरि भज मन त्यज कुमत को सूमतयों है निजनिरवानी ।
दो दिन खातर भवके पासी जग भ्रमनामो है हयरानी ।
मानव मानी समताबानी सो नर दुर्लभ जिसबिध पानी ।
साधन धरमा त्यज सब करमा चरमा मोहे स्वातम हानी ।

(४८)

प्रीत बनी मति माहीं पीतम,
नीत नयी अब निर्गुन नीगम ।
स्वातम तुर्या भाती उन्मन,
मोहे मोही जाग्रत ऊगम ।

(४६)

सम तनमो मन अब करवाव निरमल हरिहर गाव ।
भाव निरामय राज निजासय अभाव सब हरवाव ।
आगम नीगम माहीं देखो आपहि आत्म स्वभाव ।
अनंत घट घट खटपट त्यजके वीरगति परिहार ।

(५०)

माधव गुन मों सगुनी रमजिय अनुभव स्वातय निजहित मो ।
सब घट अंतर वास विलासी मन मोहन हरि आगम मो ।
स्वानंद भयउं कारण अंतींकारज करमीं गम निगमो ।
सतसंगत मो रम रहियोजी मौजी आपहि आपनमो ।
निंदा स्तुति जग छाडचलो तुम सहज पनों में मारग मो ।
समता वाणीं तव वरि जानें जाग्रत जाग्रत काल नमो ।
सदगुरु भाखी अनंत नामीं अनामधामीं बिसरामो ।

(५१)

स्वातम भावो अर्थ जमावो अनर्थ भव सब गमवावौ।
भोग त्यागमो घोर अंत को ठौर न पावै समझावौ।
ज्ञानाज्ञानी बहु हयरानी सहजपनो से हरि गावौ।
कारज करमीं बहुविध धर्मी त्रिपुटी साखी मलवावौ।
सबमे मिलके सबसे न्यारो हो जा अनुभव नव लावौ।
हम एक ज्ञानी हम येक ध्यानी हमपन मतको जिरववौ।
त्रिभुवन पति प्रभु अनंत माहीं भीख्या काय कु मंगवावौ।

(५२)

समज मनीमे करिजो अपना, ज्या भव माहीं नहीं भरोसों, काल गति सपना।
घडियल जावै फिर नहिं आवै निसिदिन मो हरि जपना।
भेद भाव मे संकल्पगति देह भरोंसे तपना।
सुंदर देही अजप पनों की मानवि चतुरपना।
अति न आवै कछुही संगति दुरभदमो खपना।
स्वातम प्राप्ती साथसंगाती भरपाई बग़ना।
अनंत भवती माहिं बिराजे लौकिक सो लपना।

(५३)

साध कि संगत मिलवाई, नरतन माहीं किन्हि भरपाई।
रामधुनी लगि गून अगूनी, भवभरमो सब जायी।
जाको भावै सबघट समता दुरममता हरवाई।
ताप मिटा जो हाट हटाजो अनंत भाव कमाई।

(५४)

पतितोद्धारक नरहरि नाम हारक भवगति काम।
दिन जग करुनाकर सगुना अगुनकला निजधाम।
अभेद भक्ती निजसुखदायी जा देहों विसराम।
अनत स्वातम सागर लहरी नित्य नयी मतिचाम।

(५५)

परम भई मति निरगुन पुरुखीं सगुनु कलावति अभेद भगती नित्य नयी तरकी।
स्थावर जंगम संगम माहीं कोहि नहीं परकी,
एक अनेकीं आतम पूरन है अजरामर की।
भेद भाव सों भ्रम भव आखन काल गति चटकी,
मानव जनमीं जानै कोई जामति नहिं नरकी।
सहज सुभावो अनत गावै नितरत नागरकी,
संत संगती निरमल पानी लाग रही झटकी।

(५६)

परम पुरुख निरबान हरी उदित भयउं समरी।
सदचित माहीं अनुभव सहजीं समता भाव भरी।
सब घट माही काक गती मो सोहां काल हरी।
अकाल भजनी भुकाल दिनही अनंत बोध परी।

(५७)

मो घर मो मोहन पावना[1], आया भाव संभावना।
अब मैं हरि बिन नाहीं न्यारी, हू नहि दुबिधा तावना।
निज गित गावत, नीत पठावत, जन ना मरण हरावना।
अनंत माहीं सागी निरंजन, तन मन रजन भावना।

(५८)

आगम पोडश पूरन निसिकर द्वादश नीगम मोर।
जाकी लीला बेद बखानी सो, ब्रजमो, शिरजोर।
अनंत गावै आतम भावै मोषक संसृति घोर।

(५९)

निरगुन कौन भयो भय मो हरि, सुमरन बिन।
जोग जुगत सो नाहक हंस गयो।
मत अभिमानी मेद बिबादी स्थुल मति भाव जियो।
अनंत जानौ सबमो राजी सो गुरु सा।च कियो।

(६०)

भजन भरोसो येक जदुनाथ कोई नही आवत साथ।
मा बाप और कुटुंब मिलापी जब लग पैसा हाथ।
मोह, लोभ, मद, मोहिनी धारो, भव भरमो जियघात।
अनंत भावे, सो परमारथ, करले संतन सात।[2]
अनंत भगती सहज अनादी स्वातम गति अविचार।

(६१)

जग सो जगमौजी जगचार अनेक गति अविचार।
गून रैनमो जाग्रत सपनो निजको नहि हुं विचार।
ग्यान ध्यान सब अभिमान बनो है, विषय विलास क जार।
जनन मरनमो तलफत प्रानी अनंत घनो घरचार।

---

१. पाहुना (मेहमान)। २. साथ।

(६२)

मनवा कपट की लकटी लपेट भइ मति तापरमेट ।
गुन रैन मो सम पन शाती कबि हौ, नहि भइ, मेट ।
कूद परो रे निरमल डोही जामो अनुभव रेट ।
अनंत संती गहिरी जमुना जसुमति बालक मेट ।

(६३)

हरि बिन भव कौन हरी, भ्रम माया करले सार्थक गुनिराया ।
निसिदिनिं गावौ मन समजावौ, हरवावौ, मत, काया ।
मोह लोभ में काल न, धोका नहिं व्हा में सुख छाया ।
अनंत जगावे निर्बानीसो, भगती भाव सुपाया ।

(६४)

भावै ऐसी संगत भाई, मिलना प्यारे मन, पथ लाई ।
नित्य नयो नय आतम अनपम निज सुख को बतलाई ।
गूनातित गति भगती प्रेमा स्वानंद हाक भलाई ।
बिन्मय करमीं धरम, समत, है संतन अदलाई ।
तिरवापहको, ठौर हरायो बिचार कैसित तलाई ।
सोही सतगुरु सोही चेला, सोही, तोहत लाई ।
अनत सार्थी अनत माहीं अनंत सत मिलाई ।

(६५)

बाबा साहेब कैसी राम कीसन देखो राम ।
देखो राम देखो शामा देखो भेखो राम ।
घट घट के बिच चेतन सगती सोहै देखो राम ।
अनत रंगे संतन संगे भग भयो भव काम ।

(६६)

तीरत तुर्या को असनान करि, जो, सो, मसतान ।
भव जंजाल भयो परिहारो कबहु नहीं हयरान ।
गुनातित है गुन को साखी, भाकी वेद पुरान ।
सत गुरु स्वामी अतर जामीं अनत भाव समान ।

(६७)

दिन निसि के वित हरि गुन गाते बार बार मन समझाते ।
सब घट बासी अनाम अनश्रुत स्वानुभवौ निजरस पाते ?
जनन मरन को धोका मीट्यो आतम अनुभव मिलवाते ।
अनत सागर निरमल जलसो सोहत अपार परभाते ।

(६८)

मेरा मन तुम बिन सूख नही भावै, पूरन काम परम धाम ।
आतम सब माहि सम जगत अमित एक नाम नीसदीन गावै ।
भवति भास सबि हरास भेद मती भयउं नास निरंजनी नित्य बास ।
नास भास जावै धन्य भाग अनूराग जामो नहि वेद माग ।
सो अनंत सहज राग नीज लाग लगावै ।

(६९)

* भाव गवालन गात हरी गवालन गात हरी ।
मति जमुना के तिर सति जाके चाखे प्रेम जरी ।
जग सब बासी भइउं उदासी प्यासी राग भरी ।
अनंत शाती अभंग भाती राती काम हरी ।

(७०)

अघोर निजमो सोह रही मोह, बिसारी, आगम चारी ।
काम कु भाव नही निज गति आतम नाथ जनार्दन एकाएक सही ।
अनंत बानी निरमल पानी शाती ठोर यही ।

(७१)

काया मानव की घन भागी, निज खोज घनो गुन रागी ।
गूना नितमो, लय लागी, समता भावै मन अनुरागी ।
अनुभव प्रेमा आतम अंगी, आप आपिके सोहत संगी ।
लख लखाट जोत बिरागी शात दया भयऊं अजि ता गी उदय प्रबोधी मती ।
मती सत भागी अनंत हर दम भाव परागी ।

(७२)

गिरजानाथ सत धामा भव मोचनधन विसरामा ।
काम दहन गंगाधर शिवहर नित्य जगावै नामा ।
सुरनर फनिपुर माही सतगुरु अगम अगोचर रामा ।
अनत सदया करऊं अभया निज निज आतम रामा ।

(७३)

साहेब के घर कौ सरदार स्वसुख रहा परदार ।
अगम, अगोचर, गून लोक, पर भाव बन्यो निरधार ।
ग्यान, अभव, है, विवेक संगा स्वातम, मोसुलदार ।
अनत स्थिरच्चर माही मानव काया मासुकदार ।

---

* मराठी संतों ने गोपीप्रेम के भाव को व्यक्त करने के लिए जो पद लिखे हैं, वे ग्वालन या गौलन कहलाते हैं ।

(७४)

प्रभाती

खोज किन्हो आगमार्थ सोहि साच पारमार्थ।
गून भाव भगति आर्त जगहितार्थ बानी।
सत, दयावंत, घनी बोध नीज दानी।
स्वकिय धरम धारनार्थ उदित भयउ मति समार्थ।
निगम प्रभाव तारनार्थ, सार्थ देह मानी।
क्रम, अनत, नित्य नयो भ्रम महंत भास जियो।
सबहि न्यास छोड दियो भयो भयदानी।

(७५)

आली रिजे नहि सावरो, जिय मेरो आजि भयो बावरो।
भयि मति बयरागी अनुतापे सदाचारी भेद तुरयो सेदकारी।
भव भोंवरो अभीमान घनी त्यजी भाव प्रेम संग कीजो।
लोक लाज आज तुट्यो नेह नावरो।
अनंत मती नित्य मान एका जनार्दनी ज्यान
स्वातम सुखालय मान गुरु पियारो।

(७६)

काल बितो तघि कोन जियो।[1]
अभिमति[2] रावन दशानन हार्‌यो।
निसिचर कोन जियो।
लिंग, त्रिकूटाचलपुर, लका बिबिखन ठौर जियो।
जीय जियो नहिं शीय जियो नहि स्वातम मोनजियो।
देव जियो नहि आवत जात नहिं ऐसो, बोध जियो।
हू, न जियो तुम न, जियो, जिय जग द्योत जियो।
ऐसो स्वामी अनंत गोचर निज वर कंस जियो।

(७७)

कोई बिरला जानै जोगिया, जोगि जागै जुगति सो जिया।
धन धन भाग जाके, तन मन माहीं राखे, खोज घनो नीज चाखे परम भोगिया।
अभिमान त्यज दिन्ही आप लागिंचिन्ही।
सत शात सग किन्हों, नर तो जिया।
अनत भाव येकायेकीं जनार्दन अलखाकी आत्मान्भय नहि चाखी आकी आखिया।

---

१. अनंत काल तक कौन जीवित रहा है ?
२. अभिमानी !

(७८)

परमपदीं जीय रमे सम, कामजि उनकी राम रटे ।[1]
अंदर रामा बाहेर रामा रामहि रामा भाव नटे ।[2]
भ्राति मुरे मन शात भये जिय, आत्म प्रतीती हौर[3] घटे ।
भगती भुगती बात नहिं मानै भगती प्यारो नाम झटे ।
निसिद्दिनिं गावै नेह लगावै स्वारथ पाव अंत मिटे ।

(७६)

राम कथा गावत है कोय, जिनकी समता होय ।
जिनकु माया बिखय बिखारी, ताप बने से सोय ।
न मनको मनमो अनुभव उपजे स्वातम कारें तोय ।
मोह लोभ मद मत्सर हरदूगद, तनको कसमल धोय ।
सो येक सूजन सुमत आतम निजमो निजकौ खोय ।
दुरलभ ग्यानी हत अभिमानी, पर नहिं भावै कोय ।
अनंत सिंधू अनुभव पूरन, कालातित भयि सोय ।

(८०)

सो येक ग्यानी चतुर सुजानी टार्यो है अभिमान ।
मानत भवमो, आतम सुगमो, उगमो नीज निधान ।
घट घट माहीं अलख गुसायीं कबहुं नहीं हयरान ।
मान गुमानी नहिं मनमानी मानी गुनगति रान ।
सहज मुद्रा जोग समुद्रा, कीटक ब्रह्म समान ।
भेद भावना जिनकू सपना, माहीं नहिं तिल जान ।
अनत बंदी उनके फंदीं बलिहारी अवसान ।

(८१)

बनि किरपा जिनपर तोरी, सोही सोहत मान अघोरी ।
पतित उधारा अमित उदारा, सूद रहो मति मोरी ।
भव उर हारी अमिमतिकारी, मोह बुखारी थोरी ।
अनंत आगम बसंत संगम, जंगम बुद्धि चकोरी ।

(८२)

कौन हरी हरिबिन भव बाधा, बिजय करी मति निज परकाशा ।
अविनासा भ्रम तुम पुरुषोत्तम मागत निज पग बासा ।
आस पुरन कर दास करन भर, अजर सुभाव तमासा ।
निरमल नित्यानंत समीत्या करि जी पूरन आसा ।

---

१. उनका काम ही राम रटना है ।
२. भीतर-बाहर राम का भाव ही खेलता है, नाचता है ।
३. और ।

(८३)

सुख बरन न जाय कमाय सम, गमाय आगम धाय ।
नाम परताप काम हर माप आप आपमों धाय ।
सो अनुभव प्रेमारथ हरि भवभाव सुबोध उपाय ।
जनम जनम के सुगम उगमके नीगम भाव कमाव ।
जागत जोगी निजसुख भोगी, त्रिविध ताप बिसराय ।
जमकी बाजी जीत जियो जी जीय जगावत न्याय ।
अनंत आतम अलख विरामा भगती बोध कमाय ।

(८४)

सुखदायक प्रभु के गुन गाय, रैन दान कर धाय ।
जा भव माहीं आन उपायीं सबहि अखारथ जाय ।
काम खलादिक काल हयरानी जानी नाहक जाय ।
अनंत संगम मानव गेहीं साधन भाव उपाय ।

(८५)

गोकुल की सब कीसन लोभी, गोप लुगाई मोहभरी ।
छोरी छोरी मिलके गोरी जोरित जोरी प्रेमजरी ।
बिनघोरी मति दीन रैन सति गावत लाला स्थीर चरी ।
तदरूप मानस मानत बस रस लै लाभत लाभकरी ।
गुजरी जमुना के तट कान्हा, उजरी अजरी बात बरी ।
अनंत संती शाती काती प्राती स्वातम खोज परी ।
परिहार हरी संसृति माहीं गायी सदाचिद गीतचरी ।

(८६)

समज मना मतलब अपना राम भजन कर सार मिलावौ नाहक जग सपना ।
काल गति को गम नहि यारो छोरो छोरपना ।
मोह लोभ मद अभिमान मति अविचार तपना ।
कौन न तोरी तुम, नहि, किन को सब घट येकपना ।
ब्रह्मा पिंपलि स्थावर जंगम माहि हरी जपना ।
मानव काया, आतम छाया, पाया भाग घना ।
अनंत शाती अनुभव प्रेमा कारन मन अपना ।

(८७)

देख नजर से निज निरबान त्यज रे मन हयरान ।
सब है माया बादल छाया शास्तर वेद पुरान ।
संतत संपत, तन, जिनगानी[1] गून मता अवसान ।
काम बुरवारी[2] , सब परिहारी, गावौ, श्री भगवान ।
अनंत शाती परम प्रभाती सत सुबोधित मान ।

१. जिंदगानी । २. बुरे ।

(८८)

परम पदी मति मान मनो का भरम नहि गति भाव जगो का ।
सब ही देखे राग सुहावे, नीगम पनि नित तॅहा नहि धोका ।
घट घट माही सदचिद सोही करम जो भी क्रम भोग गुनोका ।
अनंत संती बसंत पगती अमर कला घर आतम लोका ।

(८९)

कोइ बिरला बिर बलधारी समर जगावैं गिरवानी ।
लाखमो बावा कोटी मो भाव जिनोका सब मानी ।
आदी व्याधी ताप अबादी अनुभव साछ्प कर जानी ।
शाती सुशीला परा अवनी अमलान न की मृदुबानी ।
राजी सबसे सगुन समाजी साजी कारज कर मानी ।
ना जित हारी भगत मुरारी हारि तमा कृति अभिमानी ।
पडरी गुजरी जठरी पगरी बिघरी आशा भवमानी ।
अनंत बिश्रम सत गुरु भजनी बिजनी हरिजे हयरानी ।

(९०)

नहि बैसो देह बनेगो नेह धरो हरि को रे ।
काम कु त्यज दै आतम चीन्हो समजावौ मनमनको रे ।
मोह जाल मो नजर न आवै जगजीवन जिय को रे ।
अनंन माने संत समागम पूरन सिंधू सम को रे ।

(९१)

एक दंत गूनवंत संत संग जाको,
सद्यमती उदितकाल, भयउं भोर, अजित काल ।
ठौर हन्यों, मोह जाल, नय रसाल वाको ।
जनन सुफल काज किन्हो, अमर भाव छोड़ दिन्हो ।
जीव, शीव खोज लिन्हो, लाभ घनो ताको ।
अंत रंग ढंग वीन, संग भयउ भंग हीन ।
अनंत क्रम सहज लीन, लिखत गून लाखो ।

(९२)

गन राजा हे गूननाथा, निज सुख परमारथ वेदाता ।
विघन विमोचक वुद्धि प्रबोधित, निजभावे गुन गाता ।
निरगुन, सगुनन, सत प्रशाता, आतमनय एकाता ।
अनंत, भगती, सहजपनो की, जगवावो सिद्धाता ।

(६३)

कीजो किरपा दिन के प्रतिपाल जय जय देव गुपाल।
अखंड हिरदे में मोरे जी बैठ रहो किरपाल।
जन के मारे मन नहि व्यापो व्यापो आतम भूपाल।
अनंत सहजो की है भावै, कुमत त्यजि जौ पाल।

(६४)

तिरवेनी को असनान करौ, भव तनमल सबही निकरो।
सतगुरु किरपा निजभोगावति स्वातमपद बोध झर्‍यो।
शाति जमुना निरमल गहिरी, जामो हरि कूद पर्‍यो।
प्रणव प्रभाती आतम तुर्या सरसति सग लह्यो।
अनंत माहीं संगम अवनी सतचित भाव भर्‍यो।

(६५)

मैं हू दासी अबिनासी सदपगमाही निजपग बासी।
अर्थ अनर्था जानत नाहीं अब मति नहिं तन फासी।
झूठ खटो जगमान अमानीं भावै भव ऊदासी।
शत्रु मित्र नहिं पात्र प्रियार्थी अति प्रभु विलासी।

(६६)

तन सुद सबही बुध गम हरि है साजन भावो निर्मल सूगम।
रैन दीन मो एक अनेकी अनंत शाती मोचक विभ्रम।

(६७)

करिजो अपनो सुफल बिचार त्यज भव रजत बिकार।
घट घट साहीं अलख गुसाई भाखौ निज हित सार।
सहज प्रभावै समता भावै छाड चलो अविचार।
ज्ञानाज्ञान कि गठरी बाघो व्हामो[1] नहिं निरधार।
संगत सज्जन कर हरि गावौ उतरो रे भवपार।
अनत शयनी स्वात्म निधी जा पग मिलसी अविकार।

(६८)

जगमो मौजी रग रगेला, खेलत माघव आपि अकेला।
समता शाती गरब न माला, स्वातम चदन चर्चित भाला।
सुगंध सुमनें तुलसिकु माला, सब सितलाई बनिहु गुपाला।
गोकुल माहीं अनंत बाबा, मति जमुना के तिर प्रतिपाला।

---

१. वसमें।

(६६)

भवती मो नहिं कछुसार समज मन ।
जंजार भयो निज कारन पावत दुर्गम अपनो पार ।
कोहि जोग में कोहि भोग में गुनरजनी अंधियार ।
जा जुगमाहीं नाम प्रवाहीं, लाभै निज सुख सार ।
अभिमति जिनकी दुविधा मन की तेथ नहीं निरधार ।
सदचित सुखघन बरसत वानी सज्जन भाव विचार ।
अनंत सहजीं सत संगतमों रमरहियो अविकार ।

तुकाराम बुआ के पद

साखी*

(१)

काफर सोही आपण बुझे आला दुनीया भर ।
कहे तुका तुम्हें सुन रे भाई हीरीदा जीन्होका कठोर ॥

(२)

भीस्त[1] न पावे मालसी पढीया लोक रीझाये ।
नीचा जगमें कमतरीण सो ही सो फल पाये ॥

(३)

तुका दास राम का मनमे येक ही भाव ।
तो न पालटु अब ही यो तन ज्याव ॥

(४)

तुका रामसुं चीत बाध राखु तैसा आपणी हात ।
धेनु बछरा छोर ज्याव प्रेम न छुटे सात ॥

(५)

चीतसुं चीत जब मीले तब तन थंडा होये ।
तुका मीलना जीन्हंसु यैसा वीरला कोये ॥

(६)

तुका ब्रस्तर[2] बीच्यारा क्या करे रे ज्याको चीत भगवा (न) होये ।
भीतर मैला कैउ मीटे जो परे उपर धोये ॥

(७)

चीत मिले तो सब मिले नहीं तो फोकट संग
पाणी पाथर येक ही ठोर कोरन भीगे अंग ॥

---

*'तुकाराम बोवांची अस्सल गाथा' (श्री भावे) से संकलित

१. बहिश्त । २. वस्त्र ।

(८)

तुका संग तीन्हंसु करीये जीनथें सुष दुनाये
दुर्जन तेरा मुष काला थीता प्रेम घटाय ॥

(९)

तुका मीलना तो भला मनसु मन मील जाये
उपर उपर माटी घसणी नेन्ह की कोण बराई ॥

(१०)

तुका जग भुलारे कह्या[1] न माने कोये
हात परे जम काल के तब मारत फोरे डोये ॥

(११)

तुका कुटुब छोरे लरके जोरू सीर मुडाये
जबथें ईछा नहीं मुई तब तु कीया काये ॥

(१२)

तुका ईछा मीट गई तो काहा करे जट[2] षाक ।
मथीया गोला डार दीया तो नही मीलें फीर ताक ॥

(१३)

द्रीद मेरे साईया के तुका चलावे पास
सुरा सोही लडे हमसुं छोडे तन की आस ॥

(१४)

राम राम कह रे मन औरणसुं नंही काज ।
वहुत उतारे पार आघे[3] रष तुका की लाज ॥

(१५)

तुका राम बहुत मीठा रे भर राषु शेरीर ।
तनकी करुं नाव ही उतारुं पेल तीर ॥

(१६)

संतन पन्हंया ले पड़ा रहुंगा कुर द्वार ।
चेलते पीछें हुं फिरुं रज उटते लेउ सीर ॥

---

१. कहना । २. जटा । . पहले ।

(१७)

हरीसुं मील देष येक ही बेरे ।
पाछे फिर तु नावे[1] घर ॥धृ०॥
मात सुनो दुती आवे मनावन ।
जाया करीती भर जोबन ॥
हरीसु मोही कहीया न ज्याये ।
तब तु बुझे आगों पाये ॥
देष ही भावा कछु पकडी हात ।
मीलाई तुका प्रभु सात[2] ॥

(१८)

क्या कहुं नही बुझत लोका
ली ज्यावे जम मारत धका ॥धृ॥
क्या जीवने की पकड़ी आसा
हातों लीया नहीं तेरा घासा ॥
कीसे दीवाने कहता मेरा ।
छुटे जावे तन तु सब च्या नेरा ।
कहे तुका तु भया दीवाना ।
आपना बीच्यार कर ले जना ॥

(१९)

कब मरुं पाउ चेरन तुम्हारे ।
ठाकुर मेरे जीवन प्यार ॥धृ॥
जेग डरे ज्याकु सो मोही मीठा ।
मीठा डर अनदमाही पैठा ।
भला पाउं जनम ईन्हं वेरे ।
बस माया के अब सग फेरे ।
कहे तुका धन मान ही दारा ।
वोही लीये गुडलीये पसारा ।

(२०)

क्या गाउ कोण सुननवाला
देषु तो सब ही जग भुला ॥ धृ ॥
षुलें अपणे राम ही सात ।
जैसी तैसी कर ही मात ।

---

१. न+आवे=नहीं आयेगा। २. साथ।

काह ती[1] मधुर बानी ।
रीझये जेग यैसी बौरानी ।
गीरधरलाल तो भाव का भुका ।
राग कला नहि जाणत तुका ॥

(२१)

दास पाछे दौरे राम ।
सोवे षडा आपे मुकाम ॥ ध्रु ॥
प्रेम रसडी बाधी गले ।
षेच च्यलें उधर ।
आपणे जाणसुं भुल न देवे ।
कर ही धर आर्ध्ये बाट बतावे ।
तुका प्रभु दीनदयाल ।
वारी रे तुज पर हुं गोपाल ॥

(२२)

यैसा कर घर आवे राम ।
यौर धदा सब छोर ही काम ।।धृ।।
ईतने गोते काहे षाता ।
जब तु आपन भूल न होता ।
अंतर ज्यामी जाणत साच्या ।
मनका यक डंड पर वाच्या ।
तुका प्रभु देस बीदेस ।
भरीया षाली नहीं लेंश ।

(२३)

मेरे राम को नाम ज्यो लेंवे बारेबार ।
त्याके पाउं मेरे तनके पैज्यार ।।धृ।।
हसते षेलते च्यलेते बाट ।
षाणा षाते सोवते षाट ।
जातनसुं मुजे कछु नही प्यार ।
असता की नही हीदु वेड चंभार ।
ज्याका चीत लगा मेर राम को नाम ।
कहे तुका मेरा चीत लागा त्याके पाउं ॥

---

1. ती = बार ।

(२४)

आप तरे त्याकी कोण बराई ।
औरणकुं भलो नाव धराई ।।धृ।।
काहे भुमी येतना भार राखे ।
दुभत धेनु नहीं दुध चाखे ।
बरसत मेघ फलत हे बीरषा ।
कोण काम अपर्णा उन्होती रीषा ।
काहे चन्दा सुरीज खावे फेरा[१] ।
षीन येक बैठ नहीं नही पावत घेरा ।
काहे परीस कंचन करे धातु ।
नही मोल तुटे[२] नही पावत धातु ।।
कहे तुका उपकार ही काज ।
सब ही कर रही या रघुराज ।।

(२५)

जग चले उस बाट कोण जाये ।
नही समजत फीरे तो ही गोदे[३] खाये ।।ध्रु०।।
नही येक दो सकल संवसार[४] ।
जो बुझे सो अगला स्वार ।
उपर स्वार बैठे त्रुस्णा पीठ ।
नही बाचें कोई जावे लूट ।
देख ही डर फीर बैठा तुका
जोवत मारग राम ही येका ।।

(२६)

भले रे भाई जीन्हो कीया चीज
आछा नहीं मीलत वीछ ।।धृ।।
फीरत फीरत पाया सार ।
मीटत लोले धन की नार ।
तीरथ बरत फीर पाया जोग ।
नही तळमळ[५] तुटती भवरोग ।।
कहे तुका मै ताको दास ।
नही सीर भार चलावे पास ।।

---

१. चक्कर । २. टूटे । ३. गोते । ४. संसार । ५. व्याकुलता ।

(२७)

लाल कबली ऊढे पेनाये ।
मोसुं हरीशे कैसे बनाये ॥ध्रु०॥
काहे सषी तुम्हें करोती सोर ।
हीरीदा हरीका कठीण कठोर ।
नहीं कीरीया सरूम कछु लाजे ।
अउ सुनाउ बहुत हे भाजे ।
और नाम रूप नही गोवरीया
तुका प्रभु माषन षैया ॥

(२८)

राम कहो जीवना फल सो ही ।
हरी भजनसुं बीलब न पाई ॥धृ॥
कवण का मदीर कवण की झोंपरी ।
येक रामबीन सब ही फुकरी ।
कवण की काया कवण की माया ।
येक रामबीनं सर्व ही जाया ॥
कहे तुका सब ही चलन्हारा ।
येक रामवीन नहीं वासरा ॥

(२९)

काहे भुला धन सपती घोरे ।
रामनाम सुनं गाउ हो बापु रे ॥धृ॥
राजे लोक सब कहे तु आपणा ।
जब काल नही पाया ठाणा ।
माया मीथ्या मनका सब धदा ।
तज अभीमान भज गोवींदा ।
राना रक डोंगर की राई ।
कहे तुका करे ईलाही ॥

(३०)

छोडे धन मंदिर वन बसाय ॥
मागते टुका घर घर खाया ॥
तीनसों हम करवों सलाम ।
ज्यामुख बैठा राजाराम ॥
तुलसीमाला का बभूत चढ़ावे ।
हरजी के गुन निर्मल गावे ॥
कहे तुका जो साई हमारा
हिरनकश्यप जिन्हे मारहि डारा ॥

(३१)

मंत्र तंत्र नहिं मानत साषी ।
प्रेमभाव नहिं अंतर राषी ॥
राम कहे त्याके पग हू लागूं ।
देषत कपट अभिमान दुर भागूं ॥
अधिक जाती कुल नहिं जानूं ।
जाने नारायन सो प्रानी मानूं ॥
कहे तुका जीव तन धन डारू वारी ।
राम उपासिहुं बलिहारी ॥

(३२)

चुरा चुराकर माखन षाया ।
गौलनी का नंदकुमर कन्हैया ॥
काहे बराई[1] दिषावत मोही ।
जानतहु प्रभुपना ते राखो भाई ॥
और मात सुन उषलसु गला ।
बाध लिया तूं आपना गोपाला ॥
फिरत बन बन गाऊं धरावत ।
कहे तुकया बधु लकरी ले हात ॥

---

१. बड़ाई ।

(३३)

हरिसूं मिल ले एक ही बेर।
पाछें तूं फेर नावे घर ॥
मात सुनों दुति आवे मनावन।
जाया करती भर जीवन।
हरिसुख मोही कहिया न जाय।
तब तूं बुझे आगो पाय ॥
देषहि भाव कछु पकरी हात
मिलाई तुका प्रभु सात ॥

अस्सल गाथा के अतिरिक्त पद

(१)

संवाल यारा उपर तले दोन्हों मार की चोट।

नजर करे सोही राखे पश्वा जावे छुट प्यार खुदाई प्यार
खुदाई प्यार खुदाई।

प्यार खुदाई रे बाबा जिकिर खुदाई उडे कुदे ढुंग नचावे
आगल भुलत प्यार।

लडबड खडबड काहे काख चलावत भार कहे तुका
सुनो एका हम जिन्होंके सात।

मिलावे तो उसे देना तोहि चढावे हात ॥

(२)

सब संबाल म्याने लौडे खडा केऊं गुंग।

मदिरथी माता हुवा भुलि पांडी भंग, आपसकुं संबाल[1] आपसकु सबाल
मुढे खुब राख ताल।

मुशि[2] वोहि बोला नहीं तो करुंगा हाल[3] आवल का तो पीछे नहीं मुदल
विसर जाय।

फिरते नहीं लाज रेंडी गद्धी गोते खाय जिन्हो खातिर इतना होता सो
नहीं दुजे बेकाम।

उचा जोरो लिया तुंबा तुंबा बुरा काम निकल जावे चिकल जोरा
मुढे दिलदारी।

जवानी को छोड दे बात फिर एकतारी कहे तुका पिसल रुका
मेरे को तो दान देख

पकड धका ....[4] मार चलाऊ आलेख ॥

---

१. सँभाल। २. मुँह से ३. दुर्दशा। ४. यहाँ दो असंस्कारी शब्द छोड़ दिये गये हैं।

(३)

नजर करे सोहि जिके बाबा दुरथी तमासा देख ।
लकडी फासा लेकर बैठा आगले ठकण भेख काहे भुला एक देखत ।
आखो मारत डागो बाजार दमरी चमरी जो नर भुला ।
सोत आघो हिलत खाय नहि बुलावत किसे बाबा आप हिमत जाय ।
कहे तुका उस असा के संग फिर फिर गोते खाय ।

(४)

अल्ला करे सो होय बाबा करतार का सिरताज ।
गाऊ बछुरे तिस चलावे यारो बाघो न सात ख्याल मेरा साहेब का
बाबा हुवा करतार ।
व्हात आधे चढे पीठ आपे हुवा असिवार जिकिर करो अल्ला की
बाबा सबल्या अदर मेस ।
कहे तुका जो नर बुझे सोहि भया दरवेस ॥

(५)

अल्ला देवे अल्ला दिलावे ।
अल्ला मारे अल्ला खिलावे ।
अल्ला बिगर नहीं कोय ।
अल्ला करे सोहि होय मर्द होय वो खडा फीर
नामर्दकुं नहीं धीर ।
आपने दिलकुं करना खुसी ।
तीन दाम की क्या खुमासी सब रसों का किया मार ।
भजनगाली एकहि सार ।
इमान तो सबही सखा ।
थोडी तोभी लेकर ज्या जिन्हो पास नीत[1] सोय ।
वोही बसकर ते रोवे ।
सांतो पाचो मार लगावे ।
उतार सो पीछे खावे सब ज्वानी निकल जावे ।
पीछे गधड़ी मट्टी खावे ।
गाव ढाल सो क्या लेवे ।
हगवनी भरी नहीं धोवे मेरी दारू जिन्हें खाया ।
दिदार दरगा सोहि पाया ।
तल्हे मुँढी घाल जावे ।

---

१. नित्य ।

बिगारी सोवे क्या लेवे बभ्भार का बुझे भाव।
वोहि पुसत[1] आवे ठाव।
फुकट बाट्ट कहे तुका।
लेवे सोहि लेवो सखा॥

(६)

आवल्ल[2] नाम आल्ला बडा लेते भुल न जाये।
इलाम त्याकाल जमु परताहि तुव वजाये।
अल्ला एक तु नबी एक तु धू काटते सिर पावों हाते गहीं जीव डराये।
आगले देखे पिछले बुझे।
आवे हुजुर आय सब सबरी नचाव म्याने खडा आपनी सात।
हात पाव रखते जबाव नहीं आगली बात सुनो भाई बजार नहीं
सब ही नर चलावे।
नन्हा बडा नहीं कोये एक ठोर मिलावे एक तरि नहीं प्यार
जीवतन की आस।
कहे तुका सोहि मुंढा राख लिये पाये न पास॥

(७)

तम भज्याय ते बुरा जिकीर तैंकरे।
सीर काटे उर कूटे ताहां झडकरे ताहा एक तुही ताहा एक तुही।
ताहा एक तु ही रे बाबा हम तुह्म नहीं दिदार देखो भले
नहीं किसे पछाने कोय।
सच्चा नहीं पकड सके झुटा झुटे रोय किसे कहे मेरा किन्हे सती लिया भास।
नहीं मेलो मिले जीवना झूठा किया नाश सुनो भाई
कैसा तोही होय तैसा होय।
बाट खाना अल्ला कहना एकवारा तो है भला लिया भेक
मुडे अपना नफा देख।
कहे तुका सोही सखा हाक अल्ला एक॥

---

१. पूछते हुए। २. प्रथम।

श्रीसमर्थ रामदास के पद

(१)

जित देखो उत रामहिं रामा

जित देखो उत पूरण कामा ॥ध्रु०॥

तृण तरुवर सातो सागर

जित देखो उत मोहन नागर ॥१॥

जल थल काष्ठ पषाण[1] अकाशा।

चंद्र सुरज नच[2] तेज प्रकाशा ॥२॥

मोरे मन मानस राम भजो रे

रामदास प्रभु ऐसा करो रे ॥३॥

(२)

(राग सिंध काफी, ताल दादरा)

राम न जाने नर तो क्या जी ॥ध्रु॥

धन दौलत सब माल खजीना।

और मुलुख[3] सर किया तो क्या जी ॥१॥

गोकुल मथुरा मधुवन द्वारका।

और अयोध्या कर आया तो क्या जी ॥२॥

गगा गोमति रेवा तापी।

और बनारस न्हाया[4] तो क्या जी ॥३॥

दर्वेश शवड़ा जगम जोगी।

और कानफाड़ी[5] हुआ तो क्या जी ॥४॥

आतम ज्ञान की खबर न जाने।

और ध्यानन[6] बक हुआ तो क्या जी ॥५॥

वेद पुरान की चर्चा घनी है।

और शास्तर पढ़ आया तो क्या जी ॥६॥

रामदास प्रभु, आत्म रघूविर[7]।

इस नयन नहिं छाया तो क्या जी ॥७॥

---

१. पत्थर। २. नाचते हैं। ३. मुल्क। ४. नहाया। ५. कनफटा योगी। ६. ध्यान में (बक के समान ध्यानी हुआ तो क्या हुआ?)। ७. रघुवीर।

(३)

(राग—काफी, ताल—दीप चंदी)

रे भाई गैबी[1] मरद सो न्यारे
वे ही अल्ला मिया के प्यारे ॥ ध्रु० ॥
देहरा तुटेगा, मशीदी फुटेगा
लुटेगा सब इथ सो
लुटत नहीं, फुटत नहीं
गैबी सो कैसो रे भाई ॥ १ ॥
हिंदु मुसलमान मह्ज्यब[2] चले
येक सरजिनहारा[3]
साहब अलम[4] कुं चलावे
सो अलम थी[5] न्यारा ॥ २ ॥
अवल एक आखीर येक
दोऊ नहीं रे भाई
हम भी जायेंगे
तुम भी जायेंगे
हक सो इलाही रे ॥ ३ ॥

(४)

घट घट साहिया रे अजब अलामिया रे ॥ ध्रु० ॥
ये हिन्दु मुसलमाना[6] दोनों चलावे, पछाने[7] सो भावे ॥ १ ॥
सुरिजन हारा बड़ा करता है, कोई एक जाने पार ॥ २ ॥
अवल[8] अखैर[9] समझ दिवाने, अकलमंद पछाने ॥ ३ ॥
गरीबन काज बड़ा धनी है, बंदे कमीन कमीन ॥ ४ ॥

(५)

रघुनाथ के दरबार घमडी[10] दे गाजतु है ॥ ध्रु० ॥
तथ्यै थै थै पखवाज वाजतु है,
सुरवर मुनिवर देखन आवतु हैं ॥ १ ॥
नारद किन्नर सुरवर गावतु है
शंख भेरि सुनिके राम थरकतु है ॥ २ ॥
लाल धुसर तबके उड़ावतु है
रामदास तहाँ बलि जावत[11] है ॥ ३ ॥

---

१. परोक्षवादी। २. मजहब। ३. सर्जनहारा (सृष्टि-कर्त्ता)। ४. दुनिया। ५. से। ६. मुसलमान का बहुवचन मुसलमाना (दक्खिनी हिन्दी), इसी प्रकार बात का बहुवचन बातां। ७ पहचान (दक्खिनी हिन्दी)। ८. अव्वल। ९. आखिर। १०. नगाड़ा। ११ यहाँ 'जावतु' होना चाहिए; क्योंकि शेष सभी चरणों में 'तु' है।

बहिणा बाई के पद

(१)

गौलणी

देबकी कहे सुन बात भतारो
सुनि के आवे कंस रे
जानि मुनि में लेकर हातो ।
श्रीघर नहीं जसवदा पास रे ॥ १ ॥
शल के जावोजी तुम बसुदेवा,
आयेंगे कस बिखार ।
डखबिखें प्राण लेवें सबके
कहा करो विचार ॥ २ ॥
अच्छी रात भयी है,
जमुना आये मेघ तुसार ।
पाव में वेरी कुलपो[1] कैसे
जाना नंद के बार ॥ ३ ॥
बली बली वारो राखते हैं,
अब कहा करे अविनाश रे ॥ ४ ॥
अपने कर हरि लेकर देवकी देत
भतारो[2] हात रे !
वेरी तब ही तूट परी है,
बधन तूटो पास रे ॥ ५ ॥
बहिणी कहे जीस कृपा
उस कहा करे जम पास रे
वेरी कुलपों आपही खोलत जावत है अविनाश रे ॥ ६ ॥

---

१. ताला भी । २. भर्तार ।

(२)

ये गोकुल चल हो कहत मुरारी
मेघ तुसार निवारे फनिधर सेवा करे बलिहारी ॥ १ ॥
बसुवा अपने कर दीन्हो पालख योंही कीन्हो
जमुना के तट आयके देखें पूरन निरंजनो ॥ २ ॥
पूरन रूप यो देखे जमुना जानीये सबही भाव
दोही ठोर भई जमुना नीर तब जानत यो हरि भाव ॥ ३ ॥
जैसा परवत वैसो नीर हवो जानी के हास,
पाव लागे जनु बहे जायगे सब दोस ॥४॥
जिस चरन को तीरथ शंकर माथा रखीया नीर
वो चरन अब प्राप्त भये हो ये जान उधार ॥५॥
बहिनी कहे जिसकू हरि भावे, उसकू काल ही धोके
बसुदेवा कर आप ही मुरारी काहे कुं संकट आवे ॥६॥

(३)

बसुदेवा तब बारन आवें सोवें गोकुल नंद
दरवाजा आप खोलत है रे आवत गोविंद ॥१॥
जीस दरवाजें लोहों के साकल कुलपो तोड़ रखाये,
सब जन सेवक सोये तब ही वसुदेव घर जाये ॥२॥
तब ये माया प्रगट भई है जसोदा सुत भई है,
औरे सोवे माया ठोर धरी है ॥३॥
जसोदा कूं जहाँ निद्रा लगी है जाने के गोकुल नाथ,
आवे घर के वासुदेवा ताहा माया लीनी हात ॥४॥
धांकत है मन कापत है, तन फेर चले मथुरा कूं
निकसे तब या देखत सब कुलुपो होवत वाकूं ॥५॥
वहिनी कहे तब माया लेकर जाया फेर मथुरा
देवकी कर लेकर दीन्ही दरवाजे रखे फेरा ॥६॥

(४)

वसुदेव जब देखें हीकूं चार भुजा श्री मुरारी
कहत है शाम तुमारो दरशन वाञ्छित रात दिन सारी ॥१॥
तुमकूं वचन सुनावें दारो सेवक सोवा
तुम रूप छोडो देवा हम से कंस कु है दावा ॥२॥
अब ही सुनो गोपाल भयो अब मारत है कंस,
सबही लरके मारत जावो वो रोवत है हरि पास ॥३॥

---

१. यमुना ।

चार भुजा तुमको गोविंद चक्र गदा और शख,
जबहि कौस्तुभ देखत तब वो मारेगा छोड़ो भेख ॥४॥
जय कृष्ण कृपाल स्वामी बचन सुनो जी हमारा
उस रूपो जब देखे कंस प्राणसु लेवे तेरा ॥५॥
बहिनी कहे हरि प्रगट भयो है, उदर में कारण कौन
पुण्य की वेला प्रगट भई है, वोही कारण जान ॥६॥

(५)

जय कृष्ण कृपाल भयो जी
नहीं कीये जप तप दान
नै ग्रही ब्रह्मान पूजन
कीया भूमि नहि गौदान ॥१॥
तुम क्यों प्रगट भयो कहा जानो,
अर्चन वंदन नहि कछु पायो,
हाय अर्चवा मान ॥२॥
अन्न दीयो तब या
रसि नहि देवन पूजो भाव
तीरथ यात्रा कछु नहीं जोड़ी
कहा भयो नवलाव ॥३॥
वन धारी और निरयाना है
पत्र लिखावत जान,
नगाह पाव, नंगा देहहि,
बन बन जावत रान ॥४॥
परबत माहे जोगी होकर
छोड़ दियो ससार
धूमरपान और पंचाग्नी साधन
बैठे जल की धार ॥५॥
बहिनी कहे कहा जलम[1] का
संचित प्राप्त भये इस बेला
चार भुजा हरि मुज को दिखाया
ये ही कहो घन नीला ॥६॥

(६)

सुनो कहत है शाम सुजानो
पुण्य विना नहीं कोई
जिसके पल्ले जप तप दान है
पावै दरसन वो ही ॥१॥

---

१. जन्म । २. श्याम ।

तुम सब बात सुनो जी
चित्त कूं ठोर धरो जी
हरि के आये, देये ही बाण कहो जी ॥२॥
फूल बिना, फल जल बिना
अंकुर बिन पुरुष नहीं छाया
रवि बिनु कमलिनी, रवि बिन तेज
अंगी ताहा सब आया ॥३॥
तरु तहा बिन बिज[1] तहा
तरू हैं दिपके पास प्रकास
नर ताहीं नारी फुल ताहीं
फल है पुण्य ताहा अविनास ॥४॥
बहिनी कहे जिसकु हरि आवे
केही है पुण्य की रास
शाती क्षमा उस घर में सोवे
सबही संपत दास ॥५॥

(७)

ये गोविंद प्राप्त भयो कहा काज
व्रत नहि जानत तप नहि जानत
कारागार में बिराज ॥१॥
पूरब जनम तप करत है,
तब वरद मिलो वनमाली
मेरे पेट में प्रगटो निरगुन
योही मागत बाली ॥२॥
बहुत ही निकट माड़ी
तब हरि करूना कर है जान
तीन जनम में मेरे उदर में
आऊं वर दियो उस रात ॥३॥
उस तप के लीये उदरकूं आये जन
वोहि कृष्ण भयो है येही तप के कारन ॥४॥
तपव्रत दान बिन बिहिन
सेवा कृष्ण न आवे संग
संग बिन नहि मुक्ति जिवाकूं
ये ही कहत श्रीरंग ॥ ५ ॥

---

१. बीज।

बहिनी कहे उस वसुदेव
देवकी कु देव मुक्ति
वयसों तप बिन प्राप्त नही वो साधू की संगती ॥ ६ ॥

(८)

ये अजब बात सुनाई भाई,
गरुड़ को पंख हिरावे कागा
लक्ष्मी चरन चुराई ॥ १ ॥
ये सूरज को बींब अंधेर
सोवे चंदर कूं आग जलावे
राहु के गिहो भोगी कहा रे
अमृत ले मर जावे ॥ २ ॥
कुबेर सोवे धन के आस
हनुमान जोरु मंगावें
वैसे सब ही झुटा है
निंदा की बात सुनावे ॥ ३ ॥
समीदर तान्हो[1] पीयत कैसो
साधू मागत दान
बहिनी कहे जन निंदक है रे
वाको साच न मान ॥ ४ ॥

(९)

सब व्रज नारी सुनो
हरि जनमों नंद जसोदा पेट।
चलवो चल उस हरि कु देखे
मिल निकलत है घाट ॥ १ ॥
नारी आरती कर ले गावत
नाम सग में लागा छेद
हलदिर तेल लीये कर माहे
मिलने चले गोविंद ॥२॥
अपने अपने घर तोरन
गुड़िया धरते है जनमें सुत
नद को भाग कोइ न जाने
भेटी होवे अनंत ॥३॥

१. प्यासा।

घर घर गावत राग रागिनी
ठोर ठोरे भयी भार
वा मुख कहा कहू
अपने मुख से आवे न जाने पार ॥४॥
ब्रज जन नारी मंगल गावत
चिर लुटावे भार[1]
गौ धरत और सुन्ना
दान करत है बाट ही बाट ॥५॥
कुंकम केसर चुव्वा चंदन
फूल गुलाल की शोभा
देखत इंदर, फणीदंर महेदर
गावत हैं सब रंभा ॥६॥
नाद न भेरी ताल ही
जब झट नाद ने अंबर गाजे,
नाना सुर बजावत
छंदे ढोल ढमामे बाजे ॥७॥
बहिनी कहे हरि जन्म को कहा कहूँ हरि जाने
छंद प्रबंध सुनावत नारी
देह भाव नहि जाने ॥८॥

(१०)

कंटक को मल्ल मर्द,
दौतन को सिर छेद
सुत तेरा नंद कृष्ण
तोही जानी हैं, गोपिन को प्राननाथ
भक्तन कू करे सनाथ
शास्त्तर की ऐसी बात
संत जानी है ॥१॥
धरम का रत्तन आया,
पाप कू सब डार दिया
वोही सुत कृष्ण भया
बात ये सत्य मानी है ॥२॥
सुत मत कहो नन्द , ब्रम्ह सो ये ही गोविंद
बहिनी का भार प्रबंध, सत्य सुदाईये ॥३॥

---

1. सोना ।

(११)

जीस आस जोगी जग
जीस आस छोड़ भाग
जीस आस ले बैराग बनवास जात है ॥१॥

जीस आस पान खावे, जीस आस गंग जावे
जीस आस धरत सोवें
जप तप ही करतु है ॥२॥

जीस आस शिर मुंडे
जीस आस मुच्छ खडे
जीस आस होते रंडे
जलमे वसतु है ॥३॥

वो ही सत्य जान नंद
प्रगट भया है गोविंद
पुण्य ही तेरा अगाध
बहिणी ये कहतु है ॥४॥

(१२)

जमुना के तट धेनु चरावत
गावत है गोपाल री
गीत प्रबंध हास्य विनोद
नाचत है श्री हरी ॥१॥

मैं येरी देखत मय
नंदलाल कासे पीत वसन है झलाल
कानों में कुंडल देती ढाल
सिर पर मोर पिखा मोर दिखा नदलाल ॥२॥

अबीर गुलाल सबके माथा
हार सुवास पिनाये
जाई जुई चंपन कोमल
चंदन चंपक लाये
छंद धीमा धीमा सुनावत है
हरि बंध गयो मेरो प्रान
बहिना कहे सब भूल गये
मेरा हरी सु लगा है मन ॥

(१३)

मरन सो हक रे है बाबा
मरन सो हक है ॥ध्रु०॥
काहे डरावत मोहे बाबा
उपजे सो मर जाये भाई
मरन धरन सा कोई बाबा ॥१॥
जनन मरन ये दोनों भाई
मोकले तन के साथ
मोती पुरे सो आपही मरेंगे
बदनामी झुठी बात ॥२॥
जैसा करना वैसा भरना
संचित ये ही प्रमान
तारन हार तो न्यारा है रे
हकीम वो रहिमान ॥३॥
बहिनी कहे वो अपनी बात
काहे करे डौर (गौर)
ग्यानी होवे तो समज लेवे
मरन करे आपे दूर ॥४॥

(१४)

सच्चा साहेब तूं येक मेरा
काहे मुजे फिकीर
महाल[1] मुलुख[2] परवा नही
क्या करूं पील पथीर ॥१॥
गोविंद चाकरी पकरी
पकरी पकरी तेरी ॥ध्रु०॥
साहेब तेरी जिकीर करते
माया परदा हुवा दूर
चारो दील भाई पीछे रहते हैं
बंदा हुजूर ॥२॥
मेरा भी पन सट कर
साहेब पकरे तेरे पाय
बहिनी कहे तुमसे गोविंद
तेरे पर बलि जाय ॥ ३ ॥

---

१. महल । २. मुल्क ।

(१५)

वैसी रात बढ़ाई
सब जानो तुम भाई ॥ ध्रु० ॥

देव कहे सो कहा न होवे
सुन रे मूढ़ो अंध
लीला मनुख भई जीस
मणिका छूटा बंद ॥ १ ॥

रावन मार के विभीषण लंका
यह पाई राज्य कमाई
राक्षस कू अमराई दीयो
ये वैसे राम नवाई ॥२॥

पहरादों बिश्व समिंदर बुरना
परबत लोट दिया है।
आगी जलावे पिता उसका
सत्व से राम रखावे ॥३॥

पानी माहे गजकू छोडे
सावज मार न भाई
उसको रन्यो कुटनी मुक्तो
करता राम सो वोही ॥४॥

मिरा को बिख अमृत किया
फत्तर कू दूध पिलाया
स्वामी बिख चढे तब राम राम
ऐसो बीरद बढ़ाया ॥५॥

शनि को रूप लीया
राम राखो भक्त को सीस
ब्रह्मन सुदामा सुन्नो की नगरी
वैसे करे जगदीश ॥६॥

वैसे भगत बहुत रखे
तब कहा कहु जी बढ़ाई।
बहिनी कहे तुम भक्त कृपाल हो
जो करे सो सब होई ॥७॥

(१६)

जटा न कंथा सिंगी न शंख
अलख भेक हमारा बाबू[1]
झोली न पत्र कान में मुद्रा
गगन पर देख तारा ॥१॥

बाबा हमतो निरंजन वासी,
साधू संत योगी जान लो हम क्या जाने घरवासी ॥ध्रु०॥

माता न पिता बंधु न भगिनी
गव गोत ओ सब न्यारा
काया न माया रूप न रेखा
उलटा पंथ हमारा बाबा ॥२॥

धोती न पोथी जात न कुल
सहजी सहजी भेक पाया
अनुभवी पत्रि सी सिद्ध की खादी
उन नी ध्यान लगाया ॥३॥

बोध बल पर बैठा भाई
देखत है तिन्ह लोक
उर्ध्व नयन की उलटी पाती
जहा प्रकाश आनंद कोटी ॥४॥

भाव भगत मागत भिच्छा
तेरा मोच्छ कीदर रहा दिखाई
बहिनी कहे मै दासी संतन की
तेरे पर बलि जावे ॥५॥

(१७)

दो दिन की दुनीया रे बाबा
दो दिन की है दुनीया ॥ध्रु०॥

ले अल्ला का नाम कूल धरो ध्यान
बंदे न होना गुंम
गाव रतन से ही सार
नई आवेगा दूज बार
वेगी करो है फिकीर
करो अल्ला की जिकीर ॥१॥

---

१. यहाँ 'बाबा' होना चाहिए। बेहणाबाई के समय में 'बाबू' पैदा नहीं हुए थे।

करो अल्ला की फिकीर
तब मिलेगा गामील पीर
बहिणी कहे तुजे पुकार
कृष्ण नाम तमे हुसियार ॥२॥

(१८)

जय जय कृष्ण कृपाला
हो जी नहीं किया जप तप दान
जिस गृहीं बह्मन पूजन
नहि रे भूमि नहि गोदान ॥१॥

तुम भ्यौं प्रगट भयौ कहा जानो
अर्चन वंदन कछु पालो होय अचंबा मानो ॥२॥

अन्न दिया उसकू रुचि
नहि रे देवत पूजो भाव
तीरथ यात्रा नहि कछु जोडी कहा भयो नवलाव ॥३॥

बनधारी और निरपानी है पत्र लिखावत जान
नंगेहि पाव नंगा देह ही बनबन धुंडत रान ॥४॥

परवतया हैं जोगी होकर छोड दियो संसार।
धूमर पाने पंचाग्नी साधन बैठे जल की धार ॥५॥
बहिणी कहे कहा जन्म को संचित प्राप्त भये इस बेला।
चार भुजा हरि भुज को दिखाया येई कहो घठा नीला ॥

(१९)

नदजी आसीस भार भट भाट को असीस है।
चिरकाल सुत तेरो।
सत्य जाण बात है।
गज दासी घोडे।
वस्त्र शस्त्र दान देत है।
कृष्ण को प्रताप भार।
बहिणी मूसे गात है ॥१॥

(२०)

जसोदा का पुण्य फलो।
नदजी तेरो भलो।
कृष्णजी की आस डारो माया मोह नद जी ॥१॥

योही.........ब्रह्म निर्गुणहि वाको नाम कृष्ण जी।
स्वरूपधाम बैकुंठ को जाणजी ॥२॥
कुर्म नारसिंव्ह रूप।
फरश वामन रूप।
मत्स्य ही वराह रूप।
योही कृष्ण सत्य जी ॥३॥
छोडा माया पूत वैसी यो सत्य हृषीकेशी।
उसको दरसन दो जी
पाप जावे बहिणी का जी ॥४॥

———

केशव स्वामी के पद
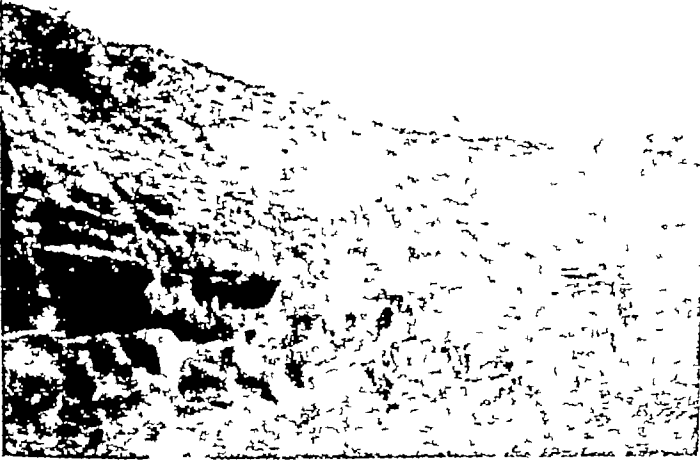
अजता गुफाओं का बाहरी दृश्य

एलोरा गुफाओं का बाहरी दृश्य

अजंता की एक गुफा का भीतरी दृश्य

एलोरा—एक गुफा का भीतरी दृश्य

(१)

लागी हो गोविंदा से पिरती ।[1]
हृदय कमल में जब तब देखूं, परम सुन्दर भरी श्याम की मूरती ॥ध्रु०॥
धन सुत सम्पति कछु नहि भावत
निशिदिन सुख रूप हरिगुण गावत ॥१॥
आदि पुरुष हरि नंद का सुत
निरखत नयरो डरे जमदुत ॥२॥
आनन्द घन मनमोहन श्याम
कहत केशव मोकुं मिलिया राम ॥३॥

(२)

आवो रे नदा नदन प्यारे ॥ध्रु०॥
तन धन ज्योवनं पति सुत संपति भावत नहि तुज बीन पियारे ॥१॥
आदि पुरुष तू त्रिभुवन नायक, शुक सनकादिक मुनि को साईं ॥२॥
जनन मरण दुःख सखल निवारण, चरण कमल दल तेरो गुसाई ॥३॥
तुही मेरो माता तुही मेरो पिता, तुही मेरो भ्राता परम दयानिधी ॥४॥
केशव राज प्रभू तिहारे मिलन सुं सकल सुख की गति पाडगी वीरधी ॥५॥

(३)

आज मेरे घर आयी गोविंद राज्या[2] ॥ध्रु०॥
श्याम सुन्दर कमलापति गिरिधर, बाजत धिमधिम नामको वाज्या ॥१॥
चंदन विलेपित आग सुहावत,
भाल कस्तुरीया मुकुट विराजित ॥२॥
पीत पटधारी गोकुल विहारी
मदन मुरती प्राणनाथ मुरारी ॥३॥
भव दुःख बारण कस बिदारण
पतीत तारण केशव नारायण ॥४॥

---

१. प्रीति । २. राजा ।

(४)

राम सुमिरण करीय अभागी ॥ध्रु०॥
त्रिभुवन नाथ सीता पति राघव, हृदय कमल में धरीय अभागी ॥१॥
नवविध भजन गुरुमुख करीके, त्रिविध-ताप दुख हरीय अभागी ॥२॥
निशिदिन सुखधन राम चिंतन सु, अचल मोक्ष पद चढ़िय अभागी ॥३॥
काहे कु उपजीय काहे कु मरीय, काहे कु काल कुंडरीय अभागी ॥४॥
कहत केशव राम पूर्ण मंगल धाम, समज भवार्णव तरीय अभागी ॥५॥

(५)

ज्याहा[1] ज्याय तंहा माधो हय रे बाबा ॥ध्रु०॥
ज्यो सुरत सुमरत वाकी, सब घट भरिया सोही रे बाबा ॥१॥
धरित्री आकाश सदाहीं, पाताल आपही भरपुर रहीयो रे बाबा
खाली कठोर कहा कबहु न देखो, देखत सब ज्यागा वोही रे बाबा
कसे[2] करीय अब कहा ज्याईय, अंतर्बाह्य महाराज रे बाबा
केशो प्रभुबिन पदारथ नहीं रे, सब ही भेष आपे धरियो रे बाबा ॥

(६)

राम-सुमीरन करना ही रे बाबा ॥ध्रु०॥
काम क्रोध मद मत्सर छाड़ के, यो भव सागर तरना रे बाबा ॥१॥
खीन खीन[3] पावन आयुष खरचत, साधु समागम धरना रे बाबा ॥२॥
गमना गमन निवारण हरिगुण, गावत वैकुंठ-चरणा रे बाबा ॥३॥
ग्यान ध्यान सुं अंग मिल रहणा, मन में दयानिधि भरणा रे बाबा ॥४।
कहत केशव अब आवोगे मरणा, बिसरुं नको[4] रघुनाथ के चरणा रे बाबा ॥५॥

(७)

आज राम मेरो मन मे भरो रे ॥
देह विदेह की सुध बिसरो रे, लोक लाज को काम सरो रे ॥ध्रु०॥
शाम सुंदर की रती मंकु[5] लागी, और कछु समजत नही रे ॥
आसन बासन सबही भुल गई, रुप निरखिते थकित रही रे ॥१॥
प्रेम नीर अखियाँ झरत, रोम फरकते बुंद ढरे रे ॥
मैं तो पिया को दर्शि मगन भई मन माने कोउ कैसे कहो रे ॥२॥
अष्ट भाव सुं गात्र गलित मेरो, नाथ जी ने चित्त हर लीनो रे ॥
केशव प्रभु सुं निकट मिल रही, जैल माही जैसे लवन गिरो रे ॥३॥

---

१. जहाँ। २. कैसे। ३. क्षण-क्षण। ४. भूलना नहीं (मराठी)। ५. मुझको।

(८)

महाराज कोण लीला धरे हो ॥ध्रु०॥
अनंत ब्रह्माड ज्याके उदर मों, सो सुख के कोण माहे परे हो ॥१॥
शेष बिरंची भजत है ज्याको, ज्या कारण मुनीनश फिरे हो ॥२॥
सो ठाकुर को मंतर छाकरे, देखि सदाशिव प्रेम भरे हो ॥३॥
ज्याकी माया जगत्र भुलाया, सो हरि आपे आजि भुले हो ॥४॥
केशव प्रभु की गत कोन जाने, अपने ख्याल में आप खेले हो ॥५॥

(६)

आज मिलो पितावर पीर ॥ध्रु०॥
तुम ज्यात शरीर बिकल मेरो चित्त रहत नहीं च्रण एक थीर ॥१॥
तन मेरो जनमो मन भीमा तीर, ह्वदय मो धरीयो बिठल पीर ॥२॥
केशव को प्रभु देखी शाम सुंदर धीर, नावे तो लेउगी करवत सीर ॥३॥

(१०)

हरिरस-प्याला ले लेउगी मैं ॥
ज्यो मागे उसे भर देउंगी, निज मतवाली न होउंगी मैं ॥ध्रु० ।
मदन गोपाल के गुण गाउंगी, कर बिन तालि बजाउंगी मैं ॥१॥
ब्रिंदावन कु चली जाउंगी, भक्त वछ्ल रिझाउगी मैं ॥२॥
बन माली सुमन लाउंगी, गले बनमाला बाउगी[१] मैं ॥३॥
केशव साई की गति पाउंगी, पाउंगी फिर नाउगी[२] मैं ॥४॥

(११)

मैं राम जपत हुं माई री ॥ध्रु०॥
आसन मुद्रा बहुत चेन्हाई[३] के, चरण सु पीरत लगाई री ॥१॥
पति सुत मित गृह सकल ही तजी के, सन्तन के घर आई री ॥२॥
तन धन ज्योबन कछु नहि भावत, भावत हरि सुखदायी री ॥३॥
कहत केशव कवि शाम सुन्दर-छबी, मती गती तहा मैं छपाई री ॥४॥

(१२)

मोहन के गुण गावति हुं मैं ॥ध्रु०॥
अति सुख सागर नागर मुरती, नीरख नीरख सुख पावति हुं मैं ॥१॥
सुमरण किरतन करती हुं धनी को, मन में ध्यान लगावति हुं मैं ॥२॥
केवल निरमल निरंजन के संग, अंतर रंग जे गावति हु मैं ॥३॥
श्रवण मनन निज ध्यास करी करी, ज्योति सुं ज्योति मिलावति हु मैं ॥४॥
नाम नरपन रंग केशव प्रभु, निपट ताहा ही समावति हुं मैं ॥५॥

---

१. डालूँगी । २. न आऊँगी । ३ धारण किया ।

(१३)

लालन सुं मेरी प्रित जरी[1] हो ॥ध्रु०॥
ज्यागति सोबति राम की मुरती, देखती हु ज्याहा तहा खरी हो ॥१॥
साट घरी मो साई की बीसर, परत नहीं मकुं येक घरी हो ॥२॥
प्रेम नीर नयन बरसन लागो, लोकन सुं सब लाज उरी हो ॥३॥
कहा कहू कछु कहन न आवे, शाम बदन देख भुल लही हो ॥४॥
केशव को प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल वाके बिलगी परी हो ॥५॥

(१४)

लालच देखो मेरे लोचन की हो ॥ध्रु०॥
जब जब लाल की मुरती देखत, अदूयुन[2] ही पुरत धन इनकी हो ॥१॥
शाम बदन सुं निशदिन लग रही, लाज बिसर गई लोकन की हो ॥२॥
केशव साई के चरण सुं लीन भई, याद नहीं कछु तन धन की हो ॥३॥

(१५)

संतन की भई वेटी हो बाबा ॥ध्रु०॥
भजन-दाल ज्ञान-घृत सुं, खावती आनन्द रोटी हो बाबा ॥१॥
प्रेम निजामृत पीवत पीवती, बहुत पडी हय लाठी हो बाबा ॥२॥
ब्रह्मयोग से अचल सबल भरीय, काल की गती सब लोटी हो बाबा ॥३॥

(१६)

संत की चाकरी करले बाबा ॥ध्रु०॥
इस तन का क्या भरोसा, कब ज्यावेगा मर ॥१॥
निरंजन का रुप समज, छोड दे कर कर[3] ॥२॥
कहत केशव राम कु पाया, वो नर अमर ॥३॥ संत की०॥

(१७)

आज मोरे घर आओ गोविंद राजा ॥ध्रु०॥
शाम सुंदर कमलापति गिरिधर, बाजत धीमधीम नाम का बाजा ॥१॥
चंदन विलेपित आग सुहावत, भाल कस्तुरी माथा मुकुट विराजत ॥२॥
पीत पटधारी गोकुल विहारी, मदन मुरली प्राण नाथ मुरारी ॥३॥
भव दुःख-तारण कंस[4] विदारण, पतीत-तारण केशव नारायण ॥४॥

१. जरी (लगी)। २. अब भी। ३. झिड़किय (झगड़ा-झाँसा)। ४. कंस।

(१८)

देखोरी माई नंद किशोर
श्याम सुदर चित्त नवनीत च्योर ॥ध्रु०॥
दीन दयाकर त्रिभुवन नाथ,
खेलत गोविंद गोपी सगात[1] ॥१॥
सुखधन निर्गुण हरि अविकारी,
भगत काज भयो सगुण मुरारी ॥२॥
आदि मध्य अंत रहित गोपाल,
केशव राज प्रभु परम कृपाल ॥३॥

(१९)

मन में गंगा मन में काशी
मन में सदा शिव गुरु अविनाशी ॥ध्रु०॥
मन को मरम न जाने कोय,
मन समजो सो विरला होय ॥१॥
मन में जेमुना मन में द्वारका,
मन में ब्रिंदावन प्रभु हरी सारीखा ॥२॥
पिंड ब्रह्माड की मन मे रचना
कहत केशव मन ब्रह्म ही समजना ॥३॥

(२०)

राम ही माता राम ही पीता,
राम भगिनी राम भ्राता रे ।
धन सुत संपति राम रमापति,
आर (और) नहीं मैं ध्याता रे बाबा ॥ध्रु०॥
राम सगा मोरे राम सगारे,
राम बिना नही कोहु रे बाबा ।
राम ही जीवन राम परमधन
राम सकल सुख दाता रे बाबा ॥१॥
हृदय कमल में राम ही भरीया,
ताथे बीसर गई दोड रे बाबा ।
राम दयानिधि दिनकर कुलदीप,
राम चरण चित राता रे बाबा ॥२॥

१, साथ ।

केवल मुरती राम सदाफल,
राम निरंजन साई रे ।
राम रसामृत केशव लेकर,
रमत निजानंद माही रे ॥३॥

(२१)

ताली बजाऊँ गांउ राम को नाम
और देवन से नही मेरो काम ॥ध्रु०॥
गले में तुलशी मन मेरो शाम,
जित देखो तित राम ही राम ॥१॥
अन्दर राम बाहिर राम,
राम बिना नहिं खाली ठाम ॥२॥
केशव को प्रभु देखी पाई विश्राम
भक्त वत्सल हय मेघ श्याम

(२२)

तुम मेरे जिया के प्यारे,
तुज विण भव दुःख कोण निवारे ॥ध्रु०॥
तेरो नाम-सुमीरण जो कोही करे रे
तिनको ही जम काल डरे रे ॥१॥
कहत केशव हम दास तिहारे,
दरशण को हय प्यास पियारे ॥२॥

(२३)

क्या कहूं माई अब हरि सुख पाई,
सकल ही गति मेरी हरी ने चुराई ॥ध्रु०॥
हरि गुण माला पेरी[1] हूँ मन में,
हरि के चरण के थीर[2] रहूँ मधुबन में ॥१॥
निशिदिन मन में हरि सु लगाई
हरि के भजन नुं प्राण जगाई ॥२॥
हरि नुं निवरी जन मुं मैं बिगरी
केशव स्वामी के संग सब बिसरी ॥३॥

---

१. पहिरी है । २. पास ।

(२४)

नोबत बाजत है हरि नाम की,
गलित भई गति सकल ही काम की
मन में बैठी मुरत शाम की,
फीरत दुराई राजा राम की ॥१॥
ध्यान सी लेह कीय अष्ट ज्याम की
मंगल चाकरी केशव गुलाम की ॥२॥

(२५)

हम तो ब्रह्म भुवन के राजे
बोध दमामा जब तब बाजे ॥ध्रु०॥
सत्य छत्तर शिर उपर बिराजे,
आत्म ज्ञान सुं भक्त न बाजे ॥१॥
कहत केशव रहे सुख रूप केवल,
मार चलाया सकल त्रिगुण दल ॥२॥

(२६)

बोध बिराज्या घर कुं बुलावूं
काम क्रोध कूं जहर पिलावूं ॥ध्रु०॥
तोही सखी मैं संत की चेरी,
बहुत क्या बोलू बात घनेरी ॥१॥
चिंता वारूं ममता ज्यारूं[1]
समता भाई के पद रज झ्यारू ॥२॥
प्रेम भुवन में आसन बाउं,
ह्रदय निवासी के दरसन पाउं ॥३॥
सहज समाधी के सेज बिछाउं
केशव साइ सुं मील मील ज्याउं ॥४॥

(२७)

मेरे हात में दिया राम,
मेरा मार चेलाया काम ॥ध्रु०॥
लीजे उस धनी का नाम,
कीजे बार बार सलाम ॥१॥
दिखलाकर वस्त्र,
मेरे अन्दर किया स्वस्थ ॥२॥
चित्पद ईनाम दिया,
केशव कूं न्याहल किया ॥३॥

---

१. जलाऊँ।

(२८)

संसार गडग्यु सारा सार चेलाया
गरिब नवाज रघुराज मैं पाया । ध्रु०॥
डर चुका वे मेरा डर चुका वे,
देवन का देव 'राजाराम' देख्या वे ॥१॥
काम का मा बाप भेद कापर मुवा,
कहत केशव राज बड़ा आनंद हुवा ॥२॥

(२९)
(कडके केशवा के)

चेटपट चेटपट करता है
खटपट मे झट झट मरता है
लटपट मे लपेट ज्यावेगा,
तो वखत तुज कौन छुडावेगा ॥ध्रु०॥
ईस वदल अदेशकर अदेशकर
दिल मियाकु दिल में घर, जिकीर सुं सब फिकीर बिसर ॥१॥
खबर धर खबर मेरे भाई
ईस खबर में मश्कुल सो जनकराज के जेवाई ॥२॥
संतन के दरबार प्रेम महात्म्य में,
बोध के धमधम टासुं तम तमाट करतार हो तो सुख-दुख वीसर ज्यावेगा॥
आनद में समावेगा
ईता भीस्त पावेगा ॥३॥
यरवीन के हाल मे,
बंदगी के ख्याल में,
भेद कु छयाड दे
धनी का दिदार ले ॥४॥
कहत केशव राज कबी
कबी का सीरताज रबी,
उस रबी कू पाया
तो सहज के घर आया ॥५॥

(३०)

आज घमंडी मेरी देखो, घमंडी मेरी देखो
सुख बिना राम मुरत, हृदय कमल रेखो ॥ध्रु०॥
राम ने दिदार, मुजे दिया सब लेदार ॥१॥
राम मेरा यार, करे बहुत मुसुं प्यार ॥२॥
कहत केशव बात, भन्या दिल मे रघुनाथ ॥३॥

(३१)

रामनाम कहो गोपाल नाम कहो ।
संत के दरबार अब देखत रहो ॥ध्रु०॥
संसार जंजाल सब छोड़कर दिजे,
लालन का जप प्रेम-महाल में किजे ॥१॥
ज्यात का अहम ग्यान ध्यान से तोड़ो,
मन्मथ का ख्याल ब्रह्मानंद से छोड़ो ॥२॥
कहत केशवराज भाव दिल में धरो,
दिल को पछान बाल न हकीकत करो ॥३॥

(३२)

वोही बड़ा नर नामका ।
बाबा चाकर मेरे राम का ॥ध्रु०॥
सकल धंदा छोड़ देवे,
हर वख्त हरनाम लेवे ॥१॥
मुनिजन की लेवे दुवा,
सुख का दर्याव हुआ ॥२॥
दिल का धनी दिल में धरे
प्रेम का घन श्याम करे ॥३॥
आप निज ध्यान में रहे,
राम राह लोगन कू कहे ॥४॥
भेद भरम बिसर गया
निजपद, में मगन भया ॥५॥
कहत केशवराज कवी
लखहुँ मैं राम छबी ॥६॥

(३३)

संतनके संग माया-ममता जली
अंदर की गाठ मेरी बोध से खुली ॥१॥
राम का दिदार अजी मुझे दिया वे
दिल का जालिन अभिमान मुवा वे ।२॥
सुख दुःख समान ब्रह्मानंद से सहू,
जब तक गोपाल जी को मील मील[1] रहू ॥३॥
कहत केशवराज मेरी येकीन बड़ी
चिद्घन की छवि मेरे दिल में खडी ॥४॥

---

१. मिल-मिलकर ।

(३५)

जीने॰ धनि का हुकुम लिया

जीने बोधका प्याला पिया ।

जीने भेद कु गोश ताल दिया,

वो आपे ही वासुदेव भया वे ।ध्रु०॥

यंउ॰ आपे फिर वासुदेव बोले,

ज्यों आनद मद सू भूले ।

ज्यो ख्याल में मिलकर खेले,

वो जीवते॰ मुजेसु मीले वे ॥१॥

मा-बाप-बेटे-ज्योरु-लडके,

सब देखत लोकन सरीके ।

गुण गावत गुरु नरहर के

हम सेवक हैं उस घर के वे ॥२॥

ज्याकी ममता नास कर गई

ज्याकी माया सा मरकर रही ।

ज्यो अपस्कु॰ समज्या सही

दास केशव को साहब वोही वे ॥३॥ यउं आपे० ॥

(३६)

[राग-हुसेनी मुंढा]

धमक म्याने गमक मुंढे गमक में चमक

चेमक म्याने ज्योति मुंढे ज्योति में झमक ॥ध्रु०॥

हारे मुढे हुशार मुंढे देख मुंढे भाई,

डोंगी नजर देखते बाबा नजिकई लाई ॥१॥

---

१. तरह-तरह । २. आज । ३. मौन सा । ४. जिसने । ५. यों । ६. दिल से ।
७. स्वयं को ।

चंद सुरीज मंद ज्याहा खिन्न भय तारे,
सोही असल रूप बाबा देखनारे[1] न्यारे ॥२॥
तेज बिना ज्योति मुंढे ज्योति बिना प्रकाश,
रंग बिना रूप मुढे रूप बिना बास ॥३॥
आगे भरपुर, पाछे भरपुर, भरपुर सबले ठार[2] ,
पुरा गुरुपाई यतो हरवख्त खुदीदार ॥४॥
वस्ताद की सौगद मुजे, हम तो बाबा हारे
कहत केशव गगन मगन सोई अल्ला के प्यारे ॥५॥

(३७)

चेटकनी बाला लटकती आवे
बोध का प्याला लेकर रही बेशक होकर गावे ॥ध्रु०॥

दुनिया का धंदा सारा छोड़ दिया भाई,
अखत्यार सु नजर बड़े साहेब सु लाई ॥१॥
निजानंद मदसुं भुली बिसर चेली[3] काया,
दिल्ल ज्याहा सुं धनी कु मिली अब कहाँ की माया ॥२॥
मकर बिना ख्याल करे हाल मे मस्त माई
शकर गज आजे केशव राज प्रभु पाई ॥३॥

(३८)

पर पुरुष की चेटकी नारी नाचती निज्यानंद ।
बोध प्याला भर भर पीवे झुलती ब्रह्मानद ॥ध्रु०॥

नाचती दरबार चेटकी छूया सब काम,
बार बार बोले राम रहीम यही नाम ॥१॥

सद सलीते शर पर लीते विशम नही भावे,
नित्यानद गावत फिरे चेटकी भुली ज्यावे ॥२॥

चेटक दानी वख्तयानी आवे मेहरबानी,
चिदजेरीना पेन सुख साहेब का पछयानी ॥३॥

साहेब मेहेर धरे तब चेटकी ख्याल करे,
मुसल देहभाव बिसरी उसी ख्याल मे भरे ॥४॥

सद्‌गुरु पाया चेटका लाया चेटकी भई मस्त,
कहत केशव उस मस्ती मे साहेब किया दस्त ॥५॥

---

१. देखनेवाले । २. स्थान । ३. चली ।

(३९)

घर घर अमल[1] सब जन खाय
खोली न माठी उतर ज्यावे ॥ध्रु०॥

बाजीगिरी रंग दिखावे,
ऐसा अमल मुझे नहि भावे ॥१॥

तो गुरु का अमल खावो भाई,
इस अमल की बहुत मिठाई ।
गुरु कृपे केशव लज्जत पाई,
तो अपनी सुद आप गमाई ॥२॥

सद्गुरु नाथ अमल मस्त,
उस अमल में साहेब दस्त ।
सिद्ध साधु खाते समस्त,
तो घर बैठे पावे भिस्त ॥३॥

गुरु कृपें केशव अमलदार,
अमल खाते अपना दीदार ।
तुम लीज्यो भाई एक ही बार,
इस अमल कू चढना उतार ॥४॥

(४०)

तो सुन हो पंडता[2] मेरी बात
आत्म तत्व की केउ बखानु ज्यात ॥ध्रु०॥

निर्गुण ब्रह्म हम पढ़त हैं शास्त्र,
तो फिर फिर कैसे गफलत खात ॥१॥

तो निर्गुण ब्रह्म कु तुम नही ज्याने,
तो काहे बखाने शास्त्र के माने,
आपस्कों बिसरे आपस म्याने[3]
देखत पंडत कैसे दिवाने ॥२॥

तो तत्व की बात करे सब कोय,
तत्व जाने सो विरला होय ।
आपस्म्याने[4] आप समावे
कहे केशव तत्वकु पावे ॥३॥

---

१. अफीम । २. पंडित । ३. में । ४. आपस में ।

(४१)

राम सु राजी वो मेरा राम सुं राजी।
गरीब नवाज की चाकरी लागी जेमकुं दीया बाजी ॥ध्रु०॥

रघुपति सुं नेह लागा, दिल का धोका सकल भागा।
निरजन के चरण कमल, अचल किया ज्यागा[1] ॥१॥

गुरुमुख सुराम दीठा, ससार-जंजाल तूटा,
कहत केशव राज कवी, लागीया रघुनाथ मीठा ॥२॥

(४२)

बलाय ज्याउं मैं तेरे चरण उपर सुं ॥ध्रु०॥

महबुब साहेब तूही, पिरतम तुज बाज नहीं।
हीरद कमल माही, तेरो ध्यान करती हूँ ॥१॥

आनंद-घन मदन तात, कमलापति भुवननाथ।
देखत सब गलित गात, बात केउं कहू ॥२॥

कहत केशवराज कवी, तूंही घनी तूंही नबी।
भद बीसरी तेरी छेबी, मन में धरती हूँ ॥३॥

\+ + + +

झुटा तेरा जप
भात रोटि गप
अतित सुरहे छुप
तीन काल लेवे झड़प।

मु सु लेवे नाम।
अंदर भरे काम।
अैसा बेकाम
तुज केव[2] मिलेगा रांम ॥१॥

तन लाते खाक ॥
मन में नापाक
अैसें कै लाख।
हम देखे सौ लाख ॥२॥

---

१. स्थान। २. क्यों।

मध्व मुनीश्वर के पद

(१)

मेरा साहेबसू दिल लागा ॥ध्रु०॥

पीर फकीरों की बंदगी सच है झुठ कुफर[1] सब भागा ॥१॥
ताल पखावज शोर अबस[2] है क्या करूं छेतीस रागा ॥२॥
साँई का नाम नहीं घटमें भटके, झटके सोही कागा ॥३॥
सब घट पूरन येकहि रब है, जौ तसबी[3] बिच तागा ॥४॥
अपने महलबिच गर्क हुवा जो, गैब सुने[4] मो सुहागा ॥५॥
भेस्त[5] के बागमों नखल निरंजन, जोर हवासिर-जागा ॥६॥
नाथ बह्मनका फकीर कहे अब, बखत हमारा जागा ॥७॥

(२)

होली

ऐसी खेलोरे मत होली । जिसमें कुफर की है बोली ॥ध्रु०॥

फकीर मिलावो रिजक खिलावो । नजिक खुदा है भाई ॥
अकल धरोरे जिकिर करोरे । खावो भेस्त मिठाई ॥१॥

महल में हरिख्याल पढ़ो मत । इसकी देख मनाई ॥
रंगविरगी होकर जावो, दो दिनकी दुनयाई ॥२॥

अपने मु से फजियत होते । इसमें क्या सुगराई ॥
कहनेहि में मालुम होती । कम अकलों की बढाई ॥३॥

भेस्तके प्यारे वो नर प्यारे । जिनकी जिकिर खुदाई ॥
दोजखमे जो जाय पडेगे । उनकी ऐसी कमाई ॥४॥

ये नरदेही बहुर न आवे । समज रहो चतुराई ॥
नाथ माधो कहत साधो तुमकू राम दुहाई ॥५॥

---

१. कुफ्र । २. बहुत । ३. माला । ४. सोना । ५. बहिश्त ।

(३)

ऐसा कहूँ नहीं जी परबंदा । छोड़े सबही धंदा ॥ध्रु०॥
कितवे सेंवी मुलुक गवाया । कुफर में हुवा अंधा ।
गुरुके कदमकी बंदगी नाकर । चोरकू दुश्मन चंदा[1] ॥१॥
परधनमें हरि दिलमें पैठी । गलबीच डाली कंथा ।
हातमें तसबी हरदर बोले । ख्याली उलटा पथा[2] ॥२॥
दुनया लूटी ठग विद्यासे ऐसा बदान कच्चा ।
नाथमाधो कहत है साधो । साँई न माने सच्चा ॥३॥

(४)

क्या तुम देखते हो बाजीगिरी का तमाशा ॥ध्रु०॥
हाती घोडे माल कबीला । कोई न किसका साथी ।
अमीर वजीरा सबगसब गय । आगे चढती राह हमेशा ॥१॥
कौन करारी चीज है माशुक । जिसपर आशक होना ।
दम लेनेकु कहुं नहि जागा । झूठा वखुद (?) भरोसा ॥२॥
कहत है माधोनाथ गुसाई । नासिकतिर्मक[3] वाला ।
जिकिर[4] गुरुकी अलबत करना । जिसमें दिलका खुलासा ॥३॥

(५)

अब कर दिल दिवाने पाक ॥ध्रु०॥
झूटी माया झूटी काया । आखर सारी खाक ॥१॥
काहेकू बंदे महल बनाया खर्च हजारों लाख ॥२॥
हरदम तूंही तूंही कहना । जंगल तेरे ल्याख ॥३॥
फजर नीकी बंदगी करना । अकल से होना च्याख ॥४॥
कहत है माधोनाथ गुसाई । अपना पानी राख ॥५॥

(६)

अब मत सोव दिवाने जाग ॥ध्रु०॥
इस देहिकु देख लगी है काल लहर की आग ॥१॥
अपनी कमाई जिकिर खजीना लेकर भाई भाग ॥२॥
कहत माधोनाथ गुसाई । देख हवासिर बाग ॥३॥

---

१. चोर न प्यारी चाँदणी । २. पंथ । ३. त्र्यंबक । ४. स्मरण ।

(७)

अब चल भाई हमारे साथ ॥ध्रु०॥
जो कुछ होना होयगा सो परमेसर के हात ॥१॥
अपने महलकु अकल से जाना घोर अंधारी रात ॥२॥
इस दुनीया से फरीग होना ऐसी बड़ों की बात ॥३॥
इस पानी में वैसा बे रहना जैसा कमल का पात ॥४॥
कहत है माधो तुजे मिलऊॅ साहेब सीतानाथ ॥५॥

(८)

भजमन साहेब मोहनलाल ॥ध्रु०॥
कानन कुंडल मुगुट बिराजे। गलबीच मोतनमाल ॥१॥
मृगमद आछो तिलक लगायो। सौंधे भीने बाल ॥२॥
पील झगोरी दामीनी चमके। उपर वोढी[1] शाल ॥३॥
कुंज गलनमों बंसी बजावे। गावे माधव ख्याल ॥४॥

(९)

बंदे मतकर इतना मान ॥ध्रु०॥
अकलकु पकड तूं नकल है ख्याली, नकली दी सब जान ॥१॥
क्यो नहीं सुनता क्यो नहीं गुनता, तेरा दिल सैतान ॥२॥
इस देहीमे पंछी जीयरा, दो दिनका मेहमान ॥३॥
झुटी काया झुटी माया, आखर मौत निदान ॥४॥
कहत है माधोनाथ गुसाई। वैरागी मस्तान ॥५॥

(१०)

बंदे भज गरीबनवाज ॥ध्रु०॥
मैं तों बंदा जिकिरकु अंधा। इस दुनिया मे निकाज निकाज ॥१॥
सब माफ बंदेकु गुन्हाजी। ऐसी तुम्हारी आवाज आवाज ॥२॥
सच्चा साहेब पालो तुही। माधो गरीब नवाज नवाज ॥३॥

---

१. ओढ़ी।

(११)

माया का गुलाम न करे गाऊँकु सलाम ॥ध्रु०॥
कामी कपटी चोर तुफानी मुतफन्नी अलाम[१] रे ॥
उसकू तवी[२] पहुचावेगा हजरत का इलाम रे ॥१॥
कवडी[३] उपर जविडा[४] वारे, दुनयाई हराम ॥
ऐसा बेईमान इसकू क्यों मिलेगा राम रे ॥२॥
नाहक सारी उमर गवाई न लिया हरिका नाम रे ।
जहा किया शरीरीका वैकुंठ में इनाम रे ॥३॥
कहत है माधोनाथ उसका दोजख में मुकाम रे ॥४॥

(१२)

तूं है रामजादा रे, मैं तो हरामजादा रे ॥१॥
न करूं तेरी खिजमत[५] रे, मेरे पर तूं खिजमत[६] रे ॥२॥
इस दुनियाकू जर दे रे । मेरे पर तूं नजर दे रे ॥३॥
जबलग मिलती सबजी जी । तबलग कहते सब जी जी ॥४॥
दो दिनकी ये दौलत जी । अखर खाना दौलत जी ॥५॥
बाजे नागारा डुबडुबजी । माया नदी मों डुबडुब जी ॥६॥
जागीर वजुद खेडाह जी । वहा तो बहुत बखेडा जी ॥७॥
तेरा नाम न गाउं रे । चेला पुरान गाऊ रे ॥८॥
मध्व मुनीश्वर पेदास्ती । उसकी कर तूं निगादास्ती ॥९॥

(१३)

माशुक तेरा मुखड़ा दिखाव ॥ध्रु०॥
कपटका घुंगट खोल सीतावी[७] । इश्क मिठाई चखाव ॥१॥
आशक तेरा जिवडा चातक । कर मेहर बरखाव ॥२॥
दिलकागज पर सूरत तेरी । गुरु के हात लिखाव ॥३॥
मध्यमुनीश्वर साई तेरा । असल नाम सिखाव ॥४॥

---

१. दुनिया । २. तुम भी । ३. कौड़ी । ४. प्राण । ५. सेवा । ६. चिढ़ मत । ७. सिताबी ।

(१४)

श्लोक दखनी

बड़ा नाथमाधो अगडधत्त गुंडा। पिवे घोटकर भाग भरपूर कुंडा[1] ॥
झुले हातमे मस्त लेकर कुतका। नही इसबराबर दुन्यामे उचक्का ॥१॥
बडा नाथमाधो बहमन मे दुकसवो। गले गोधडी हातमें एक तसवी ॥
धनीकू करे याद हरदम दिवाना। शहर मे पुकारे बुरा है जमाना ॥२॥
पीरोंका मुरीद मुठभर भंग चावे[2]। धनीके बयाने हमेशा मस्त गावे ॥
आवल झरझरीकी नली ओढता है[3]। ककर फोडकरती धुवा छोडता है ॥३॥
गंगा के किनारे बडा यक नकी है। वहा येक खपरेला बंगला किया है।
ताहा नाथमाधो हमेशा झूलता है। फकीरकु नजर देखकर फूलता है ॥४॥
कुसुबी चिरा बाधकर फेरबिगी। अगलबंद जामानिभा सञ्जरगी।
बडा नाथमाधो बम्हन जोर मंगी। धनीकू करे याद भंगी तरंगी ॥५॥

(१५)

जहा सुरसतीका हुवा संगम। पुराना पडोसी उपंर येक जंगम।
नीचे मठकी जो चौगीर्द जागा। नजर देखत ही कुफर दूर भागा ॥१॥

(१६)

राखे असल जो इमान। बडा साई मुसलमान ॥
नहीं तो अवस बेइमान। दुनिया बीच रोते हैं ॥१॥
करै दैबकु जो कैद। बडा सोही येक सैद।
नहीं तो सैतानसे कैद। चिकड लगा धोवते ॥२॥
लाश मेरा महबूब। उसका बदा सोही खूब ॥
जो नाथमाधो का कुफ। सुनकइ महजुज होते हैं ॥३॥

(१७) दोहरा

रुखा पीपल पात है। जैसा पवनसे जात है ॥
वैसी फकीर की बात है। रमता भला नवखंडमे ॥१॥
अकल फरगीसात है। जिकीर चाहात है।
मिठी शकर सो खात है। खटा मठा सब फेक दिया ॥२॥
गुरुनामका अमल पीया। कुफर गनीम सब जेर किया।
अवल उसीने तख्त किया। भला हुवा अब दिल का ॥३॥
काया विकट किल्ला बडा। जिसपर धनी आप चढा।
आगे फकीर बॅदा खडा। करे हमेशा बदगी ॥४॥
किल्ला विकट फत्ते किया। जिसपर धनीका तख्त किया।
दिल वजुदकू सिरपाव दिया। मेहरबान हुवा माधोनाथ ॥५॥

---

१. धुंदी। २. चाहे। ३. पीता है।

(१८) दोहरा

ब्रह्मन पढ़ा है वेदकू । समजा नहीं उसीके भेदकू ॥
पूजे पत्तरके देवकू । पंडीत हुवा तो क्या हुआ ॥१॥
अंदर नहीं दिल पाक रे । सेवा जिकिरकू ख्याक रे ॥
उपर लगावे खाक रे । जोगी हुवा तो क्या हुवा ॥२॥
बाधे गलेमो लिंग रे । आगे बजावत सींग रे ॥
खावे मुठी येक भंग रे । जंगम हुवा तो क्या हुवा ॥३॥
माला लिई है हातमे । जपता रहे दिन रात में ॥
दिल नही उस बात में । भजनी हुवा तो क्या हुवा ॥४॥
फजर किताबा खोलता । मु से नसीहत बोलता ॥
अपने अमल नहिं डोलना । काजी हुवा तो क्या हुवा ॥५॥
हुशियार न अपने वक्त रे । चढे न भेश्तका[1] तख्त रे ॥
भगली ऐसा बदबख्त रे । मुल्ला हुवा तो क्या हुवा ॥६॥
साहेब करता बंदी जुदा । समजा नहीं दिल मे खुदा ॥
फकीर हुवा नहीं अपसुधा । जिंदा हुवा तो क्या हुवा ॥७॥
इस बात से मध्वनाथ कहे । रब साईं का घर दूर है ॥
नही दूर रे, भरपूर है । जंगल फिरा तो क्या हुवा ॥८॥

(१९) दोहरा

ब्रह्मन पढा है वेदकू । समजा उसीके भेदकू ॥
पूजे न पथरके देवकू । पंडीत ऐसा सबमें भला ॥१॥
अंदर करे दिल पाक रे । सेवा जिकिरकू ख्याख रे ॥
उपर न लगावे खाक रे । जोगी ऐसा सब मे भला ॥२॥
बाधे गलेमो लिंग रे । आगे न बजावत सीग रे ।
खावे न भूंजी भग रे । जंगम ऐसा सबमे भला ॥३॥
माला न लेवे हातमे । जपता रहे दिन रात मे ॥
दिल धनी के बातमे । भजनी ऐसा सबमे भला ॥४॥
फजर किताबा खोलता । साची नसीहत बोलता ॥
अपने अमलबीच डोलता । काजी ऐसा सबमे भला ॥५॥
हुसियार अपने अपने वक्तरे । चढे बेहश्त का तख्त रे ॥
खुला है उसका बखत रे । मुल्ला ऐसा सबमे भला ॥६॥
साहेब करता बंदा जुदा । समजा है दिल में वो खुदा ॥
फकीर हुवा है आप सुधा । जिंदा ऐसा सब मे भला ॥७॥
इस बात से माधोनाथ कहे । नही साईका घर दूर है ॥
नही दूर रे भरपूर है । जंगल फिरा तो सबमें भला ॥८॥

---

१. बहिश्त ।

(२०) पद

अंधारे जग अंधा ॥ध्रु०॥
साहेब से अपनी प्रीत छाडके । बेइमान हुवा बंदा ॥१॥
बेद किताब कुछ नहीं माने । प्यारी का सब धंदा ॥२॥
कहत है माधोनाथ गुसाई । निर्मल फकीर चंदा ॥३॥

(२१) पद[1]

जिन्ने तुजकू पैदा किया कर उसका संदेशा रे।
इंद्रजाल तव प्रपंच सारा सुत वंध्येचा जैसारे ॥ध्रु०॥
तन जोवन आशक हुवा । क्या पाया आराम रे ।
इंद्रिय जन्म सुखातें भावुनी । नेणसी आत्माराम रे ॥१॥
क्यों गफलत में गाफल हुवा । किस लालच पर प्यारे ।
किरण न जाणुनी भ्रमती हरखें । जातीं उदका भासा रे ॥२॥
किआस नही किये कुफरसे । क्यों करहि हुवा दिवाना रे ।
आत्मा तूं अविनाश होऊनी । मानिसी जन्मा मरणा रे ॥३॥
तन कियेमे एक जनार्दन । लाख खडा बेपरवारे ॥
त्र्यंबक कवि हे त्याला अर्पुनि । भोगी सुखाचा ठेवा रे ॥४॥

(२२) पद बाजीगर

बडा बाजीगर । साई बडा बाजीगर ।
बाजीगर को बाजी झूटी । अकेला आखर ॥१॥
सबकी नजर बंद करकर । दिखावता है पर ।
एक परके पलख म्याने । छत्तीस कबूतर ॥२॥
एक रस्सी का साप करे । जबू न उसका जहर ।
लहर चढेने शहर भुलाना । इस चौक मे कहर ॥३॥
हाडीबागका गला काटे । मारे पेटमे छुरी ।
जीवना मरना वैसा झुटा । बात तैसी बुरी ॥४॥
बाजीगरके हंडीबागकु कही नहीं डर । मध्वनाथका गुरु जबरदस्त है शिरपर ॥५॥

(२३)

राखो प्रभुजी लाज । आपने शरनागत की लाज ॥ध्रु०॥
पतितपावन नाम तुम्हारो । गुरुजी गरीबनवाज ॥१॥
भवसिंधूके पार उतारो । इतना हमारो काज ॥२॥
कहत है माधोनाथ गुसाई । मुनिजन के महाराज ॥३॥

---

१. यह पद 'मणि-प्रवालशैली' में हिन्दी (मराठी-मिश्रित) है।

(२४) पद

यारो समजो रे दो दिनकी जिनगी[1] यारो ॥ध्रु०॥
नंगे आना नंगे जाना काका बाबा भाई । काकी अंगा
नानी दादी लाछुन देति लुगाई ॥१॥
कहाकी संपत उंच हवेली काका मेल कविला ।
कहाक नौबद हाथी घोडा जहां का वहीं तविला ॥२॥
हात दियो कुछ कर वे दान, पग से कर तीर्थाटन ।
संपत नही तो भिच्छा मागकर खुद खिलावे बाह्मन ॥३॥
अखंड माधव साधव नहीं भाई सब संतन का लडका ।
हरिभजनमो मस्त भया है खूब लगाये कडका ॥४॥

(२५) पद

वंगला जोर बनाया वे । वामो नारायण डोले ॥ध्रु०॥
नीचे भट्टी उपर पानी वामो लगाये बत्ती ।
साततालका महल बनाया खूब बसाई बस्ती ॥१॥
चार देहेका मठ बनाया पचीस लगाये फत्तर ।
पाच तख्त पर पाच बगीचे नहर चलाये अतर ॥२॥
काला पीला सुफेत हारा[2] नहि कछु जरदे रग का ।
अखंड माधव रामभजन से महल बना बिन धोका ॥३॥

(२६) पद

मुह मे राम हय जी । उन घर क्या कम हय जी ॥ध्रु०॥
भजन पुजन तो कछु नहि जाने, अर्जव करत है दुनिया ।
आटा चावल दाल तुवर की घी शक्कर दे बनिया ॥१॥
चेले चाटी भिच्छा मागते हम तो वैठे डेरे ।
गौबा बम्मन रोटी खाले हम तो सबके चेरे ॥२॥
अखंड माधव साधु नहीं भई राम नाम का सुख लेता ।
जगद्गुरु है साईं हमारा जो चाहे सो देता ॥३॥

(२७) पद

झटपट भजले सीताराम । प्यारे झटपट ॥ध्रु०॥
दुसरे का घर मुंडमुंडा कर बड़े हिम्मत से जमावे दाम ।
धरम करे वेशरम गठडा गरम किया नर वड़ा गुलाम ॥१॥
जातपात खुद संत मिले पर बखत पडे तो नावे[3] काम ।
लाछुच लुगाई माई वेटा क्यों वे गिर्दि करे हाम ॥२॥
अखंड माधव कहत दिवाना वडे संतन के घर का गुलाम ।
गस्त अइ भई सुस्त रहो मत फकड[4] का टुक लेवो सलाम ॥३॥

---

१. जिन्दगी । २. हरा । ३. न आवे । ४. फक्कड़ ।

शिवदिन केसरी के पद

(१)

किन बइरी ने बइर कियो री,
साजन कू बहिराय[1] दियो री ॥ध्रु०॥
पेहरी (जो) मुद्रा भस्म चढ़ायो
कान मो कुडल अलख जगायो
किन बइरी ने ... कियो री ॥
खादे (जो) पखारी[2] हात मो झोली
गल बिच निर्गुन माला सैली
किन बइरी ने ....कियो री ॥
शिवदिन मनहर केसरि प्यारा
अलख खलक सब जोति उजारा
किन बइरी ने..... ....कियो री ॥

(२)

किसका कोन संघाती बाबा ॥ध्रु०॥
अकेला आवे अकेला जावे, हात हुजुर की पाती
तन मन धन जो गर्वहि मत कर, कहत पुरान की पोथी
मात तात जोरू लरका घर, होय मसान की माती
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब, देख दिल भर साथी ॥

(३)

सोई कच्चा वे कच्चा वे, नही गुरु का बच्चा ॥ध्रु०॥
दुनिया तजकर खाक लगाई, जाकर बैठा वन मो
खेचरि मुद्रा इंद्रिय-निग्रह ध्यान धरत है मन मो ।
॥सोई कच्चा०॥
कुंडलिया को खूब चढ़ावे ब्रह्मरंध्र को ल्यावे
चलता है पानी के ऊपर जो बोले सो होवे
॥सोई कच्चा०॥

---

१. बहका दिया । २. अधारी ।

गुप्त होकर परगट होवे मथुरा गोकुल वासी
प्राण निकार सिद्ध जो होवे सत्य लोक का वासी
||सोई कच्चा०||
वेदशास्त्र में कछु नही रक्खा पूर्णज्ञान को पाया
वेद विधी का मार्ग चल के तन का तकड़ा लिया[1]
||सोई कच्चा०||
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब करनी कथनी रहनी
आपहि मध्ये आपकु चीन्हे वोही है गुरुज्ञानी ||
||सोई कच्चा ०||

(४)

आदेस कहना जी आदिपुरुष लखना जी ||ध्रु०||
सिरपर टोपी कानों में कुंडल गले रूद्राक्ष माला
तिलक भालपर चद्रकोर है श्यामसुदरका टिकला
सेली सिंगी पुगी तुबी और बभूत का गोला
अनहद किन्नर नाद सुनावे अलख निरंजन झोला ||
वैरागो का लिया लगोटा पथ चलावे उल्टा
तत्वबोध का प्याला पावे गगन मगनमें लपटा
आदेस. . ...||
निरगुन केसरिनाथ कृपाधन शिवदिनहरि का साई
.... (१)
आदेस..... ||

(५)

दो दिन तूम भलाई कर रे
आखर तेरी मरमर रे ||ध्रु०||
सुपना सी जिंदगानी जानी दौलत झूटी भरभर रे
आतम ग्यान बिन मुगत न होई जमका पेट डर डर रे
कुटुम्ब कबीला साथ न जावे छाड बुराई कर कर रे
शिवदिन प्रभु को साहेब के चरन सुभग धर धर रे

(६)

हम फकीर जनम के उदासी निरजनवासी ||ध्रु०||
सत की भिच्छा दे मेरी माई मन का आटा भरपूर
वारवार हम नहि आने के हरदम हार खुसी || हम फकीर.......

१. ऐंठ कर चला।

सोना रूपा धेला पैसा औ कुच[1] हम ना चाहे ।
प्रेम कि भिच्छा ला मेरी माई, हम पंची[2] परदेसी ॥ हम फकीर.. ...
सिर फोड जलाली करते मगनहार वो न्यारे
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब चरनो के रहिवासी ॥ हम फकीर.....

(७)

हजरत अल्ला । सब दुनिया पालनवाला ॥ (ध्रुवपद)
जिसका असमान है एक तंबू, धरती जाजम पवना खूबू
उपर गाडा है गंबू, हरदम अल्ला ॥सब०॥
चंद्र सूरज दोनों चिराखी । नव दरवाजे दसवी खिरकी ॥
उधर रखी है एख फिरकी । सब घर अल्ला० ॥
सात समुंदर खडक खोली, पोहबत का दरवाजा मोली
अबोल बोलत मीठी बोली । सब रस अल्ला" ॥
साई केसरि गुरु पिर सारा । शिवदिन नाम मुरीद हि तारा
झगमग जागत आते हि जारा । लाल हि लाला ॥ सब....

(८)

अल्लख जागे । गुरुजी अल्लख जागे ॥ ध्रुव पद ॥
उलट पलट मो दर्सन गाढा रूप रेख विन पुरुख ठाडा
चद्र सुरज विन तेज उघाडा । कर्म शूल का मूल उघाडा
समाधी लागी सहजी सहजा । अनुहत सिंगी बाजत बाजा
उन्मनि संगे सो मन रीझया । जाहा ताहा नहि आप विन दुजा
चतुर्दल षडदल दशदल उलटा । द्वादशदल षोडस दल फाटा
द्विदल पर किया चपेटा । तब सहस्र दल भौरा पैठा
अजरामर पद केसरि गुरु का । पाया शिवदिन आदि अंत का
अमृत पीया अर्धचंद का । धोका नहि अब जनम मरन का ।

(९)

मारो पेट बड़ा वाका सब से लगा दिया ठोका
देख सन्यासी देख फकीरा घर-घर मागे टूका
एक आसन पर क्या बैठेगा पीछे काल का डका
ईस पेट से चोर छिनाला ईस पेट से पैदा
ईस पेट से ढोंग धतूरा किया पेट ने पैदा
इस पेट से रख शिपाई राजा परजा मरते
ईस पेट से अमीर उमराव मुलुक-मुलुक पर फिरते
शिवदिन को मन जग बैठै नहीं पेट से न्यारे
गरीब बिरे पशु पछी सोई सबहि पेट ने घेरे

---

१. कुछ । २ पंछी ।

(१०)

जड़ाव कोंदन का कोंदन का। बनाव सच्चिद्घन का
लाल सफेद वर[1] काला। उपर चमके उन्मनि चाला।
निगा लगी अलख मो। झगमग झनत्कार झलक मो
केसरि गुरु काचन मो। शिवदिन जड़ा गया कोंदन मो।

(११)

बाबा उमर गमाई रे। भाई भगति न पाई रे
झूटी सगत कछु नहिं बाबा साहब साथी रना
जैसा आना वैसा जाना। नाहीं दीन पछाना।
चाद सुरज औ तारे झलके बिजली भाव बतावे
ठोक न नेमे चूक पडी तब काया खाक मिलावे
माता पिता जोरू लरके तब ही फूटा खेला
नैन आरसा देख दिवाने कर साहब सो मेला
दिलका आइना दिल में देख सब घट जात जगावे
साहेब केसरिनाथ जगावे नारायन सो भावे॥

(१२)

उस पर बल जैये बल जैये
प्रेम प्रीति से रहिये॥
अलख पलख मो सारा, सब घट देखे साई हमारा
अजपा जप करता है। कर बिन मन मनका फिरता है॥
आसक[2] केसरि घर का। शिव दिन बदा उसके घर का॥

(१३)

उस पर वारि जाऊं रे। उनके पाया लागूं रे।
नव दरवाजे दसवी खिरकी, उपर है येक फिरकी।
बिरला साधो कोइ एक जाने, लेकर मन की गिरकी
दोनो नयन उलटे मारू, सब घर मरे साई।
निंदा स्तुति कछु नहिं जाने, वोही लाल गुसाई॥
शिवदिन के प्रभु केसरि साहेब, अगमनिगम का राजा
अनुहत डका दिन दिन बाजे, बाजत तन का बाजा॥

---

१. ऊपर। २. आशिक।

अमृतराय के पद

कटाव *

(१)

श्री वृंदाबन मो यदुराज बिराजत है ॥ध्रु०॥
गीत नृत्यगति, हावभाव किति, धिमिकिधिमिकिधिमि ।
मृदंग नवघन, घोर गर्ज पखवाज राज सीताज ताजकी,
आवाज गहरे, थरन होत यत, झनन झनन झनन झाजरी ।
इतन मोल की, ढोल की गात, घुम घुम घुम घुम ।
नाद जम रह्यो, तामो मुरली, तनन तनन ।
उपज अलोटी, कोयल कंठी, कृष्ण कठ सो, लपट लपट के;
तान लपटके, निपट मुलायम, तीन ग्राम यकवीस[1] मूर्छना,
यक सो येक, अलाफ सवाई सुखी, होत वृखभान जवाई ।
उप्पर थाट, विमान सुरनर, गुमान अमृत राय ने,
अधरागुलि दे दे थक्कित रहै । श्री वृदावन मो ना

(२)

गनपत भावे । हरिकथा रंग मो आवे ॥ध्रु०॥
पग सो नाचे मुख सो गावे, चारो कर सो भाव बतावे
सुरस जिंदे सग बुलावे ॥
लपटा नाम बंद सो दुलदुल दोंद[2] हलावे ॥हरि०॥१॥
चूवे[3] कू तुर्की गत सिखलावे, जादा नव दलमो पैठावे ।
अकुंश पाश फर्श चमकावे ॥
लढाई दुप्ट दैनन भो ज्या हर सीख लगावे ॥हरि०॥२॥
सकट दुख जंजाल जलावे, जग में सत्कीरत उजलावे ।
ब्रह्मा नदी डुली डुलावे ॥
अमृतराय के घर वैठेला ससार चलावे ॥हरि०॥३॥

---

* कटाव—यह एक प्रकार की काव्य-रचना-शैली है, जिसमे तुक की अपेक्षा पद-प्रवाह भाषानुसार ध्वनित होता है ।

१. इक्कीस । २. तोंद । ३. चूहे ।

(३)

सब सो आदा[1] । मोरे सर साहिब ज्यादा ॥ध्रु०॥

जासे प्रकृति पुरुष नरमादा, पैदा हुवे कारन तद ब्रादा

तीनो लोक करे मर्जादा ॥

आगे दौरे देव तेतीस फरेश प्यादा ॥मोरे सर०॥१॥

विधि हरिहर का भजन निरादा, उत्पत्ति स्थिति चौकसा लादा

तामो सबको आप अलादा ॥

यह गति जाने व्यास ध्रुव नारद प्रल्हादा ॥मोरे सर०॥२॥

चूवे पर जड़ाव का है हौदा, चामर छत्र सुनेरी चर्दा ।

आचे अठरा पुरान कर्दा ॥

बाटे खैरात रुपये होन मोहरा सुर्दा ॥मोरे सर०॥३॥

जाने पूरन विदिया[2] चौदा, देवे मोल लिये बिन सौदा ।

पूरन प्रसाद मुक्त वलीदा ॥

घमो हीन हयाय मुक्त वलीदा बाबा आदम उमदा ॥मो०॥४॥

चमके पेशानी पर चाँदा, तक्त बनाया सिंदुर बरदा ।

जग मो देवे आशिर्वादा ॥

जावे अमृत राज सों मुफेत कलदर शादा ॥ मोरे सर० ॥५॥

(४)

व्रजराज जी के दरसन को लगे लोभी नैन हमारे ॥ध्रु०॥

पकर पूत के कर मो दो कर मो धर राखत, लय छरी डरावत

दइ दइ मारे, मलान मुखकर, हस हस हस कर,

'नहीं नहीं मृत्तिका खाई ।'

झूठ कहत बलभद्दर भाई, सो तुम साच न मानो माई !

आव देखो म्हारे मुख माही !

वदन पसारत तारो, कै कै प्रकार के रूप दीप दीपातर

शशि सूरज नव लाख तरागण,

पंच तत्व तेजाम्बर धरणी, पवन पाणी चारों खानी

चारों देह चतुर्दस लोक,

गया परयाग, विष्णु काची, आवंतिका, द्वारावति, गोकुल,

कुल सुरवर, सनक सनन्दन

विद्याधर बहु, विविध देखकर, जसुमत मनमो थकीत होकर,

कीरत बखानत

पूरन ब्रह्म परमात्म सनातन, पुरान पावन, पूतना शोषण

चंचल के चित्तन के चालक, त्रिभुवन पालक !

बालक होकर तुम जीते हम हारे ॥व्रज०॥

---

१. आदि । २. विद्या ।

(५)

महाराज द्रौपदि के काज गरूडारूढ दुर दुर दौरे ॥ध्रु०॥
कपटी काहा करे है मारे, कपटकर कर फासे डारे,
कपटी कौरव दुर्जन हारे, कपटे पाडव जीते सारे।
निपट कपट कर लपट रहत रिपु
अपट अपट रह चरट न काजे
खटपट निपट करे तम दुर्जन विवस्त्र करत मोहे सिताब भैया
—दौर करो तो रहत शरम प्रभु, वेगन वेग पवन रथ तेजी—
जोर के पाउ पेयोद नहीं तो आपने दौरे ॥महाराजे ॥
भैया भगत राज प्रभुप्यारे भैया बलिभद्र सों प्यारे,
भैया शूर बीर हत यारे, ऐसे नर कौरव संहारे।
कवन काज पर विलंब कीनी, कबलों अपनो प्राण धरूं मैं,
मान जाय अपमान आवेगो, लाज गई नाहीं रही सरम कछु,
जस जाय अपेस[1] आवेगो, देस देस अकिर्ति होयगी,
इस कारण प्रभु सीस नमाऊ, राख लाज मैं शरण आपकी,
सिताब भैया साहेब मेरे भक्त काज पर बशे रे ॥महाराज० ॥२॥

(६)

कोन पावे ज्याको पार,
सब घट पूरन अपरपार, निर्गुन निजानंद निःसार,
धरि हय[2] निज लीला अवतार, जब कौसन का कारागार,
तब त्रिभुवन सुदर, मोहन माधव घनश्याम पीताम्बर धर,
कर शख चक्र, शिव मुकुट, खचित, श्री वत्स हृदय,
गले वैजयन्ती माल लटकधर, कौस्तुभ विराजित नीलन कंठ,
भुज भ्रुकुटि घ्राण हनु, बालबाल तनु,
कानन कुंडल, मडित मुख, श्रीखड तिलक लघु,
अलक कुटिलमृदु, कमल वदन हरि मद हसित, अति ललित अधर है,
मधुर बचन, शशि वदन रदन छब, रदन तनक हरिमदन जनक
शिव सनकवरद कटि कनक वसन, करि कटक प्रमुख
सब अलंकार सह, निरहकार, मुरत साकार मुरत।

१. अपयश। २. है।

(७)

श्री वृंदाबन मो अजपत[1] वृजराज विराजत है ॥ध्रु०॥
सत्य लोक तें ब्रह्मदेव जब, गोप भेख धर देखन आये,
गोवन के लघु रुछपाल कर, पुच्छ धरत,
सिरमोर पच्छ, गर गुंज गुच्छ, विच्छ लच्छ लच्छ[2]
श्री वच्छ चिन्ह प्रभु तुच्छ गन्यो बल, परिच्छवेको,
बच्छा बालसह सकल चुराये
एक बरस दरसन बिन ब्रिजजन तत गोकुल गन आप भये ।
ग्रह ग्रह की बछिया, नइ नइ अछिया[3]
धोरी धुमरी, कारी पियरी
हरी बिचिला, कपिला बरनी, प्रतच्छ हरनी
जे ग्रह जैसो रहे तैसो
रग चाल खुर सिंघ भाल, गोपाल बाल
सब विष्णु अवतरे
जाको जैसो सुभाव तैसो,
ऐन बैन को, नैनहीन को,
बधीर कुबरे, पंगु दुबरे,
तुटी पन्हय्या, नई पुरानी, अपुन बिरानी,
लकुट कामरी, गलित पासुरी, धुनिन बासुरी
कुरुप सुरूप सब विश्व कृष्ण मय,
त्रिलोक बिलोक,
नयन करत एक ब्रिजराज चरन पर
आन पर लुटित, कोटि कोटि कहे,
मुरत आप मुरख बिसारे
स्तुति गावत पद पंकज पुनीत रहे ॥श्री वृन्दा०॥

(८)

जमुना तट पुलिन ऊपर प्रभु खेले शाम विलासी ॥ध्रु०॥
सरत्कालको कार्तिक मास, सुद्ध पच्छ मो खेलत रास
गयो रयन को चित्त उलास, कुञ्जबन मो आयो अविनास,
मधुर मधुर बासुरी बजावे, राग रागिनी तामो गावे
अलाप तान विचित्र बनावे, बंसी की धुन खूब लगावे,
ब्रिज अबला को चीर चुरावे, गोपिन को सब धीर उरावे
बजावने मो पिया बुलावे

१. आजनक । २ लाख लाख । ३. अच्छी ।

धुन कान मो बैठी गोपिका छबरिया,[1] पूत छोड़ पति छोड़ निकसिया,
दध मंथन जल्दी डारत है,
कंडन पिसना, पछोड़ना सब, खाना पीना,
न्हाना धोना देना आना जाना
काम काज घर दार छोरके
रीत भात सब लज्जा छाडी दौर करत डर नहीं चित्त मो
काम भरो गोपिन के तन मो, शाम मुरत बैठी है मन मा
भयो तिया को मेला बन मो, पूरन चंदहि देखे गगन मो
सीतल शुभ चादना रयन मो, देख काम भर गयो नयन मो
किसन कहे तब बात, पहर दस घरी हो गयी रात,
दौरते आवत क्यों ब्रजवासी ॥जमुना०॥

रामजन्म

त्रेतायुग तारण सवत्सर, तामो चैत्र मास ऋतु सुंदर,
नवमी शुक्ल पक्ष रविवासर, अभिजित लग्न पुनर्वसुभीतर,
पाये रामजन्म रवि कुलमो, लीला नटवर,
बानधनुख पटपीत सुभितकत, दिव्यमुगुट सिर,
कानन कुण्डल, हारजडित मणि पदकखचित शुभवदन रदन,
अलि नलिन नयन, श्नुग स्रवन अधर, भूचाप सहन,
शुकनास सरल इनु गाल भालपर तिलक ललित,
मृदु कुरल सुनिल, जनुविमल हृदय, सम सदय उदर,
जगनिलय चरणद्वय, कदलिगर्भ, सुकुमार भारसम,
अलंकार साकार अभयकर परमधाम परमेश
परमनृप कामिनि सन्मुख ठाड रहे. जगदीश जानकर,
चरनधरे, अतिचकित थकत मृदुबात करत
'प्रभुजी' ! इह तुम विध रूप धरे तब कौसल्या
सुत कौन कहे ? यहि मातन की विनती सुनके
तब ही करुनाधन बाल भये, जननी जगदीश उठाय लिये,
जगजीवन स्तनपान किये, मृदुवस्तरमो प्रभु सोय रहे,
हर यह विध प्रेमळ कृबसहय सहसुमित्रा भरतादिबुन्ध अये,
नरनाथकु सुखसिंधु भये, विधिपूर्वक जातकर्म किये,
निजप्रभु वदन अवकोवत, यह दुंदुभिनाद विनोद प्रमोद
महासुर वृन्द सुमनवृष्टि करत है, रामजन्म अमृतराय कहत है ।

---

1. छबीली ।

लंकावर्णन

देखो रे देखो आया लंक का राजा ॥ (ध्रुव पद)
काचन की लंका, तीन कोन, सब काम सुनेरी, रंगमहाल,
सब जगा जगा चौगिर्द बनी है, लाख माडिया,
वड्या उंच खुब खड्या हवेल्या, मढ्या लाल से,
जड्या जुहर से, झगमग तारे, लाल अगारे,
सफेद सारे कांदन हीरे, जरी फरारे, उपर सवारे,
चद्र दजारे, सबसे न्यारे, चद्रसुरज दोनों पर वरि,
ढाल ढोल डफ मेघ गर्जना, कडघड, बिजली,
घडघड बादल भभेरिया चराचर, करन ताल रणसिंग
ढोल पखवाज बजतर, थैय्य थैय्यकै काख
लठिया, अखसूय और तिडिमिडि तिडितिडे,
धौस धडाधड नोवदवाजा ॥देखो रे०॥१
रणखाम गढा अस्मान बराबर, ध्वजाउंच,
नव लाख देखते लोक खलक सब मुलुख मुलुखके,
करोर हाती, घोरे तेजी, ऊंटू पालखी रथ गाडीया,
करोर लष्कर, ताहामे बूबखूब त्रिलंदी, दसानन घन,
सुभान अल्ला, श्रो मतवाला, खूब बना दौलत का प्याला,
दादा आदम की अजब लीला, काचन का तो कोर बना है,
चौफेर जिन खंदक क्यारी, भरे जोर दर्याव दर्दकर,
कहा करे भाई वो राम लछिमन, भरत सत्रुघन, बाली,
सुग्रिव,बदर लंगुर, वैन वैन को धुमा चौकडे,
खानेवाले देखो यारो,
थरथर थरथर दसानन के कंपत भये बीस भुजा ॥देखो रे०॥२॥
एतन मो जि रामचन्द्र की चढी फौज ज्या पडी लंक पर,
अढी आढाकर सिडी आनपर, भिडी बाधकर,
खडी बाह पर, बडी लढाई, चढी लंक पर,
चन्द्र सुरज दो डाउ डाउकर नडा छूटकर
खडा मेघ गडगडा गुमानिल लडा उठकर खडा लढा,
लाहु सननननननन्त बान छूटे छच्छननननननन,
खग बाजे खखननननननन, तोल बाजे दछननननननन,
गगनबीच घघनननननननन, मेघनाद ककडडडडडडड,
पटे बाजे थभररररररर, बाके तीर सस्सरररररररर
उडे फुल जब मुले हाती, गिरे सिपाई फते राम की,

खुले लाल गुलाल सिंधुकर, रावनमारा राकेस घेरा,
तमाम सारा, भागे लोक कुल लंक लुटाई,
निशाण चढाया दुहाई फिरे रामराजा ॥देखो रे०॥३॥
लुटी लंक जब खटपट कठोर, चटपट चटणी लटपट लहणी,
निकट भुवन घर खटाटोप पट द्रुमकुट द्रिकिट दधधीमपधीमप,
अनुहत बाजे तनित परंम पटे हर राम राम घनश्याम,
सुंदर नरनाम जपजे कामपूरणधाम त्रिकुट दे धाम,
बिभीषण ठाव अचल दे सीता सकल निल महानील,
पेर सबल सेतुबल अंगद मैंतरु सुक्र सुलणधंन
जाबुवन्त हनुमान गनत दुर्वास ब्रह्मऋषी,
वसिष्ठ विश्वामित्र प्रतिनाम पौलस्त्य भार्गव,
भारद्वाज अगिर मार्कंडेय गुरु पैगंबर पूजत
रामराम सुखधाम सलकसब कामपूर्ण परब्रह्म
सनातन कविजन पुष्पवृष्टि करन जयजयकार करत,
कहे अमृतराय सब लंगरऊपर ज्या वैठे सब,
देव बजावत अनुहात बाजे बाजा ॥देखो रे०॥

(८)

श्री बृन्दावन मो अजयत ब्रिजराज बिराजत है ॥ध्रु०॥
घन तरबर सुरतरु की छाया, कमलकर तक्त बिछाया
तापर सजल जलद सभकाया, मोर मुगट सिरपेच बनाया,
संग राधिका सह ब्रिजजाया, परब्रह्महर तिनको पाया,
नैनमो भरपूर समाया, माया मे नट मे कछु पाया,
बाका बनवारी मन भाया,
महल सराय मोहबादरी
हर सखि नादर, दामिनी सुंदर, बनि अनि आदर
कोदर बारन आदर बासुरा को प्रबला,
असुरखल प्रताप कार प्रभाकर प्रस्तुती प्रभु प्रसादकार प्रमदानी,
कमलनि प्रयानिका गति प्रफुलित मति सो प्रबुध प्रवीन,
प्रगट प्रेम ते परम पुरुष संनिध सेवा कर है—
ब्रिजजन हरि सेवा कर रहे ॥श्री वृंदावन मो०॥
वेठे शाम महामरकत तनु,
तापे मोर को चामर वीजित, कामर सखीकार लिये
धाम रहित भई शाम'नयन;कु
नाम शरन मो, पामर समकर,
रगरिठारी, त्यजी अटारी

त्रिपुर पुरकबती, अलक सवारत,
ललित सुललना, नहिं कछु तुलना,
कान निकट अति, मान वती, मृदु पान खवावत,
जाबुनद छबि ताबूल लिये
कंबुकंठ गति अंबुज कर सो, अंबुपान करवावत दूती,
श्रवण मकर मनु मुखि अधर अनुग्रह
ग्रह सी जाके सन्मुख दगते
पाच्छे सरकत मनु उन्मन मोहे ॥श्री वृंदाबन मो०॥२॥
श्रीपति कुंज निवासी सहस आया
अविनास निज रास मंडल मो असपाया।
सहभास सकल कु एक एक गोपी एक नंद लाला,
भुज पर भूज भुंजग विशाला,
कर महे कर कुकुट रसाला, मालाकार भई ब्रिजबाला
मरकत मजनिम श्री गोपाला, सुवर्ण नमनी त्रय अधर प्रवाला
मर्द गर्द जामनि जुध जुथमो, नव घन मो डारी,
जुगल जुगल रार्केद्र उजारो कवन ग्यान उपमान सवारो
गुन गाय भव बंध न करे,
जमुना जल कल्लोल, लोल लोल का रज
कुंज के कुंज फुले, अलि पुंज कुंजहि गुंज,
तनहि मोहे गुंज रमत हे
बैठे नाद सुश्चद, लेत अनुवाद, बिना उन्माद
मगन धुनि अपनि कच्छु ना कहे ॥श्री बृन्दा०॥
गीतनृत्यगति हावभाव इति धिमिकिति धिमिकिति
धिमि धिमि धिमि धिमि घोर गर्जत पखवाज साजकी,
आवाज गहेरी,
परत होत ननननननननना ननन ननन,
झ्याझरि इतन मोलक, ढोलकी गत,
घुंघु घुंघु मोरचंग,
तार गुंगार उठतु है एक सखि के मुख ते तत्थैया तत्थैया
कवितकाई कहत इत पायल,
नरतन चाल चलत धुंरु धुमधुम धुम धुम नादजम रयो,
तामो मुरलिया, तननं तननं सा रि ग म प ध नि सा
सा नि ध प म न ग स्वसुरवर्तनि उपज अनोटी,
कोयल कंठी कृष्ण कंठ से लपट,
कपट की तान लपटकी तिक पट भुमयन तिनग्राम

आर एकहि जो गगन हवाई,
खुसी होत वृखभानजवाई,
कवित सुरसरि राग रागिनी,
कवित, ध्रुपद त्रिवट पंचदर पंचगीत और प्रबंध सुनि सुनि,
ठौरठौर गन्धर्न-गर्वहत उपर थाट बिमानी,
सुरमुनि गलित गुमान, अमृतराय प्रभुलीला देखे,
अधर अंगुरिया देह थकित रहे सुसर किंनर,
थकित रहे नारद तुंबर थकित रहे ॥ श्री वृन्दावन ॥

कृष्णनृत्य

इहलीला छंद रचाया । पल में त्रैलोक्य नचाया ॥ध्रुवपद॥
उठके प्रात जसोदा मय्या, दे नवतीत पुत्रश्यामा,
नाच कन्हया शब्द उठाया, अजब तमासा उन्ने दिखाया,
ग्वालन के सुसमाज आज ब्रिजराज, पकर बलभद्र अंगुरिया,
नचत राग च्छुहु गाय रागनी, उपरत पायल
उठतनादजी, हरत देव गंधर्व रटत, मृदुतान 'तुटत'*
आकास फटत, धुन धुम धुम धुंगरु
गर्जहि, तत्काल मोहबस, नद जसोमति,
गोपम्हर्णी, तत्थै तत्थै नृत्य करत, इकनीर भरत,
कोइ देख सुरत, घटसिर न धरत, दधि मथन करत,
मन सुमन हरत तनमन बिसरत,
सुखसदन फिरत, कर रदन घिरत, नगवदन धरत
देहमदन झरत, इहप्रकार नरनारी
गोकुल के सब ब्रिजवासी लोक चबासी,
मगन सघन होकर, मुरली मे धुन से नाचनचाया ॥इहलीला॥
मथुरा कंस नचे अभिमानी, प्रलंब अगवग मुश्कि सानी,
लंक बिभीषन नचत सुग्यानी, जरासंध शिशुपाल गुमानी,
तुर्त निशाचर खबर हिरानी, एकहि बेर कलोल भयो,
धरणीधर कपत, लिये हस्त मे, अर्गखर्गत्रेसर्व करत,
उड्डान मार्ग को नजर न लावे दुर्ग दुर्ग दौड़त है जिनको,
दर्प बडो तन सर्प लिये मन गर्क किये, नहि तर्क चले,
रजअर्क निकारत, अर्क पकरवे, झपट-झपट,
नभ लपट-लपट कर भूमि गिरे पुन ऐसे सब घनघोर हरेते,
अवनि भज्यावत असुर तिहु अहिकेन को नचत नचाय्या ॥इहलीला॥

---

* टूटती है ।

धर्म भीम अर्जुन अविकारी, नचत नकुल सहदेव सुनारी,
कौरव भीखम गुरु अचारी, अंध वृद्ध कुन्ती गांधारी,
महा तपि सुर ऋषि जटाधारी, कंदमूल फल पवन आहारी,
देसदेस के अजब गजब सब, भूच सहर के बातशाह उमराव शिपाई,
सुभामृते सरदार सवाई, मुजुमदार फडनीस किरवाई,
दरखदार चिटणीस उपाई, फौजदार मिल करत हवाई,
ठौर ठौर दरबार कचेरी, बड़े मुत्सदी हटघट बाजार,
बाजार बीच, अत सुखत पुखत, तज जडक, तरुखत नहीं सराकखसा,
सेट शियाना, सौदागिर करलेत मुलताना, खैच कमाना,
करत तनाना, मनु हु न भावे, आप बिराना,
तेली बनिया, बरई रिनिया, सावजुहार, जुहार कामगार,
कारिगिरि बादीगिर, वढई, भाट, कुंभार, सुनार,
छीपी, रजपुत नीच ऊच मिल नाचत उठरा जात नसे,
सुक हंस कोक बक पच्छिन से, अहि पिप्पलिका लघुकीटन से,
बन पर्वत दह जड़ वृच्छन से, अवसानन भान कच्छुमन से,
धुन बासुरि की, सुन गान करत पुन, जितक महीमे,
जीव जंत्र, शावर जंगम तिनहू, न चबे बचाया ।।इहलीला।।
नचत बलि बामन सुविलासी, नारायणमुख सहस विलासी,
जलजा वरून अप्सरादासी, सब पाताल लोकपुरबासी,
स्वर्गनचत सुर इन्द्रचन्द्र रब बुध कुज कब,
गुरु केत राह सनि विष्णु गजानन चतुरानन,
पंचानन वर आनन जमनिधपति,
नारद भैरव अष्ट गरूर गोपति गिरिजा, सचि सावित्री,
सरसति, रंभादिक अष्टनायिका, बसिष्ट व्यास पारासर,
गौतम भरद्वाज दुर्वासदेव अंवगाधिज कश्यप सुख मैत्र,
अत्रि जमदग्नी अगस्ति अकदालम्य मृकुंड कपिलमुनि,
जाज्ञवल्क्य दत्तात्रय यते वाहन सह उपदेव देव तेतीस कोटी,
ऋषि सहस अट्ठासी मिल सब, ध्रुव पहेलाद विजय जय,
सनक सनदन, भक्त नचत गंधर्व, जक्षगन, लच्छ लच्छ,
पृथमी जल अंबर तेज पवन सह पंचतत्व गुन,
सिंधु सप्त ये विधसे सब नचवायी, त्रिभुवन नाटक,
यों प्रियलीलाधारी, सुरअवतारी, ग्याल ग्वाल बिच,
अद्भुतपगते नचत नचत अमृत बक को,
अपराधपुंज प्रभुने निज उदर पचाया ।।इहलीला०।।४।।

कृष्ण-वर्णन

गोकुलकी क्या कहूँ बर्हाई[1] ? ज्याहा खेलत फणवतसाई[2] ॥ध्रुवपद॥
कोई न पावे ज्याको पार-निर्गुण निजानन्द निजसार,
इह जगदबर को करतार, धरिये निजलीला अवतार,
जलदश्याम कौस्तुभमणि राजित, जलजकंठ कानमें कुंडल,
मंडित शुभ मंदहसितमुख मधुरबचन नवकमलनयन सुखसदन,
सगुण शशिबदन, रदनछब, रतन तनक निरकार साकार
सुख वसुदेव जानकार चकित थकित स्तुति करत
पुनित पद जुगुल उपरकृत नमस्कार बहु पुनित पुकारत,
देवकी उठाय जयजयकार किन्हों संस्कार परमकर जोर जोर,
निजबृत कहत कर लेत चलत भगबंत बचनसों बंद तूट,
गये कबार खूले रच्छक भूले सोय रहे सब घोर भई,
निशि बादल आये मलय पवनघन गरज गरज बिज दामिनि,
दामिनि दमके अबर चमके रुमुकझुमुक जलतुसार लाग्यो,
बुंदे परे हरि भिगत जानकन सेस धरे तनछत्र करे,
अहिरूप भयंकर बिशाल देखे कंवन लागे कर पंकज पर,
पंकजलोचनधर संकटमो करारसे,
जमुनातटवायो तब जमुना भरपूर भरी तट उमंड चली,
जलप्रवाहदुस्तर तरल लोल, कल्लोल,
भवतबिच अवर्त अगनित न्यहारके मन उतारको,
कछु पार न पायो मुरारके पदप्रताप से,
नदि झरारके द्वयभाग भई पदबाट दई,
ब्रजसुमार से गोकुलमो आये जोगम यावह जनी,
जसोदा भूल रहे सब कौउ न पूछे इतनेमो,
हर पलंग पर पोहोचाय कुमर लिये तब जाग्रत बालक,
देखत ही अल्हाद भये हैं तब सब वृजजनमंगल,
गाये भेरि वजाए हरख बढ़ाये, विप्र बुलाये,
मंगल जल पशुपाल कन्हाये देत दुंदुभी नादामोद
प्रमोदकर भई सुखकर दाई माई ॥गोकुल की०॥
हार हार हार हरको नाम । मंगलकारक मंगलधाम ॥
श्रीमद्भागवती हरिलीला । शुकमुनि गावत फिरे अकेला ॥
रायपरिक्षित को भयो शाप । अटतअटत ताहा आये आप ॥

---

१. बढ़ाई । २. कृष्ण ।

आदरकर नृपति पद गय्ये [१] । तब हरिचरित शुकमुनि कहे ॥
ब्रिजमो निजरिपु जन्मो कहान [२] । इह धुनि कौस सुनि जब कान ॥
अन्तरगत अतिचिंता भई । ताहामों आई पूतना बाई ॥
आज्ञा ले गोकुलमो चली । बिखलतिका नृप मुखते खुली ॥
जिसको हय [३] लरको का आहार । सोती गृहमो [४] करे बिचार ॥
डायल चुडेल बालक की खूनी । उलट भेख सुरकलना बनी ॥
गृहमोआय अचानक बैठी । नंद भुवन आसन आ बैठी ॥
वहा को रूप देख ब्रिजनारी । चकित थकित भये सकल बिचरी ॥
कोइ कहे दिव्य इन्द्र की शचि । बोलत आपने आपने रुचि ॥
कोइ कहे लछिमी, कोई गौरी । कपट भेक [५] देख भई बावरी ॥
हो तुम कौन कहा से आये । पुछके नहिं अचरजु पाये ॥
काम रूप धर सुंदर नार । मुखमो रदन खुले जो अनार ॥
चंद्र आननी पंकजनयनी । अधर प्रवाल लाल कुच [६] बैनी ॥
कोमल अंग भुजंगम बेनी । गलित कुसुम चलि ब्रिजदुखदयिनी ॥
गृहमों आय करे संचार । हरि मारन को करत बिचार ॥
कृष्ण का यह करत ककाय । रोय उठे हरि बालिबलास ॥
लघुमंचक कंचन के डौरे । जननि झुलावत प्रभुबिनडौरे ॥
बालघातिनी आई पास । नयनन मोंह रहे जगनिवास ॥
पोहोची निकट निपट अनिवार । जैसी म्यान मोकि तरवार ॥
खलदुर्जन को अन्तरभाव । अन्तरजामी जानत डाव ॥
कालभुजंगम ज्यान क[७] सोयो । रजोबूध से[८] धर कर लीयो
कृष्ण उठाय हिरदसे लीयो । बिखमर्दित कुछ मुखमो दीयो ॥
कृष्णसाप जो तनसों लागो । प्रानपान करबे कुच त्यागो ॥
मेरो नन्दलाल बहुरंगी । रुधिरहारन की लागि सुरंगी ॥
ले जसोमति ले अपनो पूत । इह पूतन को जागे भूत ॥
रंग करि अइ चलबिसबासरि । बिकलभई रंजनी चरनारी ॥
ले ले कहत जसोमति दौर । आनन्दभरन भयो कछु और ॥
छोड छोड कहे रे ! कछुबाल । छुटत नही असुरन को काल ॥
मेरो छमा करो अपराध । ....॥
अरे महराज । मुगुम मैं पाऊँ । गई फेर मैं अजनई आऊ ॥
चंड मयंकर बड़ी अकास । आय सके नहि ब्रिजजन पास ॥
आनबनी मोतन की घेर । काहा को कहा कहे भईजेर ॥
निकट समय मरने की बिरिया । छी छी करत व्याध कर चिरिया ॥

१. गई । २. कान्ह । ३. है । ४. सूतिकागृह । ५. वेश । ६. मृदु । ७. जानकर ।
८. रज्जु बुद्धि से ।

आपन कियसो आये आगे । प्रान पयान पंथन सो लागे ॥
अगबग भगिनीकु लाभकी । प्रान गये धरनी पर झोकी ॥
झुकत २ जो मारी हाक । तीन भुवनमो उपजो धाक ॥
सर्ग पाताल के लोक भयभित । जल स्थल सकल बिकल बिपरीत ॥
जगत चौगडी गुंग हो गई । प्रेत पूतना जिन भई ॥
बाकी कुटिलको सई दाई । ध कोरा धरती पर तब सोई ॥
हातपाव लंबे अति भारी । अलख झाडकी धजाडमारी ॥
प्रानदूत ने कियो चलाव । अग बग दैतननकु[१] बुलाव ॥
पर्वत से कुच मस्तकि ठाडी । दुवा[२] चरनेकु बकरी ग्याडी ॥
बडे नाशीक पाहाड की दरी । अति दुर्गंधि नरकी झरि ॥
नयन गये दो अधे कूप । पाव गिरे जडफत्तररूप ॥
हल समान उचे है दात । अजगरलंब पसारे हात ॥
कालस्वरूपा अतिविक्राल । उप्पर खेले श्री गोपाल ॥
कहा बकी को भाग बखानूं । ह्वदई मलवटपुत्र हिमानु ॥
ताहामो श्रीमत बालमुकुंद ।·······
आज मुकुन्द गयो सो पायो । पटपल्लवते लपट छुपायो ॥
रछया कर गोपुच्छ फिरावे । मंगलनाम हरको गावें ॥
गृह गृह उदित भयो आनंद । ब्रिजजन देखन आये गोविन्द ॥
संकट हारसुख ब्रिद बधाई । सब मिले ग्वालनो बाई ॥
मथुरा कौंसको दरबार । नन्द गयो बादाईरस्ता ॥
खबर कहे सब मिलके अहिर । चकितनंद कछु न रह्यो धीर ॥
देखत हरि आलिंगन देत । प्रेमभाव को अंतरहेत ॥
खडखडकर देहे[३] जरायो । चिताधूम को सुवास आयो ॥
फैल गयो नभ मे कछु धूम । खुब बाई की आई धूम ॥
अगर चंदन से उतम से सुवास । ब्रिजजन मगन आवे पास ॥
पापबुद्धि से पापिन आई । वैकुण्ठ चली पूतनावाई ॥
राह देह कू परि धुखनाम । भई पूतना आत्माराम ॥
ग्वाल ग्वालनि करे आनंद । अमृतराय कू परमानन्द ॥

---

१. दैत्यों को । २. दूब । ३. देह ।

सुदामा-चरित्र

अजब है वोही का इसाल। खलकबीच म्याने वोहीका रसाल।
वोही है करंबक्ष साहेब धनी। उसीकू कहे कूल आलं गनी ॥
उसीने बनाया जमी आसमान। पवन आब आरस बनाया मकान ॥
सरग मृत्यु पाताल ये भी तिन्हो। हरीहर जो ब्रह्मा कल्हावे तिन्हो ॥
बनाया जो बंदा सबब बंदगी। नही जानता वा पडा गंदगी ॥
जबरदस्त माया लगाई पिछे। भवरजाल करकर भुलाया उसे ॥
हमेशा फिकिर पेटकी है लगी। जिकिर याद मौला नहीं बंदगी ॥
गुन्हेगार बंदा फिरे दर्बंदर। गिरफ्तार होकर हुवा बेखबर ॥
किधर दीन दुनिया किधर है खुदा। सबब पेटकी मागता है गदा ॥
अगर उस खुदा की करे बंदगी। मिले रोज न्यामत कटे गंदगी ॥
इसीका ज्यो तपसील बोला जिकर। करो माफ तकसीर साहेब....(१)
भगत एक ओ जब सुदामा हता। सुनो कूल आलम उसीकी कथा ॥
टुटे झोपडीमो रहे तीन बास। ऊपर ना मिले एक तिनखा जो घास ॥
पवन घाव गर्मी बदन पर सहे। करे बंदगी वो किसेना कहे ॥
रहे लालमो मस्त कर्ता जिकर[1]। करे रोज फीकर कबीला पितर ॥
उघाडे बदन एक कपड़ा नहीं। नही ख्वावमो एक लोटा कही ॥
हमेशा करे वो किसन की जिकर। कहे बीच धरमे करो मत फिकर ॥
मुरब्बी हमारा किसन है बड़ा। रहे द्वारका बीच राजा खड़ा ॥
खजीना ज्यो मामूल दौलत धनी। रहे लच्छमी आप पूरन बनी ॥
मेहेरबानगी है उसी की कमाल। करो याद उसकी ज्यो साहेब जमाल ॥
नही दर्स उसका तभी लग गमी। मिले बाद उसको हमे क्या कमी ॥
करो ईस की सूमरो तुम जिकर। फजर की ज्यो है तुम मत करो फिकर ॥
कबीला कहे वो किसन कौन है। नही जाय मिलते सबब कौन है ॥
अप्सरोज उसकी बडाई करो। किसी काम की भी अनामत धरो ॥
सुदामा कहे मैं सिधारु फजर। पडा दस्त खाली धरु क्या नजर ॥
कबीला गयी एक हमसाह के। मुठी तीन चुडवे दिये लाय के ॥
चलो अब सिधारो सिताबी[2] करो। मिलो उस किसन के कदम ज्या धरो ॥
हकीकत कहो कूल दर्मादगी। करेगा जो तुम पर मेहरबानगी ॥
फटा एक कपडा बदन पर हता। कहू देखनेकू भी शाबूत न था ॥
उसी बीच चुवडे लिये बाधकर। चला याद करता किसन का जिकर ॥
निकल कर गया बीच जंगल उदास। मिले आप पूरन घडे दस्तरास ॥
कुरंगन मिली तास दहेने गये। और भी सकुन खूब उसकू भये ॥

१, नाम स्मरण। २. शीघ्रता।

बजाया सुकर वै खुशाली भई । फिकर की जिकर कूल उसकी गई ॥
चला जाय आगे शहर द्वारका । ज्याहा है परब्रह्म साहेब निका ॥
शहर बीच बैठा सुदामा ब्राह्मन । किसन के चरन से लगी है लगन ॥
जगी जोत कंचन महाल हैं खडे । जडे बीच लेकर उजाला बडे ॥
शहरमो बसे कूल आलम सुखी । नही ख्वाबमो एक कुत्ता दुखी ॥
खुली बागशाई घरोघर चमन । पढे वेद चारो मगन है ब्राह्मन ॥
शहर देखकर अचंबा हुवा । फिरे ज्या बजाज्यो दिवाना हुवा ॥
कहा[1] है किसन ये शहर का धनी । करामात उसकी अजब है बनी ॥
जुबानी ज्यो आलमकू पुच्छता चला । कहे लोक यह है किसन का कबीला ॥
किले पास ज्या कर ज्यो थाडा[2] रहे । पुकारे ज्यो दर्बान तू कौन है ॥
बिरादर हमारा किसन है जिगर[3] । सिताबी करो तुम उसी को खबर ।
इसम[4] है सुदामा कहो जायकर । वही ज्यानता है करो मत फिकर ॥
कहत है दिलोमो ये कंगाल है । किसन का बिरादर अजब बात है ॥
सचा या झुटा बीच ज्याकर कहो । कहो सामने ज्याय थाडा रहो ॥
गया बीच अंदर ज्याहा तक्त है । किसन आन बैठा वोही वक्त है ॥
खडा सामने ज्याय कीया सलाम । किसन सो कहे मै तुम्हारा गुलाम ॥
करूं अर्ज साहेब कहो मै खबर । सुदामा खडा है तुम्हारा जिगर ॥
एही बात सुनकर किसनजी चले । खडा था सुदामा वहा ज्या मिले ॥
अगर इस घडी की खुशाली कहू । नहीं हो ज्यो कहता ज्यो चुप क्या रहूं ॥
लगाया गले प्रेम आसू चले । मिले वो किसन के गले सो गले ॥
पकड दस्त उसका महलमो चले । और भी बिरादर गले सो मिले ॥
बिठाया उसे न्याय के तक्त पर ॥ बजाये नगारे उसी वक्त पर ॥ (अपूर्ण)

---

१. कहाँ । २. खड़ा । ३. प्यारा । ४. नाम ।

माधव महाराज के पद

(१)

क्यों करता मगरुरि [1] काफर भजता क्यों नहिं रामधनी ॥ध्रुव पद॥
रामनाम जप उलटा, कालभये बाल्मीकि मुनी ॥क्यो०॥
जब सागर में पत्थर तर गये, बदर अठाराच्छोणी ।
शूर्पणखा और कुंभकर्ण सो, शिकयेस्त भयो कर्दमुनी ।
खरदूषण और भीसुरा अहिमहि, रावण की क्या रही वनी ।
किष्किंध देश का राज गमाया, भई बालीकी धूर धुनी ।
घर घर भिक्षा मागे भर्तृहरी, महाल मुलख सब त्यज रानी ।
गोपीचद सोलासौ रानी, घड़ मदिर है सात खणी ।
अपना हिसाब करले आ खडे माधव कर्दमुनी ।

(२)

प्रातसमय रघुवीर जगावे कौसल्या महरानी ।
उठो लालजी भोर भयो है संतन को हितकारी ॥ध्रुव पद॥
बंदीजन गंधर्व गुण गावे नाचे थै थै [2] तारी ।
शैलसुता शिवद्वारे ठाड़े, होत कोलाहल भारी ॥उठो०॥
सुन नरमुनि ब्रह्मादि देवता सनकादिक ऋषि चारी ।
वेदवानी विप्रजन गावे रघुकुल जन विस्तारी ।
सुन प्रिय वचन उठे रघुनन्दन नैनन पलख उघारी ।
चितवन अभय देत भक्तन को मुक्त भये नर नारी ।
भरत शत्रुघन छत्र चवर लिये जनक सुता लियो झारी ।
मेवा पान लियो कर लछिमन भरकंचन की थारी ।
कर अस्नान दान नृप दीन्हे, गो गज कंचन भारी ।
जयजयकार करत धन्य माधव रघुकुल जस विस्तारी ॥उठो०॥

---

१. मगरुरी (मराठी संतों ने हिन्दी रचना में ह्रस्व-दीर्घ का कोई विचार नहीं किया ।)
२. पाठान्तर— दै दै ।

देवनाथ महाराज के पद

(१)

बजी कान्हा बंसी तेरी । ज्यालम [१] वे ॥ध्रुवपद ॥

सोत [२] हति [३] मैं अपन पियासंग । धुन कटियारी[४] मारी ॥ ज्यालम वे ॥१॥

नादभरी मन कछु नहिं सूचत । उघारी मैं आई दौरी ॥ ज्यालम वे ॥२॥

देवनाथ प्रभु नाथ निरजन । बनसि [५] नहीं, मोहनि डोरी ॥ ज्यालम वे ॥३॥

(२)

भज मन श्री राजा रघुनाथ ॥ ध्रुवपद ॥

कहुको माता पिता और भाई । कहुको ये जामात ॥ भजमन० ॥१॥

कामिनी कामकी कठन पडत है । गहिरी अंधेरी रात ॥ भज मन० ॥२॥

जल अंजुली जल पाय पले पल । तव तनू सुहाग ॥ भज मन० ॥३॥

देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन । साच बनी है बात ॥ भज नम० ॥

(३)

सोवी अकलवंत बड़ा है । नसीब सिकंदर है उसका ॥ध्रुव पद॥

जबलो चल्लो गठडी तबलग, ज्यो [६] करेसो उसीका ।

हता रावन कीरत बडी जद अंधधुंदमों राज किया ॥

तेहतिसकोटी देवपकडके दारबंदमों कैद किया ।

सुनो अकल की तारीफ जिन्हे चार वेद का खोज किया ॥

चौद चौकडे राज झुकाया दौलत खुब हजा लिया ।

छुटी पल्लोकी गठडी जद आध घडीकू डुबा दिया ।

अकलकी वे नकल रही जिने समस्त कुल भस्म किया ।

बिभिखन ने बहोत सिकाया[७] जरा न माने उसीका ॥

आई काल की घड़ी चुके नहीं किरा काल जद[८] दैतोका ॥बस मौत लिखी॥१॥

---

१. जालिम (क्रूर) । २. सोती । ३. थी । ४. कटारी । ५. वंशी । ६. जो ।
७. सिखाया । ८. जब ।

(४)

राम न जाने तो नर जिया तो क्या जिया ? ॥ध्रुवपद॥
धनदवलत धन मालखजीना ।
और मुलुख सर किया तो क्या (किया) जी ? ॥राम०॥१॥
गंगा गोमति रेवा तापी ।
और बनारस न्हाया तो क्या (किया) जी ? ॥राम०॥२॥
गोकुल मथुरा मधुबन द्वारका ।
और अजुध्या कर आया तो क्या जी ? ॥राम०॥३॥
दर्वेश से बड़ा जंगम जोगी ।
और कान फाडा आया तो क्या जी ?॥राम०॥४॥
वेद्पुरान की चर्चा घनेरी ।
और शास्त्र पढ़ आया तो क्या जी ? ॥राम०॥५॥
जर हि[1] जौहर महाल बनाया ।
खालि तिर्या[2] संग सोया तो क्या जी ? ॥राम०॥६॥
आत्मज्ञान की खबर न जानी ।
और बानी बक दिया तो क्या जी ? ॥राम०॥७॥
देवनाथ प्रभु आत्मा गोविंद ।
इस नयनन मों नहिं छाया तो क्या जी ? ॥राम०॥८॥

(५)

प्रीत की रीत कठण निभाना ॥ध्रुवपद॥
यह जग मो कोई नहीं है अपना मन मिले प्रित काहु करना ॥१॥
जीले[3] कृपा करे नाथ दयाधन तवले भली बुरी सब किछु सहना ॥२॥
देवनाथ प्रभु सच्चा साहेब देखत नैनमो मस्तहो रहेना ॥३॥

(६)

हम तो वैरागी वैरागी । निजरुपसो लव लागी ॥ध्रुवपद॥
ग्यान ध्यानका अचला बाँधा दिल मायासो विचला ॥हम०॥१
शाती बभुत लगाई । मनकी दुवधा मार भगाई ॥हम॥२॥
धुंद फुला है जरदा । वायों लाल सुफेदी फरदा ॥हम०॥३॥
रतिपति मार कटाया । जत सतका लंगोट चढाया ॥हक०॥४॥
श्रीगुरु गोविंद नैना । बन रहे देवनाथ मस्ताना ॥हम०॥५॥

१. यद्यपि । २. स्त्री । ३. जबतक ।

(७)

सखी मेरो पिया कौन बतावे । जाउंगी हू बलहारी ।।ध्रुवपद।।
कहा करों, कित ज्याउ[1] अरी ! अब घुडत हू नहिं पावे ।।सखी०।।१।।
रैनदिन मोहे चैन पडे नहीं । सोवत निंद न आवे ।।सखी०।।२।।
बावरी भई सावरो नहिं दिखत । या मन बिरह सतावे ।।सखी०।।३।।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन । पिया मेरो नाहिं दिखावे ।।सखी०।।४।।

(८)

बिना भगत भगवान भजन बिन कह कैसे भवतरण ।
काल शिर करने बैठा हरन ।।ध्रुवपद।।
नहीं काम, बेकाम हुवा तैं, नहीं खबर[2] तुझे जरा ।
बिखय बिख गर्द जर्द में परा ।।
हुवा सर्दतैं, मर्द नहीं बेतहा[3] दर्द नें घेरा ।
अकल गुंम बेसुधध होकर परा ।।
याद पकर, मन ठौरहि धरके, गुरु दरवाजे खरा ।
जाय बेनाहक अमसो भरा[4] ।।
दयाल श्री गुरुराज देव रसराज दर्द का पुरा ।
पलख में चुके कालका फेरा ।।
मान बचन अनुमान डारके जाय, पकर गुरुचरन ।।काल०।।१।।
कहा माडि[5] और कहा अटारी कहा दौलत रथ घोडे
काल जब आन छतिसों मिड़े ।।
माइ बाप और भाई कबीला लडके छोटे बडे ।
कोइ नहिं नजीक रहते खडे ।।
जलदी जलदी उठाव मट्टी, पुकार यहि सब पडे ।
कि जब तन तेरा अचेतन पडे ।।
झूटीकाया झूटी माया घटे रोग ये वढे ।
खुसी हो वजाय जम चौघडे ।।
कोउ नहिं अपना, सपना सारा, पकड ग्यान की धरन ।।काल०।।२।।
ग्यान दे येही अपना देख सुरतकर जरा ।
बनाया अजब तहे पींजरा ।।
अंदर तोता राज करता, घट घट में है भरा ।
सुरत महबूब पाक चेहरा ।।
नहिं काला नहिं पीला नीला नहीं लाल नहिं हरा ।
रंगबिन रंग खूब एकतरा ।।

---

१. जाऊँ । २. समझ । ३. बहुत । ४. पूर्ण । ५. दुमंजिला ।

वो तो तू ही तूज विन कोई और नहि दुसरा ।
गुरूबिन ग्यान मिले ना पुरा ॥
मन साफीसों गुरुचरणसों भाव पकर, हो शरन ॥ काल० ॥३॥
गुरु मेहर सो चुके कहर दिलदार बहार वो मिले ।
हमेषा मस्त मगनमों झुले ।
रामनाम की नौबद वाजे, ग्यान गोंधडी गले ।
सुनोजी भाग उनोके खुले ॥
आपहि अपने साथी गुरू फिर आपहि अपने चेले ।
आपमों आप भये मतवाले ॥
अजब खेल साहेब का जिसका भाग उसी कू मिले ।
कि निगुरे माया मों ज्या भुले ॥
देवनाथ कहे साथ चुकावे गुरू जनम और मरन ॥४॥

(६)

प्यारे ! उलट कमलमो पलट, देख ले मौजा[1] ।
सब घट में नाथ विराजा ॥ध्रुव पद॥
नर लाल हुवा बेहाल, पड़ा भ्रमजाला ।
क्यंव[2] फिरता भटका भूला ॥
तैं, डार सुधारस घटकु, विखय बिख प्याला ।
पीकर हुवा मतवाला ॥
चढ आवे तुजपर काल फौज सों आला ।
को होय तेरा रखवाला ॥
इस माया मों एक तरन गुरु महराजा ॥सब०॥१॥
मैं हू वे कहा का, कौन कहा सो आया ।
ये सार विचार न पाया ॥
मा बाप बेहन और भाइ कबीला माया ।
मैं मेरा कहा डुबवाया ॥
संसार नरक का मूल, नाहक लपटाया ।
कर याद गुरु वस्ताद, पकर ले पाया ॥
सुन छमा टाल[3] ले हात[4] ग्यान को नेजा ॥सब०॥२॥
कर हुकुम फौज में बाजे काल का डंका ।
तुझे काम नहीं ले नाम पीर मुर्षद का ॥
हो सवार साबुत तो वे घोड़ा मनका ।
चढ सवार सले वड़ा सुरतगडबाका ॥

---

१. आनन्द । २ क्यों । ३. करताल । ४. हाथ ।

सुन सुनोजी मनसिंग[1] किलेदार है हा का ।
गुरुग्यान चढा नीशान, पकड ले पटका ॥
भवजाल तोड जंजाल करले हाजा[2] ॥सब०॥३॥
हो निर्मल अपने हित कु तवज्जु[3] करना ।
गुरु ग्यान सुनावे कान, बतावे नैना ॥
प्यारे ! देख कमलबिच मगन आप हो रेहना ।
नहिं कमाल ये धन माल रैन का सपना ॥
साच कर मान सिपाही दिलजान नहिं रे ! तन अपना ।
जम फोड पटे कू तोड नजर मों रखना ॥
प्यारे ! अजब फौजमे बाजे अनुहत बाजा ॥सब०॥४॥
सुन मेहरबान हनुमान धनी है आला ।
तन ताक किया है पाक, कमल उजियाला ॥
अब दिया 'नाथ' के हाथ पिलाया प्याला ।
दस्तान चढ़ा मस्तान हुवा मतवाला ॥
गबत का बाजे तास घनन घडियाला ।
गुरु ग्यान समजकर तुझे लाख मो विरला ॥
कहे देवनाथ सुन बात खुदा महिं दूजा ॥सब०॥५॥

(१०)

धनमान प्रवासी क्या करना ।
दो दिन को जिंदगानी यारो आखरकू है मरना ॥ध्रुवपद॥
दोहा ॥ रात बसे और दीन चले, ससार है हाट ।
सवदा लेके बिरला नीभा, बडा विकट है घाट ॥अजी धन ॥१॥
भूलाभूला क्यंव फिरे, कर दिन दिखावे ! पाक ।
आखरकू पस्तावेगा[4] होगी तनकी खाक ॥अजी धन० ॥२॥
टीप[5] ॥ भाई जोरू लरका आखरकू कोई नहीं अपना रे ! ॥धन०॥१॥
दोहा ॥ देख अमरपद, अमर नहीं क्या संपत क्या राज ।
काल आवेगा ले जावेगा, जैसे तितरको बाज ॥अजी धन० ॥१॥
नंगा हो कर आना जाना कोई नहिं आवे साथ ।
काल ज्यालसी परी है गहरि अंधारी रात ॥अजी धन०॥२॥
टीप ॥ देवनाथ गोविंद कहे निरख निरख पग धरना रे ! ॥धन०॥२॥

(११)

तैं जनम अकारन खोया रे ! ध्रुवपद ॥
जोग जुगतकी रहनि न ज्यानी, कपडे रगे तो क्या किया ! ॥तैं०॥१॥

---

१. मन । २. हज । ३. ध्यान । ४. पछतावेगा । ५. टेक ।

दोहा ॥ काशि बनारस द्वारका, तीरथ करि आया ।
उपर खासी काया रखी, मनका मल नहिं धोया ॥बे तैं०॥१॥
हित करनेको, ये तन दीयो, सो हित तैं नहिं चाहूया ।
धनमान मालमस्तान है मन दामनपर ललचाया ॥बे० तैं०॥२॥
टीप ॥ आतमग्यानकी ये तन क्यारी, बीज नहीं बोया ॥तैं०॥२॥
दोहा ॥ ज्यानीके जंगलमों सुसरी फन की नाहाक के घरमाया ।
माया अंधारी रात परी, भरपुर निंद भर सोया ॥बे तैं०॥१॥
आत्मामन इस देही मों, ज्यानत नहिं कच्छु[1] पर्‌या ।
आतमग्यानकी साचि[2] करामत, गुरु किरपा नहिं पाया ॥बे तैं०॥२॥
टीप ॥ देवनाथ प्रभुनाथ गोविंद सब घट मों रह्यो छाया ॥तैं०॥३॥

(१२)

आज मोरी सावरियासों लागी प्रीत ॥ध्रुवपद०॥
रैनदिन मोहे चैन परे नहिं, उलट भई सब रीत ॥आज०॥१॥
कहा करों, कित जाऊं सखीरी ! कैसि चली अब नीत ॥आज०॥२॥
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन । निसिदिन गावे गीत ॥आज०॥३॥

(१३)

तेरे पदरज की प्यासि भला ! बनसी वाले ! रे ! ॥ ॥ध्रुवपद ॥
रैनदिन मोहे चैन परे नहीं । नींद न आवत, मतवारे ! ॥तेरे०॥१॥
नंदनंदन ओ ब्रिजवासी ! गवलनके रखवारे ॥तेरे०॥२॥
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन । त्रिभुवन पालनवारे ! रे ! ॥तेरे०॥३॥

(१४)

घटघटमों विराजे निरंजन साई रे ! ॥ध्रुवपद॥
निर्गुण ज्योतिस्वरुप सदाघन । नैननमों छब छाई ॥घट०॥१॥
रूप, न गून अनाम अगोचर । ब्याप रह्यो सुखदाई ! ॥घट०॥२॥
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन । आपहि आन न कोई ॥घट०॥३॥

(१५)

ये संसार बड़ो दुखदायी, निपट काल को रगड़ो ।
नेह लगावो, हर सो यारो ! नाम कभू ना छोड़ो ॥ध्रुपवद॥
ज्यो तुम हमसों प्रीत लगाई, सो दिन दिन पै बढ़ती है ।
कीज्यो यारो ! और कछु नहीं, यही हमारी बिनती है ॥ये०॥१॥
कल तो होगा कूच हमारा, ख्याल फकीरी रमता है ।
तुम चारों में प्रेम प्रीत सो भइ दो दिनकी गमता है ॥ये०॥२॥
भली बुरी कछु निकसी वाणी, अपना करके जाना है ।
देवनाथ प्रभु फक्कड यारो ! उनको उनहीं माना है ॥ये०॥३॥

१. कुछ । २. सच्ची ।

(१६)

अंतसमय को आवे यारो ! कालजाल को फेरा ।
गुरुबिन, या जग सबही करी है, कोन छुरावनहारा ! ॥ध्रुवपद॥
भाग पूरब खुला, लाखो पाया नरतनु खासा ।
महाल मुलुक क्या करना, यारो ! आखर जगल बासा ॥अंत०॥१॥
भाईबंधु और जोरू लरके कोई नहिं अपना साथी ।
अपना करके भूले, यारो । होगी तनकी माटी ॥अंत०॥२॥
देवनाथ कहे समझ्यो बाबा ! जो चाहे दिल अपना ।
सच्चा है गुरुनाथ निरजन दुनिया दो दिन सपना ॥अंत०॥३॥

(१७)

पिपीलिकासों ब्रह्म तलों जी यो जग भरा पसारा, ।
उलट कमल में नैन न्याहारो ब्रह्मरूप ये सारा ॥ध्रुवपद॥
नीज रूपसों आप बिराजे, आत्मा गुरु अलबेला ।
चीन्हो ताको मगन हो रहो पिवो प्रेम रस प्याला ॥पिपीलिकासों ॥१॥
प्याला पीया ऐसा जीसे नाथ निरजन सूजे[१] ।
ऐसा मर्द कोन है ठाडा बचन साधुका बूझे ॥पिपीलिकासों०॥२॥
नरनारायन आपहि तुम हो ज्यो गुरुपदरस पीयो ।
देवनाथ कहे पलटो यारो ! अजरअमरपद पावो ॥पिपीलिकासों०॥३॥

(१८)

खासा ये तन पाया, यारो ! समज्यो कछु हित अपना ।
आया है सो जावे देखो दुनिया दो दिन सपना ॥ध्रुवपद॥
मरना हक है, उधार जीना, नाम धनीका जपना ।
साई पाक नजर कर देखा, क्या मायामों खपना ? ॥खासा०॥१॥
हुकुम पीर, मुर्षद का मानो, मगरूरी ना करना ।
नेक राहसों चलना बाबा ! आखरकू है मरना ॥खासा०॥२॥
फकीर देखे जिकिर मिटावो अव्वल खाली रस्ता ।
जल्दी पकडो नहिं तो डाले फासी आय फिरस्ता ॥खासा०॥३॥
करो सितावी मर्दों ! उठके पीर कदमसो मिलना ।
ये संसार हाटको लेखा रात वसे दिन चलना ॥खासा०॥४॥
ज्योरू लड़के समदि[२] जवाई कोई साथ ना आवे ।
हाथी घोडा माल मवाशी झूटा सबही ज्यावे । खासा०॥५॥
पीरनाथ गोविंद मेहरसों दुक्ख को मार भगाई ।
देवनाथ मस्तान हमेशा ब्रह्म से प्रीत लगाई ॥खासा०॥६॥

---

१. सूझे । १. समधी ।

(१६)

खासी यह नरदेही रे ! बाबा ! आवनकी फेर नाहीं ॥ध्रुवपद॥
पाप पुन्न समभाग भया, तब आपहि प्रगट सुहाई।
आतमग्यान की पेटी सुहावत या बिच राजत साई ! ॥खासी०॥१॥
लखचौरासी फेरा फिरा तब भागसों पूरन पाई।
अमोल से ज्यावत है घडिया समजत नाहिन कोई ॥खासी०॥२॥
या बिच आतमराम बिराजत वेदनकी है गाही।
सो निजसार विचार कर देखिय आप भरो जगमाहीं ॥खासी०॥३॥
आप भरो जगमाही कैसो देख विचारके येही।
सरन हो नाथनिरंजनको और गुरुबिन मारग नाहीं ॥खासी०॥४॥
देवनाथ गोविंद दयाघन व्याप रह्यो जगमाही।
देवनाथ प्रभु सुमरो या मन गुरुबिन मारग नाहीं ॥खासी०॥५॥

(२०)

निगुरे ! क्या किया वे ! ॥ध्रुवपद॥
मा बाप और भाई कबीला। अपना करके भाया वे। ॥निगुरे०॥१॥
ज्योरू लरके समदि जवाई। मोहजाल लपटाया वे। ॥निगुरे०॥२॥
भागपूरबकृता सों पाई। खासी ये नर काया वे। निगुरे० ॥३॥
या तन अतमाराम न चीन्हो। जनम अकारन खोया वे ॥निगुरे०॥४॥
बिखयबिखको प्याला पीयो। दिल मस्ताना भूला वे । निगुरे ॥५॥
देवनाथ कहे फिर जलदी सों नाहक के भरमाया वे ! ॥ निगुरे० ॥६॥

(२१)

वा पर सो तनमन वारो ॥ध्रुवपद॥
मुरली अधरधर सुंदर नागर। गौवन को रखवारो ॥ वापरसो० ॥७॥
सूरत शाम, मूरत खूब। नैनन रूप न्यहारो ॥ वापरसो० ॥८॥
देवनाथ प्रभुनाथ निरंजन। पूरन ब्रह्म है मेरो ॥ वापरसो० ॥३॥

(२२)

कहु बालक कहु तरुन म्हतारा[1]। कहु सज्जन कहु कुटिल घुतारा ॥ध्रुव पद॥
कहु अंधा कहु बहिरा मूका। ऐसो बहुरंगी मैं देखा ॥ कहु० ॥१॥
कहु ब्राह्मन कहु बन रह्यो सेखा[2] ऐसो बहुरंगी मैं देखा ॥२॥
कहु मानिक कहु न्हाई चोखा[3]। ऐसा बहुरंगी मैं देखा ॥कहु०॥
देवनाथ मनवारूप विखा। ऐसा बहुरंगी मै देखा ॥कहु०॥

---

१. बूढा (मराठी म्हातारा)। २. ग़ [illegible] । ३. चमार।

(२३)

जाग जाग भोर भई नंदलाल ! प्यारे ! ॥ध्रुवपद॥
तमरजनी निकस गई बोध पहाट [1] उजारे।
सुरवरमुनि जन गात सदा गुन तिहारे ॥जाग०॥१॥
गौल से गोपालबाल आन द्वारमें ठाडे।
कान कमलनयन कृष्ण दरसनको तिहारे ॥जाग०॥२॥
सुनत बिनति ज्याग उठो पतितको उधारे।
देवनाथ भाव चरन सीस कमल धारे ॥जाग०॥३॥

(२४)

बन्सी कुंजबन मो मधुर बजी ॥ध्रुवपद॥
आधि रैन सुख चैन पियासंग। सुवत कान भयो रजी ॥बंसी०।१॥
बेग उठ चली कुज रहासो [2]। बावरी भई मोहे कछु न सूजी [3] ॥बंसी॥२॥
देवनाथ धुन सुनत कान। तब गृहधनसुतससार त्यजी ॥बंसी०॥३॥

(२५)

जमुनातट के निकट बजावे मधुर धुनी मुरली की।
सुनत कानहू कई बावरी सूध न रही तनमनकी ॥ध्रुवपद०॥
आधि रैन सुख चैन सखीरी मे पियासंग सोई।
सुनत नाद मदमस्त दौर के बिंदराबन आई ।जमुना०॥१॥
कह [4] री बजाई बंसी कान्हने मधुर लहर बाकी।
सुनत डार [5] घर बार निकसी मैं बुद्ध राखी बाहकी [6] ॥जमुना०॥२॥
गरज गरजके बरसे मेहु बुद बरी टपके।
आधि रात अधियारि परी री बीच दामनि चमके ॥जमुना०॥३॥
देबनाथ प्रभुनाथ निरंजन नदलाल कान्हा।
देख लपट रही पगसों सखीरी निरख रूप नैना ॥जमुना०॥४॥

(२६)

साथी कोई नहिं अपना वे ! दुनिया दो दिन सपना वे ॥ध्रुवपद॥
मायाखेल झूट पसारा मृगजल साच दिखावे।
भूला नर जो इस जल म्याने [7] फिर फिर गोला खावे ॥साथी०॥
बहेन भाई सखाकबिला नाहक कहता मेरा।
काल आवेगा ले जावेगा कोउ नहीं है तेरा ॥साथी०॥२॥

---

१. प्रभात। २. कुंज की राह पर। ३. कुछ न सूझो। ४. कहाँ। ५. त्याग।
६. बहकी। ७. मध्य।

चौऱ्यासी मे फिरते फिरते उत्तम नरदेह पाया ।
भूला भूला फिरे दिवाना अवधू समज ना आया ॥साथी०॥३॥
आपहि आपने साथ सगाली, दुजा कोउ नहिं आवे ।
ज्यान[1] बूझकर अंधा होता आखरकू पस्तावे[2] ॥साथी०॥४॥
धन माल जाता यारो ! पास कछू नहिं रहता ।
हरिभजनमों चित्त न लागे तो खा बैठे गोता ॥साथी०॥५॥
खविंद हमारा नाथ गोविंदा पूर्णब्रह्म मै जाना ।
हरिभजनकी नोबत बाजे देवनाथ मस्ताना ॥साथी०॥६॥

(२७)

कैसी मोहन बंसी बजाई ।
सुनत धुन मोहे सुध नहिं पाई ॥ध्रुवपद॥
उत्तम सावन मास विकसत पुन करे नर नारी ।
साथ सखी ले मंगल गावत आधी रैन अँधारी ॥
कान परी धुन मोह लयो मन ये व्रिजलाल व्यहारी !
मधुर बजावत, राग अलापत, गावत तान सलाई ॥कैसी०॥१॥
भादो मासमों मेघ गडागड़ टपकत बुंदरी खासी ।
रुमझुम-रुमझुम झुरमुट झरिया बरखत है घनरासी ॥
ओढि खुशाल दुशाल पियासंग रमहीं[3] भोगविलासी ।
विजलीसी बंसी आयी, परि मोहे मदन कुमार भगाई ॥कैसी०॥२॥
कुंवारि करे सिंगार सवारो सेज पे नाथ हू बैठी ।
सारी हरी चुनरी पेहरी भर जोबन नैन अंगेठी ।
आयो पियो मोरे लपट गले मिल बोलत बातही मीठी ।
तो सुनो आवो नद कछु तन मन धन आस छुराई ॥कैसी०॥३॥
कार्तिक मासमों गोरिया नहावत कुटिलालक सवारे ।
बैठी हती ढीग मातापिताजूके कानन नाद न्यहारे ।
विदगबन व्रिजराज बजावत बंसी नंददुलारे ।
मे सुनके भई बावरी चंचल मन कछु सूजत नाहीं ॥कैसी०॥४॥
अघहनमों अघहर बरत करत है पूजत देवि कुवारी ।
मांगत दे भिक[4] जनमजनम की दे कंश या बनवारी ।
जमुनाजीके तट निकट विराजत टाडी भये पुतनारी ।
साथ लियो व्रिजबाल गोपाल ज्यो पिता घट काय सोंहाई ॥कैसी॥५॥

---

१. ज्ञान । २. पछतावे । ३. रमण करती थी । ४. भीख ।

पूसनमो कछु पूसन पावे सिर पूरन भई है उदासी ।
ज्या गह्यों मन प्रभुपायनसों गृहधन आस निरासी ।
धुन सुन मुरली की बिकल भयो मन कुंजमें ज्याय के निकसी ।
हरि बिन कछु नहिं सूजत या मन बावरि भइ है लुगाई ॥कैसी०॥६॥
माहो मासमों मनसिज मोरे बाजत थंड[1] घनेरी ।
तकिया तोषक नरम न्याहली कछु नहिं लागत प्यारी ।
भारी अटारिके डारी निरखत नैन कुज न्यहारी ।
खडरस मोहे मीठो न लागत बंसी चित्त चुराई ॥कैसी०॥७॥
फागण मासमों खेलत फागको सब मिलया[2] ब्रिजनारी ।
ग्यान गुलाल और ध्यान अबिर की हाथ लिई भर जोरी[3] ।
भक्ती को रग सुरंग बनायोरी प्रेम भरे पिचकारी ।
ऐसी भई मतवारी सखी सब कान्हकु देखन आयी ॥कैसी०॥८॥
चैतनमों मधु चित्त चितावत कामि भई मृगनैनी ।
आब के वनमाही किलकत कोकिल बोलत अमृत बानी ।
ब्रिजराज बिरह की मारी भई तब मोहन लागसों हानी ।
मुरलि नही सखी मोहनी डारी नाद सुनी ललचाई ॥कैसी०॥९॥
बैशाख मासमों आइ उदासी झारत जब रूख पाती ।
तैसे हूँ डार सिंगार जो हरि बिन भरभर आवत छाती ।
आधि रैन मोहे चैन परे नहीं कुजमों धूंडन जाती ।
बावरी भई जैसी खाई बिजया सारी सूध गमाई ॥कैसी०॥१०॥
मास भये दस हेरत बाटके तो सखी जेठही आयो ।
दास उदास के आस मिलि वेगी सुभ सकुनही दिखायो ।
बहुवा फिरकत बाजुवा लपलपके नैन चलावो ।
आयी हुती कही मोसों सखि ! चल वेगी कान्ह बुलाई ॥कैसी०॥११॥
आयी आखाडमों आस पुरी मन पुरनानद भयोरी ।
या तन कुंजमों श्रीगुरुगोविंद आतमाराम न्यहारी ।
समरस रम कह्यो मानरूपमों वृत्ति भई अविकारी ।
देवनाथप्रभु अतर बाहिर छाय रह्यो सबमाही ॥कैसी०॥१२॥
प्रभु सुदर मुरली बजाई । या तनमों सब हेत मिटाई ॥

(२८)

भली फकीरी छाड जिकीरी[4] नरख किसी सों काम रे ॥ध्रुवपद॥
गाता फिरता जगमों रिझाता । क्यंव चाहाता ते दाम रे ॥भली०॥१॥
धनकामिनिसों लपट रह्योके । पकुटे झुटे चाम रे ॥भली०॥२॥

---

१. ठंड । २. मिल कर । ३. झोली । ४. नाम-स्मरण (ईश्वर का गुणानुवाद) ।

दुजी दौलत मारनसें पर। ले हरिजी को नाम रे ।।भली०।।३।।
देवनाथप्रभु देख नजरसों। सच्चा आत्माराम रे ! ।।भली०।।४।।

(२६)

गोकुलवाला। ब्रिजबासी गोकुलवाला ।।ध्रुवपद।।
माथे मोर मुगुट है डाला मानो कोटि सुरज उजियाला।
कानन कुंडल की छब्र आला। गले सुहावत बैजयंतीमाला। ।।गोकुल०।।१।।
अजि जसोमत तनुरंग काला। गहरा जमुना का जल काला ।
तासों रहत फणी वो काला। ताको जेर करे नंदलाला ।।गोकुल०।।२।।
ज्याको ध्यान धरत शिव भोला। सो गोपिनसों करत किलोला।
साथ लियो गोपन का मेला। कमल नैन प्रभु छेल छबेला ।।गोकुल०।।३।।
सद्गुरुगोविंदनाथ गोपाला। भुवनत्रय को पालनवाला ।
मुरली अधर धरसो अलबेला। देवनाथ को दिनानाथ रखवाला ।।गोकुल०।।४।।

(३०)

गुरु कृपेका अंजन पाया मेरा मैं जानूं।
आप रूप नयनों मे छाया मेरा मैं जानूं ।।ध्रुवपद।।
उलट मार्ग की रहा बनायी मेरा मैं जानूं।
बुरे करम की रेख मिटायी मेरा मैं जानूं ।।गुरु कृपेका०।।१।।
चाद सुरज बिन परा उजाला मेरा मैं जानूं।
पिलाया अजरामर का प्याला मेरा मैं जानूं ।।गुरु कृपेका०।।२।।
जहा तहा मैं आप अकेला मेरा मै जानू।
आपहि गुरु और आपहि चेला मेरा मै जानूं ।।गुरु कृपेका०।।३।।
गोविंदनाथ ने यहि बतलाया मेरा मै जानूं ।
देवनाथ अपने में मिलाया मेरा मै जानूं ।।गुरु कृपेका०।।४।।

(३१)

खेलुगी आज मैं होरी। प्रभुनाथजी संग ।।ध्रुवपद।।
रूप भयो जगमों हे अनुपम। जाउंगी हूं बलिहारी ।।खेलुंगी०।।१।।
ग्यान गुलाल और ध्यान अबिरकी। हात लई भरजोरी ।।खेलुंगी०।।२।।
आतमरंग सवाईसों मारूंगी। प्रेम भरी पिचकारी ।।खेलुंगी०।।३।।
देवनाथप्रभु नाथ कृपाल सों। कबहू न रहूंगी मैं न्यारी ।।खेलुंगी।।४।।

(३२)

या जग भयो तो क्या करना जी ? ।।ध्रुवपद।।
माउबंद और पूत लुगाई। अंत न कोऊ अपना ।।या जग०।।१।।
रैंन बसे दिन उठे चल वे ! दुनिया सब सपना ।।या जग०।।२।।
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन। निरखत पग धरना ।।या जग०।।३।।

(३३)

देख सुरत टक लागि नैनसों नैन भेद कर दिया ।
गुरु नें जोगन मुजकूं किया ॥ध्रुवपद॥
एक दिन सखिया मस्त दिवाना, सुन मंदिरमों खडा ।
फकिर मुजे देख देख के आडा ॥
मद मत्सर भाईवद मारे, बिन खाडे सों लढा[1] ।
जाके कामक्रोध सों भिडा ॥
मान गुमान मार भगाई, अंहकार कूं तोडा ।
फेर त्रिकुटसिखर पर चढा ॥
टीप ॥ अरस दरस कर दरस दिखाया अरूप रूप हो गया ॥गुरुनें०॥१॥
आसामन सा जबरदस्त ये, कपडे छिन के लिये ।
त्रिगुनके बधे बाल छुडाये ॥
पचतत्व के भरे भंडार उसी बखत लुटाये ।
पाप जनमजनम के धोये ॥
गंगा जमुना सरसति सगम तिरिया तिर्थमों न्हाये ।
धोके जनममरण के खोये ॥
टीप ॥ शातीभ्रभुत चढाई बदन पर बहोत दिलासा दिया ! ॥गुरुनें०॥२॥
नव शिगले की डाले बिच, ग्यान कफनि पेन्हाई ।
कानमों प्रेममुद्रा चढाई ॥
जतसतकी मेरे खादे झोली, बिवेकलकरी दिई ।
साइनें उमर मेरी बढाई ॥
अनुहत बाजा बजत घडयाल, करबिन जप हो रही ।
घरघर आलक फेरि जगाई ॥
टीप ॥ दृश्य ब्रह्मकर भवरगुंफामों हात पकर ले गया ॥गुरुने०॥३॥
नैनन हरबिच छुटे फवारे दीनरयन सब गई ।
सुरजबिन चाद उजाला सही ॥
लखलख तारे झमके सारे, तुर्या उन्मनि भई ।
अखिया जर्द गर्द हो रही ॥
खुली समाघी हरदम जागी घटघटमों निज साई ।
सच्चा गोविंद है तुही ॥
टीप ॥ देवनाथप्रभु नाथ निरंजन, दिलसों दिल मिल गया ॥गुरुनें०॥४॥

---

१. लढ़ा ।

(३४)

कर हरजी को यामन ध्यान हो ! ।।ध्रुवपद।।
या जगमों कोई और न जनिये । पूरन भयो भगवान हो ! ।।कर०।।१।।
जल थल ब्रिखमे पाखाननबिच । रूप भयो सब जान हो ! ।।कर०।।२।।
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । सब घटमानस मान हो ! ।।कर०।।३।।

(३५)

को खेले तोसु होरी, ठग जा रे ! कन्हय्या ! ।।ध्रुवपद०।।
मथुराके बाटमों रोकल घाटको । काहेकु घगरिया फोरी ? ।।ठगजा०।।१।।
सुन्दर श्याम सुहानि मूरत । ऐसी केसी मत भारी ? । ठगजा०।।२।।
कुंजगली बिच आन अडावत । मोरी काहेकू बहय्या मरोरी ? ।।ठगजा०।।३।।
देवनाथप्रभु नंददुल्हारे । तुम जीते हम हारी ।।ठगजा०।।४।।

(३६)

होरी खेलन आथी या ब्रिजकी ब्रिजराणी ।।ध्रुवपद।।
लालगुलाल पेहरी सारी । अंजन दिग्मृगनयनी ।।होरी०।।१।।
धुंडत बिंदराबनकुंजनमों । गोरसकी रसदामी ।।होरी०।।२।।
आयो बसंत बिलासत कुंजमों । कोकिला बोले बानी ।।होरी०।।३।।
कुंजगली बिच पायो कन्हय्या । मूरत ग्यान सुहानी ।।होरी०।।४।।
हात गुलाल भरे-भर मूठी । लयो मारत है मन मानी ।।होरी०।।५।।
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । मंद हंसे मू सखयानी ।।होरी०।।६।।

(३७)

होरी खेलन आयो कन्हैया राधा गोरी ।।ध्रुवपद।।
श्याम सुंदर मनमोहन या श्यामकी है छब न्यारी ।।होरी०।।१।।
रंग भयो भरपूर अनूरस । कंचनकी पिचकारी ।।होरी०।।२।।
श्रीनंदलाल गुलाल ये खुशि । याल खडे बनवारी ।।होरी०।।३।।
साथ लये औरनके छोरे । गावत हैं ललकारे ।।होरी०।।४।।
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन । ब्रिजराज विहारी ।।होरी०।।५।।

(३८)

चल श्याम सुंदर मनमोहन खेलन आयोजी ! ।।ध्रुवपद।।
बादर भये लाल उडत गुलालसों । छुटत रंगकी फुवारी ।।चल०।।१।।
बिंदराबनके कुंजगलिनमों । ठारि भयी ब्रिजनारी ।।चल०।।२।।
देवनाथप्रभु नाथ निरजन । श्रीनन्दलाल व्यहारी[1] ।।चल०।।३।।

१. विहारी ।

(३६)

सुनरी सुन माई ! जसोदा ! ठकडो है कान्हा तेरा ।।ध्रुवपद।।
सात पांच मिलकर बहेना[1] । जात हती जल भरने जमुना ।।
बीच मिलोरी तेरा कान्ह । नाहक हमकू व्हा घेरा ।।सुनरी० ।।१।।
नन्हे नन्हे मिलावे छारे । कुजगलीनमों आन घेरे ।।
ऐसें इसके फैल बुरे । जी ! तरसाया जी ! मेरा ।।सुनरी०।।२।।
एक दिना घर नहीं रे ! सास बाचे पीतवसनकी कास ।।
थाडा आन रही मोरी पास । पल्लो इन पकरा मेरा । सुनरी० ।।३।।
एक करसे पकडे बहय्या[2] । दुजे करसे छुवत छतीया ।।
यापे प्राण देउगी मय्या । नाहक सतावत देह हमारा ।।सुनरी०।।४।
देवनाथ प्रभु या श्याम । मोहे मागतसेरी दाम ।।
मोहे कछु नहीं रही काम । मानस मोही लियोरी मेरा ।।सुनरी ।।५।।

(४०)

ऐसी केसी बंसी बजाई बिंदराबनवासी । ध्रुवपद।।
मधुर बजी तेरी बसीकी धून । सोवत निंद न आयीरे ! ।।ऐसी०।।१।।
सोवत जागत बैठत ऊठत । आन घुसे मनमाही ।.ऐसी०।।२।।
तोडी असावरी राग अलापत । गावत तान सवाई ।।ऐसी०। ३।।
तान सुनी मन हो गयो बावरो । मोहे कछू सूजत नहीं ।।ऐसी०।।४।।
देवनाथ प्रभु दासी तिहारी मैं । तू मे प्राण गुसाई ।।ऐसी०।।५।।

(४१)

बंसी बजावनहारे । अब कर हो दया मोपे ।।ध्रुवपद।।
नंदके नदन कंसनिकंदन । गौवनके रखवारे ।।अव० ।।१।।
श्रीजगजीवन व्यापक जगमें । वेद कहे ललकारे ।।अब० ।।२।।
या मनमोहन दीनोद्धारण । श्यामसुरत घनकारे ।।अव० ।।३।।
वेग करो जी ! न देर लगावो । राधाजूके प्राणके प्यारे ।।अव० ।।४।।
देवनाथप्रभु ऐसो कीजे । नयनन रूप न्यहारे[3] ।।अव० ।।५।।

(४१)

हो तैं ग्यान दिवाने सच्चा । अबतैं तो गुरुका बच्चा ।।ध्रुवपद।।
अपने हितके काजे हमहु मन माने सो कीदा ।
कुट्टनगी (?) दीक्या कह जाने मग मावना पूदा ।।हो तैं० ।।१।।
कोन किसीका खेस कबीला कोउ नहिं किसीका भाई ।
सब घटम्याने साहेब सच्चा देख तमाशा येही ।। हो तैं० ।।२।।

---

१. बहिनें । २. बाँह । ३. निहारे ।

आपहि अपना बाप म्हतारी आपहि अपना बेटा ।
आपहि अपना गुरु पिर चेला कालकहरसे झूटा ॥हो तैं० ॥३॥
आपहि आप मगनमों रहेगा बोध भंगमों धुंदा ।
नरकाया फेर न आवे नाहक हुवा है अंधा ॥हो तैं० ॥४॥
देवनाथ ये कहत पुकारे मायामों जगमंदा ।
हमतो निकसे फेर फटकर खाविंद नाथ गोविंदा ॥हो तैं० ॥५॥

(४३)

रमते नाथ फकीर कोइ दिन याद करोगे ! ॥ध्रुवपद०॥
कोइ दिन बैठे पालखि घोड़ा, कोई दिन गिरो अबदागीर ॥कोइ० ॥१॥
कोइ दिन वोढे शाल दुशाला, कोइ दिन भगवे चीर ॥कोइ० ॥२॥
कोइ दिन धोती है लंगोटी, कोइ दिन नंगे पीर ॥कोइ० ॥३॥
कोइ दिन खासा पलंग बिछानो । कोई दिन जमिन पे गीर ॥कोइ० ॥४॥
कोइ दिन महलो म्याने[1] सोते । कोइ दिन गंगातीर ॥कोइ० ॥५॥
कोइ दिन खेलते हंसते रोते । करले नामजिकीर[2] कोइ० ॥६॥
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । सच्चे साहेब पीर ॥कोइ० ॥७॥

(४४)

लगन लाग रही रामभजनसों ।
और न कछु मन आवे मेरे राम ॥ध्रुवपद॥
रामविना मोहे चैन परे नहीं । झूटी दिखावन धनसुतधाम ॥लगन० ॥१॥
झूठे भाईबंद लुगाई । अवसर कोउ न आवे काम ॥लगन० ॥२॥
देवनाथप्रभु नाथ निरंजन । सच्चा है गुरु आत्माराम ॥लगन० ॥३॥

कटिबंध—१

मनमोहन नंद कन्हय्या ब्रिजवासी अजबविलासी ॥ ध्रुवपद ॥ कर धर मुरली अधर लगावे, अजब तर्‌हेकी वेन[3] बजावे । सुनसुन गोवा[4] दौरी आवे रंगरंगकी अजब तन्हेकी, गौवा याकी धुन मुरलीकी, नीकी सुनकी नइ नइ बछिया, लइ लइ अछिया, चितरी कबरी, सुभेद प्यारी, श्यामरंग गुलजार हजारी । काली पीली लालजर्द, बेहरि कपिला रंग कगारी । सोरि दौर के, जमुनाके तट, गहरा करकर, नजर देख, ब्रिजपाल बालको, उठाय

१. में । २. नाम स्मरण । ३. वेणु । ४. गौएँ ।

सिरको, चरणछुई तब दौरकान चुचकार लई जो, तीन लोकके नाथ कहावे, दयाल कर गोअंग फिरावे, कर अंगसंग, भवभग मिटावे, सब घटमों भरपूर भरहट, आप अकेला नंद-लाल गोपाल आपही, गोकुलपत अविनाशी ।। मनमोहन० ।।१।।

पूरनब्रह्म परमातमा सुभावे, ज्याको भेद ब्रिधीहि न पावे, ज्याको सुर मुनि अखंड गावे, सो गवलनके पीछे दौरे, मिलाये सारे, गोपबाल जमुनाके तटतट परगट होकर, देत हरे-बलि भावेभारे, निजभक्तनके काज सुधारे, फनी कालया जलमो घेरे, नाथ फनीको बीख निकारे, मुये ग्वालसो जिवाय सारे, अघासूर घर पगसो चीरे, मारेसारे केसासुरकी, नामी नामी अगबग कैसी, तृणासूर असुर संहारे, गोवछियनको अहंकार धर ब्रिधी चुरावे, ग्वाल-बालये तमाम सारे, ऐसी ज्यानके आप बनेसब, ग्वालबालये गऊबछिरिया, नइ नइ अछिया, तहा तहा को, तैसा ज्याको रग तैसो ऐन बैनको स्वरूप धरके, काठि कमरिया, हातमो खूदे, आपसमों कूदे फादे, देख बिधी अभिमान डार के नीके मनमो सुभाव धरके, चरणकमल सुकमलनाम शरणागत आयो, सत्यलोकको बासी ।।मनमोहन० ।।२।।

चारो भुजसू आयुध डोरे, कटतट पीत पितांबर पेहरे, निजभक्तन को काज सुधारे, भगतकाज, जदुराज लाजतज, पंडुराजसुत अर्जुनजीके रथके गाडीवान ब्रिराजे, तुरंग ले पानी में ज्यावे पूछपाछके धोय धाय, ज्योपजाप रथ खूब उडावे, परदलमौ सैराट भिडावे, अतिरथी पग तुरंग उडावे, कर बागडोर चुचकारत भूनो, बानी उच्चारत होरे, हारे होरे पुंडरीकके भाव भगतसो, ब्रिट पेयारे, नंददुलारे, तीनलोकमो व्यापक सारे, तहातहाके खूब पसारे, अजब रंग श्रीरंग विराजे, भीमाके नीर तीर दिगबर बजे ताल मिरदग झलरिया, गावे निजजन, प्रेममगन हो डुले सदा वो अजब नैनसो, देवनाथकी चरणकमल सो ऐनरूपसो, लगी लगन मस्तान हमेशा, आप रूपमो भयो मिरासी ।।मनमोहन० ।।३।।

कटिबंध—२

त्रिभुवनको पालनवाला भज साहेब नाथ गोपाला ।।ध्रुवपद।।

जो है नामरूपसो न्यारा, अलख अगम अगोचर प्यारा, सो गुरु आप रूप विस्तारा, गहरा खूब भरा दर्याव लहरा, ज्याकी बाकी सो हरहीरा, बसेनि देह देहरे विचरवनही, काला पीला हरा लाल कछु रंग तरहाको, निजरगसो, अभंगजू, प्रभू या जगमाहे, घटघट व्यापो लगट लगाये, गुरुपुज श्रीगुरुकृपासो त्रिकट घाटको, पलट कमलमो उलट चले, जब निकट धीटमन, पलट रह्यो नद, अयन रूप, निजनयन प्रगटललाट भयो उजियाला ।।त्रिभुवनको०।।१।।

नयनन हर मो छुटत फुकारे, चादसुरजबिन झलकत तारे, कोट मदन वा रूप पे वारे, छाय रह्यो हर अरूप रूप, अभूप जगत मो, सरग मिरत पाताल भू , आप, तेज, अकास, समीर पंचतत्व सब आप आप बने है, चारो बानी, चारो खानी, चारो तन आकार अजब ये, निराकारको रूप विराजे, तरा तरा[1] को रूपरंग विस्तार, सार कर, बिचार देखत, पार न पावे विधि वेद अनंत अपार तीनलोकमो, व्यापकसो हर, विश्वंभर गुरुसाहेब आप अकेला ।।त्रिभुवनको० ।।२।।

पाई गुरुकिरपा की छाप, भाग्यो माया भरमकलाप, जित देखो तित आपहि आप, आप एक अनेक एक कछु कही न जावे, अचल अमलघट, कमल कमलमो, व्याप रह्यो है, जलमो थलमो, जमाल साई, कमाल देखा अलखखलकमो, भयो खूब भरपूर चलकसो, रसिक रूप अरूपरूपभो भये दंग तद गुंग अनुहत, चंग बजत रह्यो नाद घुमाय, घुंघुंघुंघुं घुंमर छाई, जोग जुगुतकी रहनी पाई, आप आपस मो रंग लपट रहे, निसंग अटल श्रीगुरुनाथ गोविंदविंदसिर आप विराजे, देवनाथ के नैन बागमो छाय रह्यो गुल्लाला । त्रिभुवनको०।।३।।

१. तरह-तरह ।

दयालनाथ महाराज के पद

पद गणपती पर

भज गणपति रिध[1] सागर जी ।
सागरजी बुध आगरजी नटनागर जी ॥ध्रु०॥
माथे मुकुट दूब हरि शोभे । गंड पे भवर शशीधरजी ॥भज०॥१॥
शेंदुर[2] अग चढावे भबुका । लपक तोंद गुण आकरजी ॥भज०॥२॥
फरशाकुश दौ[3] हात बिराजै । मोदक मिसरी तिजे[4] करजी ॥भज०॥३॥
सुमरत बिघन बिनाश करत है । चवथे कर देवत[5] बर जी ॥भज०॥४॥
चूहे पर देवनाथ दयालू । हंसत आवत निज जन गरजी ॥भज०॥५॥

पद शंकर पर

तुम देखो भाई । सब देवन को साई ॥ध्रु०॥
सिरपे जटाको है भार । वामो बहती गंगाधार ।
गरेमो लटकत भुजंगहार । भूतन की असनाई[6] ॥तुम०॥१॥
ज्याके अंक सोहत गौरा । मागत खाते भगधतूरा ।
तिसरा अखियन अगन उबारा । रखता ऐसी सुघराई ॥तुम०॥२॥
बुटेदार वघ्वबर पीला । तापे गजचर्मोबर गीला ।
गरसों गला बनो है नीला । वजावत डमरू की घाई ॥तुम०॥३॥
चिता को भस्म चढावत अग । उन्मनिमुद्रामों खुस रग ।
सुरमुनि पूजत गावत दग । ज्याकी कला नकल आई ॥तुम०॥४॥
दयालू देवनाथ[7] शिवभोला । वर देनेकू धड़ा भोला ।
दशभुज पंचानन पशुवाला । मुनि जनको यह सुखदाई ॥तुम०॥५॥

---

१. ऋद्धि । २. सिंदूर । ३. दो । ४. तीसरे । ५. देता है । ६. आशनाई (प्रेम) ।
७. ये अपने गुरु देवनाथ का नाम कभी अपने नाम के आगे और कभी पीछे लगाते हैं ।

पद नाममाहात्म्य पर

मोहे येही देनाजी । नंद लालाजी ! ॥ध्रु०॥
जपतप साधन कछु नहि जानूं । जपत रहूं नाम मालाजी ॥मोहे०॥
नामको महिमा कवन बखाने । भवको मिटावे जमघालाजी ॥मोहे०॥
नारद मुनि जन शुक सनकादिक । ज्याप जपे शिवभोलाजी ॥मोहे०॥
देवनाथ प्रभुनाथ दयाला । त्रिभुवन को प्रतिपालाजी ॥मोहे०॥

पद विठोबा पर

भज पंढरपुरवालाजी । बालाजी जगपालाजी ॥ध्रु०॥
कटपर कर बिटपर प्रभु थाडा[1] । शामबरन घन कालाजी ॥१॥
दाम खरचुआ कछु लगता नही । मुफत की तुलसी मालाजी ॥२॥
भागही सिरनी कछू ना जाने । चुकटी अबिर खुसियालाजी ॥३॥
ताल बजावत गावत निशदिन । ढोल मिरदंग करतालाजी ॥४॥
ऐसो भजनानन्द कहू नही । नहि देखा दध कालाजी ॥५॥
भीमातट देवनाथ दयाल। । नाचत फिरत मतवालाजी ॥६॥

पद विठोबा पर

राजनको महाराजधिराजा पंढरपूरमो ठाडे हो ॥ध्रु०॥
जगत जगदीस को भेदहरन हरचरन कमल दो जोरे हो ॥
मीथ्या माया कारण विटपे[2] यह प्रभुजी असवारे हो ॥राज०॥१॥
कटपर राखे हात निरंतर लागो काच्छ हमारे हो ।
बोलत[3] भव को थाह बतावत पतित अनंत उधारे हो ॥राज०॥२॥
भीमा तटपे नाथ दिगंवर आसा लागेही थाडे हो ।
मिलन अपने यहिये बतावत यह कारण दध च्योरे हो ॥राज०॥३॥
ब्रह्मानंद आनन्द भजनमो डोलत नंद दुल्हारे हो ।
देवनाथ दयाल अनाथ के घनकारे रखवारे हो ॥राज०॥४॥

पद

लेव खबरा हम्यारी[4] कुवर कह्याजी ॥ध्रु०॥
भवजलमो बुरतको[5] राखो । धन कन सुत महतारी ॥कु०॥१॥
हीन दीन पतित तुम तारे । गजगणिका व्यभिचारी ॥कु०॥२॥
नगन सभामो कौरव करते । राखी पाडव-नारी ॥कु०॥३॥
देवनाथ प्रभु दयाल आवे । दौरत कृष्ण मुरारी ॥कु०॥४॥

---

१. खड़ा है । २. ईंट पर । ३. बूडत । ४. हमारी । ५. बूडनेवाले को ।

पद नामस्मरण पर

श्रीगोपाल गोविंद गदाधर पल छ्न रट मन मेरे ।।ध्रु०।।
स्त्री भाई पिता महतारी । पूत सुता धन तेरे ।।
काम न आवे धाम सिद्धासन । अंतसमय जमद्वारे ।।श्री०।।१।।
नाम लेत बाल्मीक अजामिल । पशु गजकू उद्धारे ।श्री०।।२।।
गणिकाको निजधाम दयो तेरो । पापतो ये हर्‍यो रे ।।श्री०।।३।।
ध्रुव पहेलाद बिभीखन नारद । निसिदिनी नाम उचारे ।
व्यास बसिष्ठ शुकादि मुनिनको । नामही जन्मसुधारे ।।श्री०।।४।।
देवनाथ दयाल महा सब जनममरण दरवारे ।
भवसागरमो बुरत तोहे तुमशेच[1] हरी तारे ।।श्री०।।५।।

पद गुरु पर

गुरूके चरण चित लागाजी ।
लागाजी प्रित धागाजी ।। अनुरागाजी ।।गु०।।ध्रु०।।
गुरु किरपा अजन नैननमो । लेतही भवभ्रम भागाजी ।।गु०।।१।।
लाल सुफेद पर काला नीला । बोठा अबर बागाजी ।।गु०।।२।।
बामो पीत शिखा झमकत है । जोतहि झग नग जागाजी ।।गु०।।३।।
परब्रह्म देवनाथ दयाला । देखत भवभ्रम भागाजी ।।गु०।।४।।

पद गुरुस्तुति

गुरुपद पायाजी । अनुभव आया जी ।।ध्रु०।।
सदगुरूने जद किरपा कीयी चिदघनतक बिराजे ।
तन्मयछत्र विचित्र सुहावे अनुहत डंका वाजे ।।१।।
द्वैतदलनकरने मिलाया दैवीसंपतकौ जा ।
देखतही सबशत्रु मिटगये इस विध मै हूँ राजा ।।२।।
सारबिचारबिवेकसो नेमधरमसो जाने ।
मुक्ति निरतितूर्या सह मिल रहू, कीर वेद बखाने ।।३।।
भगत जगतमों मिलगये इसबिध, नामनिशान फडके ।
त्रिभुवनका सब खेल हमारा, जमकी छाती तडके ।।४।।
जगमगज्योत निरामय देखी क्या कहुँ अजब तमासा ।
देवनाथ प्रभुदयाल निरंजन झुले मस्त हमेशा ।।५।।

---

१. तुमने ही ।

पद बोध पर

हरि के चरण चितलागोरे। प्रभुके चरण चित लागोरे ॥ध्रु०॥
काहेके मातापिता और भाई काहेके पूत जमाता।
अंतसमयको कोउ नहिं अपना जमका दुख घन पायो ॥१॥
लालसफेद और कालानीला रंग में घुस घुस आवो।
पीतसिखा और दामन चमकत जोतमें जोत समाओ ॥२॥
देवनाथ प्रभुदयाल को भवती भावरी जावो।
जनममरन का डर नहिं बाबा जीवत मुक्ती पावो ॥३॥

पद कृष्ण-स्तुति

भजमन राधापत कान्हाजी।
कान्हाजी ब्रिजराणाजी। नन्दछोनाजी ॥ध्रु०॥
अटल वेहारी मुगुट शिरशोभे। कुंडल झलकत कान्हाजी ॥भज०।
पीत वसन कट राजत साजत। मालगले मोतियानाजी ॥भज०।
गोपिनसो झटपट खेलत है। छतियन गेंद धरानाजी। भज०॥
देवनाथ प्रभु दयाल जगको। कहत जसोमति तान्हाजी ॥भज०॥

पद प्रातःकाल का स्मरण

उठ प्रभातसमय जाग राधापन कान्हा ॥ध्रु०॥
गौवनको मेल वाल गोपनके अयहा।
बजत टाल मृदंग रंग मधुर राग वीना ॥उठ०॥१॥
पसुपत विधी नारदादि सनक भक्त सैना।
हात जोरकर विनती, दर्शन दिजै नैना ॥उठ०॥२॥
व्रिजके वाल उठ गोपाल नंदलालछोना।
देवनाथ प्रभु दयाल गावे जस ताना ॥उठ०॥३॥

पद गोपीविलाप

सुंदर नंदनदन प्यारे। दुःख दे गयो लोगनवा ॥ध्रु०॥
दहमो हरलू निकस भये तव सुख गो मृगजन वारे।
गोर लुगाई कहत हमारो कोन अव गोरस च्योरे ॥सु०॥१॥
रासमंडलमो कोन अव नाचे गोपीकूं सव घेरे।
कोन मृदंग वजावे वीना को रागणी ताल सवारे ॥सु०॥२॥

मोरा बालक कोन अब होवे सावरे नंद दुलारे ।
राधा पीटत छतिया रोवत लोटत कहत पुकारे ॥सु०॥३॥
जाय कदम पर लेकर बैठे कौन ये चीर मुरारे ।
जसुमति सुं कहु कौनकी बाता लेगयो प्राण हमारे ॥सु०॥४॥
लोटत पोटत ग्वालबाल सब कृष्ण हि नाम उचारे ।
देवनाथ प्रभु दयालु तुमने बिन मारे हम मारे ॥सु०॥५॥

पद गोप-गोपी-विलाप

कोनगत करू[1] मोरी माई । कहा धुडु[2] रे बालकवा । कोनगत ॥ध्रु०॥
खेलत कान्ह परो जमुनामो, वार्ता गोकुल आई ।
सुनतहिं गिर परी मात जसोदा सब मिलि गोप लुगाई ॥१॥
दौरत दौरत ग्वाल बाल सब, गऊ बछिया बन आई ।
पशु पंछी रोवत गिर परते, अश्रु की कीच मचाई ॥ कोन० ॥२॥
सोचत जसुमति पीटत छतिया, तोरत भाल गिराई ।
नद हि सोचत कहत प्राण की धनकी कोन बराई ॥ कोन० ॥३॥
पाछू-पाछू बालक मेरो, आगे चले बलभाई ।
आसपास ग्वालन के छोरे, शोभा वरन न जाई ॥ कोन० ॥४॥
पहेरे कौन मुगुट और अंगिया, वस्तर[3] डारो जराई ।
कोन पिवे मेरो दूध कन्हया मूरत शाम गवाई ॥ कोन० ॥५॥
सुदर सावरे कोमल तनु रे काले नाग ने खाई ।
सिर पटकत सब गोप ग्वालना अब क्या ब्रिज की बसाई ॥ कोन० ॥६॥
पुरब जनम को बहुबिध पातक गऊ बछिया बिछुराई ।
यह कारणमे यह दुःख सागर, मै डुब यह फल पाई ॥ कोन० ॥७॥
मेरो बालक मोहे बतावो, सब मिल भाई-भाई ।
तन मन धन पग उपर वारू साची राम दुहाई ॥ कोन० ॥८॥
दहमों हरजू फन पर चढ्रे[4] नाचत बहु सुगराई ।
नाथ्यो कालय बाहर आये सब लोगन के साई ॥ कोन० ॥९॥
देखत माता दौर कान्ह को प्रेमसो गरे लगाई ।
लेत गोदमो दूध पिलावत आनद भयो मनमाही ॥ कोन० ॥१०॥
गावत नाचत आनद करते सब मिल गोकुल आई ।
देवनाथ प्रभु दयाल देखत घर घर बजत बधाई ॥ कोन० ॥११॥

---

१. क्या उपाय करूँ ? २. ढूँढूँ । ३. वस्त्र । ४. चढ़े ।

पद कृष्ण पर

जरा हस हस वेणु बजाओजी ।
तुमे दुहाई नंद चरनकी ।। हस० ।।ध्रु०।।
लटपट पेच मुगुट पर छूटे । हसि आवत तोरे लटकन की ।।१।।
घुंघट खोल दरस मोहे दीजे । चोट चलावो नैना पलखन[1] की ।।२।।
सब बनिता बिरहन की मारी । बिसरि बिकल पल छन मनकी ।।३।।
मोरमुगुट पीताबर शोभे । चाल चलावो जैसी मटकन की ।।४।।
देवनाथ प्रभु दयाल तुम हो । आस लगी पद सुमरण की ।५।।

पद कृष्ण पर

कोई देखा देखा बनवारी जी ।।ध्रु०।।
मोर मुगुट के लटपट पेंच सो । कुडल की छब न्यारीजी ।।कोई०।।
इत राधा उत चंद्रावलि ले । बह्या पकर झकझोरीजी ।।कोई०।।
एक गोपीनकू चुबत छुअत । छतिया धरकी नारीजी ।।कोई०।।
देवनाथ प्रभु दयाल छबीला नटनागर गिरधारीजी ।।कोई०।।

पद कृष्ण पर

झुरमट खेलत बाके बिहारी ।।ध्रु०।।
धिमकित ताताधिमकित मदल चरण उठत अविकारी ।
ढोलक झालरि डफ धुमकत है बीन छतार करारी ।।
पायल घु घरू छुम-छुम नाचत शोले सह सहवारी ।
ततथै तथै एक सखी बोलत जमरही नाद सवारी ।।
तामो मुरली भोंतननननन सारिगमपधनिध भारी ।
कोयलकंठ की वठाकंठ (?) सो लपट-लपट ललकारी ।।
देवनाथ प्रभुनाथ दयाल की शुकोदिमुदे (?) आगोरी ।।झुरमुट।।

पद कृष्ण पर

मोहे मिला नंद का ओ लाला ।।मोहे०।।ध्रु०।।
गोपी जू गोपी जू गोपी जू बनसीबट के तले बजावत ओ[2] थाहा[3] ।।
लटपट पेच मुगुट अलबेला । नाचत छेल छबीला ।।बजा०।।२।।
घु घट वामो चोट चलावे नैनन करत न्याहाल[4] ।।बजा० ।।३।।
पीत वसन कट राजत साजत । गरे मोतन की माला ।।बजा०।।४।।
श्याम मुरत देवनाथ दयालू । अखियन करत उजाला ।।बजा०।।५।।

१. पलकों की । २. वह । ३. खड़ा । ४. निहाल ।

पद कृष्ण पर

किसन के चरणन की बलिहारी ।।ध्रु० ।
मोरमुकुट पितांबर सोभे । कुंडल की छब न्यारी ।।कि०।।१।।
बिंद्राबन के कुंज गलिन मो । खेलत राधा प्यारी ।।कि०।।२।।
जमुना के निर तिर[1] धेनु चरावे बासरी बजावे नद प्यारी ।।कि०।।३।।
देवनाथ प्रभु दयालु छबीला । नटनागर गिरधारी ।।कि०।।४।।

पद कृष्ण पर

तू बजावेगी कैसी बासरी[2] अलबेली, तूं जसोमती छोरी ।।ध्रु०।।
एक गोपीनें मुगुट लिया है, एक सखी ले गई पामरी ।।
एक मुरली करकी ले भागी, एक मोतनमाला तोरी ।।तू०।।१।।
पीतांबर एक सखी ले गई, आस पास सब दे दे तारी ।
सरस बनी है नंद की लरकी, कहत खिजावत सब नारी ।।तूं०।।२।।
राधाजू के चरण कमल पर, सीस नमाओ करजोरी ।
तब छोरू देवनाथ दयालू, कहो तुम जीते हम हारी ।।तू० ।।३।।

पद कृष्ण पर

खेलुंगी आज मैं होरी । प्रभुनाथ जी सग ।।ध्रु०।।
रूप भयो जग मो हे अनुपम, जाऊँगी हू बलहारी ।।१।।
ग्यान गुलाल और ध्यान अबिरकी, हात लयी भरजोरी ।।२।।
आतम रंग सवाई सो मारू, प्रेम भरी पिचकारी ।।३।।
देवनाथ प्रभु नाथदयालसो कबहुं न रहुंगी न्यारी ।।४।।

पद कृष्ण पर

घागरिया[3] उतारोरे बनवारी । तेरी सुरतपै वारी ।।ध्रु०।।
मै जमुनाजल भरन जाति थी । बीच मिले गिरधारी ।।धा०।।१।।
घगरि फूट गई चुनरि भीज गई । सास नणद दे गारी ।।धा०।।२।।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छब । चरण कमल बलहारी ।।धा०।।३।।
देवनाथ प्रभु दयाल तुमहो । हमसो करत बरजोरी ।।धा०।।४।।

---

१. नीर-तीर । २. बांसुरी । ३. गगरिया ।

पद कृष्ण पर

मत मत फार चुनरिया हमारी।
जारे जारे आवे सास बुरीमारी ॥ध्रु०॥
कुलकी लाज सगरि गमाई।
तन कापत मत घेर कन्हाई ॥१॥
तूं नहि मानत बात हमारी।
तूं मत फार चुनरिया हमारी ॥२॥
दइमारे तुज लाज न आवे।
माखन मागत हात पसारी ॥३॥
तूं थइ थइ नाचत कहे बलहारी।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण जब।
कहुँ तुम जीते हम प्रभु हारी ॥४॥

पद कृष्ण पर

गोकुलके धन धन भाग री। बखान न ज्याय सुन बुध[1] प्यारी ॥ध्रु०॥
पारब्रह्मको लेले गोदमो दूध पिलावत नागरी।
अस्तुत वेद विरंची गावत। धन जसुमती अनुरागरी ॥१॥
निरखत निरखत मुख को माता। हो गई सात्विक अंगरी।
कान्हा पुछत माताको पुलकित भई कै तैसी गुजरी ॥२॥
वदनकंज कोमलहूँ देखत खाई मुख बुध भगरी।
सो मुख मोहे बतावो माता डारत भूपर अगरी। ३॥
जसुमती कहत सुनो धन मूरत हमारे भागको रंगरी।
देवनाथ दयालू कैसे पावेंगे तुट नागरी ॥४॥

पद कृष्ण पर

अखिया हरि दरशन सो अटकी ॥ध्रु०॥
डार दई उधो नंद जसोदा ग्वालन की प्रीत पटकी ॥धा०॥१॥
बावरी भई सब लोक गुलाई। हरिबिन बनबन भटकी ।अ०॥
वह कुबरीने चंदन चर्चो। शाम मुरत वाहा लटकी ॥अ०॥३॥
सुन्दर लछमी सेवत पगको। सो सेवत पग वटकी ॥अ०॥४॥
च्यामके दाम चलावे सौकन[2]। गोपियन मो हरे खटकी ॥अ०॥५॥
नंदनदन उधो आन मिलावो। काछ कछी पीत पटकी ॥अ०॥६॥
देवनाथ प्रभु दयालु वा बिन। मन लगी सुमरन रटकी ॥अ०॥७॥

---

१. सुन, बुद्धि से बखाना नहीं जाता। २. सौत।

पद कृष्ण पर

भज भज साधु छबिला नंदलाल ॥ध्रु०॥
घेर घेर सब बनिता पकरत । तोरत मोहनलाल ॥भ०॥ १॥
बीन वाद्य, मोरचंग, नफेरी, । गावे बजावे सुरताल ॥भ०॥२॥
लेव स्कंधपर राधाप्यारी । देवनाथ दयाल ॥भ०॥३॥

पद उद्धव गोपी-संवाद

ल्यावो बनवारी उधो, ल्यावो बनवारी ॥ध्रु०॥
प्रेम कट्टयारी तूं काहेकु मारी कहियो बात हमारी ।
जसोमतीनदन ममता छोड़ी प्रीत लगी वाकू कुब्रीरे ॥ल्यावो०॥
घायल घूमे घायसो करे न चित मन बोध ।
लहु [1] नयना टपकते बिसरगई सब सुद [2] । ल्यावो०॥२॥
रूपहीन कुलजातकी प्रीत करे नंदलाल ।
गोपिन मोहरे डारके चाम चलावत ब्रिजबाल । ल्यावो०॥३॥
करत करि बिसरत बुरि येहि देही येहि रीत ।
किन सुख पायो ये सखि परदेसन की प्रीत ॥ल्यावो०॥४॥
उधो कहो व्हा जायके मरगई गोपी ग्वाल ।
एकबार तुम छचियो [3] अमृत जसोमतीपाल ॥ल्यावो०॥५॥
वा कुब्रीने चदन चर्चो जादूही कर डारी ।
देवनाथ प्रभुनाथ दयालु बिन मारे हमें मारी ॥ल्यावो०॥६॥

पद कृष्ण पर

तुम देखो भय्या । मुरली को वजवय्या ॥ध्रु०॥
मोर मुगुटकी लटपट न्यारी । गरेंसो लपटी राधा प्यारी ।
कुडल सोहवे [4] बनवारी । देखे गोपी कन्हया ॥तुम०॥१॥
गरेमो सोहत है वनमाला । पीताबर प्रभु नूपुरवाला ।
रास रसे नाचे अलवेला । पकरत गोपिनकी बहय्या ॥तुम०॥२॥
झटपट खेलत चुब्रत कान्हा । छतिया छुवावत्त गावत तान ।
जमुनातट में श्रीभगवान । क्रीडत ब्रिजको वसवय्या ॥तुम०॥३॥
दयालू देवनाथ अलवेला माथे ब्रिजनारी का मेला ।
कुजनवन मो करत किलोला । मुनिजन गावत जगसय्या [5] ॥तुम०॥४॥

---

१. लोहू २ सुधि ३. सींचो ४ शोभा देता है । ५. जग का स्वामी ।

पद कृष्ण पर

शाम सो लगाई प्रीत और न ज्यानो[1] उधो
काहा तेरो ग्यान ध्यान । कांहा करत है बखान ।
जदुपत सो हमारो प्राण । वहै गयो है सुधो ॥शाम०॥१॥
शाम सुन्दर सगुण ध्यान । तापरसो वारो प्राण ।
घरहि राखो ब्रह्मज्ञान । हमसे काहा बोधो ॥शाम०॥२॥
कमलापत कमलनयन अधरत बजावे बैन ।
छतियापे दिन रयन । खेलत यो माधो ॥शाम०॥३॥
देवनाथ प्रभु दयाल । कियो हमारो ऐसे हाल ।
मथुरा मो है खुशाल । बैठे लाल यारो ॥शाम०॥४॥

---

१. जानूँ ।

गुलाबराव महाराज के पद

(१)

गुरु नाम सुधारस बाणि पिवै तब माल गलासु[1] रहै न रहै ।
जननी सब कामिनि को समुझै तब काज न नेम बहै न बहै ।
पिय की हिय में सच चोट लगी तब पौन उमंग गहै न गहै ।
मन ग्यानसुरेश कृपा बलतें मिलि है अपवर्ग चहै न चहै ।

(२)

निज तारन कारन शंभु कृपा निरखी जल गग भगीरथ तोखे ।
मिथिला नगरीमह राजसुता हिय मोद भयो यदु वल्लभ लेखे ।
जिमि भीमक जा हियमें हरखी गिरि नदिनि मंदिर गोविंद पेखे ।
तिमि मानस आज प्रसन्न भयो सखि ज्ञान सुरेश पदांबुज देखे ।

(३)

काहू के भावे मन आतम को ग्यान अति काहू के भावे मन जोग हठराज है ।
काहू के कर्मन की आस नित चित्त लगी काहू के मनमाहीं पंडित समाज है ।
काहू मन साज बाज काहू मन लाज काज काहू के मानस में सुदर सुखराज है ।
मैं गरीब हू अनाथ जोरि कहूं दोय हात ज्ञानदेव दीनानाथ मेरे शिरताज है ।

(४)

छाडि सब लाज काज राजसाज चालो आज देखिवे को कैसे सखि नयन ललचाये हैं ।
कोऊ ठाडे छतर धारे कोऊ वापे व्यजन वारे पालखी में पैठ मेरे ज्ञानराज आये हैं ।
कमलिनी लजाय रही कनक श्री जाय रही रसा हरखाय रही रसिली मिलाई है ।
पानी के प्रवाल की अरु मनि में के लाल की अरु कामिनो के गाल की सब सोभा भी भुलाई है ।
बिजुरी के सारी से कि सूरज धुरधारी से करिके सवारि छवि सारी हर लाई है ।
क्या राधिका तिलक झाकी ? नाही, नाही, सुन री सखि मेरे ज्ञानराय के पाय की ललाई है ।

1. गले में ।

(५)

हरि नित निज भक्तनके संग ॥धृ०॥
प्रेम द्वेष जानते नाहीं। देते मुक्ति अभंग ॥हरी नित ॥१॥
मीराको विष प्याला पीयो खेले गोपिनसंग ॥हरी नित ॥२॥
सूरदासको अखिया दीन्ही जनीके लिखे अभंग ॥हरी नित ॥३॥
एकनाथ घर नीर भरे प्रभु किसको चढावत तंग ॥हरी नित ॥४॥
ज्ञानेश्वरवाला गोपि हरी—साथ उडावत रंग ॥हरी नित ॥५॥
इस भाती जिन प्रभुकी महिमा वे गुरुनाथ हमारे।
अलकावतिपति[1] करुणा सुंदर कोटी पुण्य निहारे ॥१॥

(६)

मेरे प्रभुकी वलहारी है ॥धृ०॥
मेरे गुरुके आज्ञावचनतें। देवत्रयकी हुशिग्रारी है ॥मेरे प्रभुकी ॥१॥
मेरे गुरुके परमचरण की। मोरहि सीस सवारी है ॥मेरे प्रभुकी ॥२॥
जिनकी कृपाते कृष्णसंग मैं। खेलत नहिं भी हारी है ॥मेरे प्रभुकी॥३॥
ज्ञानेश्वरप्रभु सद्गुरु मोरे। तिन पग प्रीति हमारी है ॥मेरे प्रभु की ॥४॥

(७)

गुरुविन हरिगुन रंग न पावे ॥धृ०॥
हरीध्यानतें गुरु नहिं मिलते। गुरुसुमिरनतें हरि घर आवे ॥गु० ॥१॥
दुष्टको मारन भक्तन तारन। हरि अपने दिल भेद लखावे ॥गु० ॥२॥
गुरु दुर्जनकूं सुजन करतु है। हरिसों अधिक गुरुहि हिय भावे ॥गु० ॥३॥
विठ्ठलनंदनगुण विठ्ठल से। सज्जनवदन अधिकतम गावे ॥गु० ॥४॥

(८)

मेरी माधव चरण सु प्रीत ॥धृ०॥
जो चाहे सो मुकती धूंडे। मैं चाहूँ रति रीत। मेरी माधव ॥१॥
कठिन वचन यह जानति नहि हूं। सुलभनाम भक्तगीत। मेरी माधव ॥२॥
जहातक रागद्वेष नहि जावे। तहा तक भवभय नीत ॥मेरी माधव ॥३॥
ज्ञानेश्वर कन्यका विनति सुनि शामहि हृदय भरीत ॥मेरी माधव॥४॥

(९)

तिन चरणन पर प्रीति हमारी। मत पूछो संसृतिगत न्यारी ॥धृ०॥
जलदजालसम सुदर तनु है निसदिन हृदय ध्यावे त्रिपुरारी ॥तिन० ॥१॥
जनम देव ऋषि मनुख न जाने। लेवे चुंबन व्रज की नारी ॥तिन० ॥२॥
भ्राति रहित चितितरंगतनु जो। रास रचै जमुनाकि किनारी ॥तिन०॥३॥
श्रीज्ञानेश्वर दत्त मंत्र यह 'रामकृष्ण गोविंद मुरारी' ॥तिन चरणपर॥४॥

---

१. ज्ञानेश्वर।

(१०)

माई मोहे सावरिया की प्रीत ।धृ०।

रमण तनय धन सदन न जानू तजीं भवविभवरीत । माई मोहे ।१।।

तनु मन पवन कीन्हि चरणार्पण सुनिसुनि मुरली गीत । माई मोहे ।२।।

अलकावति पति सुता कान्त पद-पंकज मोद अमीत । माई मोहे ।३।।

(११)

मुख मुरली मोहन धारी । धृ०।

सुनत अवाज मोहि बस भये शचिपति बिधि त्रिपुरारी । मुख मुरली ।१।।

जपतप छोरि कुजबन धूडत तापस योगि बिचारी । मुख मुरली ।२।।

चारुचरण चरणते कुभिनी पावन भई है सारी । मुख मुरली ।३।।

अलंदिपति नदिनि मनहारी अनुहत खेल खिलारी । मुख मुरली ।४।।

(१२)

जदुराजचरनकी लागीरे । धृ०।

कामक्रोधमद लोभ रिपुनकी दुर्बल सेना भागीरे । जदुराज ।१।।

जहं जहं जाती तह मम मनको कमलावल्लभ बागीरे । जदुराज ।२।।

ज्ञानेश्वरजा जिनपग असुवन सींच रैनदिन जागी रे । जदुराज ।३ ।

(१३)

मोरी प्रभुपग लागी प्रीति । धृ०।

जप तप दान मनहि नहिं भावत जात निषिद्द बिहीत । मोरी ।१।।

ध्यान पकर करि जरा मिलाई कब पावोंगी रीत । मोरी ।२।।

अलकावति पतिसुता कातपग राखो सकल जिवीत । मोरी ।३।।

(१४)

मेरे तो तुमहि प्रभु प्राण के पियारे ।

कोउ पवन जवन धरत सुखवन मुख सारे । धृ०।।

करण नयन एक करी निरखत पिय प्यारे ।

जीव ब्रह्म एक करी कोउ चित्त झारे ।' मेरे ।१।।

व्रजराजतनुज चरणनख शरण हमारे ।

अलकावतिपतिनंदिनि[1] दिन रजनि पुकारे । मेरे ।२।।

(१५)

मन प्रित लागी रे रघुवरकी । धृ०।

वदन नयन टक लागी हरिसो मुनिजन सुरवरकी । मन प्रीत ।१।।

मन क्रम वचन नाम ही लेते देखत भव सुर की । मन प्रीत ।२।।

हिय भरि राखी नयनमाधुरी अलकावतिवरकी । मन प्रीत ।३।।

---

१ ज्ञानेश्वर की पुत्री ; गुलाबराव महाराज अपने को ज्ञानेश्वर की पुत्री मानते थे ।

(१६)

मम हिय शाम बसे । धृ०।

त्यजि सब काज निंद अपने घर । चरणन नयन फसे । मम हिय० ॥१॥
और दरशन दीखत नहिं कहु । शामहि शाम दिसे[1] । मम हिय० ॥२॥
ज्ञानेश्वर प्रभु निगम उजागर । चेतन सब बिलसे । मम हिय० ॥३॥

(१७)

माई मेरी हरिपगसो टक लागी । धृ०।

विखय प्रिय सब छोर दिये है । श्यामसुंदर पर भयी अनुरागी ॥१॥
रिद्धि सिद्धि यह बहत गयी सब । भये नयन असुवन के बिभागी ॥२॥
सब जग हासत रोवत हम है । रोना सुख जानतही जागी ॥३॥
ज्ञानेश्‍रप्रभुवचन श्रवणते । गोपिरमणसंग रतिरस पागी ॥४॥

(१८)

गोपीनाथ मिलनकी, साधु राहा बतावो । धृ०।

योग याग ये मायावनविच । कौनसि रीति सहज सिखावो ।१॥
सैली शिंगी मुद्रा पैनी । झोली लिइ कहा शाम[2] दिखावो ।२॥
छोर दार घर संप्रदाय लिन नाथन भइ अब नथनी दिलावो ।३॥
मंत्र जंत्र उखि को ही देके काम क्रोध यह शेर जलावो । ४॥
अमृत ओहि मोहे दान देव गुरु ज्ञानेश्वर हरि एक मिलावो । ५॥

(१६)

सुनिये मेरि पुकार माधव । धृ०।

औरनसे मैं जिकिर न करती जामें बहुत विकार माधव ॥१॥
नहिं चाहती हूं सायुजता मैं नहिं जोगकु अधिकार माधव० ॥२॥
ज्ञानेश्वरप्रभु करुणाबलतें तुम्हारे पग लगनार[3] माधव० ॥३।

(२०)

मेरी इतनी बात सुनो । धृ०।

आखी भर सपने मे तो भी रूप दिखावो अपनो ॥ मेरी इतनी ॥१॥
श्रीज्ञानेश्वर बाला विनती, प्रेम हृदय भरतो ॥ मेरी इतनी ॥२॥

(२१)

अब काई कहूं घरकी । धृ०।

पूत गेल खानको मागे चुनरी जोरु जरकी । अब काई ।१॥
देशाटन करि धनगेलन तें बुद्धिभयी चर की । अब काई ।२॥
गमत गमत नाम बिसारे तनु भयि जर्जर की । अब काई ।३॥

1. दिखाई देता है (मराठी) । २. श्याम । ३. लगूँगी (मराठी) ।

अंदरतो सब आभिलगी छपि छानहि उपर की ॥ अब काई ।४॥
याते मति अब व्याकुल भइ है न जानु इहवरकी । अब काई ।५॥
अलकावतिपति नदिनि बिनती सुन प्रभु जदुवर की । अब काई ।६॥

(२२)

मेरे हिय तुरत वसो साब शूलपाणी[1] ।
गंगाधर नदिवहन सदपवर्गदानी ॥ मेरे हिय । धृ०॥
जरतिहूं मैं चिंतानल पायी भवग्लानी ।
दीनकें दयाल तुमहि सकलहृदय ज्ञानी ॥ मेरे हिय ।१॥
हो बिरागि तदपि कीन्हि आधतनु भवानी ।
काहे कुमर छोरदियो वरविनु भयखानी ॥ मेरे ।२॥
जय गिरिजावल्लभगुरू जय करूणाखानी ।
ज्ञानेश्वररूप धरी राखो शिर पानी[2] ॥ मेरे ।३॥

(२३)

मेरी साह करो त्रिपुरारी । धृ०।
गिरिजावल्लभ भूतनके पति भूजगभूषणधारी ।१।
डुबि जारही भवसागरमो करिये उपाय गजारी ।२।
माया मगरी[3] पाय[4] पकरती जातैं शंभु पुकारी ।३।
ज्ञानेश्वरबालाकी बिनती होवे कात मुरारी ।४।

(२४)

नाथ मोरे आये भक्तनके काज । धृ०।
कोइ करे बहु करम जोग कोइ लेत साख्य को छाज ।१॥
कोइ कहे ब्रह्मही सनातन कोई ध्यावत मुनिराज ।२॥
हम तो उनके चरणन लपटी छोर मातपितु लाज ।३॥
ज्ञानेश्वर प्रभु दीनदयाल है हरिदायक गुरुराज ।४॥

(२५)

हरि मोरे सब सुखके दाता । धृ०।
और हमरा कोई नहिं जन मारूंगी संसार को लाता[5] ।१॥
कोइ मुझे तो जूति लगावत कोई शिरपे धरत है छाता ।२॥
कोई तो प्रेम से गुण मोरे गावत करत कोई तो दोख कि बात ।३॥
स्तुति अरु निंदा शब्दमात्र है मैं तो भई निःशब्द की ज्ञाता ।४॥
बर्णाश्रम यह विधिनिषेध को मैं तो कृष्णचरण धरू माथा ।५॥
ज्ञाननेश्वरकन्या सब जनको कह कर जोरि भजो रघुनाथा ।६॥

---

१. शंभु । २. हाथ । ३. मगर । ४. पैर । ५. लात का बहुवचन लाता (दक्खिनी हिन्दी)

(२६)

उठो पिया जागो प्रेमदान करन लागो । धृ०॥
रात दीन देख्या नही मनमे दौर आई ।
शान्ति छमा उया तीन साथ सखी लाई ॥ उठो पिया । १॥
कल तुमने वेणु बजा चित्त मोह लीयो ।
सुनि अवाज नौरि भई सदन छोर दियो ॥ उठो पिया । २॥
जैसे तेज माहिं सुरज एक बडो भासे ।
तैसा तेरा प्रेम ब्रह्मज्ञान हि हम चापे ॥ उठो पिया । ३॥
अलकावति पति नंदिनी कहती कर जोरी ।
मुक्त करो नाथ मोहे तारि सरम सारी ॥ उठो पिया । ४॥

(२७)

प्रभु विन कौन जगत मा तुह्मारा ॥धृ०॥
औरत चाहत नथनि जोड[1] को सुत चाहत दे सदन हमारा । प्रभुबिन ॥१॥
प्राणसयमन धीरे धीरे करो देहसो जान्यो आतमा न्यारा । प्रभुबिन ।२॥
श्रीगुरुआज्ञा एकहि पालो हरिरूप देखा मुक्त संसारा । प्रभुबिन ।३॥
तुमहम मिलके एक करेंगे प्रभु ज्ञानेश्वर चरण अधारा । प्रभुबिन ।४॥

(२८)

मोसूं न बोलना नदलाल । तुम तो दगलबाज[2] गोपाल । मोसूं १॥
मेरी आस तुमको नहीं हमे तुम्हारी आस ।
बनबन मैं धूडत प्रभू आई तुह्मरे पास ॥ मोसूं । २॥
और गोपी तुमकु प्रभु बहु प्यारी ब्रजमाहि ।
तिनघर सबदिन जात हो मो घर घडिभर नाहिं ॥ मोसूं । ३॥
एकदिन तुम ना गये तो नहिं बोलेंगी और ।
मम घर आने वर्ष भया है टेरत हो मन ठौर ॥ मोसूं । ४॥
आज तुम जो निकल गये तो कर पकरौगी दौर ।
अलकावति वल्लभ करुणावस खेलोंगी सुख भोर ॥ मोसूं । ५॥

(२९)

नहि रोना बेटा वृष्णि[3] पती नंदलाल । धृ०॥
तेरे कारन चलहि करोगी भगवद्धर्म सुकाल । नहि रोना वेटा । १ ॥
तेरे कारन भूमि ऊपर लरेंगी किसन महाल । नहिं रोना वेटा । २ ॥
जननि जननका सुनिके निकरा मनका सब वेहाल । नहिं रोना बेटा । ३ ॥
ज्ञानेश्वर प्रभु कन्या की तो पातिव्रत्यमय चाल । नहि रोना वेटा । ४ ॥

---

१. नाक-आभूषण [illegible] २. दगाबाज । ३. वृष्णी ।

(३०)

प्रभु तज मत जावो व्रजगोपी बावरीया होवेगी । धृ०॥
सास ननदा इन्हे देखकर अधिकहि गारी देवेगी ।
सो सुनि सुनि के ताप भया तब जमुना में मर जावेगी ।१॥
तुमही अपने मनमो देखो विचारिके नंदलाल ।
जब तुम गेथे[1] रासमंडल से कैस भयो थो हाल । २ ॥
फिर जो तुम आवें लवटे[2] तो नही दहीदुध देवेंगी ।
फिर जो मुरली नाथ बजाई तो बल ते छिन लेवेंगी । ३॥
तरुणी गोकुलमाहि बहुत है मथुरापुर में कोय ।
जिसके कारन भक्तिबिबसप्रिय गवन आपका होय । ४ ॥
यहा रहेंगे जदुपति तुम तो दूधदही नित लावेंगी ।
अरु अलकावतिपति करुणावल रतिरस सुरस पिलावेंगी । प्रभु तज । ५ ॥

(३१)

प्रभुजी अबसो मैं चीना ।धृ०।
यह गोकुल जोजार भया है सो सब तुम कीन्हा । प्रभुजी ॥१।
आप बडेके नदन होके यह क्या करलीना ॥ प्रभुजी ॥ २।
कहा गये हो औरत बन के कहा जबरी ली दीना । प्रभुजी ॥३।
अलकावतिपति करुणा बलवे तुम हो ब्रह्महृदय अस चीन्हा । प्रभुजी ॥४॥

(३२)

मै भई दिवानी श्याम । धृ०।
बाला कहती पतिनाम सुमर तो आवत घनश्याम । मैं भई । १॥
सास ससुर को गोता देकर धुडति हू बनधाम । मैं भई । २॥
अलकावतिपति बचन यही है लेना व्रजवरनाम । मै भई । ३॥

(३३)

बंसी बाजे झननन सुमधुर ।धृ०।
श्रवण सुनत मै बावरि भइ हू डारे धननदन रमणदूर । बसी बाजे । १॥
सुनत अवाज काम कोपरिपू प्रेम कटक वस मरि होत चूर । बसी बाजे । २॥
सुंदर श्याम चरण दग निरखी हिय मे बाढा अनुराग पूर । बसी बाजे । ३॥
दोनो मिलिके ज्ञानेश्वर गुण गाऊं लगाय अनाहत सूर । बसी बाजे । ४॥

---

१ गये थे । २ लौटे ।

(३४)

मै भयी दिवानी श्याम ।धृत०।
तोर मुरली की धून सुनत सब तनुभर उबरा काम ।। मै भयी । १।।
घरबार की कुछ सूद[1] ना रही अकल गुंडा बेकाम । मै भयी । २।।
वृन्दावन मो आइ अकेली तजि निज पति सुत ग्राम । मै भयी । ३।।
सुरत सावली देख तेहारी दिलकु लगा आराम । मै भयी । ४।।
तुह्मरा हमरा यहि नेह बढे ले ज्ञानेश्वर नाम मै भयी । ५।।

(३५)

मैया तेरे वालेने मोहनि डारी ।धृ०।
जाती थी जमुना जल भरन को रंग पिचकारी मारी । मैया तेरे । १।
घर जंगल सब एक दिखत है भूल गयी सुध ह्मारी । मैया तेरे । २।
ज्ञानेश्वर की कन्या हूं मै भई श्रीहरि की नारी । मैया तेरे । ३।

(३६)

जमुना तीर खड़ी ।।धृ०।।
मै हुं अकेली ग्वालन अबला तुम्हरे बहुत गडी । जमुना तीर । १।।
तुम हो लरके नंदजी लाला मै हूं तुमसु वडी । जमुना तीर । २।।
कोई छोट वडा न जाके लई काम सगडी । जमुना तीर । ३।।
ज्ञानेश्वरकन्या श्रीहरी को प्रेम प्रसाद अडी । जमुना तीर । ४।।

(३७)

छोरो मेरा अंबर जदुवर मथुरा जाति बजार ।१।।
तुम हो प्रभुजी पुत्र वडों के कस लीना आचार ।२।।
धूंगी[2] प्यारे दहिदुध तुमको छोरो चुनरिकिनार[3] ।३।।
सास मुझे गारी देवेगी विच्छूसम भरतार ।४।।
ज्ञानेश्वरकन्या डर तजके लेती हरि सुखसार ।५।।

(३८)

जागो ना प्यारे निद लेवो नंदलाल ।धृ०।
जगनेका अभ्यास नहीं है अखिया हो गई लाल । निंद लेवो । १।।
खेलत खेलत गोपिनसो प्रभु उख गई फुलमाल । निंद लेवो । २।।
रात भई प्रभु दोन[4] पहर अब कल खेलन को काल । निंद लेवो । ३।।
ज्ञानेश्वरकन्याकी विनती सुनो कान गोपाल । निंद लेवो । ४।।

---

१. सुध । २. दूंगी । ३. चुनरी का छोर । ४. दो (मराठी) ।

(३९)

मोरे किते गये दोउ लाल ।धृ०।
देख्यो न उन्हें जगत पसाप्यो आठ बरस के बाल । मोरे । १॥
नहिं पहनाई मोतन लरिया खुषि में ले बनमाल । मोरे । २॥
ज्ञानेश्वर तुम्हरे बेटिन के असुवन भीगत गाल । मोरे । ३॥

(४०)

वेणू क्यूं न बजावे । प्यारा । धृ०॥
सगरि रयन मम बिरह जे हरते । तडफ तडफ जिया जावे । प्यारा । १॥

(४१)

माई तेरे बाले ने मुरली बजाई ॥धृ०॥
सोती थी मै अपने पियसंग श्रवण मधुर धुनि आई । माई तेरे । १॥
उस मुरली की सात ध्वनि दश नाद को देत हटाई । माई तेरे । २॥
ज्ञानेश्वर की कन्या हूँ मैं तो भि सुनत भुल जाई । भाई तेरे । ३॥

(४२)

हरि तब खेलत जमुना तीर ॥धृ०॥
प्यारी प्यारी मुखसों कहत है नयनन झरपत नीर । हरि तव । १॥
प्रिया आवेगी कौन दिशा ते गगन उडावत चीर । हरि तव । २॥
ज्ञानेश्वर कन्यका प्रेम का हरि हिय लागा तीर । हरि तव । ३॥

(४३)

प्यारे मेरे नाहिं मिले सब रात ॥धृ०॥
डारा न मुझे कबनि[1] अकेला जब से लाइ बरात[2] । प्यारे मेरे । १॥
मेरेबिन वो प्रभू अकेले किस करेंगे बात । प्यारे मेरे । २॥
रहा देखते भवर[3] भई है दहा[4] जरे शित[5] वात । प्यारे मेरे। ३॥
दिन भर तो कचरि में रहेंगे बैठे जह नंदलाल । प्यारे मेरे । ४॥
ज्ञानेश्वरजामात बिना मम अखियन लगत न पात । प्यारे मेरे । ५॥

(४४)

देरी मत करजो । धृ० । उधोजी ॥
जो होये तो हेता सिखावहु नहिंतो वाके पाव पकरिजो । देरी । १॥
जैसा मोको देखत तूं यहाँ तैसा वाके हृदय नि हरिजो । देरी । २॥
संतचरन की धूरि सीस पर धरी भव विभव हरिजो । देरी । ३॥
अलकावतिपति बाला प्रेमल तिनका भजन मग्न वरिजो । देरी । ४॥

---

१. कभी भी । २. विवाह किया । ३. भोर । ४. जलाती है । ५. ठंडी ।

(४५)

कान्हा ये मुरली न बजावो । धृ०।
सास हमारी गारि देत प्रभु तुम अपने घर जावो । कान्हा । १।।
कुल छुराय के चार लोक में प्रभु मोहे न लजावो । कान्हा ये । २।।
ज्ञानेश्वर करुणा कर कहके निज पग नख सुपुजावो । कान्हा ये । ३।।

(४६)

ये इक मो मन अचरज आवे । धृ० ।
निगम न गाई सके गुण जिनके सो जसुमति का मग संग खावे । १।।
तपनु तपत मुनिगन जिन कारन सो कूंजन में युवति बुलावे । २।।
ज्ञानेश्वर गुरु चरण कृपा एक प्रेमल मनमों शाम मिलावे । ३।।

(४७)

यहि हेतु किह भेजो तोहे । धृ०।
तजि सुधारस भोजन कारन कौन मूढ श्रमि सोहे । १।।
कहकह उद्धव ब्रह्मरुप तूं विन सगुण किधो लोहे । २।।
लेतहि नाम पदारथ को नहिं शान्ति क्षुधा कब लाहे । ३।।
श्री अलकावतिपतिनंदिनि तो शाम चरण एक चाहे । ४।।

(४८)

शाम विन गोकुल प्रेत समान ।धृ।
जाते थे प्रभु वृन्दावन जब तब नवत तरू कमान । शामविन । १।।
गोकुल थे तब लों नहिं बूझे व्रजजम करि अभिमान । शामविन । २।।
हालाहल जल जमुना जी को कीन्हों अमृत समान । शामविन । ३।।
व्रज युवती अति व्याकुल मति भइ छोरि मोह मदमान , शामविन । ४।।
अलकावति पति नदिनी राजत कृष्ण चरण नख मान । शामविन । ५।।

(५०)

बतावो माई कौन बन रघुबीर ।धृ०।
हात धनुखशर लेले बनमो चालत निज पद धीर ।१।।
देखत नयनन तरु गन तारे मुक्ति दिई पुनि चीर ।२।।
तरूवर तुम सब मुनिगन हो यह करते पान समीर ।३।।
तपकरि करि राम को बुलाये वनि अपवर्गनिधीर ।४।।
शामतनू रघुपति लछुमन का सुंदर गौर शरीर ।५।।
श्री ज्ञानेश्वर बाला हरिपग राखति प्रेम सुशीर ।६।।

(५१)

साधुराम पीवो अमृतधारा ।।धृ०।।
आदौ क्रिया तालव्य करो जिव्हा बद से न्यारा । साधुराम ।१।।
तालुस्थान में जीभ लगाके शिर बिच प्राण पठारा । साधुराम ।२।।
नयन भ्रुकुटिमों उलट पठाऊं सोम भवन निकारा । साधुराम ।३।।
उस धारा के सुख में देखा देहते आत्मा न्यारा । साधुराम ।४।।
जहं तक सोम रहे कायामों तहंलो न काल का घेरा । साधुराम ।५।।
ज्ञानेश्वर प्रभु एक पकरिके जोग तजूं नी बारा । साधुराम ।६।।

प्रभात का पद

जागोलाला भवर[1] भई । धृ०।
उठिं ग्वालन सीस घगरिया धरीं पनघट सबहि गयी । जागो ।१।।
सुतिलक करिके सेवन करिये सक्कर दूध दहीं । जागो ।२।।
अलकावति पति चरण सरोरुह—सत्ता सकल सही । जागो ।३।।

(२)

लाज लई मेरी । शाम तुम ।
मैं अपने घर बैठि अकेली मुरलि नहक टेरी । शाम तुम ।१।।
मनमों पेखि अबल सुध तुझे ताते फासि परी । शाम तुम ।२।।
गावत बेद सो झूठ भया आज राग तुझ न व्हैरी । शाम तुम ।३।।
अलकावति पति चरण निकट अब बात कहू सारी । शाम तुम ।४।।

---

१. भोर ।

(ब) विरह-पद

कौन गली सखि शाम । धृ०।
उनको मिलन विने नहिं मोरे पल दिलमो आराम । कौन गली ।१।।
छिन छिन नयन नीर भरि आवहि सूझत नहिं वेकाम । कौन गली ।२।।
श्याम मिलन सदुपाय करति हु ले ज्ञानेश्वर नाम । कौन गली ।३।।

× × × ×

पियविन मोहे और न कोई ।।धृ०।।
जहा जहा जाती तहा तहा हरि को सुमिरति हूं मन माही ।।१।।
घर घर धूंड तलास कियो तभि[1] मुरहर[2] मिलत नाहीं ।।२।।
ज्ञानेश्वर करुणाधन बलधर आवेंगे फणिशाई ।।३।।

(२)

प्रभु मैं नहिं हूं चतुर सुनारी । धृ०।
अति अज्ञान बिवस दी होगी कभी आपको मुखतें गारी ।।१।।
घर ते मुझे निकार जो दीने तो सोऊंगि जमुना के किनारी ।।२।।
अलकावति पति तात भले हैं। तिनकि जानि राखो पुतनारी ।।३।।

पौराणिक पद

सुत तैं कहा देखे प्रभुराम ।।धृ०।।
लछमन को मैं नहि सो बोली भर पाई कृति वाम ।सुत तैं ।१।।
रघुविर वर नर तूं तो बानर कैस करेंगा काम ।सुत तैं ।२।।
जाकर कह रघुनायक चरना मोंकु लिजाओ धाम ।सुत तैं ।३।।
मारुति बोले सुन जननी तूं सुमिर अलंदिप नाम ।सुत तैं ।४।।

---

१. लोभी । २. मुरारी ।

गुंडा केशव के पद

दील्ल बुज्य दोहरे

(१) भगल्ल[1] बेगल्ल[2] जींदगाणि दो दिन्न की ।
इसी मो गरक याद भुला अहल्ल[3] की ।।
आया मै काहा से काहा ज्याउंगा ।
खबरदार गुंडे आहिल्लगा ।
भरा है ज्यमीं आसमानि[4] ज्याहाणू[5] ।
कहे दास गुंडे उसकु पछयाणू ।।
ज्यगत का धनि येक साहिब सही है ।
निरंज्यन निरंकार ज्योती भरी है ।।
समज्य[6] कर करो बंदगी पाख[7] दिल्ल से ।
इसिसे[8] नफा बुझ बेहतर अकल से ।।
झुटा देख संसार गाफिल्ल फंसे कौं[9] ।
मगन प्रेम गुंडे धन से भुला कौं[10] ।
ज्यमी और ज्यमा आसमाना कीया ।
तिन्हीलोक का साच्य साहेब पीया ।।
बिनाधार डेरा खड़ा आसमान ।
करम बच्च गुंडे उसी से ईमान ।।

(२) सपन्न[11] सि ये दौलत, भुला है ज्याहान ।
आखर कुं दगा ज्याग[12] हिरदे सुभान ।।
बुरि[13] मार ज्य[14] की हुसीयार हिरदै ।
कहत्दास गुंडे आवल[15] काम कर्दे[16] ।।

---

१. भागती हुई । २. बेगवान । ३. मालिक । ४. आसमान । ५. जहान । ६. समझ । ७. पाक (पवित्र) । ८. इसीसे । ९. क्यों । १०. क्यों । ११. स्वप्नसी । १२. जाग । १३. बुरी । १४. जम (यम) । १५. अव्वल (पहले) । १६. कर दे ।

येकीन[1] खुब साबुत नियते[2] धरो।
आपस कूं आपस मो उज्याला करो॥
आया नुर दिदार सारा तमाम।
उलट दास गुंडे लगन्न से आराम॥
खुदा कुं बुझया सो ही जीदा[3] फकीर।

वजुद[4] पाख दिल्ल से लगन्न से जीकिर[5]॥
च्यढा[6] प्रेम धागे गगन्न देहरे।
सो ही मस्त गुंडे आलख हाजरे[6]॥
सुनो राम रहीमान येकी हीसाब।

आकल से तहकीक गुरो मुख किताब॥
हिंदू और मुसल्लमान कर्तार बुझ।
सोही मस्त गुंडे साहेब रिझ॥
न हींदु मुसल्लमान कर्तार जी।
न जोगी न ज्यंगम आसल्ल[8] धाख[9] जी॥
जीसी का कीया सब अठारा बरण[10]।
बरण से ज्युदा बुज्य गुंडे रतण[11]॥

तिन्हों लोक का साच्य[12] साहेब रतण
आज्याति[13] मेहरबन्न हीरदे ल्लमण॥
नही ज्यात ना पात सबसे ज्युदा।
ज्यगत में भरा सुभय[14] गुंडे खुदा॥

गरिबन्नवाई[15] खुदा का करम[16]।
बुझुयो हो बुझूयो ज्यात[17] खासा जनम॥
कमाई करो प्रेम दिल्ल बिच धनि।
हुसीयार गुडे गगन मो गनि[18]॥
पत्तर[19] कुं पुज्ये मुरख हीदू गंव्हार।
पत्तर जीसने पैदा कीया सो बिचार॥
जामि और सब कुच्य[20] जीसी[21] का बनाव।
देवन का बड़ा देव गुंडे ही[22] लाव॥

---

१. यकीन। २. नीयत। ३. जिन्दा (जीवित)। ४. शरीर। ५. जिक्र (स्मरण) ६. खड़ा। ७. अलख (ब्रह्म) के सम्मुख। ८ असल। ९. धाक। १०. वर्ण (जाति)। ११. वर्णों से पृथक् जो श्रेष्ठ रत्न है उसे पहचान। १२. सच्चा। १३. आ जाती। १४. ढूंढ, पहचान। १५. दीनों का पालन। १६. काम। २७. जा रहा है। १८. गनो (बहुत बड़ा बनो)। १९. पत्थर। २०. कुछ। २१. जिस। २२. हृदय (में)।

पद ख्याल

बुझीयो साहेब लाल गुपाल । (ध्रुपद)
लेवो कोई हीरदे भरिया, मेहरबक्ष कमाल ॥

देखत अंधि दुनिया बहके, तन मन ज्याको ख्याल ।
झुठी माया फसणा वाजव नहीं बे दिखता काल ॥
साध समागम की ज्यो मुठी मीटे भव ज्यंजाल ।
गुंडा केशो साध दया से जनम मरण मेटाल[1] ॥

आराधो त्रीजग नाथ गुंसाई ।
गरिब नवाज्य क्रीपाल हिनोके[2] पग च्युमत[3] सुख पाई ।

निज बोध मो गुग हमेशा, प्रेम खुमारी आई ।
सुफल.ज्यनम ज्याके पग सुख पाये, पुरब जनम कमाई ॥
गुडा केशो मेहर धनि की, ये दिल्ल कु आज्यमाई[4] ॥

मुसलमान महजीत मो रबसे ईमान ।
तहकिक बुझुयो दिल्ल महजीद बयान[5] ॥
सकल ठौर चिड़ी ज्यनाबर[6] में आप ।
कहत दास गुंडे तोरो मोही[7] ज्याप ॥

ख्याल

लगी है प्रेम लगन कि याद ।
पीया बिन जीयेरा केकर जीये,
खुदस्ते बूनियाद ॥
मेहरबक्ष दयाल अजीज[8] कुं,
और न ज्यानु वादा ॥
गुडा केशो प्रेम दील्लंया,
तेरी खाने ज्यादा ॥

---

१. मेटाल-मिटेगा (पाण्डुलिपि में अक्षर स्पष्ट नहीं हैं)। २. इनके। ३. चूमत। ४. हृदय ने यह परख लिया है कि धनी (परमात्मा) की उसपर कृपा है। ५ सच पूछो तो दिल ही मस्जिद है। ६. जानवर, प्राणी। ७. तुझमें और मुझमें। ८, दीन।

ख्याल

हुआ है मनुआ सब तिरथ सपडा[१] ।
सकल तिरथ को आद गुंसाई,
वाकु लगन ज्यड़ा[२] ॥
भटकत कोण फीरे दिल्ल ज्यामे,
गुरुमुख भ्रम निबड़ा ।
वेहाली मो मस्त सदा है,
सब तन प्रेम गड़ा ॥
केशोदास येकीन साबुत से,
हिरदे खूब[३] खड़ा ॥

साधो गरिब निवाज्य वडे हैं । (धुन)
ज्याको करम सकल सुख पाया, आटल खंब खड़े हैं ॥
पतित पावन साच्य गुसइया, आलख गगन अड़े हैं ।
पिरणपियारे[४] आजीज उधारे लालसे (?) ख्याल ज्यड़े हैं ॥
मस्त सदा झुलती ज्यों कुंज्यान प्रेम महक की मोगडे[५] हैं ।
गुंडा केशो करम तिहारो साहेब शोखलीड़े[६] हैं ॥
× × × ×

मश्कुल्ल[७] दिल्ल खुलाया ।
दरवाज्या उलट कें ज्याना, येह मोकुं सिखलायो[८] ॥

आरति

करले आरति अलख निरंजन ।
सब घट पुरण भव मये भंज्यन ॥
पहीली आरति आपकुं पछ्यानो ।
आप ही आप मो आप समानो ॥
दूसरि आरति दोऊंन ही बुझ्या ।
येक अनेक मो साहेब से रिझ्या ॥
तिसरि आरति त्रीगुण से न्यारा ।
अनुहाद बज्यत[९] गैवि[१०] नगारा ॥

---

१. तीर्थ में स्नान किया। २. बड़ी लगी। ३. परमात्मा। ४. प्राणप्यारे। (?) पांडुलिपि (ख्याल अर्थात् परमात्मा से मन लगा है) में स्पष्ट नहीं है। ५. मोगरा (एक फूल) ६. ढीठ ७. मश्किल? मन "पाण्डुलिपि का पृष्ठ खंडित है। ८. कुंडलिनी-योग मुझे सिखाया। ९. अनाहत नाद-मूलाधार के ऊपर स्थित सर्पाकृति-कुंडलिनी जागृत होकर जब सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से ब्रह्म-रंध्र की ओर चढ़ती है तब यह नाद सुन पड़ता है। १०. गैबी (परोक्ष संबंधी)।

च्यवथी[1] आरति च्यारयो हि डारो ।
गगन मंडल मो शेज[2] सव्हारौ[3] ॥

पाचवि आरति उन्मन निद्रा[4] ।
गुडा केशो आव्वल[5] मुद्रा ।
प्रभुजी सब घट माहे[6] समान[7] ।
तुम बिन खाली ठौर नहीं बे, भरपूर ज्यमी आसमान ।
सब ही व्यापे होकर न्यारो, बुझीये हो गुरु ग्यान ॥

प्रकट निरंज्यन दिलबिच साच्या[8] प्रेम लगन से ज्यान[9]
गुंडा केशो पुरण कमाई ठाकुर से दिल्ल[10] मान ।
ज्यये[11] बोलो रामजी कि वैरागण साची[12] बाला ।
ग्यान केथा पहेरुं प्रेम की शाला ।
विच्यार कुंडल कानो गुरनाम कठिमाला
तिलक सोहत माथो राम ज्यु[13] लाला
लगन जुगतु पाई मगन उदास फीरो
काम राग याकुं गुरोमुख चीरो
गोच्यर मुद्रा सुहावे भया
ज्यये गावे गुंडा केशो रामा सय्या ।

वैरागणी

अंतर राम वाला, बहिर राम साती
त्रिकुट भू बन देखुं उलटह ज्योती[14]
वैरागण प्रेम प्यारी वितरागी हु तो
राम हि राम देखों त्रिभुवन
तन मन राम भावे, नयन झरोखे बाला
पूरव कमाई कहुं ' उज्यीला
सूफल ज्यनम खासो गुंडा केशो
ज्यये बोलो रामजी की हिरदे प्यारा ।

---

१. चौथी । २. सेज । ३. संवारो (गगन मंडल में सेज पिया की किस विधि मिलणा होय-मीरा) । ४. समाधि की एक अवस्था, कबीर में 'उन्मनि' का प्रचुर प्रयोग है । ५. श्रेष्ठ । ६. मध्य (में) । ७. सबघट में समाया हुआ है । ८. सच्चा । ९. जान (पहचान) । १०. दिल । ११. जय । १२. सच्ची । १३. रामजू । १४. त्रिकुटी मध्य दृष्टि कर ब्रह्मज्योति-दर्शन की योग-साधना।''''पाण्डुलिपि के पृष्ठ खण्डित हैं ।

प्रभुजी तुम मेरो ज्यजमान
अदणा[1] ब्राह्मण तोरो भीकारि,[2] तोकुं सब अभिमान
दिन दयाल क्रीपा कर मोकुं, होते क्या है गुमान
त्रिजग के तुम ठाकुर दाता, भक्तन को सुख मान
गुडा केशो गरिब नवाज्यो, साहेब दिल्ल ईमान

× × × ×

हम तो दास गुरु के नाथ उपासी
त्रीजग को आदिनाथ गोसाई, हर घट हिरदे बिलासी
आलख ज्यगत गुर सब का राज्य का, जीये का जीये सुखासी
गुंडा केशो लगन मगन सो ...प्रेम गई खासी
अंदर खुदा बाहेर खुदा खुदा बुझ्यो भाई।
प्रेम झरोखे लेत मुज्यरा पकडो लागन्न कोई
खूब दिल्ल को प्यारा, बनि[3] जी सबूब से न्यारा
बुझले दादा सुझले भाई, असल्ल नफा सारा।

ख्याल

व्यातुर[4] ज्यानत प्रेम मे मन कि
हिरे[5] की पारख सहज दिखावे
काहे कु च्योट लगी है धन कि
वेधा मृग तो क्या ज्याने परिमल
भंवर ही ज्यानत प्रीत फुलन कि
गुंडा केशो प्रभु अंतर बाहेर
सब कुछ देखत सुर्त लगन कि

× × × ×

सो गुरु पीर मेरा
मन मनके कु फेरा

× × × ×

पान्व दिला भरपुर बाजत ज्येवत बदे ज्याको नुर
परम पुरख आलेख जुगीया नैन्न हल हजुर
गाफल आद्या ज्यग जो बहके, बाजेत अनहत तुर
गुडा केशव परमादि खलक भरा माह मुर

---

१. अदना। २. नबी (पैगम्बर)। ३. नबीजी (पैगम्बर)। ४. आतुर।
५. हीरे की।

त्याग पीयु घरे हरमन की, तसबि[1] मन मो फेर
क्या सोया उठ काल सयाणे ''चे पठेन लगे वेद
ज्यौ लो[2] नहीं तलब आई ज्यम[3] कि तै लग[4] सब कछु मोद
गुंडा केशव प्रभु कहत पुकारे आखर नही कोऊ तोरे।
परवर को गीदड़ क्या ज्याने कल को
ये मन बेहोश कहे मेरा मेरा
ये लाल कनात कलदरी डेरा
च्यौगीर्द[5] फेरा
नावं नवेसी च्येहरा
कोउ बि नहिं तोरा
भूला ज्याहा तूं था घूरा बबरा ॥१॥
गुन्हेगार ज्यो है पूरा, नाकारा हराम दा प्यारा
गुरु गुडा केशो पूकारा : बादिदा मारा छपावे जरारा

१. तसबीह (माला) ''पाण्डुलिपि में अक्षर स्पष्ट नहीं हैं। २. जबतक। ३. जम (यम)। ४ तबतक। ५. चारों ओर।

माणिक महाराज के पद

माणिक के पद

(१)

भोला ! तोहे[1] मूरत लागत नीको । ध्रुवपद ।
कान भुजंग सुहावत कुंडल, वोढे[2] ही छाला व्याघ्राम्बर
गाल बजाय के नाम ही लेत, काल ही कापत थरथर ।
माणिक के प्रभु ऐसे सदाशिव, भावहि भक्ति न[3] भूको
भोला''''''' ''' नीको ॥

(२)

आज बडो ये कठिन भयो ।
निर ढलकत नैन से या रघुबर के ।
लाग के बाण जद[4] लछुमन, व्याकुल प्राण भयो भयोधर (१) के
क्या कहूं मै भरत भैयाकु, कैसे मैं जाऊ अयोध्यानगरकु
ज्यावेगे काल कपि गिरि कंदर, ज्यावे विभीखन अब कौन घर के ।
माणिक के प्रभु धुनख[5] धरे, बतावो निशाचर अब कौन घर के ।

(३)

गुरुजी ! तोरे पैया पर सीस धरू ।ध्रुवपद।
तेरा नाम का ध्यान धरू, तेरे काज मरू ।
आपने तन की चाम निकाल के, चरण पनैया करू ।
माणिक कहे तेरी मूरत प्यारी, नैनन बीच भरू ॥

(४)

मनलागा मेरो रे ! अवधूता सो । ध्रुवपद ।
निराकार निर्गुन निरंजन, निराकार बिना नाथा सो ।
बहुरंगी जोगी संग त्यागी, ज्ञान अखिल पददाता सो ।
माणिक के मन लग गये सुमरन, अनसूयाजी के पूता सो ।

---

१. तेरी २ ओढे । ३. पाठान्तर 'क' । ४. जव । ५. धनुप ।

(५)

देखो देखो सखि रे छत्र वालाकी । ध्रुवपद ।
शेषाचल पर आप विराजे, चौकी हनुमत लाला की ।
मोर मुकुट मस्तक पर सोहे, बहुत लगी लड माला की ।
माणिक के मन सुमरत बाला, फासा कटे भवजाला की ॥

(६)

मै तो वारि रे सैया ! तोरे पर से ।
सावलि सूरत रसभरी अखिया लेउगि बलया दोनो कर से ।
माणिक प्रभु वो नंदलाला । दर्शनपर[१] जिया तरसे ॥मै तो०॥

(७)

नदकुमार सावरो कान्हा, बासुरी बजाई ।
शुक सनक व्यासमुनि, ध्रुवप्रल्हाद नारदमुनि ।
भय[२] रहे स्थिर देह, सुध विसराई ।
चकित भये सब ही देव, ब्रह्मा विष्णु महादेव ।
त्रिभुवन मो नाद भरे सुनत शेष शायी ।
स्थिर रहे जमुन नीर, डुल भये बिमानी[३] सुर ।
माणिकदास मगन भये हरि के गुण गाई ॥

---

१. दर्शन के लिए। २. हो रहे। ३. विमान पर चढ़े हुए देवता ।

परिशिष्ट

(ख)

प्रमुख सहायक ग्रंथ-सूची

(१) यादवकालीन मराठी भाषा (मराठी) .... डा० तुलपुले

(२) पाच संतकवी (मराठी) .... "

(३) तुकाराम बुवांचा अस्सल गाथा (भाग १,२) (मराठी) .... वि. ल. भावे

(४) सकल संत गाथा (मराठी) .... त्र्यंबक हरी आवटे

(५) तुकाराम महाराजाची साम्प्रदायिक गाथा (मराठी) · देवड़ीकर

(६) पंजाबातील नामदेव (मराठी) .... शं. प्र. जोशी

(७) एकनाथ महाराजाची गाथा (मराठी) .... "

(८) नामदेवाची आणि त्याचे कुटुम्बातील व समकालीन साधूंच्या अभंगाची गाथा (मराठी) ... तात्त्व विवेचक छापखाना, बंबई

(९) संत काव्य समालोचन, खंड १ (मराठी) ... ग्रामोपाध्ये

(१०) देवनाथ महाराज-कृत कविता-संग्रह (मराठी) .. ओक

(११) वैदर्भ काव्य-संग्रह (गुच्छ दूसरा) श्री एकनाथ महाराजाची कविता (मराठी) ... साठे, पाडे, अग्निहोत्री

(१२) महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष, विभाग २०वाँ (मराठी) ... डा० केतकर

(१३) श्री समर्थ सुवर्ण महोत्सव-ग्रंथ (मराठी) ... सहकार्य उत्तेजक सभा, धुले

(१४) मराठी वाङ्मयाचा इतिहास खंड पहिला (मराठी) .. पागारकर

(१५) महाराष्ट्र सारस्वत (मराठी) · भावे और तुलपुले

(१६) श्री तुकाराम अभंग वाणी (मराठी) · श्री मोडक

(१७) श्री गुलाबराव महाराजकृत सूक्ति-रत्नावलि (मराठी) .... श्रीगुलाबराव महाराज

(१८) सम्प्रदाय सुरतरु (मराठी) .... श्री गुलाबराव महाराज

(१९) श्री विष्णुदासाची कविता (मराठी) .... खरशीकर शास्त्री

(२०) भक्तविजय-कथामृत (मराठी) .... भिकाजी ढवले

(२१) महाराष्ट्र-परिचय (मराठी)

(२२) तुकाराम (मराठी) .... हर्षे

(२३) महाराष्ट्र संत कवयित्री (मराठी) .... आजगावकर

(२४) श्री तुकाराम-चरित्र (मराठी) .... पागारकर

(२५) श्री दयालनाथाची कविता (मराठी) ... साठे और पाडे

(२६) श्री तुकाराम-वचनामृत (मराठी) .... रानडे

(२७) संत तुकराम (मराठी) .... आजगावकर

(२८) साहित्य-दर्पण (मराठी)

(२९) छन्दोरचना (मराठी) .... पटवर्धन

(३०) भक्त शिरोमणि नामदेव (हिन्दी) .... मोहन सिंह

(३१) श्री समर्थ रामदास (हिन्दी) .... जोगलेकर

(३२) एकनाथ और तुलसीदास (हिन्दी)

(३३) संत तुकाराम (हिन्दी) .... दिवेकर

(३४) गोरखबानी (हिन्दी) .... डॉ० बड़थ्वाल

(३५) उत्तरी भारत की संत-परम्परा (हिन्दी) .... परशुराम चतुर्वेदी

(३६) हिन्दी साहित्य का आदिकाल (हिन्दी) .... डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

(३७) राधा माधव विलास चंपू (संस्कृत, हिन्दी, मराठी) .... जयराम

(३८) कबीर-वचनावली (हिन्दी) .... हरि औक

(३९) सूरसागर (हिन्दी) .... डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

(४०) संत वाणी सुधासार (हिन्दी) .... वियोगी हरि

(४१) मराठी संतों का समाजिक कार्य (हिन्दी) .... डॉ० कोलते

(४२) हिन्दी काव्य धारा (हिन्दी) .... राहुल

(४३) नाथ सम्प्रदाय (हिन्दी) .... डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

(४४) हिन्दी भाषा का इतिहास .... डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

(४५) दक्खिनी हिन्दी .... डॉ० बाबूराम सक्सेना

(४६) भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी .... डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी

(४७) परमार्थ सोपान .... डॉ० रानडे

(४८) Gorakhnath And The Kanphata Yogi .... श्री ब्रिग्स

(४६) Introduction to Comparative Philology .... डॉ० पी० डी० गुणे
(५०) Mysticism In Maharashtra .... डॉ० रानडे

पत्र-पत्रिकाएँ

(१) प्रसाद (मराठी)
(२) प्रतिष्ठान (मराठी)
(३) भारत इतिहास-संशोधन-मंडल (मराठी त्रैमासिक)
(४) लोक-शिक्षण (मराठी)
(५) हिन्दोस्तानी (हिन्दी)
(६) नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (हिन्दी)

अप्रकाशित हस्तलिखित पोथियाँ

पोथी	विवरण
अनेक हस्तलिखित पोथियाँ	—श्री समर्थवाग्देवता-मंदिर, पुरलिया के हस्तलिखित ग्रंथागार में रामदासी मठों, व्यक्तियों आदि स्रोतों से प्राप्त कर संगृहीत प्राचीन पोथियों में प्राप्त हिंदी-पद तथा अन्य सामग्री का उपयोग इस ग्रंथ में किया गया है।
वामन पंडितांची चौपदी	—लिपिकाल शाके १५७१, लिपिकार अनन्तमुनि। स्व० हरिभाऊ नेने द्वारा प्राप्त।
केशव, शिवदिन केसरी, अमृत राय, सिद्धेश्वरी महाराज के पद	—मराठवाड़ा-साहित्य-परिषद्, हैदराबाद के हस्तलिखित ग्रन्थागार से प्राप्त।
गुंडा केशव के पद	—डा० देशमुख (अमरावती) के पुस्तकालय से प्राप्त।
अनंत महाराज के पद	—श्री भा० रा० तेलग, औरङ्गाबाद पुस्तकालय से प्राप्त।

अनुक्रमणिका

अ

ठ

ड

ण

त

द

ध

न

फ

ब

भ

शा

ष

स

११७	५	जानता	जानते
,,	,,	वह	वे
,,	,,	सकता	सकते
१२३	४	न	य
१६६	१३	और	औ
,,	२७	च	ज
,,	,,	झ	झ
१७४	४	एक	ए
१२०	६	मति	मात
२०२	५	हार	द्वार
,,	२१	जाला	जाहा
,,	२३	षीडस	षोडस
,,	,,	दवादशादल	द्वादशदल
२१८	३०	अस	अरु
२१८	,,	की	ही
२२०	१५	जान पड़ते हैं	हैं
२२१	२६	व्रह्म	व्रह्म
२२२	२	धन-वैभव-स्वप्न	धन-वैभव स्वप्न
२२५	२१	प्रवहमान्	प्रवहमान
२२६	६	अनुष्टुप	अनुष्टुप्
,,	१५	'ओली'	'ओवी'
२२७	२	रुढ़ि	रूढ़ि
२२६	२६	संतो	संतों
२३०	६	वद्धमेवं	वद्धमेवं
२३०	७	उदग्राह ध्रुवकाभागातर	उद्ग्राहध्रुवकाभागान्तरं
२३०	६	व्रह्मताल	ब्रह्मताल